मध्यकालीन संस्कृत-नाटक

[नए तथ्य : नया इतिहास]

लेखक

रामजी उपाध्याय,

एम. ए., डी. फिल्., डी. लिट्

सीनियर प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

सागर विश्वविद्यालय, सागर



प्रकाशक

संस्कृतपरिषद्, सागरविश्वविद्यालय,

सागर

प्रथम संस्करण
मार्च, १९७४

Published Under the Authority of the University of Sagar
With The U. G. C. Assistance

मूल्य [illegible]–००

मुद्रक
विद्याविलास प्रेस
के. ३७/१०८, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–१

नाट्यकथा के प्रेमी

श्रद्धेय भाई

पं० श्रीनारायण उपाध्याय के

करकमलों मे

सादर समर्पित



इस ग्रन्थ में केवल छपे हुए रूपकों का ही विवेचन सम्भव हो सका है। किसी एक स्थान पर इन सबको प्राप्त कर लेना असम्भव था। इनकी प्राप्ति के लिए कलकत्ता, दरभङ्गा पटना, प्रयाग, रामनगर, वाराणसी, लखनऊ, गोरखपुर, दिल्ली, बीकानेर, जोधपुर, इन्दौर, उज्जयिनी, बड़ौदा बम्बई, पूना आदि स्थानों की यात्रा करनी पड़ी। इस यात्रा मे देश-दर्शन का अपूर्व अवसर मिला और यह बोध हुआ कि भारत की किस महिमशालिनी विभूति की खोज करके कवियों ने नाटयाङ्गों को सम्भृत किया है। काशी-नगरी पुस्तको के संरक्षण और वितरण में अग्रगण्य है। उसकी सहायशीलता निरुपम रही है।

प्रकाशित रूपको की अपेक्षा कई गुने अधिक रूपक अभी तक प्रकाश मे नहीं आ सके है वे हस्तलिखित रूप मे पड़े हुए प्रकाशकों के कृपाकटाक्ष की प्रतीक्षा में है। जब तक उन सबको हम अपनी अध्ययन-परिधि मे नहीं लाते, हमारा प्रयास अधूरा है। फिर भी 'अकरणान्मन्दकरणं श्रेय.' इस विश्वास के साथ भारत-भारती के एक सुदीर्घ पटल को आपके समक्ष प्रथम बार अनावृत करते हुए हम कुछ-कुछ ऋणमुक्त होते हुए-से अपने में ही कृतकृत्य है।

१६-३-७४ रामजी उपाध्याय

विश्वविद्यालय, सागर

विषयानुक्रमणिका

अध्याय १

हनुमन्नाटक

हनुमन्नाटक संस्कृत के उन कतिपय ग्रन्थों में से है, जिनकी काव्यमालिका में अन्य कवियों के श्लोकरत्नों को भी गुम्फित किया गया है। अनेक कवियों की प्रतिभारत्नावली का विलास एकत्र होने से यह नाटक विशेष रमणीय बन गया है। मूल हनुमन्नाटक में पूर्ववर्ती और परवर्ती युग के राम-सम्बन्धी कल्पित प्रकरण भी जोड़े गये।

मूलतः किसी अज्ञातनामा कवि की यह रचना थी। वह कवि कौन था या कब हुआ—यह प्रश्न अभी तक असाध्य है।[1] ऐसा लगता है कि यह नाटक उस युग में मूलतः प्रणीत हुआ, जब वाल्मीकि रामायण की कथाधारा में परिवर्तन करने की रीति अपवादात्मक थी। वास्तव में हनुमन्नाटक की मूलकथाधारा वाल्मीकि रामायण की पद्धति पर प्रवर्तित हुई है। इसमें प्रधान कथातत्त्व पूर्णतया वाल्मीकीय है। आठवीं शती तक ऐसी स्थिति थी। इसके पश्चात् नाटककारों ने वाल्मीकि रामायण की कथा में मनमाने प्रकरण जोड़ना या परिवर्तन करना आरम्भ किया। ऐसे नाटक-कारों में शक्तिभद्र, मुरारि और राजशेखर उल्लेखनीय हैं। ये कवि नवीं शती के हैं। मूल हनुमन्नाटक की रचना इनके पहले हुई होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका प्रणेता भवभूति से बहुत दूर नहीं रहा होगा। ऐसी स्थिति में यह आठवीं शती की रचना हो सकती है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख भोज (१०००–१०५० ई०) ने किया है। इससे इतना तो निश्चित ही है कि १००० ई० तक यह ख्याति-प्राप्त नाटक था।

हनुमन्नाटक नाम इस नाटक में हनुमान् का उत्कर्ष व्यक्त करने के लिए है। इस प्रकार नाटकों के नाम सुभद्रानाटिका और कुवलयावली आदि मिलते हैं, जिसमें किसी प्रधान पात्र की प्रमुखता है। दूताङ्गद में अङ्गद की प्रमुखता है।

हनुमन्नाटक को महानाटक भी कहते हैं, क्योंकि महानाटक के लक्षण इसमें अधि-कांश मिलते हैं।[2] इसको छायानाटक भी कहते हैं, क्योंकि इसमें सीता और राम

---

१. इस नाटक के रचयिता हनुमान् हैं—अतएव इसे हनुमन्नाटक कहते हैं—इस मान्यता का उल्लेख विण्टरनिज ने किया है। यह समीचीन नहीं है। संस्कृत में लेखक के नाम पर नाटक का नाम सापवाद है।

२. एतदेव यदा सर्वैः पताकास्थानकैर्युतम्।
अङ्कैश्च दशभिर्धीरा महानाटकमूचिरे॥ साहित्यद० ६-२२३

को मायारूपधारी बनाकर क्रमशः दशम और द्वादश अङ्क में पात्र बनाया गया है।[1]

विण्टरनित्ज ने हनुमन्नाटक की विशेषताओं का आकलन करते हुए कहा है—'यह महाकाव्य और नाट्यकाव्य के बीच की रचना है। इसमें गद्यांश विरल हैं। पद्यों में नाट्योचित संवाद हैं और साथ ही महाकाव्योचित आख्यान हैं। रंगमंचीय निर्देशन भी काव्यशैली में पद्यात्मक हैं। इसको सुनाते समय अभिनय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थलों पर अनेक पात्रों का संवाद नाट्य-पद्धति पर होता था।'

हनुमन्नाटक के दो संस्करण मिलते हैं—प्रथम दामोदर मिश्र का, जिसमें १४ अङ्क और ५४८ पद्य हैं। इसका प्रचलन पश्चिम भारत में विशेष रहा है। द्वितीय संस्करण पूर्वभारत या बंगाल का है। इसमें केवल १० अंक और ७२० पद्य हैं। इसका नाम महानाटक मिलता है। दोनों संस्करणों में इसे हनुमान् की रचना बताया गया है।

हनुमन्नाटक में अनेक वक्तव्य मराठी नाटक के निवेदन के समकक्ष पड़ते हैं, जो न तो संवाद हैं और न एकोक्ति अथवा स्वगत। उनका बोलनेवाला व्यक्ति रंगमंच पर किसी का अनुकरण करनेवाला पात्र नहीं है। वह सूचक या निवेदक है, जो संवादविहीन दृश्यों का चमत्कारपूर्ण वर्णन करता है।

कथानक

राजा दशरथ के चार पुत्र थे। उनमें से सबसे बड़े राम को राक्षसों के उत्पात से त्रस्त विश्वामित्र ने कुछ समय के लिये माँग लिया। राम के साथ लक्ष्मण भी विश्वामित्र के पीछे हो लिए। मार्ग में राम ने ताड़का को मारा। उन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालनेवाले बहुत से राक्षसों को भी मारा, किन्तु मारीच को छोड़ दिया।

विश्वामित्र ने सुना कि सीता-स्वयंवर के लिए आये हुए राजा विफल हो चुके हैं। वे राम के साथ मिथिला जा पहुँचे। सीता ने देखा मधुरमूर्ति राम इस कठोर धनुष के उठाने में कैसे समर्थ होंगे? वे अपने पिता की स्वयंवर-सम्बन्धी प्रतिज्ञा को बाधक समझने लगीं। राम ने लक्ष्मण से कहा कि देखो न, इसे उठाने तक में पृथ्वी का कोई राजा समर्थ नहीं हुआ। लक्ष्मण ने उत्तर दिया कि इस सड़े धनुष की क्या बात करते हैं? मैं तो मेरु आदि पर्वतों को भी उठा सकता हूँ।

तभी रावन के पुरोहित ने जनक से कहा—सीता के लिए याचना वह रावण कर रहा है, जिसके लिए त्रिभुवन मच्छर की भाँति है। फिर उसने राम से कहा कि आप सीता से विवाह के पचड़े में न पड़ें, जब रावण उनसे विवाह करना चाहता है। जनक ने कहा कि यदि रावण धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाये तो उसे ही सीता दे दूँ।

---

1. छायानाटक का विवरण सागरिका १०.४ में है।

पुरोहित ने कहा कि धनुष रावण के गुरु शिव का न होता तो चढ़ाना क्या, रावण उसे चूर्ण ही कर देते।

राम ने धनुष उठाया तो परशुराम के अहंकार को ठेस लगी। वे वहाँ आ पहुँचे। राम को वे डाँटने लगे कि यह क्या किया? राम ने क्षमा मांग ली और कहा कि आप चाहें तो परशु से मेरी गर्दन उड़ा दें। परशुराम ने कहा कि अच्छा, हमारे इस गरुडध्वज-धनुष को ही उठाओ तो तुम्हारा बल प्रमाणित हो। रामने उसे उठाकर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। इसे देखकर परशुराम राम की महिमा से प्रभावित होकर विनयी हुए। उन्होंने परस्पर प्रशंसा की। परशुराम के चले जाने के पश्चात् राम और सीता का विवाह हुआ।

राम और सीता का दाम्पत्य-जीवन सुखी रहा, पर कुछ ही दिनों के पश्चात् कैकेयी के वर माँगने के अनुसार राम को वन जाना पड़ा और भरत राजा हुए। दशरथ को श्रवण के पिता यज्ञदत्त का शाप था कि तुम पुत्र वियोग में मरोगे और दशरथ मर गये। राम के वन जाने के पश्चात् भरत नन्दिग्राम में जटावान् होकर अयोध्या का शासन करने लगे।

वन में जाते समय सीता शीघ्र ही थक गईं।[1] उन्होंने राम से कहा—

सद्यः पुरीपरिसरेषु शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात् त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥ ३.१२

मार्ग में स्त्रियों ने सीता से पूछा कि राम तुम्हारे कौन हैं? सीता की प्रतिक्रिया हुई—

पथि पथिकवधूभिः सादरं पृच्छ्यमाना
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति।
स्मितविकसितगण्डं व्रीडविभ्रान्तनेत्रं
मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता[2]॥ ३.१५

चित्रकूट में राम से मिलने के लिए भरत पहुँचे तो सीता उनके राम के चरण में प्रणाम करते समय रो पड़ीं; क्योंकि उन्होंने भी जटा और वल्कल धारण कर रखा था। भरत के लौट जाने पर सीता ने राम से कहा—

---

१. इस श्लोक को छाया तुलसीदास ने कवितावली में प्रस्तुत की है—
पुर तें निकसीं रघुवीरवधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
फिर पूछति हैं चलनो अब केतिक पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अंखिया गये चारु चली जल च्वै।
इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास के समय तक यह नाटक लोकप्रिय था।

२. इस श्लोक की छाया तुलसीकृत रामायण और कवितावली में है।

कमलरजोभिर्मुक्तपाषाणदेहा-
मलभत यदहल्यां गौतमो धर्मपत्नीम् ।
त्वयि चरति विशीर्णग्रावविन्ध्याद्रिपादे
कति कति भवितारस्तापसा दारवन्तः[1] ॥ ३.१६

वहाँ से वे सभी गोदावरी तट पर पहुँचे और पंचवटी में कुटी में रहने लगे। मारीच स्वर्णमृग बनकर आया और राम लक्ष्मण को साथ लेकर उसे पकड़ने के लिए चल पड़े।

मायामृग मारीच भागा तो अभिज्ञानशाकुन्तल के मृग की भाँति—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति[2] ॥ ४.२

इधर राम ने मारीच को बाण से मारा, उधर रावण तपस्वी बनकर सीताहरण के लिए पहुँचा। सीता उसे भिक्षा देने आईं और वह उन्हें विमान पर ले उड़ा। मलयाचल पर जटायु से उसकी लड़ाई हुई। जटायु सीता को सान्त्वना देते हुए युद्ध में मरणासन्न हुआ। वह राम-राम कहते मर गया। सीता ने वहाँ अपने गहने हनुमान् को दिये और कहा कि इसे राम को दे देना।

विलाप करते हुए सीता को खोजने के लिए राम निकले। उनको मार्ग में जटायु मिला। राम ने उनसे कहा कि अब तो आप स्वर्ग जा ही रहे हैं। दशरथ से कह देंगे कि सीताहरण हुआ है। मैं शीघ्र ही रावण को भेजने वाला हूँ, जो सीता की पुनः प्राप्ति का समाचार देगा। राम घूमते-फिरते किष्किन्धा जा पहुँचे। वहाँ हनुमान् ने सीता का संवाद और साथ ही उनके गहने राम को दिये। राम ने उन्हें पहचाना और लक्ष्मण से कहा कि तुम भी इन्हें ठीक-ठीक पहचानो कि क्या ये सीता के हैं। लक्ष्मण ने आँखों में आँसू भर कर कहा—

कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्[3] ॥ ५.३६

फिर हनुमान् उन्हें सुग्रीव के समीप ले गया, जिससे विदित हुआ कि सुग्रीव की पत्नी का हरण बाली ने किया है। राम ने प्रतिज्ञा की कि बाली को मारूँगा। उन्होंने

---

१. इस श्लोक की छाया तुलसीकृत रामायण और कवितावली में है।

२. यह पद्य अक्षरशः कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल से लिया गया है।

३. यह श्लोक वाल्मीकि-रामायण से लिया गया है—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥ कि० का० ६.२२ ॥

पहले सप्ततालों को बींधा। फिर वाली पर ब्रह्मास्त्र से प्रहार किया। मरते समय वाली ने कहा कि मुझे अपने पिता इन्द्र को विपत्ति में डालने वाले रावण का वध करने का अवसर नहीं मिला—इस शोक के साथ मैं मर रहा हूँ। राम ने कहा कि इस काम को तुम्हारा पुत्र अङ्गद पूरा करेगा।[1]

लङ्का पर आक्रमण करने के पहले यथासमय हनुमान् सीता का समाचार लाने के लिए वहाँ भेजे गये। राम ने उन्हें करमुद्रा दी। हनुमान् लंका पहुँचे और सीता के समक्ष अँगूठी रख दी। सीता ने सन्देश दिया कि राम यथाशीघ्र लंका पर आक्रमण कर दें।

हनुमान् ने रावण के लीलावन को उजाड़ दिया। उनको ब्रह्मास्त्र से बाँधकर रावण के पास पहुँचाया गया। रावण से हनुमान् ने कहा—

मद्दोर्दण्डकठोरताडनविधौ को वा त्रिकूटाचलः
को मेरुः क्व च रावणस्य गणना कोटिस्तु कीटायते ॥

रावण ने अपनी तलवार चन्द्रहास से हनुमान् पर प्रहार किया, पर कुछ हुआ नहीं। हनुमान् ने कहा कि तुम मुझे जला दो। बस, पूँछ में कपड़े-लत्ते बाँधकर उस पर तेल डालकर आग लगा दी गई। फिर तो हनुमान् ने लंका जला दी। सीता ने हनुमान् को अभिज्ञान-रूप में शिरोरत्न दिया। उनके लौट आकर मिलने पर राम ने उनका आलिंगनपूर्वक स्वागत किया। फिर तो राम को सीता का समाचार पाकर आश्वासन हुआ। एक बड़ी सेना सहित सुग्रीव ने राम की अध्यक्षता में लंका के लिए प्रयाण कर दिया।

लंका में विभीषण ने रावण से कहा कि सीता राम को लौटा दें और देवताओं को बन्धन-विमुक्त कर दें। रावण ने विभीषण को वामचरण से मारा। विभीषण राम से आ मिले। विभीषण को राजपद मिला।

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरच्छेदेऽपि शङ्करात्।
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे ॥ ७.१४

राम के बाण से डरकर समुद्र ने सेतुमार्ग दिया। सेना लंका में जा पहुँची। राम का दूत बनकर अंगद रावण के पास पहुँचा। रावण से लम्बी-चौड़ी लाग-डांट की बातें हुईं। सन्देश का सारांश था—

सीतां मुञ्च भजस्व रामचरणं राज्यं चिराद् भुज्यतां
देवाः सन्तु हविर्भुजः परिभवं मा यातु लङ्कापुरी।
नो चेद् वानरवाहिनीपतिमहाचञ्चचपेटोत्तरै-
स्तत्तन्मुष्टिभिरङ्गसंगरगतस्तत्तत्फलं लप्स्यसे ॥ ८.४६

अङ्गद के लौट आने पर मन्दोदरी ने रावण से वही प्रार्थना की, जो अंगद ने कही

१. यह सत्य नहीं हो सका। वस्तुतः राम ने रावण को मारा।

थी। उसकी बात से रावण कुछ डरा। उसने शुक और सारण को दूत बनाकर राम की सेना में भेजा।

मन्त्रियों ने रावण को राम से सन्धि करने के पक्ष में मत दिये। इसे सुनकर रावण डरा कि कहीं कुम्भकर्ण नीतिपथ जान कर मुझे ही न मार डाले। उसने उसे पहले लड़ने के लिए भेज दिया।

मन्दोदरी ने सीता जैसा प्रसाधन करके रावण से कहा कि आप सीता की भाँति रमणीयता मुझ में देख सकते हैं। रावण ने कहा—

नैनः प्रिये परिमलस्तव भेदमाख्या-
त्यङ्गे विदेहदुहितुः सरसीरुहाणाम् ॥ ६.३६

मन्दोदरी ने समझ लिया कि विनाश उपस्थित है।

रावण ने राम और लक्ष्मण के सिर माया से बनाकर सीता के सामने रख दिये। सीता राम के उस सिर का आलिङ्गन करना चाहती थीं। तभी आकाशवाणी से ज्ञात हुआ कि यह कृत्रिम सिर है। राम को कौन मार सकता है? रावण ने पुनः सीता से प्रणय-प्रस्ताव किया। सीता ने उसे डाँट लगाई। सीता ने कहा कि मुझे तू राम से भिन्न न समझ।

पश्य त्वत्कुलनाशाय मया रामेण भूयते ॥ १०.१७

रावण लौट तो गया, पर इस बार वह राम बनकर अपने दोनों हाथों में रावण के पाँच-पाँच सिर लेकर आया। उसे देखकर सीता ने उसे राम ही समझा और बोलीं—

धन्याहं प्राणनाथ त्यज रजनिचरच्छिन्नशीर्षाणि गाढं
मामालिंगाद्य खेदं जहि विरहमहापावकः शान्तिमेतु ॥ १०.२०

सीता उसका आलिंगन करना ही चाहती थीं कि रावण वहाँ से शिव, शिव कहता भागा। आकाशवाणी हुई कि सीते, तुम्हें राम तो मिलकर रहेंगे, जब रावण मरेगा।

रात के समय प्रभञ्जनी नामक राक्षसी छिपकर राम को मारने आई। उसे अंगद ने खदेड़ा। राम की सहायता के लिए इन्द्र ने छत्र, गज, तुरंग आदि दिये। रावण की ओर से कुम्भकर्ण लड़ने आया। सुग्रीव ने उसकी नाक और कान काट लिये। कुम्भकर्ण वानरों को खा जाता था। उसे सुग्रीव ने पकड़ लिया। अंगद ने सुग्रीव की सहायता की। कुम्भकर्ण को दोनों ने बाँध लिया। तब नील ने आग लगा दी, जिससे कुम्भकर्ण जलने लगा। रावण ने वह आग बुझाई। कुम्भकर्ण ने नल-नील को पकड़ लिया। जाम्बवान् ने उन्हें छुड़ाया। लड़ाई बढ़ती गई। हनुमान् ने अपनी पूँछ से कुंभकर्ण के मुद्गर को खींच लिया। राम ने उसे मार डाला। हनुमान् ने अपनी पूँछ में लपेटकर उसके धड़ को आकाश में फेंक दिया।

मेघनाद ने राम-लक्ष्मण को नागपाश से बाँध कर मृत कर दिया। सीता को यह

समाचार मिला तो वे पुष्पक विमान से उन्हें देखने गईं। इधर गरुड़ ने अमृतरस का लाकर उन्हें पुनरुज्जीवित किया। तब मेघनाद ने माया की सीता बनाकर उसे काट डाला। राम के समक्ष यह सब हुआ। राम यह देखकर मूर्च्छित हो गये। उधर मेघनाद शक्तिसंचय करने के लिए अपने शरीर के मांस से हवन कर रहा था। हनुमान् ने उस यज्ञ में विघ्न डालकर निष्फल कर दिया। फिर तो लक्ष्मण ने उसे मार ही डाला।

रावण ने लक्ष्मण को मारने के लिये ब्रह्मा की शक्ति का प्रयोग किया। उसे हनुमान् ने समुद्र में फेंक दिया। यह देखकर रावण ब्रह्मा को मारने के लिए उद्यत हुआ। ब्रह्मा ने अपने पुत्र नारद से कहा कि तुम हनुमान् को युद्धस्थल से हटाओ, जिससे रावण की शक्ति सफल हो, अन्यथा वह मुझे ही मार डालेगा। नारद ने ऐसा ही किया। शक्ति से रावण ने तब प्रहार किया, जिससे लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। हनुमान् लक्ष्मण को बचाने के लिए वैद्य सुषेण को लाये। सुषेण ने कहा कि द्रुहिण-पर्वत से संजीवनी बूटी लाई जाय तो इनकी प्राणरक्षा हो। हनुमान् ने कहा कि मैं तत्काल उसे लाता हूँ—

तैलाग्नेः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वात्र चैमि ॥ १३.२०

अर्थात् जितनी देर तक अग्नि पर डला सरसों चटखता है, उतनी ही देर में संजीवनी लेकर मैं आ जाऊँगा।

संजीवनी का विवेक असम्भव था। हनुमान् को वह पर्वत ही लाना पड़ा। उसे उन्होंने अपने पिता वायु की सहायता से उखाड़ा। उसे लेकर वे अयोध्या के ऊपर से उड़े। उन्हें भरत ने उत्सुकतावश बाण से मार गिराया। वे राम का नाम लेकर मूर्च्छित हो गये। उनकी मूर्च्छा वसिष्ठ ने उसी पर्वत पर प्राप्त संजीवनी से दूर कर दी। उन्होंने सब समाचार सुनाया। भरत के बल की परीक्षा लेने के लिए हनुमान् ने कहा कि मैं थक गया हूँ। तब भरत ने हनुमान् सहित पर्वत को लङ्का पहुँचाने के लिए बाण की नोक पर—

सार्द्रिं कपिं समधिरोप्य गुणे नियुज्य।
मोक्तुं दधे झटिति कुण्डलितं चकार
तुष्टाव तं परमविस्मयमागतः सः ॥ १३.२६

लक्ष्मण स्वस्थ हुए। घोर युद्ध में रावण-पक्ष के सभी वीर मारे गये। अन्त में मन्दोदरी से पूछने के लिए रावण गया कि मैं मारा जाकर स्वर्ग जाऊँ या सीता को लौटा दूँ। मन्दोदरी ने कहा कि यह बुद्धि, पहले आई होती तो कितना अच्छा होता। अब तो आप मुझे युद्ध करने की आज्ञा दें—

देवाज्ञां देहि योद्धुं समरमवतराम्यस्मि सुक्षत्रिया यत् ॥ १४.६

रावण ने कहा, 'नहीं, अब मुझे ही लड़ना है।' वह राम के द्वारा मारा गया।

सीता को लक्ष्मण और हनुमान् राम के समीप लाये। वे राम के चरणों में नत-मस्तक होना चाहती थीं, किन्तु राम ने कहा कि पहले इनकी पवित्रता की परीक्षा होगी। सीता जलती अग्नि में कूद पड़ीं। तब तो—

वह्निं गताया जनकात्मजायाः प्रोत्फुल्लराजीवमुखं विलोक्य।
उवाच रामः किमहो सुरादीनङ्गारमध्ये जलजं विभाति ॥ १४.५६

मन्दोदरी को राम ने विभीषण का आश्रय लेने की अनुमति दी।

पुष्पक-विमान में बैठकर समरभूमि आदि देखते हुए सीता से बातें करते हुए राम ने दिन बिताया। विभीषण को राजा बनाकर वे लंका से अयोध्या चले आये। वहां राम का अभिषेक हुआ।

इसके पश्चात् अङ्गद के मन में यह बात आई कि राम ने हमारे पिता को मारा है। मुझे राम का वध करना चाहिए। लक्ष्मण ने तो हाथ ही जोड़ दिए। तब आकाशवाणी हुई कि कृष्णावतार होने पर व्याध बनकर वाली कृष्ण को मारेगा। यह सुनकर अंगद युद्ध से विरत हुआ। राम ने वानर-सेना को पुरस्कृत करके प्रस्थान करा दिया। राम ने एक बार और सीता को वनवास दे दिया।

समीक्षा

कहीं-कहीं कथानक में विषमता इधर-उधर के श्लोकों को लेने से आ गई है। यथा, नीचे के पद्य में राम विनयी हैं—

अयं कण्ठः कुठारस्ते कुरु राम यथोचितम्।
निहन्तुं हन्तगोविप्रान् न शूरा रघुवंशजाः ॥ १.३६

दूसरे ही क्षण वे व्यंग्य बोलकर परशु की हीनता प्रकट करें—यह समीचीन नहीं है। यथा,

भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते संग्रामवार्तापि नो
सर्वे हीनबला वयं बलवतां यूयं स्थिता मूर्धनि।
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजा-
मस्माकं भवतो यतो नवगुणं यज्ञोपवीतं बलम् ॥ १.४०

इस प्रकरण में विनयी राम का इतना मुंहफट होना दो कथाधाराओं का सम्मिश्रण व्यक्त करता है। इसका प्रमाण नीचे के पद्य में स्पष्ट है, जहां राम परशुराम को दुष्ट कहते हैं—

मया वृद्धो दुष्टद्विजदमनदीक्षापरिकरः ॥ १.४६

फिर अगले ही पद्य में राम परशुराम से कहते हैं—

तत् क्रोधाद्विरम प्रसीद भगवञ्जात्यैव पूज्योऽसि नः ॥ १.४७

रामायण की दो कथाधाराओं के अनुसार राम के वनप्रस्थान के समय (१) भरत अयोध्या में थे (२) भरत अयोध्या में नहीं थे और कुछ दिनों के पश्चात् अयोध्या में

आये। इन दोनों धाराओं के श्लोक हनुमन्नाटक में संगृहीत हैं। यथा, राम वन-प्रस्थान के पूर्व कहते हैं—

मां बाधते न हि तथा गहनेषु वासो
राज्यारुचिर्जनकबान्धववत्सलस्य।
रामानुजस्य भरतस्य यथा प्रियायाः
पादारविन्दगमनक्षतिरुत्पलाच्याः ॥ ३.६

इसके पहले वानप्रस्थ की सान्ध्यवेला में कहा गया है—

रामभरतौ स्वं स्वं कालमधिगम्य हर्षशोभौ नाटयन्तौ गुरोर्गिरा जटावल्कलच्छत्रचामरधारिणौ वनप्रस्थानराज्याभिषेकारम्भाय राजानं दशरथं नमस्कर्तुमवतरतः।

तत्र भरतः

हा तात मातरहह ज्वलितानलो मां
कामं दहत्वशनिशैलकृपाणबाणः।
मश्नन्तु तान् विषहते भरतः सलीलं
हा रामचन्द्रपदयोर्न पुनर्वियोगम् ॥ ३.५

यह सब वनप्रस्थान के पहले है।

फिर यदि आगे चल कर भरत कैकेयी से पूछते हैं कि राम क्योंकर वन गये तो यह नीचे का प्रकरण स्पष्टतः दूसरी कथाधारा ही का है। यथा,

मातस्तात क्व यातः सुरपतिभवनं हा कुतः पुत्रशोकात्
कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां त्वमवरजतया यस्य जातः किमस्य।
प्राप्तोऽसौ काननान्तं किमिति नृपगिरा किं तथासौ बभाषे
मद्वाग्बद्धः फलं ते किमिह तव धराधीशता हा हतोऽस्मि ॥ ३.८

कैकेयी ने दशरथ-शाप को परिणति देने के उद्देश्य को अपने समक्ष रखकर राम का वनवास माँगा—यह भी हनुमन्नाटक की एक नई योजना है, जिसका मूल प्रतिमानाटक में निहित है। प्रतिमानाटक में इस योजना के द्वारा कैकेयी के चरित का श्वेतीकरण सम्भव हुआ है, जो इस नाटक में नहीं हो सका है। इसमें कैकेयी को दुर्वृत्त चित्रित किया गया है।

कई पद्य हनुमन्नाटक में अपने प्रसंग से बाहर जोड़े हुए प्रतीत होते हैं। यथा, सुमित्रा का चित्रकूट में लक्ष्मण से कहना—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ पुत्र यथासुखम् ॥

यह लक्ष्मण के अयोध्या छोड़ते समय कहा जाना चाहिए था।

इधर-उधर से पद्यों को लेकर इस नाटक में पिरोते समय अपनी ओर से कुछ अड़बड़ टिप्पणियां जोड़ दी गई हैं। यथा, एक टिप्पणी है—

वैदेही अदृष्टराजमन्दिराद्बहिर्व्यवहारतया बालभावाच्च दैवयोगात् नौका-सुखमनुभूय वने चरन्ती स्थलेऽपि भाराक्रान्ता सती नौः प्रचरतीति मन्यमाना-स्माभिरतः परमनयैव सुखप्रयाणं कर्तव्यं न पद्भ्यामिति बुद्ध्या राममधिकृत्या-ब्रवीत्—

उपलतनुरहल्या गौतमस्यैव शापाद्
इयमपि मुनिपत्नी शापिता कापि वा स्यात्।
चरणनलिनसंगानुग्रहं ते भजन्ती
भवतु चिरमियं नः श्रीमती पोतपुत्री ॥ ३.२०

वनवास के पहले ही सीता इतनी वयस्क थीं कि उनकी पति के साथ दाम्पत्य-जीवन की प्रणयक्रीडायें कवि ने वर्णन की हैं। उन्हीं के विषय में यह कहना कि बाल-भाव के कारण वे यह नहीं जानती थीं कि नाव केवल जल में ही चल सकती है—असमीचीन है। यह चर्चा सीता के विषय में चित्रकूट से आगे बढ़ने पर की गई है। चित्रकूट पहुँचने के पहले ही सीता ने गंगा को नौका से पार किया था और वे यदि पहले से ही नौकाविहारिणी न थीं तो कम से कम गंगा पार करते समय तो उन्हें नौका का पूरा परिचय मिल चुका था तथा यह विदित हो चुका था कि नौका केवल पानी में ही चलती है। हनुमन्नाटक के अनुसार यह गोदावरी तट के निकट की बात है। सीता की अल्पज्ञता को इस सीमा तक लाना ठीक नहीं है। जिस तीरभुक्ति में वे अपनी बालावस्था में रही थीं, वहां नौकाओं का नित्य दर्शन होता है और तीरभुक्ति से अयोध्या आने में असंख्य नौकाओं पर उनको नदियाँ पार करनी पड़ी थीं।

अनेक मनोरञ्जक पौराणिक विवरण इस नाटक के संवादों में मिलते हैं। इनके अनुसार रावण अंगद के शैशव में उसका खिलौना था। इससे बढ़कर है—

दूतोऽहं राघवस्य त्वदुपघनघृणावासवालाग्रलोम्नः
पुत्रः सुत्रामसूनोः प्लवगबलपतेर्नामतश्चाङ्गदोऽहम् ॥ ८.४०

अर्थात् जब बाली रावण को कांख में दबाये हुए लेकर घूमता था तो रावण कष्ट से मरने लगा था। उस समय बाली ने दयापूर्वक उसको अपनी पूँछ की चमरी में सुलाकर सचेत किया था। ऐसे प्रसंग संस्कृत साहित्य में विरल हैं।

कवि ने मन्दोदरी और रावण की मनुहार वार्ता सुनी थी, जिसके अनुसार गणेश के कुम्भमौक्तिक से उसे अपनी प्रेयसी को सजाना था।[1]

हनुमान् जब संजीवनी सहित पर्वत लेकर लंका आ रहे थे तो मार्ग में उनकी अयोध्या में भरत से मुठभेड़ हुई—यह वाल्मीकि रामायण में कहीं नहीं है। हनु-मन्नाटक के अनुसार इस प्रकरण के अन्य वृत्त हैं—

---

१. हा लम्बोदरकुम्भमौक्तिकमणिस्तोमैर्ममैकावली-
शिल्पे वागधमर्णिकस्य भवतो लंकेन्द्रनिद्रारसः ॥ १४.४४

हत्वा मायामहर्षीन् रजनिचरवरान् कन्धकालीमुदग्रां
ग्राहीरूपां प्रमथ्य प्रबलमथ बलं राक्षसान् मर्दयित्वा ।
जित्वा गन्धर्वकोटिं झटिति ततमणिज्वालमादाय शैलं
प्राप्तः श्रीमान् हनूमान् पुनरपि तरसा नन्दितस्तत्पुरस्तात् ।

युद्ध के समय रावण ने राम से कहलवाया था कि शिव की कृपा से प्राप्त परशु मुझ को दे दें तो मैं सीता को लौटा दूँगा । रामने कहा कि उस धनुष को देना अनुचित होगा । ऐसा कोई प्रकरण रामायण में नहीं है ।

वाल्मीकि रामायण की कथा पर हनुमन्नाटक आधारित है, किन्तु अनेक स्थलों पर परवर्ती मनोरञ्जनविदों ने मूलकथा में जोड़-तोड़ किये हैं । यथा, वाल्मीकि रामायण के अनुसार रामविवाह के पश्चात् परशुराम आये और उन्होंने विवाद किया । हनुमन्नाटक में परशुराम के विवाद के पश्चात् राम का विवाह होता है ।

कहीं-कहीं रमणीय प्रसंगों की पुनः पुनः स्मृति कराने के लिए कवि ने कथानक में कुछ नई बातें जोड़ दी हैं । जब सीता अग्निपरीक्षा के पश्चात् बाहर आईं तो उन्होंने राम का चरणस्पर्श नहीं किया, क्योंकि उनके हाथ में मणिजटित कंकण थे और उन्हें भय था कि राम के चरणरज का स्पर्श पाते ही कहीं मणि स्त्रियाँ न हो जायँ—

मणिकंकणोज्ज्वलकरा नैवास्पृशत्यद्भुतन् ।। १४.५७
अहल्यावच्चरणस्पर्शमात्रेण कंकणमणयोऽपि योषितो मा भूवन्निति ।[1]

इस प्रसंग से अहल्योद्धार का स्मरण होता है ।

हनुमन्नाटक में नाट्योचित सन्धियों, सन्ध्यङ्गों और अवस्थाओं को ढूँढ़ निकालना कठिन है । पताका और प्रकरी क्रमशः सुग्रीव और जटायु के प्रकरण में अवश्य मिलते हैं । पूरे नाटक में आङ्गिक अभिनय और कार्याभिनय (Action) का प्रायः अभाव सा है । कोरे संवादों का बाहुल्य है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि हनुमन्नाटक में दृश्यों का पृथक्-पृथक् अपना महत्व है । सारी कथा का समवेत सौष्ठव कवि का अभिप्रेत नहीं प्रतीत होता, जैसा किसी सुसंहित नाटक में होना चाहिये था ।

चरित्र-चित्रण

राम और सीता को हनुमन्नाटक में कतिपय स्थलों पर साधारण मानव-स्तर पर रखकर मनोरञ्जन प्रस्तुत किया गया है । "विवाह के पश्चात् अयोध्या में आकर राम और सीता घुड़साल में जाकर घोड़ों को चाबुक मारने लगे । उनको भ्रान्ति हो गई थी कि अब ये तेज चलने लगेंगे तो सूर्य के घोड़ों के तेज चलने के कारण शीघ्र रात

---

१. तुलसीदास ने इसे लक्ष्य कर लिखा है—
गौतमतियकर सुरति करि नहिं परसति पदपानि ।
मन विहँसे रघुवंशमणि प्रीति अलौकिक जानि ।।
हनुमन्नाटक में यह प्रसङ्ग प्राकरणिकवक्रोक्ति का अनूठा उदाहरण है ।

आयेगी और फिर उनकी प्रणयक्रीड़ा का सुखद समय होगा।[1] इसी प्रकार है "सीता के द्वारा बिल्ली की पूजा कराना, जो उस मुर्गे को खा जानेवाली है, जिसके बाँग देने से प्रातःकाल हो जाता है और सीता को राम से अलग होना पड़ता है।"[2] निश्चय ही ऐसे प्रकरण परवर्ती मनोरंजनविदों के द्वारा पिरोये गये।

हनुमन्नाटक में उस गुप्तकालीन परम्परा को अक्षुण्ण रखा गया है, जिसमें नायिका के पाद-प्रहार को नायक आनन्द का परम प्रकर्ष मानता है। यथा, राम अशोक से कहते हैं—

कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयोः ॥ ५.२४

निष्प्रयोजन ही सर्पादि को कतिपय स्थलों पर पात्र बनाया गया है। पञ्चम अंक में पात्र है एक भुजंगम जो कहता है—

गता गता चम्पकपुष्पवर्णा पीनस्तनी कुंकुमचर्चिताङ्गी।
आकाशगङ्गेव सुशीतलाङ्गी नक्षत्रमध्ये इव चन्द्ररेखा ॥ ५.३०

इसी अंक में वृक्ष भी पात्र है। सप्तताल राम से लड़ने के लिए नियुक्त हैं। हाथों को पात्र बनाकर उनका संवाद प्रस्तुत कर देना मनोरंजक है—

आकृष्टे युधि कार्मुके रघुपतेर्वामोऽब्रवीद्दक्षिणं
दानादानसुभोजनेषु पुरतो युक्तं किमित्थं तव।
वामान्यः पुनरब्रवीन्मम न भीः प्रष्टुं जगत्स्वामिनं
छेत्तुं रावणवक्त्रपंक्तिमिति यो दद्यात् स वो मंगलम् ॥ १४.३५
एकदैव सरेणैकेनैव भिन्नकलेवराः।
म्रियन्ते सप्त तालास्तं घ्नन्ति हन्तारमन्यथा ॥ ५.४५

तारा का चरित्र-चित्रण कवि ने वाल्मीकि रामायण के विपरीत रामचरित की उस धारा के अनुरूप किया है, जिसके अनुसार तारा वाली से प्रसन्न न थी। वह वाली का मारा जाना चाहती थी—

तारा संत्यक्तहारा गिरिशिखरचरा स्रस्तधम्मिलभारा
शोकाब्धिप्राप्तपारार्पितमदनशरा वीरसुग्रीवदाराः।
नारा नाराचधारा निजरमणरता तापिनः पापिनोऽस्य
प्राणाञ्छाणावतीर्णा हरतु कलिकलाशालिनो वालिनोऽद्य ॥ ५१.५०

इस नाटक में राम को सरल बताया गया है। वे वाल्मीकि-रामायण की भाँति बातें बनाकर वालिवध को उचित नहीं सिद्ध करते, अपितु अपने को निरपराध वाली की हत्या के कारण मन्दभाग्य कहते हैं।[3] उन्होंने वाली से कहा—

---

१. रामो यामत्रयमपि कथं मारनाराचभिन्नो
नीत्वा सीतां किमिति तुरगांस्ताडयामास दण्डैः ॥ २.१

२. श्रुत्वा तयोर्गिरिमपूजयदोतुपत्नीमुद्गीर्णकर्णसरणां चरणायुधानाम् ॥ २.३०

३. 'अनपराधिनं वालिनं हत्वा मन्दभाग्यः' इत्यादि पंचम अंक में।

शुद्धिर्भविष्यति पुरन्दरनन्दन त्वं
मामेव चेदहह पातकिनं शयानम्।
सौख्यार्थिनं निरपराधिनमाहनिष्य-
स्यस्मात् पुनर्जनकजाविरहोऽस्तु मा मे ॥ ५.५७

वाली ने कहा—

यावत्त्वां न हनिष्यामि स्थास्यसि त्वं यमालये ॥ ५.५८

इस प्रकरण के अनुसार व्याध ने कृष्ण को मारकर परिशोधन किया था।

हनुमन्नाटक में हनुमान् का माहात्म्य-निदर्शन स्वाभाविक है। हनुमान् के विराट् स्वरूप की व्याख्या राम से सर्वप्रथम जाम्ववान् ने की है—

देव, रुद्रावतारोऽयं मारुतिः। रुद्रस्तुतिः क्रियताम्।

राम ने रुद्रस्तुति की।[1] फिर हनुमान् ने राम से अपनी महिमा वताई—

कूर्मो मूलवदालवालवदपां नाथो लतावद्दिशो
मेघाः पल्लववत्प्रसूनफलवन्नक्षत्रसूर्येन्दवः।
स्वामिन् व्योमतरुर्मम क्रमतले श्रुत्वेति गां मारुतेः
सीतान्वेषसमादिशन् दिशतु वो रामः सहर्षः श्रियम् ॥ ६.३

इसी प्रकार आगे के तीन और श्लोकों में भी हनुमान् की अलौकिक और अद्वितीय शक्ति की परिणति का निदर्शन है।

ऐसा न समझ लें कि हनुमान् की केवल आत्मश्लाघा ही कवि का अभिप्रेत है। अन्य प्रसंग में यदि दर्शक को उनकी विनय से वासित करना है तो कवि कहता है—

पीतो नाम्बुनिधिर्न कौणपपुरी निष्पिष्य चूर्णीकृता
नानीतानि शिरांसि राक्षसपतेर्नानायि सीता मया।
आश्लेषार्पण-पारितोषिकमहं नार्हामि वार्ताहरो
जल्पन्नित्यनिलात्मजः स जयति व्रीडाजडो राघवे ॥ ६.३६

अङ्गद का चरित्र-चित्रण हनुमन्नाटक में असाधारण ढंग से किया गया है। वह अपने पिता वाली के वध का वदला लेने के लिए अवसर देख रहा था। जव राम उसे

---

१. जाम्ववान् ने विभीषण से हनुमान् की अतुलनीय शक्ति का वर्णन करते हुए कहा—

तस्मिञ्जीवति दुर्धर्षे हतमप्यहतं वलम्।
हनूमति गतप्राणे जीवन्तोऽपि हता वयम् ॥ १३.८

हनुमान् आवश्यकता पड़ने पर वलवत्तम हैं। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर उन्होंने कहा—

पातालतः किमु सुधारसमानयामि निष्पीड्य चन्द्रममृतं किमुताहरामि।
उद्दण्डचण्डकिरणं ननु वारयामि कीनाशपाशमनिशं किमु चूर्णयामि ॥ १३.१६

रावण के पास भेज रहे थे, तब उसके मन में यह बात उठ रही थी कि राम को मार डालूँ तो क्या हो—

हन्तुर्हन्तास्मि नो चेत् पितुरपि परमोत्पन्नसम्पूर्णकार्यम् ॥ ८.३

अङ्गद को कवि ने, भले ही परिहासवशात्, परम मिथ्यावादी चित्रित किया है। रावण ने जब अंगद से पूछा कि हनुमान् की क्या स्थिति है तो अंगद ने उत्तर दिया—

बद्धो राक्षससूनुनेति कपिभिः सन्ताडितस्तर्जितः
सुग्रीवार्तिपराभवो वनमृगः कुत्रेति न ज्ञायते ॥ ८.६

यो युष्माकमदीदहत् पुरमिदं योऽद्रीदलत् काननम्
योऽक्षं वीरममीमरद् गिरिदरीर्योवीभरद्राक्षसैः।
सोऽस्माकं कटके कदाचिदपि नो वीरेषु सम्भाव्यते
दूतत्वेन ततस्ततः प्रतिदिनं सम्प्रेष्यते साम्प्रतम् ॥ ७.७

वही अंगद राम के चरित्र का अनुसन्धान करते समय घोर तथ्यवादी है। वह कहता है—

रे रे रावण हीन दीन कुमते रामोऽपि किं मानुषः
किं गङ्गापि नदी गजः सुरगजोऽप्युच्चैःश्रवाः किं हयः।
किं रम्भाप्यबला कृतं किमु युगं कामोऽपि धन्वी नु किं
त्रैलोक्यप्रकटप्रतापविभवः किं रे हनूमान् कपिः ॥ ८.२४

वाली के विषय में बड़ी बातें कही गई हैं, जो अन्यत्र कम ही मिलती हैं। रावण को उसने अङ्गद के खेलने के लिए उसकी चारपाई में बाँध दिया था—

पर्यङ्के निजबालकेलिकृतये बद्धोऽसि येनोपरि ॥ ८.११

और भी

कृत्वा कक्षागतं त्वां कपिकुलतिलको वालिनामा बलीयान्
भ्रान्तः सप्ताब्धितीरे क्षणमिव चरितं स्नानसन्ध्यार्चनं च ॥ १४.८

रावण महाभिमानी है। वह सनद्ध बैठा है कि सारी महाशक्तियाँ उससे प्रभावित हैं। यथा,

प्रतापं संसोढुं रविरपि दशास्यस्य न विभु-
र्निमज्जत्युन्मज्जत्यपरजलधौ पूर्वजलधौ।
हरिः शेते वार्धौ निवसति हिमाद्रौ पुरहरो
विरञ्चिः किञ्चापि स्वजनिकमलं मुञ्चति न वा ॥

रामपक्षवाले रावण की निन्दा करते हैं, किन्तु वह स्वयं सत्य घटनाओं के आधार पर अपनी श्रेष्ठता सुप्रमाणित करता है। यथा,

इन्द्रं माल्यकरं सहस्रकिरणं द्वारि प्रतीहारकं
चन्द्रं छत्रधरं समीरवरुणौ सम्मार्जयन्तौ गृहान्।

पाचक्ये परिनिष्ठितं हुतवहं किं मद्गृहे नेक्षसे
रक्षो भक्ष्यमनुष्यमात्रवपुषं तं राघवं स्तौषि किम् ॥ ८.२४

रामपक्षी सुग्रीव रावण को तृणी करता है—

रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान् वयं शुश्रुम
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्र दासीगणै-
रन्यं वक्तुमहं त्रपामह इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा ॥ ८.३२

हनुमन्नाटक में पात्रों की संख्या अगणित ही कही जा सकती है। मानव, देव, पशु-पक्षी, वृक्ष और हाथ भी पात्र हैं।

रस

जैसे कालिदास ने शिव और पार्वती की दाम्पत्योचित प्रणयक्रीडाओं की श्रृंगारित पृष्ठभूमि पर कुमारसम्भव का आठवां सर्ग निष्पन्न किया है, उसी प्रकार हनुमन्नाटक में द्वितीय अङ्क में राम और सीता की प्रणयलीला का वर्णन है। यथा,

निद्रालुस्त्रीनितम्बाम्बरहरणरणन्मेखलारावधावत्-
कन्दर्पारब्धबाणव्यतिकरतरलाः कामिनो यामिनीषु ।
ताटङ्कोपान्तकान्तग्रथितमणिगणोद्गच्छदच्छप्रभाभि-
र्व्यक्ताङ्गास्तुङ्गकम्पा जघनगिरिदरीमाश्रयन्ते श्रयन्ते ॥ २.१६

श्रृङ्गारोचित विभाव प्रस्तुत करने के लिए वर-वधू की रमणीय वस्तु-विषयक वार्ता परवर्ती नैषधीयचरित का तत्सम्बन्धी पूर्वरूप प्रस्तुत करती है। यथा, राम सीता से कहते हैं—

वदनममृतरश्मिं पश्य कान्ते तवोर्व्या-
मनिलतुलनदण्डेनास्य बाधौ विधाता ।
स्थितमतुलयदिन्दुः खेचरोऽभूल्लघुत्वात्
क्षिपति च परिपूर्त्यै तस्य ताराः किमेताः ॥ २.२६

नीचे के श्लोक में करुण और रौद्र का सामञ्जस्य है—

एकेनाक्ष्णा प्रविततरुषा वीक्षते व्योमसंस्थं
भानोर्बिम्बं सजललुलितेनापरेणात्मकान्तम् ।
अह्नश्छेदे दयितविरहाशंकिनी चक्रवाकी
द्वौ संकीर्णौ विसृजति रसौ रौद्रकारुण्यसंज्ञौ ॥ १२.१७

हास्यरस की भी मनोरम निष्पत्ति है। यथा, लंका में सीता की परिचारिका सरमा अपनी स्वामिनी से कहती है—

बिभेमि सखि संवीक्ष्य भ्रमरीभूतकीटकम् ।
तद्ध्यानादागते पुंस्त्वे तेन सार्धं कुतो रतिः ॥ ६.४५

मा कुरुष्वात्र सन्देहं रामे दशरथात्मजे।
त्वद्ध्यातादागते स्त्रीत्वे विपरीतास्तु ते रतिः॥ ६.४६

किसी महापराक्रमी को तिनका बताना भी परिहास के लिए है।

कुतो हन्तारण्ये कनकमृगमात्रं तृणचरं
कुतो वृक्षाद्वृक्षप्लवननिपुणो वालि निहतः।
कुतो वह्निज्वालाजटिलशरसन्धानसुदृढ-
स्त्वहं युद्धोद्योगी गगनमधितिष्ठेन्द्रविजयी॥ ८.१६

इसमें राम तृणीकृत हैं। इसी प्रकार रावण भी तृणीकृत है।[1]

ऐसा ही ब्रह्मादि की रावणपरिचर्या का प्रसंग है, जिसमें इनको प्रतीहार की डाँट सुननी पड़ती है।[2]

संवादों में भावात्मक उच्चावचता को प्रशंसा और निन्दा के क्रमबद्ध पद्यों में प्रकट किया गया है। आठवें अङ्क में राम और रावण की निन्दा और प्रशंसा के प्रसङ्ग इसके उदाहरण हैं। इनमें एक ओर तो उग्रता, गर्व, अमर्ष की धारा प्रवाहित होती है और दूसरी ओर दैन्य, त्रास, असूया आदि हैं।

कतिपय स्थलों पर एक ही पात्र में विविध भावों का यौगपदिक दर्शन कवि ने कराया है। यथा,

साश्चर्यं तत्र रामे सपटुभटमुखे सव्यथं देवतौघे
साशंकं रामयुद्धे कपिपु सविनयं लक्ष्मणे साश्रुपूरम्।
सासूयं भ्रातृकृत्ये सभयमनिलजे सत्रपं चात्मकृत्ये
क्षिप्रं तद्वक्त्रचक्रं रजनिचरपतेर्भिन्नभावं बभूव॥ १४.१५

विरुद्ध भावों का सामञ्जस्य दिखाने में कवि को असाधारण कौशल प्राप्त है।

अद्य वा जानकी राम कामं पास्यति मन्दिरे।
रणे वा दारुणे गृध्रा मधुरानधरान् मम॥ १४३.२

अर्धं चेतसि जानकी विरमयत्यर्धं च लङ्केश्वरः
किं चार्धं विरहानलः कवलयत्यर्धञ्च रोषानलः।
इत्थं दुर्विधवैशसव्यतिकरे दाहे समेऽप्येतयो-
रेकं वेद्मि तु पारदग्ध्यमपरं दग्धं करीपाग्निना॥ १०.१४

---

१. हन्यात्किं नाङ्गदस्त्वामतिपरुपरुपा तातकक्षावशिष्टम्।
प्रोद्धृत्योद्धृत्य पादप्रहतबहुशिरःकन्दुकैः क्रीडितोऽस्मि॥ ८.४६

२. ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णीं बहिः स्थीयतां
स्वल्पं जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिणः।
स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बरो॥ ८.४५

पहले पद्य के अनुसार सीता रावण का अधरपान करेगी या गिद्ध ही उसका अधरपान करेंगे। दूसरे के अनुसार राम के चित्त का आधा विरहानल से और दूसरा आधा रोषानल से दग्ध बताया गया है। इसी प्रकार कवि ने राम का रोदन और मोद एक ही पाद में दिखा दिया है—

तारं धीमानरोदीत् तदनु सह मुदा वाहिनीमाजगाम ॥ १३.३१

कवि की दृष्टि साधारण नागरकों को सुवासित करने के लिए प्रायशः शृंगारित है। उसे लङ्का वनिता की भांति दिखाई देती है। यथा,

हेम - प्राकारजघनां रत्नद्युतिदुकूलिनीं
लङ्कामेके त्रिकूटस्य ददृशुर्वनितामिव ॥ ११.१३

हनुमन्नाटक का कुम्भकरण वारांगनाओं के गीतामृत से जागता है, अन्यथा नहीं।

अद्भुत रस की निष्पत्ति इन अलौकिक पात्रों के प्रकरण में होना स्वाभाविक है। यथा, कुम्भकर्ण की नाक में हाथियों का यूथ घुसा जा रहा है—

मशकगलकरन्ध्रे हस्तियूथं प्रविष्टम् ॥ ११.१४

राम ने कुम्भकर्ण को देखा तो समझा कि यह कोई यन्त्र हैं।

करुण रस के अनेक प्रसंग हनुमन्नाटक में विद्यमान हैं। सीता ने देखा कि मेघनाद ने राम और लक्ष्मण को मार ही डाला तो उन्होंने विलाप किया—

प्राणेश्वरः प्रतिगिरं न ददाति रामो
हा वत्स लक्ष्मण ममापनयेन रुष्टः।
मद्वत्सलस्त्वमसि नोत्तरमाददासि
भ्रान्त्वा भुवं मम कृतेऽथ दिवं गतौ वा ॥ १२.८

करुण की सर्वोपरि निष्पत्ति उस प्रसंग में है, जहाँ राम लक्ष्मण को शक्ति लगने पर रोते हैं। उन्हें उस अवसर पर भरत का स्मरण हो आया। यथा,

हा वत्स लक्ष्मण धिगस्तु समीरसूनुं
यस्त्वां रणेऽपि परिहृत्य पराङ्मुखोऽभूत्।
गोपायतीह भरतस्तु ममानुजः किं
यस्त्वामधिज्यधनुरुद्धतशक्तिपातात् ॥ १३.११

शैली

हनुमन्नाटक की शैली संगीतमय अनुप्रासों से अतिमण्डित है। यथा, पञ्चवटी का वर्णन—

एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी।
गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोलचञ्चत्पुटी
दिव्या मोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी ॥ ३२२ ॥

इसमें स्वर-व्यञ्जन 'अटी' और 'उटी' का सम्मिश्रित अनुप्रास अनूठा ही है। कवि को एक ही शब्द की पुनरावृत्ति में कोई त्रुटि नहीं दिखाई देती। यथा,

का शृङ्गारकथा कुतूहलकथा गीतादिविद्याकथा
माद्यत्कुम्भिकथा तुरंगमकथा कोदण्डदीक्षाकथा ॥ ६.४१

नामधातुओं के बहुल प्रयोग से क्वचित् अनुप्रास की छटा द्विगुणित की गई है। यथा,

चन्द्रश्चण्डकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात् प्राणोऽपि भारायते
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते ॥ ५.२६

अलङ्कार की विभूति है—

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथिलि।
प्रेषितं रामचन्द्रेण सुवर्णस्याङ्गुलीयकम् ॥ ६.१५

नीचे के पद्य में ससन्देह अलंकार के साथ भावुकता का अपूर्व सम्मिश्रण है—

बहिरपि न पदानां पंक्तिरन्तर्न काचित्
किमिदमियमसीना पर्णशाला किमन्या।
अहमपि किल नायं सर्वथा राघवश्चेत्
क्षणमपि न हि सोढा हन्त सीतावियोगम् ॥

कहीं-कहीं क्रमिक प्रश्नोत्तर की चटुलता कुटिला भावनिर्झरिणी को तरङ्गित करती है। यथा,

के यूयं, वद नाथ, नाथ किमिदं, दासोऽस्मि ते लक्ष्मणः,
कोऽहं वत्स, स आर्य एव भगवानार्यः स को राघवः।
किं कुर्मो विजने वने तत इतो देवी समुद्वीक्ष्यते
का देवी जनकाधिराजतनया हा हा प्रिये जानकी ॥ १२

कुछ पद्यों के अर्थ रावण के पक्ष और विपक्ष दोनों में निकलते हैं। यथा,

सद्दोर्दण्डकमण्डलोद्धृतधनुःक्षिप्ताः क्षणान्मार्गणाः
प्राणानस्य तपस्विनः सति रणे नेष्यन्ति पश्याधुना ॥ ६.६

कतिपय स्थलों पर ४० पंक्तियों तक के वाक्य १२ पंक्तियों तक की समस्तपदावली से मण्डित हैं, जो महाकवि बाण का स्मरण कराते हुए अपनी नाटकीय अयोग्यता का डंका पीटते हैं।[1]

संवादों में शिष्टता का पूरा निर्वाह किया गया है। यथा,

---

१. पाँचवें अङ्क में वियुक्त राम के समक्ष वनश्री का वर्णन इसका एक उदाहरण है, 'एवं दैवयोगाद्गौरगवयगजभुजंग'''दक्षिणखञ्जरीटः' इत्यादि।

शाखामृगस्य शाखायाः शाखां गन्तुं पराक्रमः।
यत्पुनर्लङ्घितोऽम्भोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव॥ ६.४४

यह हनुमान का राम से कहना है।

वक्रोक्तिद्वार से अनेक स्थलों पर अपने वक्तव्य में कवि ने प्रभविष्णुता सँजो दी है। यथा,

नियुक्तहस्तार्पितराज्यभारास्तिष्ठन्ति ये स्वैरविहारसाराः।
बिडालवृन्दाहितदुग्धमुद्राः स्वपन्ति ते मूढधियः क्षितीन्द्राः॥ ६.३४

अपनी श्लेषाधारित उपमाओं से भी कवि ने यही प्रभाव उत्पन्न किया है।

उत्खातान् प्रतिरोपयन् कुसुमिताँश्चिन्वँल्लघून् वर्धयन्
क्षुद्रान् कण्टकिनो बहिर्निरसयन् विश्लेषयन् संहतान्।
अत्युच्चान्नमयन्नतांश्च शनकैरुन्नामयन् भूतले
मालाकार इव प्रयोगचतुरो राजा चिरं नन्दते॥ ६.३५

हनुमन्नाटक में अनेक स्थलों पर पदों की व्यञ्जना प्रभविष्णु है। नीचे के पद्य में कलशशिशु और हरि की महिमा कुछ ऐसी ही है—

यावानब्धिः कलशशिशुना तावता किं च पीतः
तुल्याकारान् प्रहरति हरिः किं गजानिन्द्रतुङ्गान्॥ १४.२०

इसमें कलशशिशु का प्रयोग अतिशय चमत्कारपूर्ण है। घड़े का बच्चा समुद्र पी जाय—यही काव्योचित चमत्कार व्यंग्य है। हरि शब्द दो अक्षरों का नितान्त लघु है। इसमें प्रासादिकता है, किन्तु वह ओजोद्योतक 'गजानद्रितुंगान्' को मार गिराता है। इसमें व्यंजना का प्रकर्ष है।

इस प्रकार की व्यंजना की छटा स्थान-स्थान पर अतिशय सूक्ष्मतापूर्वक संजोई गई है। यथा,

कक्षागर्तकुलीरतां गमयता वीर त्वया रावणम्। ५.५६

इसमें रावण को 'कुलीर' बताकर उसके दशानन होने मात्र की ही व्यंजना नहीं है, अपितु यह भी इंगित किया गया है कि वह केंकड़े की भाँति सम्पृक्तजनों के लिए कण्टक है।

व्यंजना का अन्यत्र चमत्कार नीचे के पद्य में स्पष्ट है—

एनां व्याहर मैथिलाधिपसुते नामान्तरेणाधुना
रामस्त्वद्विरहेण कंकणपदं ह्यस्यै चिरं दत्तवान्॥ ६.१६

व्यंग्य अर्थ है कि राम की कलाई तुम्हारे वियोग में अंगुलियों के समान कृश है। अर्थात् तुम्हारा वियोग राम को असाधारण रूप से पीडा दे रहा है। अभिधा में इसी अर्थ को आगे हनुमान् ने कहा है—

स्वभावादेव तन्वङ्गि त्वद्वियोगाद्विशेषतः
प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गतः ॥ ६.१८

कवि के रूपक कतिपय स्थलों पर व्यंजना-सम्भरित हैं। यथा,

हितं तु ब्रूमस्त्वां मम जनकदोर्दण्डविजय-
स्फुरत्कीर्तिस्तम्भस्त्यज कमलवन्धोः कुलवधूम् ॥ ८.३८

इसके अनुसार रावण वाली की भुजाओं का विजय-कीतिस्तम्भ है। इससे वाली का महापराक्रम व्यंग्य है।

कहीं-कहीं असंगति अलंकार द्वारा उलटवासियों का प्रयोग मिलता है। यथा,

ईषन्मात्रमहं वेद्मि स्फुटं यो वेत्ति राघवः।
वेदना राघवेन्द्रस्य केवलं व्रणिनो वयम् ॥ १४.१३

इस पद्य के अनुसार घायल तो लक्ष्मण हुए किन्तु वेदना हुई राम को।

संवादों में कहीं-कहीं तर्कसरणि अपनाई गई है। जब रावण सीता से कहता है कि जिन सिरों को पहले शिव के सिर पर रखा था, वही अब तेरे चरण पर रखे हैं। क्यों इनकी अवज्ञा करती हो तो सीता ने उत्तर दिया—

निर्माल्यानि शिरांसि तानि तव धिक् साध्वीवचः पातु वः ॥ १०.११

अङ्गद और राम का संवाद है। अङ्गद को सिद्ध करना है कि रावण की मति मारी गई है। वह राम से कहता है कि रावण के गुरु की बात सुनिये—

उक्षा रथो भूषणमस्थिमाला भस्माङ्गरागो गजचर्म वासः ॥ ११.१

जब गुरु शिव ऐसे तो उनका शिष्य रावण कैसा ? यह समझ लें।

संवाद में कवि का तकियाकलाम है शिव-शिव। यथा,

वीरः संग्रामधीरः शिव शिव स कथं वर्ण्यते कुम्भकर्णः ॥ ११.४०
समाक्रान्ता सेयं शिव शिव दशग्रीवनगरी ॥ ११.४१
धर्तुं प्राणान् शिव शिव कथं तान् विहायाथ वाहम् ॥ ३.॰
शिव शिव तानि लुठन्ति गृध्रपादे ॥ १४.४६
पापात्ततः शिव शिवान्तरधीयत द्राक् ॥ ११.२१
लङ्कां सन्त्यज्य शङ्कां शिव शिव समरायोद्यतो राक्षसेन्द्रः ॥ १४.७
क्रुद्धेनाताडितो द्राक् शिव शिव समरे पश्चिमार्धेन तावत् ॥ १४.१६
मायामयीं शिवशिवेन्द्रजिदाजघान ॥ १२.१३

शिव-शिव वाले पद्य अवश्य ही मूल नाटक के हैं।

छन्दोयोजना

कीथ के अनुसार मधुसूदन के हनुमन्नाटक में २५३ पद्य शार्दूलविक्रीडित में, १०९ श्लोकों में, ८३ वसन्ततिलका में, ७७ स्रग्धरा में, ५९ मालिनी में और ५५ इन्द्रवज्रा छन्दों में हैं।

वर्णन

कवि ने अपने वर्णनों में किसी वस्तु की विविधकालीन नानापक्षीय रमणीयताओं का संग्रहण किया है। यथा सीता के उत्तरीय का—

> द्यूते पणः प्रणयकेलिषु कण्ठपाशः
> क्रीडापरिश्रमहरं व्यजनं रतान्ते।
> शय्या निशीथसमये जनकात्मजायाः
> प्राप्तं मया विधिवशादिदमुत्तरीयम्॥ ५.१

सीता के वियोग का वर्णन हनुमन्नाटक में विक्रमोर्वशीय और वाल्मीकि रामायण के तत्सम्बन्धी वर्णनों के बहुत कुछ अनुरूप है।

प्रकृति में कवि ने रमणीयता के विराट् स्वरूप को देखा है। यथा,

> यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं
> मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।
> येऽपि त्वद्गमनानुकारिगतयस्ते राजहंसा गता-
> स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते॥ ५.६४

सन्देश

हनुमन्नाटक का प्रमुख संदेश है—

> कालेन विश्वविजयी दशकन्धरोऽभूत्-
> भर्गाचलोद्धरणचञ्चलकुण्डलाग्रः।
> संस्कारोऽग्निदहनाय स एव काल-
> श्चाज्ञां विना रघुपतेः प्लवगैर्निरुद्धः॥ १४.४८

इस नाटक का प्रमुख उपदेश है राम का आदर्श अपनाओ, रावणीय प्रवृत्तियों से अपने को मुक्त करो।

सूक्ति

हनुमन्नाटक में स्वभावतः सूक्तियों का बहुल प्रयोग है। यथा,

१. डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम्।
२. शूराणां मृतमारणे न हि वरो धर्मः प्रयुक्तो बुधैः॥ ५.२२
३. क्रूरकर्मा विधाता किं विधास्यति।
४. क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥ ७.७
५. नो वल्मीकाः क्षितिधरनिभाः किं क्रियन्ते पिपीलैः॥ ८.२६
६. प्रिया वा मधुरा वाक् च हर्म्येष्वेव विराजते।
श्रीरक्षणे प्रमाणं तु वाचः सुनयकर्कशाः॥ ६.१५

७. विभवे भोजने दाने तिष्ठन्ति प्रियवादिनः ।
विपत्तौ चागतेऽन्यत्र दृश्यन्ते खलु साधवः ॥ ६.१६

८. अग्रे प्रस्तुतनाशानां मूकता परमो गुणः ॥ ६.१७

९. अपि जलधरपोतो लेढि किं स्वल्पकुल्या-
मपि मशककुटुम्बं केसरी किं पिनष्टि ॥ ११.२३

१०. नूनं चञ्चलवुद्धीनां स्नेहकोपावकारणौ ॥ १२.१

११. नीचैः सह मैत्री न कर्तव्या ।

१२. खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं पतति साधुषु ॥ १३.१२

१३. कि तया क्रियते वीर कालान्तरगतश्रिया ।
अरयो यां न पश्यन्ति बन्धुभिर्वा न भुज्यते ॥ १३.१५

१४. जयो वा मृत्युर्वा युधि भुजभृतां कः परिभवः ॥ १४.२५

१५. आपन्नभीतिहरणं व्यवसायिनां हि
प्राणास्तृणं विपुलसत्त्वसहायभाजाम् ॥ १४.२७

१६. मनसि स्वस्थे रम्याणां रमणीयता ॥ १४.२८

अध्याय २

कौमुदीमहोत्सव

कौमुदीमहोत्सव[1] के रचयिता का नाम पूर्णतया निश्चित तो नहीं है, पर कल्पना और अनुमान के बल पर इसे विज्जका का लिखा हुआ कहा जाता है।[2] नीचे लिखे कौमुदीमहोत्सव के पद्य के आधार पर इसे किशोरिका नामक कवयित्री की रचना कहा जाता है—

> कृष्णसारां कटाक्षेण कृषीवलकिशोरिका।
> करोत्येषा कराग्रेण कर्णे कमलमञ्जरीम् ॥ १.३

रचयिता के कल्पित नामों से भी इसके रचना काल पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इसकी प्रस्तावना के अनुसार इसका सर्वप्रथम अभिनय पाटलिपुत्र के कल्याणवर्मा के अभिषेक के अवसर पर हुआ था। इसकी कथावस्तु उसी राजा के जीवनचरित से प्रसक्त प्रतीत होती है। पूरे नाटक में ऐतिहासिक जैसे अनेक नामों की चर्चा मिलती है, किन्तु उनमें से कोई भी इतिहास की पकड़ में अभी तक नहीं आ सका है। ऐसी परिस्थिति में इसे चौथी शती से लेकर आठवीं शती के पश्चात् तक का रचा हुआ सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। डा० डे के अनुसार इसमें अनेक पद्य कलिदास, भारवि और भवभूति के श्लोकों के आदर्श पर प्रणीत हुए हैं। अतएव इसकी रचना आठवीं शती के पश्चात् हुई होगी।[3] कतिपय विद्वान् इसे विजया की रचना मानते हैं, जो पुलकेशी द्वितीय के राजकुमार चन्द्रादित्य की पत्नी थी। ऐसी स्थिति में वह सातवीं शती के उत्तरार्ध में हुई—ऐसा अनुमान किया गया है।

नवीं शती में शीलाङ्क के द्वारा विरचित विबुधानन्द की प्रणयकथा इस पर उपजीवित प्रतीत होती है। इससे और अन्य प्रमाणों के आधार पर इसे ८०० ई० के लगभग रचा हुआ मान सकते हैं।[4]

---

१. कौमुदीमहोत्सव का प्रकाशन मद्रास से १९२९ ई० में और प्रयाग से वि०सं० २००८ में हो चुका है। पुस्तक की प्रति भारती-भवन-पुस्तकालय, प्रयाग में प्राप्य है।

२. इसकी भूमिका में लेखक का नाम बतानेवाला अंश त्रुटित है, जिसमें से 'कया निबद्धं नाटकम्' मात्र मिलता है इसके आधार पर विज्जका के द्वारा इसे रचित मानते हैं।

३. *History of Sanskrit Literature P. 477*

४. लिच्छवि-राजवंश का अस्तित्व नेपाल में ८६९ ई० तक रहा। इसके पश्चात् लिच्छवि-राजवंश का कहीं ठिकाना नहीं मिलता। इसमें वर्णित लिच्छवि गुप्तकाल में प्रसिद्ध थे। ऐसी स्थिति में कौमुदीमहोत्सव की रचना ८५० ई० के पहले माननी ही पड़ेगी। भवभूति को आठवीं शती के पूर्वार्ध में मान लेने पर कौमुदीमहोत्सव का रचनाकाल ८०० ई० के लगभग सम्भव है।

कथानक

पाटलिपुत्र के राजा सुन्दरवर्मा ने स्वभाव की परख विना किये ही चण्डसेन को पुत्र माना। कपटी चण्ड ने लिच्छवियों से चुपके-चुपके सम्बन्ध स्थापित करके उनसे मगध पर आक्रमण करा दिया। लिच्छवि परास्त हुए, किन्तु सुन्दर मारा गया। तब तो राजकुमार, उसकी धात्री, मन्त्री आदि भाग खड़े हुए। हाथी के चिग्घाड़ने से डर कर धात्री कहीं भटक गई। तपस्वियों ने उन सबको शरण दी।

राजकुमार कल्याणवर्मा को पाटलिपुत्र छोड़ना पड़ा था। अपने निर्वासन के दिनों में उसे कुलपति की आज्ञा से पम्पासर के निकट व्याधकिष्किन्ध के दुर्ग में छिप कर रहना पड़ा। राजमन्त्री मन्त्रगुप्त वहाँ से पाटलिपुत्र आकर कुमार को पुनः अपना राज्य प्राप्त कराने की योजना कार्यान्वित कर रहा था।

एक दिन कुमार जब चिन्तित था, उसे शूरसेन के राजा कीर्तिसेन की कन्या कीर्तिमति दिखाई पड़ी, जिसे वह स्वप्न में देख चुका था। वह सिद्धायतन से भगवती विन्ध्यवासिनी का दर्शन करके लौट रही थी। उसके पिता ने उसे भगवती का प्रसाद पाने के लिए भेजा था। थोड़ी देर में नायिका चली गई। नायक अकेले उसके विषय में सोच रहा था। उसे विदूषक मिला और उसके द्वारा नायक को नायिका का हार मिला, जिसे वह लताओं से उलझ जाने पर छोड़ गई थी।

एक दिन नायिका ने पूर्वरागाभिभूत होकर नायक का चित्र बनाया, जिसे एक गिद्ध ले उड़ा। उसने थोड़ी दूर पर उसे गिरा दिया और वह उस परिव्राजिका के हाथ लगा, जो नायिका के कुटुम्ब से प्रेमभाव होने के कारण उसके साथ भगवती के आश्रम में आ गई थी। उस चित्र को देख कर परिव्राजिका 'हा महादेवि' कह कर मूर्च्छित हो गई। उसने समझ लिया कि जिसका यह चित्र है, उसे उसकी माँ ने मरते समय मुझे सौंप दिया था। उसने राजकुमार का पूर्ववृत्त बताया कि वह सुन्दरवर्मा नामक मगधराज की मदिरावती नामक रानी से उत्पन्न हुआ था। मैं उसकी धात्री थी। दैवात् वह अन्तर्हित हो गया। मैं भी दुःखी होकर मथुरा आकर कीर्तिमती के संग यहाँ आ गई हूँ। नायिका की सखी ने उन्हें बताया कि वह पूर्वरागाविष्ट होकर अहर्निश सन्तप्त रहती है। तभी कल्याणवर्मा का विदूषक वहाँ आया और उसने परिव्राजिका से बताया कि तुम्हारा कल्याणवर्मा से मिलन होनेवाला ही है। वह कीर्तिमती के प्रेम में और कीर्तिमती उसके प्रेम में सन्तप्त है। विदूषक ने नायिका का वह हार दिया, जो प्रथम मिलन के अवसर पर लता में उलझ जाने पर नायिका से वियुक्त हो गया था।[1] परिव्राजिका ने उस चित्र पट पर लिखा—

---

१. इस नाटक में हारविषयक सारा कथांश कुलशेखर के नाटकों के तत्सम्बन्धी प्रकरणों में आदर्शित है।

शौनकमिव बन्धुमती कुमारमविमारकं कुरङ्गीव ।
अर्हति कीर्तिमतीयं कान्तं कल्याणवर्माणम् ॥ २.१५

और विदूषक के हाथ उसे नायक के पास भेज दिया । विदूषक ने उसे चित्रपट दिया तो नायक का हृदय नाच उठा और वह गाने लगा[1]—

वासो गन्धवहः पुरा पुनरसौ वासन्तिको दक्षिणः
प्रारम्भे कुलिशं प्रसूनधनुषः पश्चात्तु बाष्पाः शराः ।
यामिन्यामपनीतवह्निकणिकाः पीयूषनिष्यन्दिन-
श्च्योतच्चन्द्रमरीचयोऽपि नियतं निर्वापयिष्यन्ति नः ॥

कुमार ने कहा—

नन्विदमेव चित्रकर्म कान्तायाः शिल्पगतं विज्ञानविशेषमस्मद्गतं प्रेम च प्रकटयति । कुतः—

प्रेम्णि स्थितेऽपि तस्याः सम्मुखलज्जाहृते समाधाने ।
मत्प्रतिकृतिरचनायामासीदन्ते विसंवादः ॥ ३.८

नायक ने विदूषक की इच्छानुसार उस चित्रपट पर अपने चित्र के पार्श्व में नायिका का चित्र बना दिया ।[2]

पाटलिपुत्र में राजनीतिक विप्लव आरम्भ हुआ । जिस चण्डसेन राजा ने सुन्दरवर्मा को मार कर पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया था, उसे प्रत्यन्तपालों का विद्रोह दबाने के लिए बाहर जाना पड़ा । ऐसे अवसर पर कल्याणवर्मा को राजधानी पर अधिकार करने के लिए बुलाया गया । सारी प्रजा को महाराज सुन्दरक और कल्याणवर्मा के प्रति अनुरक्त और चण्डसेन के प्रति विरक्त करने के लिए गूढ योजनायें कार्यान्वित की गई ।

पाटलिपुत्र में कल्याणवर्मा आ पहुँचा । चण्डसेन मारा गया । प्रजा ने कल्याणवर्मा का अभिषेक अभिनन्दनपूर्वक किया । इसी अवसर पर शूरसेन के राजा कीर्तिसेन का पुरोहित भेंट लेकर पाटलिपुत्र आया । उसने राजकुमार से मिलने पर आशीर्वाद दिया—

राज्ञी सुपुत्रा मगधेन्द्रपत्नी श्वःश्रेयसं तेऽस्तु चिराय जीव ।
दिष्ट्या पुनः पुष्पपुरे सुगाङ्गप्रासादमाध्यासितवान् कुमारः[3] ॥ ५.१७

उसने हार को उपहार रूप में दिया और कहा कि यह शूरसेनराजकुलसर्वस्व है । अन्त में कीर्तिमती के विरह में सन्तप्त कल्याणवर्मा उसी के ध्यान में निमग्न

---

१. इस नाटक में सांगीतिकधारा का प्रवाह प्रकाम है ।

२. परवर्ती युग में यह चित्रात्मक अभिनय छायानाट्य नाम का कारण बना ।
—सागरिका दशमवर्ष विशेषांक ।

३. इस सुगाङ्ग प्रासाद का उल्लेख मुद्राराक्षस में भी है ।

हो जाता है। वह प्रियतमा के प्रथम समागम की चर्चा प्रमदवन में विदूषक से करता है—

पातुं पद्मसुगन्धि लोलनयनं रोमाञ्चितं गण्डयो-
र्यावद्विद्रुमपाटलाधरपुटं वक्त्रं मयोन्नामितम्।
वैलक्ष्यप्रतिषेधविक्लवगिरा तन्व्या तया मुग्धया
पश्चात्ताम्ररुचाकरेण मम तु प्रच्छादिते लोचने॥ ५.२६

निकट ही निपुणिका नामक सखी के साथ वैठी हुई नायिका आड़ से नायक की सब बातें सुन रही थी। निपुणिका ने नायक का ध्यानाकर्षण करने के लिए चित्रपट को उनके बीच में फेंका। उसका आना कहाँ से हुआ—यह जानने के लिए निकलने पर उनकी भेंट नायिका से हुई।

कथा-विन्यास में कवि ने कालिदासादि पूर्वकवियों की रचनाचातुरी का अनुहरण किया है। इसमें नायिका और नायक के प्रथम मिलन का प्रसंग अभिज्ञानशाकुन्तल के तत्सम्बन्धी प्रकरण के अनुरूप निर्मित है।

रंगमंच पर वाद्य और गायन से मनोरंजन चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में प्रस्तुत किया गया है। वर्धनानक कुम्भकूणव वजाता है और दो पद गाता है, जिनमें से एक है—

वहमाणो रेवइमुहमहुमअणिव्वत्तिअं उदअराअं
सामलवसलकलंको सोहइ चन्दव्व वलभद्दो॥ ४.२

अर्थोपक्षेपक के द्वारा ही भूतकाल की घटनाओं की सूचना देनी चाहिए—इस नियम की अनेकशः अवहेलना कौमुदीमहोत्सव में की गई है। यथा चतुर्थ अंक में १६ वें पद्य के पश्चात् मन्त्रगुप्त और वीरसेन के संवाद में भूतकालीन और भावी घटनाओं की चर्चा प्रस्तुत की गई है। पंचम अंक में हारावतरण की कथा इसी प्रकार अङ्कोचित नहीं है। रंगमंच पर आलिङ्गन नहीं करना चाहिए—इस नियम का उल्लंघन पाँचवें अंक में है, जहाँ नायक नायिका का परिष्वंग करता है।

कथावस्तु के विकास की दृष्टि से अनावश्यक होने पर भी पंचम अंक के भूमिका-रूप विष्कम्भक में लोकाक्षि और वेशरक्षित के संवाद में वेशवाट की वर्णना द्वारा शृङ्गारात्मक मनोरंजन का विलास केवल प्रेक्षकों को ही स्पृहणीय हो सकता है। वेशवाट की श्री है—

वारस्त्रीव्यतिकरपेशलं समाजं व्याकोशीकृतलटहं विटोत्तमानाम्।
गोष्ठीषु प्रमुदितवेषतो महोक्षा हुङ्कारध्वनिमुखरान् विडम्बयन्ति॥ ५.२

वस्तुतः विष्कम्भक में इस प्रकार की सामग्री नहीं होनी चाहिए थी। विष्कम्भक में तो संक्षेप में सूच्यांश प्रस्तुत करना चाहिए था, न कि कोरी वर्णना। कौमुदीमहोत्सव में यह प्रकरण चतुर्भाणी से वासित प्रतीत होता है। पाटलिपुत्र का वेशरक्षित है—

साकेतेऽकृतकौतुको विकलितः काञ्चीपुरे काञ्चिभिः
पम्पायामभिसारितः परिजनैर्विज्ञापितो वैदिशे।
गोत्रेषु स्खलितः कटाहनगरे यः कुण्डिने मुण्डितो
वेशस्त्रीनिकषोपलश्चिरतरं भूत्वैव निष्ठां गतः ॥ कौ० म० ५.३

उज्जयिनी का दयित विष्णु विट है—

पूर्वावन्तिषु यस्य देशकलहे हस्ताग्रशाखा हृता
सक्थ्नोः संयति यस्य पद्मनगरे द्विड्भिर्निखाताविषू।
बाहू यस्य विभिद्य भूरधिगता यन्त्रेपुणा वैदिशे
यो वाजीकरणार्थमुज्झति वसून्यद्यापि वैद्यादिषु ॥ पादताडितक २०

उपर्युक्त दोनों पद्यों में भावसाम्य छन्दःसाम्य से समंजसित है।

पाँचवें अङ्क में कौमुदीमहोत्सव में कर्णीपुत्र के विषय में कहा गया है—

"अहो नु खलु विटजनाभ्यर्चितकर्णीपुत्रकीर्तिस्तम्भालङ्कृतराजमार्गस्य कुसुमपुरवेशस्य।"

यह कर्णीपुत्र गुप्तकालीन भाण पद्मप्राभृतक में पाटलिपुत्र का समकालिक विट बताया गया है—

कर्णीपुत्रोऽपि पाटलिपुत्रविरहात् स्वजनदर्शनोत्सुको भृशमस्वस्थः।

उपर्युक्त कौमुदीमहोत्सव के कर्णीपुत्र की चर्चा से ऐसा लगता है कि इसे पद्मप्राभृतक से बहुत दूर नहीं रखा जाना चाहिए। परवर्ती युग में इस नागरक कर्णीपुत्र मूलदेव को चौर्यकला का आचार्य माना गया।[1]

पाँचवें अङ्क के अन्त में नायिका और नायक आदि के आभ्यन्तर प्रवेश के लिए वर्षागम का भय उसी प्रकार प्रस्तुत किया गया है, जैसा अविमारक में। मेघ को देखकर विदूषक कहता है—

तत्प्रविशामोऽभ्यन्तरम्।

नायक मेघ का वर्णन करता है—

नृत्तारम्भप्रविततशिखश्रेष्ठतां नीलकण्ठो
भृङ्गाघातं सुरभिककुभः पुष्पमाविष्करोतु।
प्रत्यावृत्ताः पुनरभिमतां साधु सीमन्तिनीनां
गण्डाभोगव्यतिकरवतीं वेणिमुद्वेष्टयन्तु ॥ कौ० म० ५.२३

अविमारक में नायक मेघ का वर्णन करता है[2] और कहता है—

प्रिये, एहि, अभ्यन्तरमेव प्रविशावः।

---

१. दशकुमारचरित में 'कर्णीसुतप्रहिते च पथि मतिमकरवम्।'

२. अविमारक ५.६।

नेतृ-परिशीलन

कौमुदी महोत्सव का नायक कल्याणवर्मा का कविहृदय भावुकता से निर्भर है। वह नायिका का प्रथम दर्शन करते समय कहता है—

अये पल्लवितमिव जीवलोकं पश्यामि।
न त्वस्या जन्म जाने जननयनमधुस्यन्दिनी कान्तिलक्ष्मीः ॥ १.१४

वह उच्चकोटि का प्रणयी है। वह संकल्प दृष्टि से नायिका को उसकी अनुपस्थिति में भी सशरीर देखता था।[1]

नायिका भी कुछ ऐसी ही है। उसे अशोकवृक्ष कांचन-निर्मित-प्रासाद प्रतीत हो रहा है।

इस नाटक में अनेक पुरुष वेष-परिवर्तन करके प्रस्तुत किये गये हैं। ये सभी पारिभाषिक शब्दावली में कूटपुरुष हैं। वर्धमानक कौम्भकूणविक बनकर सितार बजाता है और आर्यरक्षित पाशुपतवेश में शूलपाणि आयतन में रहता है।

विदूषक तो निपुणिका के शब्दों में आकृति से वानर और वाणी से गदहा है।[2]

वर्णन

कवि की सरस दृष्टि शैशव के वर्णन में विशेष निपुण है। यथा,

यौ द्वौ शैशवमुष्टिभेदविशदौ रेखातपत्राङ्कितौ
क्षोणीचंक्रमणे मदंगुलिमुखं याभ्यां समालिंगितम्।
वन्द्ये यावपि कारितौ गुरुजने मात्रा बलादञ्जलिं
तौ हस्तावुरगेन्द्रभोगसदृशप्रौढप्रमाणौ कथम् ॥ २.६

अन्यत्र भी मृगशिशु का वर्णन है—

ध्यानस्थानजुषो मुनेः परिचयादुत्संगशय्यातलं
प्रारब्धप्रचलाहतो मृगशिशुर्निद्रालुरालीयते ॥ २.१०

कालिदास के पद्यों की अनेकशः छाया कौमुदीमहोत्सव में प्रत्यक्ष है। यथा नायक नायिका को प्रथम बार देखकर उसका परिचय पाकर कहता है—

---

१. पश्यतोऽपि न विश्वासः सखेदस्य सखे मम।
संकल्पदृष्टया देव्या बहुशो वञ्चिता वयम् ॥ ५.२९

और भी—

प्रायशः पृथिवीशानां भोगैश्वर्यविडम्बना।
कीर्तिमत्येव से लक्ष्मीरिति गर्वस्मिता वयम् ॥ ५.३०

२. विदूषक के विषय में यही चित्रण श्रीहर्ष के नागानन्द में मिलता है।

इदं किलाविष्कृतकान्तिविप्लवं तुषारवातातपदर्शनेष्वपि ।
शरीरमुद्यानशिरीषपेलवं[1] तपोवनक्लेशसहं भविष्यति ।। २.२३

कौमुदी महोत्सव की शैली नाट्योचित सुषमता से मण्डित है । अलङ्कारों का प्रयोग प्रायशः वर्ण्य भाव के प्रत्यक्षीकरण के लिए है । यथा नायक कहता है—

गिरिमिव दुर्वहरूपं वियोगदुःखं वहामि कान्तायाः ।
मम किल तस्यापि सखे कन्दुकलघुराज्यमतिभारम् ।।

अन्यत्र भी रूपकों के द्वारा यही प्रयास है—

नाभीवापीप्रविष्टः स्तनशिखरगतो रोमरेखापदेन
प्रत्युत्पन्नप्रतापः स्फुरदधरमणिव्याजनीराजनेन ।
लब्धो लीलाकटाक्षैर्मनसिजकलभो 'वर्तते दुर्निवारो
देव्या लब्धप्रसादः कलमणिरशनाडिण्डिमारोहणेन ।। ५.२२

कवि अनेकशः ऐतिहासिक प्रसङ्गों का उल्लेख देकर अपने वक्तव्य की पुष्टि करता है । यथा,

कविरिव वृषपर्वणो विभूतिं बलमिव शूर्पकशासिनो वसन्तः ।
गुरुरिव शतयज्वनः प्रबोधं किमु न करोति चिरन्तनः सखा मे ।।

सूक्ति-सौरभ

कौमुदी महोत्सव में सूक्तियों के प्रयोग द्वारा संवाद को चटपटा और प्रभविष्णु बनाया गया है । यथा,

१. ननु प्रमादभीरुत्वाद्विवेकिनां कालक्षेपवत्यः कार्यसिद्धयः ।
२. पराक्रमोपनतामेव सिद्धिमाकांक्षते क्षात्रं तेजः ।
३. तेजस्विनो हि पुरुषस्य सम्पद्द्योतनप्रतिपक्षभूता विपदपि न च्छायेव परिहरति पार्श्वम् ।
४. परिहरति चन्द्रदर्शनं कमलिनी ।
५. अन्धस्य कूपपतनं संवृत्तम् ।
६. भिक्षां गतो निमन्त्रणं प्राप्तः ।
७. रूपाभिगृहीतस्य कुम्भीलस्य का प्रतिपत्तिः ।
८. मध्यन्दिनार्ककिरणोष्णमपाकरोति
   किं वारि पद्मसरसोऽपि न राजहंसी ।। ४.१५
९. आवल्गिते वरतनुं स्वजने जनानां;
   प्राप्ते मनोरथशतेऽपि कुतः प्रमोदः ।। ५.२८

---

१. इस पद्य में अनेक शब्द अभिज्ञानशाकुन्तल के 'इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः' आदि से लिए गये हैं । दोनों का छन्द भी एक ही है ।

एकोक्ति

कौमुदीमहोत्सव में प्रथम अङ्क का आरम्भ कुमार कल्याणवर्मा की एकोक्ति से होता है। इस एकोक्ति के द्वारा वह अपनी भूतकालीन स्थिति का पर्यवेक्षण करता है—

सन्नद्धः कवची शरासनधरस्तातो रुषा प्रोषितो
जाता धौतकपोलपत्रलतिका बाष्पाम्बुभिर्मातरः।
एकाकी चलकाकपक्षविभवो नीतोऽस्म्यहं तापसै-
र्मिथ्येव प्रतिभाति शैशवकथा स्वप्नो नु माया नु मे ॥ १.१०

द्वितीय अङ्क के प्रवेशक में मधुमंजरिका की और अङ्कारम्भ में विदूषक की एकोक्तियाँ लघु हैं, किन्तु वहीं परिव्राजिका की एकोक्ति प्रकाम विस्तृत है। तृतीय अङ्क का आरम्भ पुनः नायक की एकोक्ति से होता है, जिसमें वह कामदेव की भर्त्सना करता है, नायिका का ध्यान करके अपनी मानसिक उद्विग्नता प्रकट करता है और भावी कार्यक्रम बताता है कि उपवन में जाकर प्रियतमा से जहाँ भेंट हुई थी, वहीं विनोद करूँगा। चतुर्थ अङ्क में विष्कम्भक के पश्चात् मन्त्री मन्त्रदत्त की लम्बी एकोक्ति है, जिसमें वह कुसुमपुर की सायंकालीन शोभा का वर्णन और अपनी शत्रु-नाशक योजनाओं का आकलन करता है। यथा,

भूत्वा प्रच्छन्नमन्तर्बहिरपि च मया मण्डलं साधयित्वा
निःशेषं नीतिमार्गप्रणिहितमनसा वञ्चितश्चण्डसेनः।
स्वामी कुर्यात् प्रतापं निकृतिमति रिपौ विप्रलम्भो न दोषो
माया मोहेन दैत्येष्वपथमुपगतेष्वाददे वज्रमिन्द्रः ॥ ४.११

इस एकोक्ति के पश्चात् वीरसेन की एकोक्ति आती है, जिसमें वह पहले अपनी स्थिति का परिचय देकर घोरान्धकार का वर्णन करता है और अन्त में भावी कार्य-क्रम बताता है।

पाँचवें अङ्क के आरम्भ में परिव्राजिका विनयन्धरा अपने कार्यों का अनुप्रेक्षण कर रही है—

कृतकल्पस्य राज्ञो विप्रलम्भः कृत इति किञ्चिदिव मे हृदयस्यापरितोषः।

अथवानुगुणेन तत्सुतां घटयन्त्या मगधेन्द्रसूनुना।
यदुवंशविवृद्धये मया छलयन्त्या नृपो न वञ्चितः ॥

वह अन्त में भावी कार्यक्रम बतला कर चलती बनती है।

कौमुदी महोत्सव की प्रकरण-वक्रता कलात्मक है। इसमें उपदेश तत्त्व है। मंत्रियों को प्रजाहित के लिए और सद्राज्य स्थापना के लिए प्रयास करना चाहिए।

अध्याय ३

मायुराज

उदात्तराघव और तापसवत्सराज नामक नाटकों के रचयिता मायुराज (मातृराज) की प्रशंसा राजशेखर ने इन शब्दों में की है—

मायुराजसमो नान्यो जज्ञे कलचुरिः कविः ।
उदन्वतः समुत्तस्थुः कति वा तुहिनांशवः ॥

मातृराज का अपर नाम अनङ्गहर्ष है और उनके पिता राजा नरेन्द्रवर्धन थे । कलचुरि नरेश मायुराज, मातृराज या अनङ्गहर्ष ने कालंजर की कलचुरियों की शाखा को समलंकृत किया था—यह डा० वा० वि० मिराशी का मत है । सौभाग्य से डा० राघवन् ने उन्हें उदात्तराघव की प्रस्तावना और भरतवाक्य के कुछ उद्धरण दिये, जिनके आधार पर मिराशी इस परिणाम पर पहुँचे कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि उदात्तराघव के रचयिता मायुराज वे ही हैं, जिन्होंने तापसवत्सराज की रचना की है।[1]

मातृराज का प्रादुर्भाव कब हुआ—यह सुनिर्णीत नहीं है । इनकी रचना तापसवत्सराज का सर्वप्रथम उल्लेख ८५० ई० के लगभग आनन्दवर्धन ने किया है । तापसवत्सराज पर भवभूति की रचनाओं का प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है । ऐसी स्थिति में मायुराज को ८०० ई० के लगभग रखना समीचीन लगता है ।

मायुराज के आदर्श व्यक्तित्व का परिचय उनके नीचे लिखे पद्य से व्यक्त होता है—

सद्वृत्तानुगतो गतो गुणवतामाराधनेऽनुक्षणं
कर्तुं वाञ्छति सर्वदा प्रणयिनां प्राणैरपि प्रीणनम् ।
मात्सर्येण विनाकृतः परकृतीः शृण्वन् वहत्युच्चकै-
रानन्दाश्रुजलप्रवाप्लुतमुखो रोमाञ्चपीनां तनुम् ॥[2]

---

१. राघवन् महोदय ने उदात्तराघव की पहेली बना रखी है । उनके कथानुसार उनको यह नाटक मिले १५ वर्ष हो चुके और इसके प्रकाशन के लिए दरभंगा और बड़ौदा के प्रकाशकों से क्रमशः बातचीत हुई या निर्णय हुआ । पर अभी तक यह प्रकाशित न हो सका । मिराशी जी को उनसे केवल कतिपय उद्धरण आद्यन्त से मिले । यदि पूरी पुस्तक उन्हें दी होती तो मिराशी जी मायुराज के विषय में अपनी अन्तर्दृष्टि से कुछ अधिक बहुमूल्य बातें बताते । उदात्तराघव के वास्तविक अस्तित्व के विषय में मुझे विकल्प हो रहा है ।

२. तापसवत्सराज की नाटकीय प्रस्तावना से ।

उसकी कविगोष्ठी विद्वन्मण्डित थी—

पदवाक्यप्रमाणेषु सर्वभाषाविनिश्चये। अङ्गविद्यासु सर्वासु परं प्रावीण्यमागता ॥[1]

उदात्तराघव

उदात्तराघव में रामकथा का परिष्कृत रूप मिलता है, जिसके अनुसार मारीच-मृग को मार कर लाने के लिए लक्ष्मण गये थे और उनकी कातर पुकार को सुनकर राम उन्हें बचाने के लिए गये। यह प्रसंग दशरूपक में इस प्रकार मिलता है—

चित्रमायः—(ससंभ्रमम्) भगवन्, कुलपते रामभद्र, परित्रायतां परित्रायताम्।
(इत्याकुलतां नाटयति) इत्यादि।

पुनः चित्रमायः—

मृगरूपं परित्यज्य विधाय विकटं वपुः।
नीयते रक्षसानेन लक्ष्मणो युधिसंशयम् ॥

रामः—वत्सस्याभयवारिधेः प्रतिभयं मन्ये कथं राक्षसात्
त्रस्तश्चैष मुनिर्विरौति मनसश्चास्त्येव मे संभ्रमः।
मा हासीर्जनकात्मजामिति मुहुः स्नेहाद्गुरुर्याचते
न स्थातुं न च गन्तुमाकुलमतेर्मूढस्य मे निश्चयः ॥

ऐसी स्थिति में कातर थीं सीता और उन्होंने राम को लक्ष्मण के परित्राण के लिए जाने की प्रेरणा दी।[2]

उदात्तराघव की कथावस्तु का सार दशरूपक में इस प्रकार दिया गया है—

रामो मूर्ध्नि निधाय काननमगान्मालामिवाज्ञां गुरो-
स्तद्भक्त्या भरतेन राज्यमखिलं मात्रा सहैवोज्झितम्।
तौ सुग्रीवविभीषणावनुगतौ नीतौ परां सम्पदं
प्रोद्वृत्ता दशकन्धरप्रभृतयो ध्वस्ताः समस्ता द्विषः ॥

यह उदात्तराघव की प्रस्तावना में कथावस्तु की सूचना है। इसमें माया द्वारा वस्तूत्थापन बताया गया है—

जीयन्ते जयिनोऽपि सान्द्रतिमिरव्रातैर्वियद्व्यापिभि-
र्भास्वन्तः सकला रवेरपि रुचः कस्मादकस्मादमी।
एताश्चोग्रकबन्धरन्ध्ररुधिरैराध्मायमानोदरा
मुञ्चन्त्याननकन्दरानलमितस्तीव्रा रवाः फेरवः ॥

त्रिशिरखरदूषण के साथ युद्ध की चर्चा है—

राक्षसः—तावन्तस्ते महात्मानो निहताः केन राक्षसाः।
येषां नायकतां यातास्त्रिशिरःखरदूषणाः ॥

---

१. तापसवत्सराज की नाटकीय प्रस्तावना से।

२. वक्रोक्तिजीवित प्रथमोन्मेष कारिका २१ के नीचे—परित्राणार्थं लक्ष्मणस्य सीतया कातरत्वेन रामः प्रेरितः।

द्वितीयः — गृहीतधनुषा रामहतकेन
प्रथमः — किमेकाकिनैव ।
द्वितीयः — अदृष्ट्वा कः प्रत्येति । पश्य तावतोऽस्मद्बलस्य

सद्यश्छिन्नशिरःश्वभ्रमज्जत्-कंककुलाकुलाः ।
कबन्धाः केवलं जातास्तालोत्ताला रणाङ्गणे ॥

प्रथमः — सखे, यद्येवं तदाहमेवंविधः किं करवाणि ।

उदात्तराघव में बालिवध प्रकरण छोड़ दिया गया है ।[1] रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में उदात्तराघव के कतिपय उद्धरण मिलते हैं । इनमें से युक्ति का उदाहरण है—

लक्ष्मणः — किं लोभेन विलंघितः स भरतो येनैतदेवं कृतं
मात्रा, स्त्रीलघुतां गता किमथवा मातैव मे मध्यमा ।
मिथ्यैतन्मम चिन्तितं द्वितयमप्यार्यानुजोऽसौ गुरु-
र्माता तातकलत्रमित्यनुचितं मन्ये विधात्रा कृतम् ॥

उदात्तराघव में राम के प्रति नेपथ्य-वाक्य है—

अरे रे तापस, स्थिरीभव । केदानीं गम्यते ।
स्वसुर्मम पराभवप्रसव एकदृत्तव्यथः
खरप्रभृतिबान्धवोद्दलनघातसन्धुक्षितः ।
तवेह विदलीभवत्तनुसमुच्छलच्छोणित-
च्छटाच्छुरितवक्षसः प्रशममेतु कोपानलः ॥

यह आक्षेपिकी ध्रुवा गीति का उदाहरण है, जिसके द्वारा श्रृङ्गारित राम को वीर-प्रवण किया गया है ।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से मायुराज की रामविषयक इस रचना का कुछ परिचय मिल सकता है । उदात्तराघव के लिए गौरवधायक है इसका अभिनवगुप्त, कुन्तक, भोज, हेमचन्द्र आदि के द्वारा भी इस योग्य समझा जाना कि इससे वे उद्धरण दें ।

तापसवत्सराज

कथानक

नायक वत्सराज उदयन का प्रधर्षण पाञ्चालराज अरुणि ने कर दिया था, क्योंकि वह कामासक्त होने के कारण शक्तिहीन हो गया था । ऐसे राजा को अन्तःपुर में यदि दिन में कौमुदी दिखाई दे तो आश्चर्य ही क्या ?[3]

---

१. छद्मना वालिवधो मायुराजेनोदात्तराघवे परित्यक्तः । दश० ३.२४

२. नाट्यदर्पण ४. २ से ।

३. वक्त्रैर्वाराङ्गनानां श्रिततिलकमिलल्लक्ष्मभिर्भूरिचन्द्राः
सर्वात्रान्तःपुरेऽस्मिन् भवतु कृतपदा कौमुदी वासरेऽपि ॥ १.२

वत्सराज के मन्त्री यौगन्धरायण ने सांकृत्यायनी नामक संन्यासिनी से राजा का एक चित्र राजगृह भेज दिया। उस मन्त्री ने वासवदत्ता के पिता प्रद्योत को सूचित किया कि वत्सराज के अभ्युदय के लिए आपको क्या करना है और एक शिष्य के साथ लामकायन नामक ब्राह्मण को भिक्षु बना कर स्थिति सँभालने के लिए प्रयाग भेज दिया। उदयन की महारानी वासवदत्ता को भी वह अपनी योजना को पूरा करने में योगदान देने के लिए उद्यत कर रहा था, जिसमें उसको प्रोषित होना पड़ा। वासवदत्ता को उसके पिता का पत्र मिला—

आसन्नन्विपयेपु कार्यविमुखो यन्न त्वया वार्यते
जामातेति विहाय तन्मयि रूपं स्वार्थस्स्वयं चिन्त्यताम् ॥ १.६
अपि जीवितसंशयेन वत्से हृदयात् स्त्रीसुलभं विहाय मोहम् ।
उपमानपदं पतिव्रतानां चरितैर्यासि यथा तथा विधेहि ॥ १.१०

पत्र पढ़ कर वासवदत्ता ने यौगन्धरायण से कहा—जैसा आप चाहते हैं, वही करूँगी। मन्त्री की योजना सुन कर वह अचेत हो गई।

राजा के विदूषक को भी ज्ञात हो गया कि मन्त्रियों ने राजा को वासवदत्ता के प्रेमपाश से कुछ दिनों के लिए विरहित करने की योजना बना ली है। वह भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित हो चुका था। राजा विदूषक को लेकर अन्तःपुर में शारदी क्रीडा के लिए उपस्थित हुए। उस समय अपनी मानसिक स्थिति के कारण स्वभावतः वासवदत्ता राजा से बोलने में भी समर्थ नहीं थी। उसने अपने को वस्त्रावृत कर लिया तो राजा ने कहा कि ये तो फिर नववधू बन गईं। वासवदत्ता की सखी काञ्चनमाला भी षड्यन्त्र में सम्मिलित थी। उसने राजा से बताया कि रानी को आज मातृकुल से समाचार मिला है कि माता उनका विवाह न कर सकने के कारण रो रही हैं। इसी से रानी व्याकुल हैं। राजा ने यह सब सुनकर रानी से कहा—

पर्युत्सुके मयि कुरु प्रणयं पुरेव ॥ १.२०

तभी मृगया का समाचार देनेवाले दूत आये, जिनसे राजा को ज्ञात हुआ कि एक बनैला सूअर दिखाई पड़ा है। कौमुदीमहोत्सव को राजा ने दूसरे दिन के लिए टाल दिया।

राजा मृगया के लिए गया था। रानी यौगन्धरायण के साथ प्रवास कर गईं और उसके पश्चात् अन्तःपुर में आग लगा दी गई। राजा को ज्ञात हुआ-कि रानी जल गई। वह भी उसी आग में कूद कर मर जाना चाहता था। मन्त्री रुमण्वान् ने उसे ऐसा करने से रोका। राजा ने कहा—

अन्तर्बद्धपदं न पश्यसि सखे शोकानलं येन मा-
मेवं वारयसि प्रियानुसरणात् पापं करोम्यत्र किम् ॥ २.८

राजा ने बहुत-बहुत विलाप किया। उसने अन्त में कहा कि यौगन्धरायण से मिलाओ। उसे बताया गया कि वह भी वासवदत्ता के साथ गया। राजा उसके लिए भी विलाप करता रहा। विदूषक भी राजा के साथ रोता रहा। राजा को ज्ञात हुआ कि सांकृत्यायनी और कांचनमाला भी रानी के साथ चल बसीं। राजा ने मरने का निर्णय किया—

उत्तिष्ठ तत्र गच्छामो यत्रासौ सचिवो ततः।
सा च देवी विना ताभ्यां जातं शून्यमिदं जगत्॥ २.२१

रुमण्वान् ने कहा कि मरना ही है तो प्रयाग में जाकर सिद्ध तपस्वियों से मिलकर, जो चाहें, करें। राजा प्रयाग की ओर चलता बना। विदूषक और रुमण्वान् भी प्रयाग के लिये चल पड़े।

भिक्षुरूपधारी लामकायन से राजा की भेंट प्रयाग में हुई। उसने राजा को आशा दिलाकर मरने नहीं दिया। उसका कहना है—

कथञ्चिद्वत्सराजोऽसौ मरणव्यवसायतः।
आशाप्रदर्शनोपायैः परिबोध्य निवर्तितः॥ ३.१

उसके कहने से राजा तपस्वी बन गया। रुमण्वान् ने कहा कि आप पूर्वपुरुषोचित मार्ग छोड़ रहे हैं। अतएव मैं आपके साथ तीर्थयात्रा नहीं करूँगा। वह राजा से अलग होकर योजनायें कार्यान्वित करने में लग गया।

सांकृत्यायनी वत्सराज का चित्रफलक लेकर राजगृह गई थी। उसने वहाँ चित्र दिखाकर पद्मावती को वत्सराज के प्रति इतना आकृष्ट कर लिया कि उसने कहा कि मैं तो अब उनकी हो गई और माता के रोकने पर भी वह तपस्विनी बनकर तपस्वी वत्सराज से मिलने के लिए प्रयाग आकर आश्रम बनाकर राजा के चित्र को देवता की भाँति पूजने लगी। उसने निर्णय लिया कि जो राजा की गति होगी, वही मेरी भी होगी। यौगन्धरायण ने भी वासवदत्ता के साथ प्रयाग आकर अपनी योजनानुसार पद्मावती को उसे समर्पित कर दिया। पद्मावती की दशा सुनकर वासवदत्ता ने उससे पूछा कि क्या तुमने वत्सराज को देखा भी है? उसने कहा कि वे चित्ररूप में देवागार में हैं। उसे देखने के लिए वे दोनों गईं और मार्ग में पुष्प चुन लिये। चित्र दिखलाकर सांकृत्यायनी वासवदत्ता को अन्यत्र लेकर चली गई, क्योंकि उसी समय वत्सराज को वहाँ आना था।

विदूषक के साथ पद्मावती की आश्रमस्थली के पास तापस वत्सराज आया। उस समय उसने वासवदत्ता के आग से जलने की चर्चा की। विदूषक ने कहा कि वासवदत्ता के स्नेहानुरूप आपने बहुत कुछ कर लिया। अब अग्निकाण्ड को भूल जाइये। उसने निर्णय किया कि इसे पद्मावती को दिखाऊँ। उसने राजा से कहा कि थका हूँ, अतएव आने-जाने में असमर्थ हूँ। इसी आश्रम में चल कर विश्राम करें। वे दोनों वहीं रुक गये। विदूषक ने राजा से कहा कि आप से सिद्ध ने कहा है कि वासवदत्त

के समान ही किसी कन्या से विवाह कर लेने पर पुनः वासवदत्ता मिल जायेगी। राजा ने कहा कि इसी आशा से तो इस स्थिति में पड़ा हूँ। आश्रमद्वार पर पहुँचने पर उन्हें चेटी से ज्ञात हुआ कि वत्सराज की प्रणयिनी पद्मावती यहाँ उसके तापस होने के पश्चात् उसका अनुवर्तन करते हुए स्वयं तपस्या कर रही है। चित्र के माध्यम से उसकी पूजा करती है। विदूषक ने चेटी से बता दिया कि मेरे साथ तो वही वत्सराज हैं। चेटी ने जाकर पद्मावती से कहा कि नवपुरुष अतिथि बनकर आया है। अर्घ्य लेकर पद्मावती अतिथि का स्वागत करने के लिए पहुँची। राजा ने उसे देखा तो सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा—

संक्रुद्धस्य ललाटलोचनभुवा सप्तार्चिषा धूर्जटे-
निर्दग्धे मकरध्वजे रतिरसौ किं स्याद् गृहीतव्रता।
संवासाद् वनदेवता मुनिवधूवेशप्रवक्षे मनः
कृत्वेत्थं रमतेऽत्र विग्रहवती किं वा तपश्श्रीरियम्॥ ३.१४

पद्मावती ने उन्हें देखते ही पहचान लिया कि ये वत्सराज हैं। राजा ने उसका अर्घ्य ग्रहण किया। विदूषक ने कहा कि यह तो प्रच्छन्न वासवदत्ता है, जो संन्यासिनी बनी हुई है। राजा को भी वह वासवदत्ता जैसी लगी।

राजा ने पद्मावती को आश्वासन देने के लिए विदूषक को भेजा। लौटकर विदूषक ने बताया कि मैंने पद्मावती से कहा कि वत्सराज से विमुक्त हो जाओ तो वह रोने लगी। उसने राजा को स्मरण दिलाया कि सिद्ध ने कहा है कि वासवदत्ता के समान कन्या से विवाह करके ही वासवदत्ता को पुनः पाओगे। राजा ने कहा कि यदि ऐसा सब हुआ तो वासवदत्ता कैसे विश्वास करेगी कि उसे पुनः पाने के लिए मैंने उसकी सपत्नी की व्यवस्था की है। विदूषक ने कहा कि आप पद्मावती को सनाथ करें। मैं वासवदत्ता को मना लूँगा। अन्त में विदूषक राजा को लेकर पद्मावती के आश्रम की ओर चला। मार्ग में राजा एक वृक्ष के नीचे थक कर रुक गया।

पद्मावती राजा को अनाकृष्ट देखकर अन्यमनस्क है। वासवदत्ता और सांकृत्यायनी उसे समझाती हैं, पर वह उनसे अलग होकर अपनी योजना कार्यान्वित करना चाहती है। उसने उन दोनों को बहाना बनाकर अलग किया, पर वे दोनों छिप कर देखने लगीं कि वह कुछ गड़बड़ तो नहीं कर रही है। इधर पद्मावती माधवीलता का पाश बनाकर मरने का आयोजन करती है। उसका अन्तिम वाक्य था—महिलाओं का यही भाग्य होता है। विदूषक ने पद्मावती का विलाप सुना और वत्सराज को बलात् उठाकर पद्मावती के पास लाया। विदूषक ने देखा कि पद्मावती आत्महत्या कर रही है। राजा ने कोई अन्य उपाय न देख कर पद्मावती की रक्षा यह कहते हुए की—

विसृज पाशमिमं कुरु मे प्रियं प्रणयमेकमिमं प्रतिमानय।
अलहने किमिदं क्रियते त्वया प्रणयवानयमस्मि तवागतः॥ ४.१७

तभी कञ्चुकी ने आकर कहा कि पद्मावती और राजा का परिणय-मंगल अभी

सम्पन्न हो जाना चाहिए। उनका विवाह हो गया पर उनके दाम्पत्य का प्रणय-सूत्र मसृण ही रहा। तभी कौशाम्बी से पद्मावती के भाई ने समाचार भेजा कि कौशाम्बी रुमण्वान् के सहयोग से जीत ली गई। उस युद्ध में वासवदत्ता के भाई गोपाल और पालक ने भी वत्सराजपक्ष की सहायता की थी। दूत ने युद्ध का जो वर्णन सुनाया, उससे वत्सराज को प्रतीत हुआ कि यौगन्धरायण की भाँति कोई युद्ध कर रहा था।

एक दिन यौगन्धरायण आया और वासवदत्ता को लेकर चलता बना। पद्मावती इससे खिन्न थी। वासवदत्ता मरने का निश्चय करके स्नान करके जलने जा रही है। यौगन्धरायण उसे समझा रहा है। तभी यौगन्धरायण को सांकृत्यायनी से समाचार मिला कि राजा सोच रहा है कि पद्मावती से विवाह कर लेने पर वासवदत्ता पुनः मिलेगी—यह बात मुझे धोखा देने के लिए कही गई थी। वासवदत्ता के बिना इतने दिन जीवित रहा—यही अधिक है। अब जल मरूँगा। कोई उसे समझा नहीं पा रहा है। अब तो वासवदत्ता ही उसे रोक सकती है। वह तीर्थदर्शन और स्नान-दान करके त्रिवेणी तट पर पहुँच चुकी है। यौगन्धरायण ने सन्देश भिजवाया कि कोई राजा के लिए चिता न बनाये। उसे मरने से रोका जाता रहे। शेष मैं ठीक कर लूँगा।

यौगन्धरायण ने वासवदत्ता से कहा कि सारा अपराध तो हमारा है। यदि आप जलेंगी तो मैं आपसे आगे-आगे उस चिता में जल मरूँगा। दोनों के जलने के लिए चिता बनने लगी। इस बीच विदूषक के साथ उधर उसे राजा आता दिखाई पड़ा। साथ ही पद्मावती थी जल मरने को समुद्यत। पद्मावती ने राजा से कहा—

आर्यपुत्र, कथमेषा भगवती भागीरथी प्रियसख्या इव कालिन्द्यानुगता दृश्यते, तत् प्रेक्षस्व ननु आर्यपुत्र।

चिता में आग लगा दी गई। वासवदत्ता उस अग्नि की प्रदक्षिणा कर रही है। इधर राजा के लिए कोई चिता नहीं बना रहा है। राजा ने देखा कि चिता बनाने की मेरी आज्ञा कोई नहीं मान रहा है। उसने देखा कि एक चिता तो जलाई ही गई है। उसी की प्रदक्षिणा करके उसमें कूदूँ। वह प्रदक्षिणा करने लगा, जब वासवदत्ता भी प्रदक्षिणा कर रही थी। उसने यौगन्धरायण से कहा कि यह तो कोई और ही अग्नि की प्रदक्षिणा कर रहा, जो धूम के कारण स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा है। उसे हटाइये। यौगन्धरायण चिता के समीप जाकर धूमान्धकार में घुटने टेककर राजा से बोला—

भो राजन्, इयमस्माकं स्वसा भर्तृदुःखमसहमाना मर्तुमुद्यता। तदेतच्चिता-परित्यागेनास्मत्स्वसारमभ्युपपद्यतां देवः॥

राजा रुक गया। उसने पहचाना कि यह तो यौगन्धरायण है। वह उसका आलिंगन करता है। पद्मावती ने देखा कि वासवदत्ता भी वहीं है। वह उसका आलिंगन करती है। पद्मावती से पूछने पर उसने बताया कि आर्यपुत्र का कहना है कि मन्त्रियों ने मुझे धोखा दिया है। मैं वासवदत्ता के नाम पर मरूँगा। वासवदत्ता ने यह सुना तो उसने मन में निश्चय कर लिया कि जो राजा मेरे लिए मरने को उद्यत हैं, उन्हें

निराश करना उचित नहीं है। यौगन्धरायण ने अपनी सारी योजना राजा को बता दी कि मैंने यह सब पाञ्चालराज को हराने के लिए किया है। अपराधी मैं हूँ। वासवदत्ता भी यह रही। वासवदत्ता और वत्सराज लज्जा के मारे एक दूसरे के समक्ष नहीं आ रहे थे। विदूषक ने राजा से कहा कि मैंने तो आप से पहले ही कहा था कि सोए हुए मुझको देवी ने ही जगाया है। वासवदत्ता ने कहा कि मुझसे मन्त्रियों ने यह सब कराया है। अन्त में राजा मुद्राराक्षस का स्मरण कराते हुए कहता है—

> श्लाघ्या धीर्धिषणस्य रावणवशं यातः सुराणां पतिः
> सर्वं वेत्त्युशना रसातलमहाकारान्धकारे बलिः ॥ ६.७

रुमण्वान् ने इसका समर्थन किया—

> भिनत्ति ध्वान्तसन्तानं भास्वानेवोदयस्थितः।
> व्यतिरेकः कराणां तु न बुधैरवगम्यते ॥ ६.८

तापसवत्सराज का मुख्य फल है कौशाम्बी-राज्य लाभ और प्रासंगिक फल हैं वासवदत्ता से पुनर्मिलन और पद्मावती-प्राप्ति।

नेतृपरिशीलन

तापसवत्सराज का नायक पक्का धीरललित है—

> देवोऽपि प्रमदाकरार्पितकरः क्रीडाः समासेवितुं
> शुद्धान्तं समुपैति मन्त्रिवृषभैरुद्व्यूढपृथ्वीभरः ॥ १.१२

इस नायक के चरित्र में वैपरीत्य की विशेषता है। कवि के शब्दों में—

> दृष्टा श्रुताश्च प्रायो नारीभिरनुगताः पुरुषाः।
> तामनुगच्छन् कान्तां करोमि विपरीतमनुसरणम् ॥ २.२४

पुरुष अपनी प्रच्छन्न वृत्ति को छिपाते नहीं। बौद्ध भिक्षु बना हुआ लामकायन अपनी पोल खोलता है—

> पूर्वाह्णे कृतभोजनव्यतिकरान्नित्यैव नीरोगता
> कण्डूतिस्त्वकचादपैति शिरसः स्नानं यदा रोचते।
> जात्याचारकदर्थनाविरहितं ब्राह्मण्यमात्मेच्छया
> धूर्तैः सत्त्वहिताय कैरपि कृतं साधुव्रतं सौगतम् ॥ ३.३

ऐसे वचनों से हास्य उत्पन्न करता हुआ वह अर्धविदूषक है।

संन्यासिनियों को प्रेममार्ग का सहायक नहीं बनाना चाहिए। इस विचार से कवि ने सांकृत्यायनी से गृहस्थों की संगति को बाधक कहलवा कर उसके चरित्र का परिमार्जन करने के लिए यह भी कहलवाया है कि वत्सराज मेरा पूर्वोपकारी है। अतएव ऐसा करना पड़ रहा है।

नाटक में अनेक पुरुषों की मानसिक प्रच्छन्नता है। यौगन्धरायण, रुमण्वान्, काञ्चनमाला, विदूषक आदि सभी उस योजना को जानते हैं, जिसके अनुसार सारा कार्य-व्यापार चल रहा है, किन्तु राजा से कोई बताता नहीं कि यह सारा चक्र क्या है।

सभी पुरुषों की कार्यपरता, त्याग और विश्वसनीयता उच्चकोटि का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

रस

तापसवत्सराज में अङ्गीरस करुण है, जैसा अभिनव भारती में बताया गया है। कुन्तक ने करुण का नीचे लिखा उदाहरण वक्रोक्ति जीवित में उद्धृत किया है, जिसमें वत्सराज का परिदेवन है—

धारावेश्म विलोक्य दीनवदनो भ्रान्त्वा च लीलागृहा-
न्निश्वस्यायतनाशु केसरलतावीथीषु कृत्वादृशः।
किं मे पार्श्वमुपैषि पुत्रक कृतैः किं चाटुभिः क्रूरया
मात्रा त्वं परिवर्जितः सह मया यान्त्यातिदीर्घां भुवम्॥

तापसवत्सराज का करुण सुप्रसिद्ध है।[1] वासवदत्ता अपने पाले हुए वृक्ष और पशुओं से प्रवास की अनुमति ले रही है—

गृहीत्वा मुञ्चन्ती कथमपि गृहाशोकलतिकां
निवृत्य व्यावृत्तैः प्रियमपि बलादेणकशिशुम्।
इतो देवीत्येवं वदति सचिवे दुःखविषमं
प्रवृत्ता सम्राज्ञी गृहमभिपतन्त्येव हि दृशा॥ २.१

अनङ्गहर्ष ने पूर्वराग की स्थिति में पद्मावती से आत्महत्या कराने की योजना निदर्शित की है। यह संघटना संस्कृत-साहित्य में विरल है। कवि को संगीत की संगति में ध्वनियों की वृत्ति द्वारा प्रणयिजनों में संगमन की प्रवृत्ति उद्भिन्न करने में सफलता मिली है। यथा,

किंचित् कुञ्चितचञ्चुचुम्बनसुखस्फारीभवल्लोचना
स्वप्रेमोचितचारुचाटुकरणैश्चेतोऽर्पयन्ती मुहुः।
कूजन्ती विततैकपक्षतिपुटेनालिङ्ग्य लीलालसं
धन्यं कान्तमुपान्तवर्तिनमियं पारावतश्चुम्बति॥ ३.१३

इस सानुप्रासिक पद्य में पद्मावती के प्रति राजा के प्रणय-व्यापार की भूमिका उपस्थित की गई है।

अनङ्गहर्ष की हास्य निर्झरिणी कहीं-कहीं अतिशय तन्वी है। लानकायन बौद्ध-भिक्षु बना है और वह इस धर्म का परिहास करता है। यथा,

पूर्वाह्णकृतभोजनव्यतिकरान्नित्यैव नीरोगता
कण्डूतिस्त्यकचादपैति शिरसः स्नानं यदा रोचते।
जात्याचारकदर्थनाविरहितं ब्राह्मण्यमात्मेच्छया
धूर्तैः सत्त्वहिताय कैरपि कृतं साधु व्रतं सौगतम्॥ ३.३

---

१. यद्यपि सिद्ध ने कहा था कि वासवदत्ता पुनः मिलेगी, पर राजा को विश्वास नहीं था। उसका कहना है—क्वचित् केनचिदुपायेन परलोकगतः प्राप्यते। चतुर्थ अङ्क से।

सद्यस्स्नातजपत्तपोधनजटाप्रान्तस्रुताः प्रोन्मुखं
पीयन्तेऽम्बुकणाः कुरङ्गशिशुभिस्तृष्णाव्यथाविक्लवैः ।
एतां प्रेमभरालसां च सहसा शुष्यन्मुखीमाकुलां
श्लिष्टां रक्षति पक्षसम्पुटकृतच्छायां शकुन्तः प्रियाम् ॥

षष्ठ अंक में पद्मावती देखती है कि भागीरथी से कालिन्दी मिल रही है। इसके द्वारा व्यञ्जना की गई है कि वासवदत्ता पद्मावती से मिलने वाली है। राजा ने यही बात अभिधा से पद्मावती से कही—

अयं गङ्गायमुनयोश्चेतोनिर्वृतिकारणम् ।
आसन्नमिह पश्यामि भवत्योरिव संगमम् ॥ ६.५

तापसवत्सराज की शैली में उक्ति वैचित्र्य का सौरभ है। यथा,

शान्तेनापि वयं तु तेन दहनेनाद्यापि दह्यामहे । ३.१०

अर्थात् जलती हुई आग तो जलाती ही है, बुझी हुई आग राजा को जला रही है। अनङ्गहर्ष के इस करुण और श्रृङ्गारपूर नाटक में कैशिकी वृत्ति का वैदर्भी वृत्ति से सामञ्जस्य सफल है। इसके छद्म-प्रकरणों में आरभटी वृत्ति है।

गीततत्त्व

तापसवत्सराज में अनेक स्थलों पर अनूठा गीततत्त्व है। यथा,

कर्णान्तस्थितपद्मरागकलिकां भूयः समाकर्षता
चञ्च्वा दाडिमबीजमित्यभिहता पादेन गण्डस्थली ।
येनासौ तव तस्य नर्मसुहृदः खेदान् मुहुः क्रन्दतः
निःशूकं न शुकस्य किं प्रतिवचो देवि त्वया दीयते ॥ २.१३

इसमें शुक और वासवदत्ता की क्रीडा का वर्णन है। सन्देहालङ्कार-गर्भित गीत है—

प्रिया तावन्नेयं कथयति मनो मे स्फुटमिदं
तदाकारौत्सुक्यादपथनयनेनान्यविषये ।
प्रकारेणानेन प्रियजनमृषा क्रान्तमथवा
विधिर्मां क्रीडावान् सुखयति शठो दुःखयति च ॥ ३.१५

गीतों में कतिपय स्थलों पर भावदोलान्दोलन है। यथा,

सन्तापं न तथा तनोति परुषं बाष्पं क्षिणोतीव मे
बध्नात्येव रतिं क्षणं न तु पुनः स्थैर्यं समालम्बते ।
मामस्यां विनियोक्तुमिच्छति मुहुर्देवीमुपैत्यात्मना
कष्टा दैवहतस्य दग्धमनसः काव्यस्य दुर्वृत्तता ॥ ३.७

नीचे के गीत में एकपत्नीव्रत का अनूठा आदर्श निर्भर है—

चक्षुर्यस्य तवाननादपगतं नाभूत् कचिन्निर्वृतं
येनैषा सततं त्वदेकशयनं वक्षस्स्थली कल्पिता ।

येनोक्तासि विना त्वया मम जगच्छून्यं क्षणाज्जायते
सोऽयं दम्भधृतव्रतः प्रियतमे कर्त्तुं किमप्युद्यतः ।। ४.१३

और भी—

किं प्राणा न मया तवानुगमनं कर्त्तुं समुत्साहिताः
बद्धा किं न जटा न वा प्रतितरु भ्रान्तं वने निर्जने ।
त्वत्सम्प्राप्तिविलोभितेन पुनरप्यूढं न पापेन किं
किं कृत्वा कुपिता यदद्य न वचस्त्वं मे ददासि प्रिये ।। ५.२५

लोकोक्तियाँ

तापसवत्सराज में कतिपय लोकोक्तियाँ अतिशय मार्मिक हैं । यथा

१. निसर्गकर्कशा एव नयवेदिनां प्रवृत्तयः ।

२. कथमयं क्षते क्षारावसेकः ।

३. अग्निं परितः पलालभारं परिनिक्षिपसि ।

४. अशुभस्य कालहरणं मुहूर्तमपि बहु मन्यन्ते नयवेदिनः ।

५. समग्रदुःखानां जननी भगवती सेवा ।

६. कथमिदमिति ध्यानावेगादकालजरां गतः ।

७. असूत्रः पटः क्रियते ।

मंचीय व्यवस्था

संस्कृत के अन्य कई नाटकों की भाँति तापसवत्सराज में भी रंगमञ्च पर एक साथ ही पात्र कई दलों में रहते हैं, जिनमें से प्रत्येक दल का कुछ करते रहना आवश्यक नहीं है । चतुर्थ अंक में राजा और विदूषक पद्मावती के आश्रम की ओर जाते हुए एक वृक्ष के नीचे बैठ जाते हैं । वे रंगमञ्च पर ही चुपचाप हैं । तभी दूसरी ओर से वासवदत्ता और सांकृत्यायनी पद्मावती को आश्वस्त करती हुई रंगमञ्च पर आ जाती हैं । उनके बातचीत करते समय पहला दल चुपचाप रहता है । कुछ देर पश्चात् सांकृत्यायनी और वासवदत्ता भी रंगमञ्च पर अलग रह कर कानाफूसी करती हैं और पद्मावती की बातें अदृश्य रह कर सुनती हैं । रंगमञ्च पर ऐसा होना अनुचित है । षष्ठ अंक में पुनः अनेक दलों में एक दूसरे से अज्ञात रह कर अनेक दलों में बँट कर पात्र अपना-अपना कार्य कर रहे हैं । रंगमञ्च के एक ओर राजा, पद्मावती और विदूषकादि हैं और दूसरी ओर यौगन्धरायण, वासवदत्ता और काञ्चनमाला हैं ।

विशेषता

तापसवत्सराज की सबसे बड़ी विशेषता है कि इस एक ही नाटक में सौन्दरनन्द, स्वप्नवासवदत्त, कुमारसम्भव, अभिज्ञानशाकुन्तल, मुद्राराक्षस, उत्तररामचरित आदि

अनेक उच्चकोटि के काव्यों की सम्मिश्रित रसमयता और दृश्यात्मक झाँकियाँ मिलती हैं। कुमारसम्भव का एक दृश्य इसके नीचे लिखे पद्य से उपमित करें—

करतलकलिताक्षमालयोस्समुदितसाध्वसबद्धकम्पयोः।
कृतरुचिरजटानिवेशयोरपर इवेश्वरयोस्समागमः॥ ४.२०

तापसवत्सराज का उस प्राचीन युग में अतिशय बहुमान था। उसके लगभग ३५ पद्यों को संस्कृत के उच्चकोटि के काव्यशास्त्रियों ने उदाहरण रूप में लिये हैं।[1]

उपदेश

कुन्तक ने तापसवत्सराज का उपदेश बताया है—

वस्तुतस्तु व्यसनार्णवे निमज्जन्निजो राजा तथाविधनयव्यवहारनिपुणैरमात्यैस्तैस्तैरुपायैरुत्तारणीयः।[2]

अर्थात् विपत्ति में पड़े राजा अमात्यों के द्वारा उपाय करके बचाया जाना चाहिए।

---

१. ध्वन्यालोक, अभिनवभारती, वक्रोक्तिजीवित, शृङ्गारप्रकाश, सरस्वतीकण्ठाभरण, काव्यप्रकाश, नाट्यदर्पण आदि काव्यशास्त्रों में उद्धरण हैं।

२. प्रथमोन्मेष में प्रबन्धवक्रता-प्रकरण

अध्याय ४

आश्चर्यचूडामणि

आश्चर्यचूडामणि के रचयिता शक्तिभद्र केरल प्रदेश के निवासी थे। कहते हैं कि वे दक्षिण भारत के प्रथम नाटककार हैं। इनकी रचनाओं का उत्तर भारत में भी सम्मान हुआ। जैसा इसकी प्रस्तावना से प्रतीत होता है, इसका अभिनय इस प्रस्तावना की संगति में उत्तर भारत में हुआ था।

शक्तिभद्र के पश्चात् महाराज कुलशेखर नामक दूसरे नाटककार हुए, जिनका समय ९०० ई० के लगभग माना गया है। ऐसी स्थिति में शक्तिभद्र को ९०० ई० के कुछ पहले रखना समीचीन है। परम्परानुवृत्ति से वे शङ्कराचार्य के समकालिक माने जाते हैं। भट्टनारायण का प्रभाव शक्तिभद्र पर प्रत्यक्ष है, जैसा उनके एक ही वृत्त में समानार्थक पद्यों से प्रतीत होता है—

> रक्षोवधाद् विरतकर्म विसृज्य चापं
> गोधाङ्गुलित्रपदवीषु धृतव्रणेन।
> रेखातपत्रकलशाङ्कितलेन रामो
> वेणीं करेण तव मोक्ष्यति देवि देवः॥ ...६.२१

भट्टनारायण का पद्य है—

> चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात-
> संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।
> स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि-
> रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देविभीमः॥ वे० १.२१

आश्चर्यचूडामणि का यह पद्य छठें अङ्क का है। इसी अंक में हनुमान् की बातें सुनते हुए सीता का पुनः पुनः 'तदो तदो' कहना वेणीसंहार में चतुर्थ अङ्क में सुन्दरक की बात सुनते हुए दुर्योधन के ततस्ततः की स्मृति कराता है। भवभूति का महावीरचरित में शूर्पणखा को मन्थरा के रूप में प्रस्तुत करना शक्तिभद्र को अनेक पात्रों को मायामय रूप में पुरस्कृत करने की प्रेरणा देता है।[1] इनसे प्रतीत होता है कि शक्तिभद्र निश्चय ही भट्टनारायण और भवभूति के पश्चात् हुए।

---

१. शक्तिभद्र के राम सातवें अङ्क में कहते हैं—केवलं लोकहितार्थमेव मे यत्नो भविष्यति। यह भवभूति के 'आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा' का स्मरण कराता है।

शक्तिभद्र ने उन्माद-वासवदत्ता नामक काव्य की रचना की थी।

कथा

शूर्पणखा गोदावरी-तट पर विश्राम करते हुए राम के समीप एक दिन परम सुन्दरी बन कर पहुँची और उनके साथ प्रणयात्मक सम्बन्ध की चर्चा की। उन्होंने उसे लक्ष्मण के पास भेज दिया, जो उस समय राम और सीता के रहने के लिए कुटी के निर्माण में लगे हुए थे। निर्माण-कार्य पूरा करके वे राम को इस बात की सूचना देने के लिए जाने ही वाले थे कि वह सुन्दरी उनके पास पहुँची। उसे देखते ही लक्ष्मण का चित्त विकृत तो हुआ, किन्तु उन्होंने अपने को सँभाल लिया।

वशे तिष्ठन् भ्रातुः स्मरपरवशः स्यां कथमहम्। १.७

शूर्पणखा की लक्ष्मण ने उपेक्षा की। उसने कहा—शरणागत हूँ, मेरी उपेक्षा न करें। लक्ष्मण ने कहा—मैं भाई का सेवक हूँ। शूर्पणखा ने कहा कि उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है कि मैं आपके साथ रह कर उनकी सेवा करूँ। लक्ष्मण ने कहा कि मैं वानप्रस्थ का सा जीवन बिताने वाला कैसे ग्राम्य धर्म की ओर प्रवृत्त हो सकता हूँ? शूर्पणखा ने कहा कि मुझे तो अपनी सेविका बना लें। लक्ष्मण ने उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए कहा—

आर्यस्य पर्णगृहप्रवेशानन्तरमत्रभवतीमभिप्रेतस्थाने द्रक्ष्यामि।

शूर्पणखा पर्णशाला के पास ही टिक कर लक्ष्मण की प्रतीक्षा करने लगी। लक्ष्मण राम और सीता को पर्ण कुटी में ले आये। इधर शूर्पणखा प्रतीक्षा करके खिन्न हो कर लक्ष्मण को मन ही मन बुराभला कह कर पुनः राम से प्रीति जगाने की योजना बनाने लगी।

शूर्पणखा ने लक्ष्मण से अपने मिलने का सब वृत्तान्त राम को बताया और अन्त में कहा कि अब तो मैं आपके ही चरणों की सेवा करूँगी। राम ने कहा कि मेरी तो पाणिगृहीता पत्नी साथ है। अब कोई दूसरी पत्नी नहीं चाहिए। शूर्पणखा ने कहा कि तब तो अन्यत्र न जाकर यहीं प्राण दे दूँगी। राम ने उससे कहा कि फिर लक्ष्मण से मिलो।[1] राम के समझाने से वह फिर लक्ष्मण के पास तो गई पर उसने निश्चय किया कि यदि लक्ष्मण ने मुझे ठुकराया तो मैं अपने वास्तविक रूप में आ जाऊँगी। सीता ने उसके जाने के पश्चात् कहा कि आप ने इस बाला को ठुकरा कर अच्छा नहीं किया। राम ने उत्तर दिया कि ऐसी स्वच्छन्द प्रवृत्ति की स्त्रियों को गृहस्थ के साथ बँधना कष्टप्रद है। सीता ने कहा कि फिर उसे लक्ष्मण के पास क्यों भेजा? राम ने कहा कि यह तो इसलिये किया कि मेरा उससे पिण्ड छूटे।

राम ने सीता से कहा कि वन में तुम्हारी श्री हीन नहीं हुई। बात यह थी कि

१. इससे लगता है कि कवि उस कथाधारा का अनुवर्तन कर रहे हैं, जिसमें लक्ष्मण का विवाह वनवास के समय नहीं हुआ था।

अनसूया ने सीता को वर दिया था—'तव भर्तुर्दर्शनपथे सर्वं मण्डनं भविष्यति।' इस बात को राम नहीं जानते थे।

तभी उधर से लक्ष्मण के पीछे राक्षसी शूर्पणखा अपने वास्तविक रूप में आई। उसने कहा कि मैं इन दोनों पुरुषों को खाकर तो भूख मिटाती हूँ और इस स्त्री को अपने भाई को उपायन दे दूँगी। तपस्वियों का मांस खाने से अरुचि हो गई है। उसने लक्ष्मण को पकड़ लिया और आकाश में ले उड़ी। लक्ष्मण ने तलवार से प्रहार कर उसे गिराया और कहा—

दृष्ट्वा तस्याश्च दौरात्म्यं ज्ञात्वा भ्रातुश्च निश्चयम्।
न्यस्तमस्त्रं निशाचर्याः कथंचित् कर्णनासिके॥ २.१३

शूर्पणखा ने कहा—

स्मरतं युवयोरविनयम्। तस्य फलमद्य प्रभृति द्रक्ष्यथः॥

लक्ष्मण ने उसे भगाया। वह खरदूषण को अपनी अवस्था दिखाने के लिए चलती बनी।

रावण ने मारीच को नियुक्त किया कि तुम सीताहरण के काम में मेरी सहायता करो। इधर राम ने वायीं भुजा के फड़कने से सीता से आशंका प्रकट की कि किसी ने अयोध्या पर आक्रमण तो नहीं कर दिया या मेरी मातायें मर गई या राक्षस कोई उत्पात करनेवाले हैं। तभी खरदूषण को मारकर लक्ष्मण लौटे। प्रसन्न होकर ऋषियों ने लक्ष्मण को एक मणि और एक अंगूठी दी। उनको पहनने वाले का स्पर्श यदि किसी मायावी से होता तो उसकी माया प्रकट हो जाती थी। वह मणि आश्चर्य-चूडामणि नाम से विख्यात थी।[1] राम ने चूडामणि सीता की चूडा में लगा दी और स्वयं अंगूठी पहन ली।

तभी स्वर्णमृग प्रकट हुआ, जिसे पकड़ने के लिए सीता ने राम से आग्रह किया। लक्ष्मण अभी-अभी ऋषियों के पास से भ्रमण करके आये थे और श्रान्त थे। अतएव राम ही ने मृग का पीछा किया। सीता की रक्षा का भार लक्ष्मण पर रह गया।

राम के तपोवन की ओर रथ से आते हुए रावण सोचता है कि राम को मार कर सीता का अपहरण करूँ। शूर्पणखा बताती है कि ऐसे अपहरण करना है कि कहीं सीता मर न जाय। रावण सीता को देखकर मोहित हो जाता है। वह छिपकर सीता और लक्ष्मण की बातें सुनने लगता है। तभी दूर से सुनाई पड़ता है—हा लक्ष्मण! सीता ने उसे राम का आर्तस्वर जानकर उसे माया समझकर न जाते हुए लक्ष्मण को खोटी-खरी सुनाकर उन्हें भेज दिया। फिर आर्तस्वर सुनाई पड़ा—सीते, त्वमपि मामुपेक्षसे। इतना सुनते ही सीता भी चल पड़ीं। रावण ने राम का रूप बना कर सीता

१. नाटक में इस आश्चर्यचूडामणि का प्रयोग कवि की दृष्टि में प्रमुख संविधानक है, अतएव नाटक का नाम आश्चर्यचूडामणि पड़ा।

को बीच में रोकने का कार्यक्रम अपनाया। उधर शूर्पणखा सीता बन कर लौटने के मार्ग में राम को विलम्ब कराने के लिए गई। रावण ने उन दोनों के कान में बता दिया कि ऐसा-ऐसा करना है।

रावण रथ से उतर कर सीता के समक्ष राम-रूप में खड़ा हो गया। लक्ष्मण-रूप में सूत ने कहा—पत्नीसहित आर्य रथ पर चढ़ें। इस माया-लक्ष्मण ने माया-राम से कहा कि समाधि दृष्टि से शत्रुओं के द्वारा भरत को आक्रान्त जानकर ऋषियों ने यह रथ भेजा है कि हम लोग शीघ्र अयोध्या पहुँचे।

इधर लौटते हुए राम से माया-सीता मिली। राम ने उससे बताया कि मेरा बाण लगने पर पर वह मृग मेरा रूप धारण कर गिर पड़ा। इधर सीता आकाश में उड़ते हुए रथ पर बैठकर माया-राम (रावण) के साथ जा रही थी। राम ने आकाश के रथ से सीता का स्वर सुना, जब वह मायाराम से बात कर रही थी। राम को सन्देह हुआ तो मायासीता (शूर्पणखा) ने कहा कि इस दर्पण में मैं राम और सीता को देख रही हूँ। राम आश्वस्त हुए कि जैसे दर्पण का राम कृत्रिम है, वैसे ही दर्पण का सीता भी कृत्रिम है।[1] सीता ने आकाशयान से नीचे की ओर देखा तो राम और मायासीता दिखायी पड़े। माया-राम ने कहा कि आजकल बहुत से मायाराम बने घूमते हैं। तब तो सीता को विश्वास हुआ—यथा साहं न भवामि तथा आर्यपुत्रोऽपि स न भवति। रावग सीता को लेकर चलता बना।

माया-सीता (शूर्पणखा) उस समय राम के साथ नहीं जाती, जब वे लक्ष्मण को ढूँढने के लिए चल पड़ते हैं। उन्हें दूर से मायाराम का आर्तस्वर सुनाई पड़ता है कि सीते, तुम अब विधवा हो जाओगी। राम आगे बढ़ने पर देखते हैं कि लक्ष्मण मायाराम (मारीच) को बींधा बाण निकाल रहे हैं।[2] तब तक वास्तविक राम वहाँ पहुँचे तो लक्ष्मण ने उन्हें डाँट लगाई—

पूर्वजं चापि मे हत्वा मामप्यभिगतोऽसि किम्॥ ३.३७

वे उन्हें मारने के लिए तलवार उठा लेते हैं। राम का प्राण तो तब बचा, जब उन्होंने लक्ष्मण को अँगूठी दिखाई और उनको वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। मारीच भी मायाराम का रूप छोड़कर राक्षस बन गया और लक्ष्मण के पादक्षेप से गिर कर मर गया। शूर्पणखा उसकी दुर्गति देखकर रोने लगी। राम ने उसके आँसू पोंछे तो

१. दर्पण में दूरस्थ व्यक्ति की प्रतिकृति देखने की नाटकीय योजना परवर्ती युग में पारिजातमंजरी में मिलती है।

२. यहाँ तीन राम हो गये (१) वास्तविक राम (२) मायाराम (मारीच) (३) मायाराम (रावण)। वस्तुतः छायानाटक तो यही है। आगे चल कर सुभट ने अपना दूताङ्गद नामक छायानाटक सुप्रचित किया।

वह अंगूठी के स्पर्श से शूर्पणखा रूप में परिणत हो गई। वह लक्ष्मण की तलवार से काटी जानेवाली ही थी कि राम के पैरों पर गिर कर बच पाई। शूर्पणखा ने अभय-दान पाकर सारा मायात्मक रहस्य खोला। लक्ष्मण ने शूर्पणखा से रावण को सन्देश दिया—

अपि बन्धुषु नार्थिता वरं किमुताराातिषु तां ददाम्यहम्।
युधि रावण मे सबान्धवो मुनये देहि मुहूर्तदर्शनम्॥ ३.४१

मायाराम (रावण) आकाश-मार्ग से जाते हुए कामुकतावश सीता के केश-कलाप सँवारने लगा। तभी चूडामणि के स्पर्श से उसका मायात्मक रूप विघटित हो गया और वह रावण हो गया। सीता ने 'त्राहि माम्' का आर्तनाद किया तो जटायु पक्षी बचाने के लिए रावण पर आक्रमण करने लगा। रावण सीता को लेकर लङ्का पहुँचा।

88175

रावण ने सीता के प्रीत्यर्थ मेघों से पुष्पवर्षा कराई, सभी ऋतुओं से पुष्पवाटिका को मण्डित कराया और चन्द्रिका से चातुर्दिक् चन्द्रित कराया। फिर सायंकालोचित परिधान से समलंकृत होकर सीता से मिलने चला। रावण ने सीता के प्रति अपनी आसक्ति का प्रमाण यह कह कर दिया कि तुम्हारे लिये मैं सारे अन्तःपुर को छोड़ रहा हूँ। सीता का उत्तर था—

मम कृते त्वया जीवितमपि परित्यक्तव्यं भविष्यति।

हनुमान् लङ्का पहुँचे और वहाँ सीता को ढूंढ निकाला, जब वह चन्द्रमा को उपालम्भ देकर अपने जीवन का अन्त करने जा रही थी। यह देख कर उन्होंने सीता के समक्ष अपने को प्रकट किया और अपना परिचय दिया कि मैं राम का दूत हूँ। उन्होंने सुग्रीव से सख्य का वृत्तान्त बताया और सीता के वियोग में राम की दशा का वर्णन किया। अन्त में राम की भेजी हुई अंगूठी सीता को दी। हनुमान् ने सीता के अपहरण के पश्चात् की सारी घटनायें संक्षेप में सीता को सुनाईं। हनुमान् ने सीता को राम का सन्देश सुनाया—

सदसि नमयता धनुर्मया त्वं
गुरुजघने गुरुमन्दिरादवाप्ता।
दशवदननिरोधनादपि त्वां
युधि विनमय्य शरासनं हरामि॥ ६.२०

सीता ने राम के लिए अभिज्ञानरूप चूडामणि देकर सन्देश दिया—

आर्यपुत्रो यथा शोकपरवशो न भवति तथा मे वृत्तान्तं तस्य भण।

रावण को युद्ध में परास्त करने के पश्चात् सीता को अपनाने का प्रश्न राम के सामने था। उन्हें लोकापवाद की आशंका थी। लक्ष्मण ने प्रस्ताव किया—

देव्याः परीक्ष्या भावशुद्धता। ७.१२

सीता लाई गईं। राम ने देखा कि वह पूर्णरूप से समलंकृत और प्रसाधन-

विभूषित हैं। उन्हें सीता के चरित्र पर सन्देह हुआ। यह देखकर सीता ने स्वयं अपनी अग्निपरीक्षा का प्रस्ताव रखा। सरोवर-तट पर अग्नि में सीता ने प्रवेश किया। सीता के ऊपर कल्पवृक्ष के पुष्पों की वृष्टि हुई और अग्नि तिरोहित हो चली।

सीता के पातिव्रत्य के प्रभाव से प्रमुख देवता और राम के पितर वहाँ उपस्थित हुए। नारद ने उस रहस्य का उद्घाटन किया कि क्योंकर सीता राम के वियोग में भी प्रसाधित रहीं, जिसके कारण राम का उनके विषय में सन्देह हो चला था। अनसूया के वरदान से—

तस्याश्शरीरगतं तव दर्शनपथे सर्वं मण्डनरूपं भविष्यति।

देवता, पितर और नारद ने राम से कहा कि वनवास की अवधि पूरी हो गई। अब अयोध्या जायें। सीता ने रथ पर चढ़ते हुए कहा—

एषोऽञ्जलिराश्चर्यरत्नयोः। अन्यथा कथमिदानीमार्यपुत्रं राक्षसं च परमार्थतः जानासि।

नेतृपरिशीलन

कवि केवल इतिवृत्त तक अपने को सीमित नहीं करना चाहता। नायकों का चरित्र-चित्रण उसका एक लक्ष्य प्रतीत होता है। इस उद्देश्य से वह अपने संवादों में ऐसे तत्त्व भी विनिवेशित करता है, जिनका कार्यावस्था और सन्ध्यङ्गों से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रथम अंक में जब लक्ष्मण राम और सीता को लेकर अपनी बनाई पर्णकुटी में आ रहे हैं तो उनमें कैकेयी के द्वारा वनवास दिये जाने की चर्चा इसी प्रकार की है। इसमें लक्ष्मण, राम और सीता का चरित्र प्रतिफलित होता है।

संस्कृत के अनेक कवियों ने सीता के चरित के साथ अन्याय किया है। वाल्मीकि का नाम इनकी सूची में सर्वोपरि है। शक्तिभद्र भी इसी कोटि में आते हैं। उनके अनुसार सीता को शंका हो गई थी कि लक्ष्मण मारीच-काण्ड में राम के मरने के पश्चात् मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। तब तो लक्ष्मण को कहना पड़ा—

अविवेकमनावेद्य नदाक्षिण्यमनूर्जितम्।
धिगहं जन्म नारीणां यन्मामेवं प्रभाषसे॥ ३.२०

आश्चर्यचूडामणि में पुरुषों की प्रच्छन्नता मायात्मक है। तृतीयाङ्क में लक्ष्मण जिसे राम समझते हैं, वह मारीच है। राम जिसे सीता समझते हैं, वह शूर्पणखा है सीता जिसे राम समझती हैं, वह रावण है। ऐसी प्रच्छन्नता इतने बड़े आयाम पर संस्कृत के किसी अन्य रूपक में देखने को नहीं मिलती। इसमें अपने आप से ही प्रच्छन्नता के कारण धोखा खाने की रुचिकर घटना है। चूडामणि के स्पर्श से माया-राम रावण हो गया था, किन्तु वह अपने को रामरूपधारी समझने की भूल कर रहा था।

राम को हम कूटनाटकघटना के चरितनायक के रूप में पाते हैं, जब वे सीता की अग्निपरीक्षा के लिए समुद्यत हैं। उनका उद्देश्य है—

अवधूय दशग्रीवं मामनुव्रतचेतसः।
सर्वे पश्यन्तु जानक्या रूपं चारित्रभूषणम् ॥ ७.१४

पर राम ही नहीं, उनके संकेत पर लक्ष्मण और हनुमान् भी सीता से सीधे मुँह बात नहीं करते। राम ने कहा—

रजनीचरगूढसत्रिभिः कृतसंकेतनया दिने दिने।
ऋजुस्वभावजडास्त्वया वयं छलिताः पुंश्चलि दण्डके वने ॥ ७.१७

सुग्रीव ने आदेश दिया—

निर्वास्यतामेषा स्वामिविषयात्। क्षीराहुतिं चिताग्निः कथमर्हति।

रस

भावात्मक उत्थान-पतन का प्रवर्तन शक्तिभद्र ने सफलतापूर्वक किया है। जिस पंचवटी के विषय में सीता का कहना है—

आर्यपुत्र यावदहं जीवामि तावदत्रैव वस्तुं मे बुद्धिः।

उसी पंचवटी में उनका रावण के द्वारा अपहरण होता है और जिस पर्णकुटी से सीता का हरण हुआ, उसके विषय में वह कहती हैं—

आर्यपुत्र, कुसुमपल्लवसमृद्धिभिः पर्णशालाविभूतिभिः कदर्थितः प्रासादबहुमानः।

सीता माया-रावन के रथ पर बैठती हुई कहती हैं—

'दिष्ट्या राक्षसवंचनान्मोचिता भूत्वा गच्छामः।'

और इसी समय से वह राक्षसवंचना में ग्रस्त होती हैं।[1]

इस नाटक में अद्भुत रस की अन्तर्धारा आद्यन्त प्रवाहित है। कवि ने सीता के मुख से इस प्रवृत्ति का आकलन कराया है—

अस्ति ममापि कौतूहलम्। वनान्तरप्रवृत्तान्याश्चर्याणि पश्चादन्तःपुरनित्यवासस्य जनस्य पुनः पुनः कथ्यमानस्य विस्मयमुत्पादयितुम्।

अन्यत्र सीता ने कहा है—

अद्भुतदर्शनबहुरसः खलु वननिवासः।

श्रृङ्गार रसराज के लिए अवसर न होने पर भी शक्तिभद्र प्रसङ्ग बना लेते हैं। हनुमान् सीता और राम के प्रणय-प्रसंग को सीता को सुनाते हैं—

आयातं मामपरिचितया वेलया मन्दिरं ते
चोरो दण्ड्यस्त्वमिति मधुरं व्याहरन्त्या भवत्या।
मन्दे दीपे मधुलवमुचां मालया मल्लिकानां
बद्धं चेतो दृढतरमिति बाहुबन्धच्छलेन ॥ ६.१८

१. उपर्युक्त तीनों प्रसङ्ग अदृष्टाहति (Solilo quy) के हैं।

गीत

नाटक में गीत का आयोजन अन्तिम अंक में नेपथ्य से किया गया है। यह दिव्य-गन्धर्व गान दो पद्यों का है।

विचारणा

कवि की विचारणा अलौकिक है, जहाँ से वह देख सकता है—

साधारणी नयविदां धरणिः कलत्रमस्त्राणि मित्रमरयः सहजाः सुताश्च।
पापात् परस्य पतनं नरकेषु लाभो द्वे चामरे च सितमातपवारणं च॥

अर्थात् राजा के लिए पत्नी पृथ्वी है, अस्त्र मित्र हैं, भाई और पुत्र ही शत्रु हैं, दूसरों के पाप से नरक में गिरना उसका लाभ है। उसे मिलता क्या है—चामर और छत्र।

अन्यत्र भी,

तस्य लक्ष्मीर्नटस्येव छत्रचामरलक्षणा।
न बध्नाति फलं यस्मिन्नर्थिनां प्रार्थनालता॥ ७.१०

संवाद तथा कार्यव्यापार

कतिपय स्थलों पर केवल संवाद का विषय ही स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता, अपितु संभाषणरीति भी स्वाभाविक होने के कारण हृदयस्पर्शी है। यथा,

रामः—एष लोकस्वभावो बहुपुत्राणामेकस्मिन् ईषत्पक्षपातः। तव किं साधारणो भ्रातृस्नेहः।
लक्ष्मणः—किं बहुना, सर्वथा तातस्य मरणकारणं संवृत्तः।
रामः—मा मा। तातं प्रति निरपराधः स गुरुजनः।

शक्तिभद्र संवादों को विशेष महत्त्व देते हैं। संवादों का वाक्पाटव प्रेक्षकों के श्रोत्र और मानस की परितृप्ति तो करता है, किन्तु दर्शक होने के नाते उनके नेत्रों की परितृप्ति के लिए रङ्गमञ्च पर कुछ कार्यव्यापार भी तो होना चाहिए। पञ्चम अङ्क इस प्रकार के वाक्पाटव का अनूठा उदाहरण है, जिसमें आदि से अन्त तक कोई कार्य-व्यापार नहीं है। षष्ठ अङ्क भी कार्यव्यापार-रहित है। इन दोनों अङ्कों में दृश्य तत्त्व किंचिदपवाद रूप ही है।

एकोक्ति

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में रङ्गमञ्च पर अकेले शूर्पणखा अपनी मनोदशा सुनाती है, जिसमें वह बताती है कि मैं राम को पतिरूप में प्राप्त करूँगी, लक्ष्मण मूढ है, मुझ अभागिन ने दुःख ही बोया।

पञ्चम अङ्क के अन्त में सभी पात्रों के रङ्गमञ्च से चले जाने के पश्चात् अकेली सीता रह जाती है और वह कहती है—

'अब आर्य पुत्र की चिन्ता करती हुई मर जाऊँगी···राक्षस ने अपने शिर से स्पर्श किया, जिससे मेरा पैर अपवित्र हो गया। पुष्करिणी में इसे धोकर अपने को दुःखों से सर्वथा मुक्त कर डालूँगी।' सीता की एकोक्ति षष्ठ अङ्क के आरम्भ में भी है, जिसमें वह चन्द्र को उपालम्भ देती है, सप्तर्षियों को आकाश में देखकर अरुन्धती से निवेदन करती है कि राक्षसों के इस देश में मुझे कोई प्रतिकार नहीं बताती हैं।

इस अङ्क में हनुमान् की एकोक्ति है, जिसमें वे अपने पराक्रम की चर्चा करते हैं कि मैं राम की अँगूठी लेकर यहाँ सीता के पास आया हूँ, वाटिका का वर्णन करता है और सीताधिष्ठित शिंशपा वृक्ष को ढूढ़ने में अपने सफल प्रयास की चर्चा करता है। सीता को न देखकर वह कहता है—

'व्यापादिता नु राक्षसेन। स्वयमेव साहसं गता नु। वृथा मया समुद्रो लंघितः। वन्ध्यो सुग्रीवमनोरथः। किमुक्त्वा स्वामिदत्तमिदमभिज्ञानाङ्गुलीयकं प्रतिप्रयच्छामि। सर्वथा देवीमन्तरेण देवो न जीवति। ततः सुग्रीवो भरतलक्ष्मणौ देव्यश्च। सर्वस्यास्य वन्ध्यपुनर्दर्शनेनाहं कारणं भविष्यामि। मिथ्या स्वामिनोऽपि न वक्तव्यम्। तद्यावदहमपि यथाशक्ति चेष्टितैर्यशोमूर्तिर्भविष्यामि।'

हनुमान् की यह उक्ति साभिप्राय है।

लोकोक्ति और प्रायोवाद

संवाद की प्रभविष्णुता लोकोक्ति और प्रायोवाद से प्रमाणित होती है। शक्तिभद्र इनके संग्रहण में निष्णात हैं। यथा,

१. आकाशः प्रसूते पुष्पम्।
२. सिकतास्तैलमुत्पादयन्ति।
३. गुणाः प्रमाणं न दिशां विभागाः।
४. न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञः।
५. न सन्त्यगुणा गुणवताम्
६. सन्तोपवाह्यानामधर्मैकरतं मनः।
७. विदूरे सर्व विस्मयनीयतया श्रूयते
८. न संसर्गमर्हति कुटुम्बिनामनर्गलः स्त्रीजनः।
९. कथमौष्ण्यमग्नेश्छाद्यते।
१०. दाक्षिण्यमृद्वी जनता शठानां वशवर्तिनी।
स्वयमुद्धर्तुकामानां लतेवोज्झितकण्टका॥ २.१८
११. तप एव शान्तिरसंगलस्य।
१२. हताः स्त्रियः पापे कर्मणि पण्डितानतिशेरते।
१३ यत्र म्रियस्तत्र ननु द्विषन्तः। ३.२७
१४. अनन्तरगामिनी स्त्रीणां लक्ष्मीः।

१५. परिवर्तते प्रकृतिरापदि हि ।
१६. समाधी रक्षति स्त्रीजनं न बाणाः ।
१७. अहो, बलवान् भर्तृपिण्डः ।
१८. अपि बन्धुषु नार्थिता वरम् । ३.४१
१९. प्रभवति कुतोऽनर्थः प्रज्ञा न चेदपथोन्मुखी । ३.४२
२०. बलवानसंस्तवः
२१. क्व मनोभवः क्व गुणसंग्रहणम् ।।४.१२
२२. बालेन बद्धो मुसलेन हन्यते ।
२३. सुजनः शंसति पथ्यमेव भर्तुः । ५.२३
२४. कर्म नूनमुचितं लोकोऽयमालम्बते ७.५
२५. व्यसनेषु महत्सु तत्कुलीनं जनमालोक्य समुच्छ्वसन्ति पौराः । ७.६
२६. नोपनता श्रीरमन्तव्या ।
२७. सुखाभिलाषी स्त्रीभावः ।
२८. अविश्वसनीयः खलु स्त्रीभावः ।
२९. क्षीराहुतिं चिताग्निः कथमर्हति ।
३०. पयो मद्यस्पर्शं परिशङ्क्यते ।
३१. कथं दीपिकां तमः कलङ्कयति ।

वर्णन

कतिपय स्थलों पर वर्णन सर्वथा समसामयिक घटनात्मक परिस्थिति से समंजसित हैं । यथा शूर्पणखा की नाक कटने के पश्चात् की सन्ध्या का—

दिवसक्षयपाटलैः किरणैरुद्धृत्य राक्षस्या लोहितकर्दमं पादपशिखराणि लिम्पतीव भगवान् सूर्यः ।

समीक्षा

आरम्भ से ही एक कथा-सी चल रही है । किसी कार्य का वीज आरम्भ में दृष्टिगोचर नहीं होता और न किसी फल की प्राप्ति की ओर नायक की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । इसमें कार्यावस्थाओं को ढूँढ़ निकालना असफल प्रयास है ।

सूच्यांश को अर्थोपक्षेपकों के अतिरिक्त स्वगत में भी बताया गया है । द्वितीय अंक में सीता स्वगत द्वारा बताती है कि अनसूया ने मुझे वर दिया है कि अपने पति की दृष्टि में तुम्हारा सब कुछ मण्डन रहेगा । षष्ठ अङ्क में सुग्रीव का वृत्तान्त अङ्क भाग में हनुमान् सीता को बताते हैं । यह सूच्यांश अङ्क में नहीं होना चाहिए था[1] ।

---

१. नाटककार अङ्क में दृश्य और विष्कम्भकादि अर्थोपक्षेपकों में सूच्य रखने के नियम का पालन प्रायशः नहीं करते थे । शक्तिभद्र ने अगणित सूच्यांशों को अङ्क भाग में रखा है ।

कथा की भावी प्रवृत्ति कहीं-कहीं किसी पात्र की अन्तरात्मा के इंगित द्वारा सूचित की गई है। लक्ष्मण स्वर्णमृग को देखकर कहते हैं—अपि नामेयं राक्षसी माया न स्यात्। अपशकुन भी भावी विपत्तियों के सूचक हैं। सीताहरण के समय रावण के रथ के घोड़े स्खलित हो रहे थे। अपहरण के कुछ पहले सीता की दाहिनी आँख फड़कती है।

पञ्चम अङ्क में मन्दोदरी के स्वप्न द्वारा कथा की भावी प्रवृत्ति की सूचना दी गई है। सातवें अङ्क में सीता के अपवाद की पूर्व सूचना राम को आशंका के रूप में दी गई है।

रंगमञ्च

तृतीय अङ्क में रङ्गमंच के एक ओर लक्ष्मण और सीता हैं और दूसरी ओर से रावण और शूर्पणखा के रथ पर आने का अभिनय हो रहा है। रङ्गमञ्च पर आती हुई शूर्पणखा और रावण जब तक लम्बी बात करते हैं, तब तक उसी रंगमंच पर लक्ष्मण और सीता क्या करते रहेंगे—यह नहीं बताया गया है। अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर ऐसा लगता है कि बिना अतिविशाल रंगमंच के इस नाटक का अभिनय असम्भव है। एक ही रंगमंच पर एक ओर तो रावण सीता का अपहरण करते हुए रथ पर जा रहा है और दूसरी ओर राम सीतारूपधारिणी शूर्पणखा से बातचीत कर रहे हैं। दोनों वर्गों के अभिनेता एक दूसरे को नहीं देखते। ऐसे विशाल रंगमंच पर एक ही समय दो विभिन्न भागों में दो राम और दो सीता का प्रदर्शन तृतीय अङ्क में है।

रंगमंच पर तृतीय अङ्क में ऐसी व्यवस्था की गई थी कि कृत्रिम रथ आकाश में ऊँचाई पर विराजमान हो। इस प्रकार दो रंगमंच हो जाते हैं। रथीय रंगमंच के लोग भौमिक रङ्गमंच के लोगों को देख तो सकते हैं, पर उनकी बातें नहीं सुन पाते।

रङ्गमंच पर युद्ध और मरण दोनों अभारतीय हैं। इस नाटक में जटायु रावण से रङ्गमंच पर युद्ध करता है और मारा जाता है।

शैली

शक्तिभद्र की शैली नाट्योचित वैदर्भी रीति मण्डित है। अलङ्कारों के प्रयोग से भाषा हृदयस्पर्शी है। यथा, रावण राम के विषय में कहता है—

हहह शमयांचक्रे रामः शरैः किल ताटका।
मसिफलमयं प्राप्तस्त्वां प्रत्यहो बलिनो नराः॥ ३.२२

इसमें काकु के द्वारा व्याजस्तुति से व्यंग्य है कि कुकर्मी है राम। शक्तिभद्र की गद्य और पद्य रचना में उनकी कवि-प्रतिभा का स्पृहणीय विलास प्रतिविम्बित होता है। कवि की भाषा अलङ्कारों के घोर जाल से सर्वथा विमुक्त है।

शक्तिभद्र को नाट्यकला की दृष्टि से बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता। इस नाटक में अनेक प्रसंग व्यर्थ ही भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए सप्तम अङ्क के पूर्व

का विष्कम्भक लीजिये। इसमें विद्याधर-दम्पती की बातचीत हो रही है, किन्तु पूरी बातचीत में कहीं-कहीं कुछ भी सूच्य नहीं है। अङ्क भाग में सूच्यांश देना वैसी ही त्रुटि है। पूरा का पूरा षष्ठ अङ्क सूच्य है, जिसमें हनुमान् सीता को बताते हैं कि उनके अपहरण के पश्चात् क्या-क्या घटनायें हुईं। सप्तम अङ्क में लक्ष्मण सीता की अग्नि-परीक्षा का वर्णन राम को सुनाते हैं। यह अङ्क रूप में न होकर अर्थोपक्षेपकों द्वारा सूचित होना चाहिए था। अर्थप्रकृति, अवस्था और सन्धियों का संघटन अव्यवस्थित है।

कवि को कुछ अपनी बातें कहनी हैं, जो सम्भवतः कोई अन्य कवि न कहेगा। उसकी लोकोपकारिणी बुद्धि उससे कहलवाती है—

> क्षिप्तान्यद्रिशतान्यपास्यति भुजेनाथः कपीनां कृते
> ग्रस्तानुद्धरति प्रसह्य वदनाद्दक्षेश्वरान् रक्षसाम्।
> गोलांगूलकुलस्य निर्झरजलैर्मुष्णाति युद्धश्रमं
> ग्राहेभ्यो विभजत्यपां निलयने पौलस्त्यबन्धून् हतान्॥ ७.१३

ऐसे स्थलों पर शक्तिभद्र का सोत्साह उद्गार विशेष सफल है।

कहते हैं कि भास की छाया शक्तिभद्र पर है। नाटक पढ़ने से यह सत्य प्रतीत होता है। समुदाचार की प्रतिष्ठा इस नाटक में भास जैसी ही प्रवर्तित है। शक्तिभद्र की सीता के राम के समक्ष आते समय वैसे ही 'उत्सरत-उत्सरत आर्याः' सुनाई पड़ता है, जैसा स्वप्नवासवदत्त के प्रथम अङ्क में पद्मावती के आश्रम नें आते समय।

अध्याय ५

अनर्घराघव

सात अङ्कों के विशाल नाटक अनर्घराघव के रचयिता मुरारि हैं। नाटक की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि मुरारि के पिता वर्धमान थे। अनर्घराघव पर भवभूति के महावीरचरित और उत्तररामचरित की गहरी छाप होने से मुरारि को भवभूति के पश्चात् रखा गया है। भवभूति ८०० ई० के लगभग हुए थे। रत्नाकर ने हरविजय में नाटककार मुरारि का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ का प्रणयन नवीं शती के उत्तरार्ध में हुआ था। इन उल्लेखों के आधार पर मुरारि को ८७५ ई० के लगभग रखना समीचीन है। वास्तव में मुरारि का अनर्घराघव रामसम्बन्धी नाट्यकथाविकास की दृष्टि से भवभूति के महावीरचरित और राजशेखर के बालरामायण के मध्य में पड़ता है। राजशेखर ने ९०० ई० के लगभग अपने नाटक लिखे।[1] मुरारि को बालवाल्मीकि की उपाधि दी गई थी।

मुरारि ने इस नाटक में माहिष्मती की चर्चा इन शब्दों में की है—

(१) इयं च करचुलिनरेन्द्र-साधारणाग्रमहिषी माहिष्मती नाम चेदिमण्डल-मुण्डमाला नगरी।

(२) यः कश्चिद्विक्रमोऽयं स खलु करचुलिक्षत्रसाधारणत्वाद्-
अन्तर्मन्दायमानो विजितभृगुपतिं त्वामजित्वा दुनोति॥ ५.५०

इन उल्लेखों से करचुरि राजाओं की जो विशेषता कवि की दृष्टि से प्रतीत होती है, उससे उसका कलचुरि-राजाश्रित होना प्रतीत होता है।

अनर्घराघव का अभिनय पुरुषोत्तम की यात्रा में उपस्थित सभासदों के प्रीत्यर्थ किया गया था।

कथानक

वसिष्ठ ने वामदेव के द्वारा दशरथ को समाचार भेजा कि आपके द्वार से याचक विमुख न जाय—यही रघुवंश की मर्यादा है। तभी याचक बन कर विश्वामित्र आ गये। उन्होंने कहा कि राम मेरे यज्ञ की रक्षा के लिए कुछ दिन हमारे आश्रम में

१. डा० डे ने History of Sanskrit Literature में मुरारि को राजशेखर के पहले माना है। पृष्ठ ४५० पर वे मुरारि को नवीं के अन्त या १० वीं शती के आरम्भ में रखते हैं। पृष्ठ ४४९ पर वे राजशेखर को नवीं के अन्तिम चरण और १० वीं के प्रथम चरण में रखते हैं। पृष्ठ ४५५। इस प्रकार उनके कालनिर्णय में प्रत्यक्ष विरोध है।

का रहस्योद्घाटन किया कि कैकेयी को कीर्तिहीन करने के लिए यह कूटपत्र किसी ने लिखवा कर दशरथ को छला है। इसमें कैकेयी का हाथ नहीं है। उन्होंने राम से प्रार्थना की कि आप राज्यशासन ग्रहण करें, पर राम ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। फिर तो भरत नन्दीग्राम में राम की पादुका को अधिष्ठित करके प्रजाभ्युदयक कार्य करने लगे।

चित्रकूट में विराध, खर और दूषण ने राम से युद्ध किया। विराध मारा गया। वहाँ से राम अगस्त्याश्रम की ओर चल पड़े। धाराधर नामक काक को सीता के स्तन में चोंच मारने के कारण राम के बाण से काना बनना पड़ा। वहाँ से राम पंचवटी जा पहुँचे, जहाँ एक दिन कामुकी शूर्पणखा पहुँची। उसे राम का विश्वासपात्र बनकर उन्हें विष देने की योजना कार्यान्वित करनी थी। लक्ष्मण ने उसकी नाक, कान और ओठ काट लिये। खर शूर्पणखा की ओर से लड़ने आया और राम के द्वारा मारा गया।

स्वर्णमृग मारीच के पीछे राम गये, उनके पीछे लक्ष्मण गये। भिक्षुवेष में रावण राम की पर्णशाला में घुसा और सीता को रथ पर लेकर चलता बना। जटायु उससे सीता को बचाने के लिये लड़ पड़ा।

सीता को जब रावण आकाश मार्ग से ले जा रहा था, उस समय उछलकर हनुमान् ने सीता का उत्तरीय ले लिया था। उसे गुह ने राम को दिया। गुह सुग्रीव का अभिनन्दन करने के लिए गया था। तब सुग्रीव ने उसे उत्तरीय दिया था कि राम को दे देना। राम ने गुह से कहा कि सुग्रीव हमारे सनाभि हैं। उनका भी जन्म सूर्य से हुआ है। मैं हनुमान् और सुग्रीव को देखना चाहता हूँ। मुझे उनके आवास—ऋष्यमूक पर्वत का मार्ग बताओ। यह सब जाम्बवान् की योजना के अनुरूप हो रहा था। गुह के बताये मार्ग से राम सुग्रीव से मिलने चले गये।[1] उधर से वाली निकला। उसे रावण ने राम के विषय में सन्देश दिया था—

> प्रक्लृप्तकान्तारकुमारभक्तिर्दौर्भागिनेयो जनकेन मुक्तः।
> मनुष्य सामन्तसुतो निषङ्गी सदानुजस्तिष्ठति दण्डकायाम्॥ ५.३७

तौ चास्माकं तत्र विहारिषु निशाचरेषु पाटच्चरीं वृत्तिमातिष्ठमानौ भवद्भिः प्रतिकर्तव्यः।

वाली के पूछने पर लक्ष्मण ने बताया कि हम राम-लक्ष्मण हैं। राम और वाली का शिष्टाचारात्मक सम्भाषण कुछ देर तक हुआ। फिर वाली ने कहा—राम, मैं तो आपका पराक्रम देखना चाहता हूँ। राम ने कहा—मेरा धनुष तैयार है। आप शस्त्र ग्रहण करें। वालि ने कहा कि हमारे अस्त्र हैं—करतल, मुष्टि और नख। राम और

---

१. मुरारी के अनुसार यह कार्यस्थली विन्ध्यपर्वत पर थी।

पुरशबरपुरन्ध्रीबन्धवो विन्ध्यलेखाः। ५.२७

उस युग में विन्ध्य का विस्तार सातिशय था।

वाली के लड़ने के अवसर पर सुग्रीव और हनुमान् भी वहाँ आ पहुँचे। वाली मारा गया। सुग्रीव का अभिषेक हुआ। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई।

लङ्का जली, अक्ष मारा गया, विभीषण का लंका से निर्वासन हुआ। समुद्र के उत्तर तीर पर राम सेना सहित पड़े हैं, विभीषण का अभिषेक हो चुका है। माल्यवान् को योजना सुझाई गई कि वैरी पक्ष में फूट डालने के लिए अङ्गद से कहा जाय कि तुम्हारे पिता को सुग्रीव ने मरवा डाला। सुग्रीव को मार कर रावण के द्वारा तुमको राजा बनाया जायेगा। तब वह सुग्रीव से अलग हो जायेगा। माल्यवान् ने कहा कि यह सम्भव न हो सकेगा।

प्रहस्त आदि मारे गये। लंका को राम की सेना ने घेर लिया। नरान्तक को अंगद ने मारा। कुम्भकर्ण को जगाया गया। इन्द्रजित् के साथ वह राम की सेना से लड़ने लगा। कुम्भकर्ण और मेघनाद मारे गये। अन्त में रावण राम से लड़ते-लड़ते मारा गया।

सीता ने अग्निपरीक्षा दी। राम लंका से अयोध्या के लिए पुष्पकविमान पर चल पड़े। मार्ग में युद्धभूमि, सागर, महासेतु, कैलास पर्वत, सुमेरु पर्वत, चन्द्रलोकोपकण्ठ, मरुभूमि, सिंहलद्वीप, मलयाचल, पंचवटी प्रस्रवणगिरि, जनस्थान, गोदावरी, माल्यवान् पर्वत, दण्डक वन, कुण्डिन नगर, भीमेश्वर महादेव, काञ्चीनगर, अवन्तिकादेश, उज्जयिनी राजधानी, माहिष्मती, यमुना, गङ्गा, वाराणसी, मिथिला, चम्पापुरी प्रयाग, सरयू और अयोध्या के ऊपर से उड़कर राम का विमान राजधानी में उतरता है।[1] सभी अभिनन्दन-पूर्वक मिलते हैं। राम सिंहासन पर बैठते हैं। पुष्पक विमान उसके वास्तविक स्वामी कुबेर के पास चला गया।

अन्त में कवि ने राम के मुख से सच्चे आलोचक के लक्षण का विधान किया है—

> न शब्दब्रह्मोत्थं परिमलमनाघ्राय च जनः।
> कवीनां गम्भीरे वचसि गुणदोषौ रचयतु॥ ७.१५१

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे विशाल नाटक का भी उस युग में सम्मान था। लोगों को पूरा अवकाश था कि रामचरित के बृहत्तम रूप का अभिनय देखें। यह कोई अपनी कोटि का बड़ा नाटक अकेला ही नहीं है। इसकी लोकप्रियता देखकर राजशेखर ने मुरारि के कुछ ही वर्ष पश्चात् इससे भी बड़ा नाटक बालचरित लिखा। हनुमन्नाटक भी इसी युग का है। मुरारि की लोकप्रियता नीचे लिखे उनके विषय में प्राचीन युग के आलोचकों के उद्गार से प्रमाणित होती है—

---

१. यह पर्यटन मार्ग कुछ टेढ़ामेढा और मनमाना है। उस युग में इस प्रकार के वर्णनों की लोकप्रियता थी, जैसा शक्तिभद्र ने आश्चर्यचूडामणि में लिखा है—

श्रोतुर्विस्मयनीयवस्तुविषयाः शैलाटवीसागराः॥ २.१

अर्थात् लोग पर्वत, वन और सागर के विषय में उत्कण्ठापूर्वक सुनते हैं।

वातों के साथ ही उनको वर्णनों से निर्भर करने में वे नहीं चूकते। द्वितीय अङ्क के पहले विष्कम्भक में प्रभातप्राया रजनी और सूर्योदय का वर्णन पहले छः पद्यों में कर लेने पर शुनःशेप को पशुमेढ़ू से भेंट हो पाती है। आगे चलकर इनकी बातचीत में फिर तीन पद्य प्रभात वर्णन के लिए दिये गये हैं। इस विष्कम्भक में अहल्योद्धार की कथा नितरां व्यर्थ है। नाटक में निष्प्रयोजन बातें तो अर्थोपक्षेपकों में भी नहीं देना चाहिए और वर्णनों का स्थान तो उनमें होना ही नहीं चाहिए। विष्कम्भक अतिदीर्घ भी हैं। पाँचवें अङ्क के पहिले का विष्कम्भक इस अङ्क का लगभग आधा है। यह सर्वथा परिहार्य है। षष्ठ अङ्क के पहले के विष्कम्भक में २२ पद्य हैं और यह षष्ठ अंक के आधे से अधिक है।

कतिपय पात्र रङ्गमञ्च पर नहीं आते, किन्तु नेपथ्य से बोलते हैं। चतुर्थ अङ्क में दशरथ और जनक ऐसे पात्र हैं, जो नेपथ्य से बोलकर परशुराम को राम से कलह न करने के लिए अपनी बातें कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि थोड़ी देर के लिए पात्र को रङ्गमञ्च पर लाना कवि को अभिप्रेत नहीं था, फिर भी रङ्गमञ्च पर वाग्धारा वैचित्र्य का सर्जन कवि को अभीष्ट था, जो चूलिका द्वारा सम्भव हुआ है। इस नाटक में चूलिकाओं की भरमार है। इनमें अर्थोपक्षेपकत्व गुणतः अविद्यमान है।[1] मुरारि की अगणित चूलिकायें अपना नाम इस दृष्टि से सार्थक नहीं करती कि उनमें किसी आवश्यक घटना की सूचना नहीं दी गई है। चूलिका को इतिवृत्तात्मक होना चाहिए।

पाँचवें अङ्क के विष्कम्भक में नेपथ्य के एक ओर से रावण बोलता है और दूसरी ओर से लक्ष्मण उत्तर देता है। रङ्गमञ्च पर केवल जाम्बवान् है। यह चूलिका-परम्परा सर्वथा अनावश्यक है। ऐसा लगता है कि मुरारि का चूलिका-प्रणय सविशेष था।

नेतृपरिशीलन

मुरारि ने लक्ष्मण के चरित्र में कुछ परिवर्तन किये हैं। वे परिहासप्रिय बताये गये हैं। राम से उनका सीता को लेकर परिहास चलता है।

चरित्र-चित्रण के लिए मुरारि किसी व्यक्ति या उसके कुल की ऐतिहासिक उपलब्धियों की चर्चा प्रायशः कर देते हैं। यथा परशुराम का चरित्रचित्रण है—

> जेतारं दशकन्धरस्य रभसाद्दोःश्रेणिनिःश्रेणिका-
> तुल्यारूढसमस्तलोकविजयश्रीपूर्यमाणो रसम्।
> यः संख्ये निजघान हैहयपतिं शत्रोर्मुखं दृष्टवान्
> यः पृष्ठं ददतोऽपि षण्मुखजये सोऽयं कृती भार्गवः॥ ४.२६

परशुराम का चित्रण करने में मुरारि औचित्य की सीमा लांघ गये हैं। उनके मुख

---

१. अर्थोपक्षेपक का वृत्त नीरस और अनुचित होना चाहिए। मुरारि की चूलिकाओं के वृत्त सर्वत्र न तो नीरस हैं और न अनुचित।

से शतानन्द के विषय में कहलवाना कि तुम ब्रान्धकिनेय और गौतमगोत्रपांसन हो– अनुचित है।

शत्रु भी सच्चरितकी प्रशंसा करें, तब तो बड़ी बात है। राम के चरित्र की प्रशंसा माल्यवान् करता है—

> अभेदेनोपास्ते कुमुदमुदरे वा स्थितवतो
> विपक्षादम्भोजादुपगतवतो वा मधुलिहः।
> अपर्याप्तः कोऽपि स्वपरपरिचर्यापरिचय-
> प्रबन्धः साधूनामयमनभिसन्धानमधुरः॥ ६.६

रस

कवि शृङ्गार-प्रेमी है। वह स्वरचित शृङ्गार-सागर में विश्वामित्र जैसे ऋषि को अवगाहन कराते हुए उनसे इन्द्र के विषय में कहलवाता है—

> पौलोमीकुचपत्रभङ्गरचनाचातुर्यमध्यापितः। २.६५

शृङ्गार की नौका पर बैठने पर कवि का मानस औचित्याधायक सन्तुलन खो बैठता है। कवि मुरारि का ब्रह्मचारी राम भी 'पौलोमीकुचकुम्भकुंकुमरजःस्वाजन्य-जन्मोद्धतचन्द्रिका' की कल्पना में विलीन है।[1]

सठियाया हुआ बुड्ढा कंचुकी एक ओर तो अपने बुढ़ापे का रोना रोता है—

> नाट्येन केन नटयिष्यति दीर्घमायुः। ३.१

और दूसरी ओर युवतियों के सम्बन्ध में विचारपूर्वक कहता है—

> तदात्व-प्रोन्मीलन्म्रदिमरमणीयात्कठिनतां
> निचित्य प्रत्यङ्गादिव तरुणभावेन घटितौ।
> स्तनौ संबिभ्राणाः क्षणविनयवैयात्यमसृण-
> स्मरोन्मेषाः केषामुपरि न रसानां युवतयः॥ ३.७

चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में लंकापुरी का प्रातःकालीन वर्णन अनपेक्षित है। उसे शृङ्गारित करना कवि की इस रस के प्रति विशेष अभिरुचि प्रकट करती है।

भवभूति ने उत्तररामचरित में करुण की जो अजस्र धारा प्रवाहित की है, उसमें मुरारि स्वयं मज्जित होकर अवसर न होने पर भी माल्यवान् पर्वत पर सीताहरण के पश्चात् कहते हैं—

> स्फुरति जडता वाष्पायेते दृशौ गलति स्मृति-
> र्मयि रसतया शोको भावश्चिरेण विपच्यते॥ ५.२२

वीर और शृङ्गार का एकाश्रय था वह रावण—

> श्रुत्वा दाशरथी सुवेलकटके साटोपमर्धे धनु-
> ष्टङ्कारैः परिपूरयन्ति ककुभः प्रोञ्छन्ति कौक्षेयकान्।

---

१. मौञ्ज्यादिव्यंजनः शान्तो वीरोपकरणो रसः। ३.२४

अभ्यस्यन्ति तथैव चित्रफलके लङ्कापतेस्तत्पुन-
र्वैदेहीकुचपत्रवल्लिरचनाचातुर्यमर्धे करा:[1] ॥ ६.१७

वर्णन

मुरारी को वर्णनों का अतिशय चाव है। नाटक के लिए वर्णन-रुचि की अधिकता स्पृहणीय नहीं होती। द्वितीय अङ्क में आरम्भ में राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के आश्रय का लम्बा वर्णन करते हैं। कहीं-कहीं इन वर्णनों में वैधानिक विवरण काव्यतत्त्व से विरहित होने के कारण धर्मशास्त्र-सगन्ध लगते हैं। यथा,

पश्यैते पशुबन्धवेदिवलयैरौदुम्बरीदन्तुरै-
र्नित्यव्यंजितगृह्यतन्त्रविधयो रम्या गृहस्थाश्रमा: ॥ २.१७

अपि च

तत्तादृक्तृणपूलकोपनयनक्लेशाच्चिरद्वेपिभि-
र्मेध्या वत्सतरी विहस्य वटुभिः सोल्लुण्ठमालभ्यते ॥ २.१६

राम से ऐसे वर्णन कराना उनकी मर्यादा के हीन स्तर की बात है।

इन बीस पद्यों के वर्णन में कार्यव्यापार का सर्वथा अभाव है। यह किसी प्रकार आगे के कार्यों की भूमिका भी नहीं बनाता। आगे चलकर संक्षेप में ताडकावध की चर्चा करके कवि ने राम से रात्रि, चन्द्रमा, चन्द्रिका, चकोर आदि का विस्तृत वर्णन कराया है। मुरारि को चन्द्रमा का वर्णन अतिशय प्रिय था। उनके सप्तम अङ्क में चन्द्र-वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि वे नैषधकार हर्ष के चन्द्र-वर्णन के आदर्श-विधायक हैं।[2]

पञ्चम अङ्क में विन्ध्यगिरि की नदियों का मानवीकरण रुचिकर है। यथा,

विन्ध्यगिरिराजकन्यान्तःपुरमेतास्तरङ्गमालिन्यः।
वेतस्वतीभिरद्भिस्तौर्यत्रिकगुणनिकां दधते ॥ ५.१८

मुरारि जब सेतुबन्ध का वर्णन करते हैं तो लगता है कि प्रवरसेन लिख रहा है और जब चन्द्रोदय का वर्णन करते हैं तो साक्षात् श्रीहर्ष की प्रतिभा से मण्डित प्रतीत होते हैं।

शैली

मुरारिं की शैली पाण्डित्यपूर्ण और प्रतिभाशालिनी है। उनकी व्यञ्जना कल्पना का पक्ष लेकर सम्भृत है। यथा,

इक्ष्वाकूणां लिखितपठिता स्ववधूगण्डपीठ-
क्रीडापत्रप्रकरमकरीपाशुपाल्यं हि वृत्तिः ॥ १.३१

---

१. परवर्ती युग में इस प्रकार की संघटना चित्रात्मक छायानाटक का प्रेरणा-स्रोत बनी। चित्रात्मक छायानाटक का परिचय 'सागरिका' १०.४ में है।

२. अनर्घराघव में ६० वें से ८३ वें पद्य तक चन्द्र का महाकाव्योचित वर्णन है।

कवि की तर्कसंगत कल्पनायें कहीं-कहीं तो अविस्मरणीय ही हैं। यथा,

विद्याश्चतुर्दश चतुर्षु निजाननेषु
संवाद-दुःस्थितवतीरवलोक्य वेधाः।
ताभ्योऽपराणि नियतं दश ते मुखानि
स्वस्य प्रणप्तुरकरोत् स कथं जडोऽस्ति ॥ ६.४

उपमाओं का सम्भार मुरारि त्रिलोकी से संकलित करते हैं। यथा,

निर्मुक्तशेषधवलैरचलेन्द्रमन्थसंक्षुब्धदुग्धमयसागरगर्भगौरैः।
राजन्निदं बहुलपक्षदलन्मृगाङ्कच्छेदोज्ज्वलैस्तव यशोभिरशोभि विश्वम् ॥
इसमें पाताल से शेषनाग, भूलोक से क्षीरसागर और भुवर्लोक से चन्द्र उपमान अवचित हैं।

मुरारि की भाषा सूक्तियों और लोकोक्तियों से स्पष्ट, चित्रमयी और प्रभविष्णु है। इनके इस प्रकार के कुछ प्रयोग हैं—

१. तदेव मे कलोष्टवधः स्यात्।
२. सन्तो मनसिकृत्यैव प्रवृत्ताः कृत्यवस्तुनि।
कस्य प्रतिशृणोति स्म कमलेभ्यः श्रियं रविः ॥ ५.३५
३. अपर्याप्तः कोऽपि स्वपरपरिचर्यापरिचय-
प्रबन्धः साधूनामयमनभिसन्धानमधुरः ॥ ६.६
४. गुणो हि विजिगीषूणामुदात्तता।
५. भुजयोर्बलादपि बलं दुर्गस्य दुर्निग्रहम्। ६.१२
६. अनर्थशंकीनि बन्धुहृदयानि भवन्ति।
७. विजगीषोरदीर्घसूत्रता हि कार्यसिद्धेरवश्यम्भावः।
८. यच्छीलः स्वामी तच्छीलास्तस्य प्रकृतयः।

रूपकाश्रित व्यञ्जना का रस लें—

अरिषड्वर्ग एवायमस्यास्तात पदानि षट्।
तेषामेकमपिच्छिन्दन् खञ्जय भ्रमरीं श्रियम् ॥ ६.६

—→o←—

अध्याय ६

राजशेखर

यायावरवंशी महाकवि राजशेखर ने अपने जन्म से महाराष्ट्र को समलंकृत किया था। उनके पूर्वज अकालजलद तो महाराष्ट्र के चूडामणि थे। अकालजलद अपने युग के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में से थे। राजशेखर के पिता किसी राजा के राजमन्त्री थे। राजशेखर को वाणीविलास प्राप्त था। उन्होंने सरस्वती की उपासना करके उसका प्रसाद प्राप्त किया था। कवि को आत्माभिमान पर्याप्त मात्रा में था। वे अपने को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति की परम्परा की कड़ी मानते थे।[1]

राजशेखर को अपने जीवनकाल में सम्मान प्राप्त हुआ था। वे कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल के गुरु तो थे ही, उस राजा के सभ्य कृष्णशंकरवर्मा ने राजशेखर की प्रशस्ति की थी—

पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः।
भोक्तुं स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद् भ्रातः शृणु राजशेखरकवेः सूक्तीः सुधास्यन्दिनीः॥ बाल० १.१७

राजशेखर का व्यक्तित्व आदर्श था। उन्होंने स्वयं अपना परिचय दिया है—

आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधि-
स्त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तः कवीनां गुरुः॥ बाल० १.१८

प्राचीन विद्वानों और काव्य-मर्मज्ञों ने राजशेखर की रचनाओं का सम्मान किया है। वक्रोक्तिजीवित, सुवृत्ततिलक और औचित्यविचारचर्चा, यशस्तिलकचम्पू, दशरूपक-अवलोक, सरस्वतीकण्ठाभरण, ध्वन्यालोकलोचन, काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, शार्ङ्गधर-पद्धति, सूक्तिमुक्तावली आदि ग्रन्थों में राजशेखर के सन्दर्भ उल्लिखित हैं।

राजशेखर अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं। उनके लिखे हुए चार रूपक बालरामायण, बालभारत, विद्धशालभंजिका और कर्पूरमञ्जरी मिलते हैं।[2] इनमें से अन्तिम सट्टक

---

१. राजशेखर ने अपने विषय में कहा है—

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥ बाल० १.१६

२. बालरामायण और बालभारत में 'बाल' संक्षिप्त या सार अर्थ में प्रयुक्त है। बालरामायण के सातवें अंक में बालनारायण शब्द राम के लिए प्रयुक्त है। इससे प्रतीत होता है कि बाल का अभिप्राय कवि की दृष्टि में सार या सत्त्व है।

प्राकृत भाषा में है। बालरामायण महानाटक है। सीता की प्रतिकृति का अभिनय होने से यह छायानाटक है।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त राजशेखर की सुप्रसिद्ध काव्यमीमांसा नामक अपनी कोटि का अद्वितीय ग्रन्थ है। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने स्वरचित भुवनकोश का उल्लेख किया है। इसमें भूगोल-विषयक गवेषणायें हैं। राजशेखर ने हरविलास नामक एक काव्य का प्रणयन किया था, जिसकी चर्चा हेमचन्द्र और उज्ज्वलदत्त ने की है। राजशेखर के सुक्तक विशेष लोकप्रिय थे, जैसा कुन्तक के नीचे लिखे वक्तव्य से प्रमाणित होता है—

तथैव च विचित्रत्वविजृम्भितं······भवभूतिराजशेखरविरचितेषु बन्धसौन्दर्यसुभगेषु मुक्तकेषु परिदृश्यते।

राजशेखर का रचना-काल प्रायः निर्णीत-सा है। उन्होंने कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजाओं के आश्रय में अपनी काव्यप्रतिभा का विलास सम्पन्न किया था। वे महेन्द्रपाल नामक राजा के गुरु थे। महेन्द्रपाल ८८५ ई० से ९१० ई० तक शासक था। सम्भव है कि महेन्द्रपाल जब राजकुमार था, तभी वह राजशेखर का शिष्य बना हो।[1] महीपालदेव के समक्ष राजशेखर के बालभारत का अभिनय हुआ था। विद्धशालभञ्जिका के अभिनय के लिए उन्होंने युवराज की परिषद् की आज्ञा का उल्लेख किया है। यह युवराज त्रिपुरा के कलचुरिवंशीय युवराज प्रथम केयूरवर्ष माना जाता है। इनमें से महीपाल ९१२ ई० ९४४ ई० तक राजा रहा। इस प्रकार यह निश्चित प्रतीत होता है कि राजशेखर ने नवीं शती के अन्तिम चरण और दसवीं शती के पूर्वभाग में अपनी रचनायें प्रणीत कीं।

बालरामायण

कथानक

सीता के स्वयंवर में पुष्पक पर चढ़कर रावण प्रहस्त के साथ जनकपुर आता है। प्रहस्त ने जनक से कहा—

> सोऽयं स्वयंग्रहण-दुर्ललितो दशास्य-
> स्त्वां याचते दुहितरं पणपूर्वमेव॥ १.३४

दशरथ सीता रावण को न देकर राम को देना चाहते थे। उन्हें यह भय था कि रावण शिवधनुष उठा भी लेगा। शतानन्द ने कहा—यह सम्भव नहीं। वे दोनों रावण का स्वागत करने के लिए गये। शतानन्द ने रावण से पूछा कि आपका स्वागत श्रोत्रिय

---

१. बालभारत में राजशेखर ने लिखा है—

देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः। १.११

या दिव्य अतिथि के रूप में किया जाय ? रावण ने कहा कि मेरा स्वागत तो यही है कि मैथिलीक्रयधन वह धनुष लाया जाय। प्रहस्त ने कहा कि साथ ही सीता भी लाई जाय। शतानन्द ने कहा कि धनुष वह है। तभी सीता आ गई। सीता को देखकर रावण क्षुब्ध हो गया। उसने क्रोधपूर्वक धनुष लिया। इधर जनक ने शिव की स्तुति की कि भगवन् आप धनुष में विराजें, जिससे यह उसे प्रत्यञ्चित न कर सके।[1] सीता ने कहा कि हे पृथिवि, यदि रावण को धनुष चढ़ाना ही हो तो पहले मुझे अपने गर्भ में स्थान दे दो।

रावण ने धनुष फेंक दिया। उसने सोचा कि रावण भी एक साधारण मनुष्य की भाँति प्रतियोगिता में भाग ले—यह ठीक नहीं है। धनुष का अपमान होता देखकर जनक ने स्वयं धनुष-बाण लेकर रावण को दण्ड देना चाहा। शुनःशेप ने कहा कि आप संन्यासी हैं। धनुर्बाण का उपयोग नहीं करना चाहिए। जनक ने शापोदक लिया। शतानन्द ने उन्हें शाप देने से भी रोक दिया। रावण ने कहा कि शिवधनुष को तोड़कर जो कोई सीता का वरण करेगा, उसे ही अपने चन्द्रहास से काट दूँगा।

इधर परशुराम ने सुना कि रावण ने शिवधनुष का अनादर किया है। वे शिव से परशु माँग कर रावण से लड़ने के लिए मिथिला पहुँचे। समझाने-बुझाने से युद्ध तो नहीं हुआ, किन्तु आत्मविकत्थन और एक-दूसरे की भरपूर निन्दा हुई।

विश्वामित्र राम की सहायता से यज्ञ सम्पन्न कर रहे थे। उसमें अग्नि अपने आप प्रकट हुआ। प्रारम्भ में ही सुन्द-सुन्दरी ताडका वहाँ विघ्न डालने आ पहुँची। विश्वामित्र के कहने पर भी स्त्री होने के कारण राम ताडकावध नहीं करना चाहते थे। फिर उन्होंने आदेश दिया 'तात ताडय तारकम्'। राम ने उसे मार डाला। वहाँ से विश्वामित्र सीता-स्वयंवर के लिए राम को लेकर मिथिला की ओर चले। मार्ग में ताडका के पुत्र मारीच और सुबाहु राम से आ भिड़े। सुबाहु राम के बाण से मारा गया और वायव्यास्त्र से मारीच उड़ा दिया गया तो वह समुद्रतट पर जा गिरा। इस अवसर पर रावण स्वकुल-रक्षा के लिए भी राम से लड़ने न आ सका, क्योंकि वह सीता के वियोग में सन्तप्त था।

भरत-प्रणीत सीता-स्वयंवर-विषयक नाटक देवसभा में खेला गया। रावण ने भरत को आदेश दिया कि मैं भी वह नाटक देखना चाहता हूँ। वह नाटक फिर लंका में खेला गया।

सीता-स्वयंवर में विविध देशों के राजाओं ने प्रत्येकशः शिवधनुष उठाने का प्रयास किया। अन्त में उनके विफल होने पर उन सबने साथ ही धनुष उठाने का उपक्रम किया। उन्हें भी अन्त में धनुष को नमस्कार करना पड़ा। अन्त में राम की

---

१. इस प्रकार देवताओं के धनुष में विराजने की घटना विजयपाल ने द्रौपदी-स्वयंवर में १३ वीं शती में राजशेखर से ग्रहण की है।

वारी आई। राम ने धनुष की प्रत्यञ्चा लगाई, फिर वह टूट ही गया। राम का सीता से विवाह हो गया। रावण इस प्रेक्षणक को देखकर सीता का राम से विवाह होना जानकर बोला[1]—

यातः पदं मम रुषां च मृषैव रामः ॥ ३.६०

दशरथ अयोध्या से मातलि के रथ पर तब मिथिला पहुँचे, जब राम का विवाह हो चुका था। तभी परशुराम आ धमके उन्होंने कहा—

तद्भग्नं यदि कार्मुकं भगवतो रामेण चूडावता
धिग्धिग्जां तदिदं नमः परशवे स्वस्त्यस्तु रुद्राय च ॥ ४.५२

उन्होंने निर्णय किया कि अब तो बाईसवीं बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करूँगा। राम और परशुराम की बातें हुईं। परशुराम अत्यन्त उद्धत थे। उनका सीमातिग क्रोधावेश देखकर जनक को क्रोध आ गया उन्होंने कहा—धनुष तो ले आना—

परिभवति मदग्रे भार्गवो रामभद्रं,
प्रहिणु तदिह बाणान् वार्धकं मां दुनोति ॥ ४.६८

दशरथ और विश्वामित्र ने कहा कि राम जैसे वीर के होते हुए आपको शस्त्र क्यों उठाना चाहिए? राम ने परशुराम से कह दिया कि आप गुरुओं का तिरस्कार करते हैं। आपको शस्त्र उठाने का क्या अधिकार है? इस पर परशुराम बहुत क्रुद्ध हुए उन्होंने राम से कहा कि तुम्हारा सिर काट कर शिव को चढ़ाता हूँ। राम ने कहा कि आपकी ऐसी बातों से मैं डरता नहीं। परशुराम ने कहा कि इस वैकुण्ठचाप को चढ़ा तो तेरी शक्ति देखूँ। लक्ष्मण ने वह धनुष ले लिया और कहा कि इसे मैं ही चढ़ाऊँगा। लक्ष्मण ने उसे चढ़ा दिया। जनक ने कहा कि शिवधनुष चढ़ानेवाले राम को सीता दी। मुरारि के चाप को चढ़ानेवाले को उर्मिला दे रहा हूँ। विश्वामित्र के सुझाव से माण्डवी और श्रुतकीर्ति भरत और शत्रुघ्न को दे दी गईं।

फिर भी परशुराम को शान्ति न मिली। उन्होंने कहा कि बड़े ही प्रगल्भ हैं ये राम-लक्ष्मण। इन्हें धनुर्युद्ध में समाप्त करता हूँ। अन्त में राम ने परशुराम को परास्त किया।

लंका में सीता के वियोग में रावण सन्तप्त था। उसके आश्वासन के लिए सीता-प्रतिकृति-यन्त्र बनाया गया। उसके मुँह में रखी सारिका प्रश्नों का उत्तर भी देती थी। बहुत देर तक उसको देखता हुआ रावण उसे वास्तविक सीता समझकर प्रसन्न

---

१. सीता-स्वयंवर नामक प्रेक्षणक तृतीयाङ्क में सन्निवेशित है, जिसमें ८० पद्य और गद्यांश है। यह रावण को सन्ध्या के पश्चात् प्रदोष वेला में दिखाया गया था। इस प्रकार का प्रेक्षणक परवर्ती युग में रविवर्मा ने प्रद्युम्नाभ्युदय में गर्भित किया है। प्रद्युम्नाभ्युदय का प्रेक्षणक रम्भाभिसार है। प्रेक्षणक गर्भाङ्क है। भरत के नाट्यशास्त्र पर अभिनवभारती की टीका के अनुसार ऐसे दृश्य नाट्यायित हैं।

रहा,[1] पर अन्त में उसका स्पर्श करने पर उसे लगा कि यह मानुषी सीता नहीं है। वह उन्मत्त होकर प्रलाप करने लगा। फिर वह मनोविनोद के लिए सर्वऋतु-मण्डित प्रमदवन में चला गया। उसके लिए शिशिरोपचार सामग्री लाई गई। देवी और देवता उसका शीतोपचार कर रहे हैं। तभी नक्टी शूर्पणखा आ गई। वह अन्यत्र बताती है कि अयोध्या पहुँच कर राम-लक्ष्मण से अभिसार की योजना कार्यान्वित करती हुई मेरी नाक कटी। पर उसने रावण से मिथ्या बात कही कि सुन्दरी सीता का तुम्हारे लिए अपहरण करती हुई मुझे नाक से हाथ धोना पड़ा।[2]

रावण अपनी विप्रलम्भावस्था में अयोध्या आ पहुँचा। वहाँ दूतों ने उसे झूठा समाचार सीता की ओर से दे दिया कि—

स्वयं मया प्रेमपरीक्षणाय प्रवर्तितः स्वाकृतियन्त्रयोगः।
अथाहमेवागणितैरहोभिर्दशाननान्तं नियतं प्रवत्स्ये ॥ ६.३

अर्थात् मैंने तुम्हारे प्रेम की परीक्षा के लिए अपनी आकृति का यन्त्र-योग प्रवर्तित किया था। *मैं अब शीघ्र ही तुम्हारे पास प्रवास करनेवाली हूँ।* इधर अयोध्या से दशरथ कैकेयी को साथ लेकर दैत्यों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता करने के लिए प्रवास पर थे। उनको विजय मिली। इस बीच राक्षसों ने एक मायात्मक लीला रची। प्रति-कृति द्वारा मायामय नामक राक्षस दशरथ बना, शूर्पणखा कैकेयी बनी और शूर्पणखा की दासी मन्थरा बनी। विजयी दशरथ अयोध्या आ रहे हैं—इस समाचार से सभी अयोध्यावासी समलंकृत होकर उमड़ पड़े। उस समय माया-मन्थरा ने माया-दशरथ से कहा कि आपने कैकेयी को विजय-प्रयाणपथ में जो दो वर दिये हैं, उन्हें आज वे माँग रही हैं। वे वर हैं—

वरेणैकेन लभतां रघुराज्यं सुतो मम।
चतुर्दश समा रामो वने वन्येन तिष्ठतु ॥ ६.७

माया-दशरथ यह सुनकर बिलख-बिलखकर रोने लगे। फिर तो राम को वन जाना पड़ा। लक्ष्मण और सीता साथ गये। लोगों को यह विदित हो गया कि 'काभ्यामपि कृतकैकेयीदशरथरूपधारिभ्यां छलितो रामभद्रः'।[3]

राम के वन जाने के पश्चात् दशरथ और कैकेयी इन्द्र के विमान से अयोध्या आये। उन्होंने देखा कि राम के वनवास से अयोध्या में उदासी छाई है। वामदेव ने उन्हें सूचना दी—

---

१. यह छायानाट्योचित तत्त्व है।

२. राजशेखर ने इस पांचवें अंक का नाम उन्मत्त-दशानन रखा है, जिसमें सोन्माद-रावण की चर्चा है।

३. यह दृश्य छायानाट्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। पूर्ववर्ती युग में छलितराम नाटक में एतादृश योजना अपनाई गई है।

त्वद्रूपाद् विपिनाय चीवरधरो धन्वी जटी शासनं
राम: प्राप्य गतः कुतश्चन वनं सौमित्रिसीतासखः ॥ ६.१३

दशरथ को सारा वृत्त बताया गया। वामदेव ने वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी। तद्-नुसार राम का कहना है—

मया मूर्ध्नि प्रह्वे पितुरिति धृतं शासनमिदं
स यक्षो रक्षो वा भवतु भगवान् वा रघुपतिः।
निवर्तिष्ये सोऽहं भरतकृतरक्षां निजपुरीं
समाः सम्यङ् नीत्वा वनभुवि चतस्रश्च दश च ॥ ६.१६

वामदेव ने बताया कि भरत के आग्रह करने पर राम ने अपनी पादुका आराधना के लिए नन्दिग्राम में रख दी और शत्रुघ्न को शपथ दिलाई कि पिता के न रहने पर राज्यरक्षण करो। फिर वे वन के लिए चलते बने।

सुमन्त्र राम के साथ आर्यावर्त-प्रदेश में घूमता रहा। उनके दक्षिणापथ में प्रवेश करने पर वह अयोध्या लौट आया। उसने दशरथ से राम, लक्ष्मण और सीता के दिग्भ्रमण का साङ्गोपांग वर्णन किया। इसके आगे का वर्णन जटायु के द्वारा अपने मित्र दशरथ के पास भेजे हुए रत्नशिखण्ड ने किया कि स्वर्णमृग मारीच की सहायता से रावण ने सीता का हरण किया। जटायु ने अन्य गृध्रों के साथ रावण से घोर युद्ध किया। जटायु मारा गया।

वानरों की सहायता प्राप्त करके राम ने लंका पर आक्रमण करने के लिए सेतु-बन्ध निष्पन्न किया। लंका में युद्ध होते समय एक दिन सीता को बगल में लेकर विमान पर उड़ते हुए रावण ने मायासीता का सिर काटकर पुष्पक विमान से राम के पास गिराया। नकली सिर को देखकर राम ने इसे असली समझते हुए कहा—

तरुणभुजगलीला सैव वेणी तदेव
श्रवणयुगमनङ्गन्यस्तदोलाद्वयाभ्याम्।
स्मरकुवलयबाणावीक्षणे ते च तस्या-
स्तदयमलकलक्ष्मा वक्त्रचन्द्रः स एव ॥ ७.७३

कुछ देर के पश्चात् सीता के सिर से बोलने की ध्वनि आई। तब तो लक्ष्मण ने पहचान लिया—

सूत्रधारचलद्दारुगात्रेयं यन्त्रजानकी।
कण्ठस्थशारिकालापा कृता लंकेशकेलये ॥
तच्छिरस्थैव निर्याता सा चाहं रामशारिका।
सच्चरित्ररसप्रीत्या त्वां बोधयितुमास्थिता ॥
तेन तेऽग्रेभिनीतास्याः शिरःखण्डननाटिका।
मृता सीतेति येन त्वं गृहान् प्रति निवर्तसे ॥ ७.७७–७६

राम-रावण युद्ध हुआ। राम के बाण से रावण के सिर कटने लगे। तब तो—

> रामबाणकृतः पातो न यावदवधार्यते।
> क्रियते तावदुच्छेदो मूर्ध्नो रावणमायया॥ ६.४९

अन्त में रावण मारा गया।

अन्तिम अङ्क में लङ्का और अलका इन दो पुरियों की बातचीत होती है। अलका लङ्का से कहती है कि अब तो तुम्हारे दिन अच्छे हैं। वे दोनों सीता की अग्नि में विशुद्धि का ज्ञान प्राप्त करती हैं। सीता चिता से अनसूया की बनाई माला पहनी हुई बाहर निकल आई।

फिर राम ने सीता का स्वागत किया। पुष्पक पर बैठकर रामादि मार्ग का परिचय सुनते हुए हिमालय तक आ गये। विमान हिमालय पर विचरण करते हुए कैलास जा पहुँचा। फिर मानस-सरोवर दिखाई पड़ा। फिर मेरु पर्वत पर विमान जा पहुँचा। विमान से वे चन्द्रलोक के समीप जा पहुँचे। इसके आगे तो बस ब्रह्मलोक ही था। उधर से होकर विमान सीता की इच्छानुसार सिंहलद्वीप और फिर माल्यवान् पर्वत पर आया। वहां राजशेखर को वही मोर दिखाई दिया, जो भवभूति को मिला था—

> अयं स ते चण्डि शिखण्डिपुत्रको
> गिरेस्तटात्तत्क्षणमूर्ध्वकन्धरः।
> निरीक्ष्य नौ स्नेहरसार्द्रया दृशा
> प्रियां पुरस्कृत्य करोति ताण्डवम्॥ १०.५३

लौटते समय मार्ग में अगस्त्य के आश्रम में राम विमान से उतरे। राम ने अगस्त्य का पैर पकड़ लिया। अगस्त्य ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि आप को दो पुत्र हों। लोपामुद्रा ने राम को चूम ही लिया। अभिषेक का समय निकट होने से उन्हें ऋषि-दम्पती ने शीघ्र छुट्टी दी।

राजशेखर के साथ अयोध्या पहुँचने का मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा होना स्वाभाविक है। महानाटक के अन्त में वे पाठक को पूरे भारत में बिना घुमाये छुट्टी नहीं देते। महाराष्ट्र, विदर्भ, उज्जयिनी, अन्तर्वेदी पांचाल, महोदय (गाधिपुर और कान्यकुब्ज) उनके मार्ग में हैं। महोदयपुर मन्दाकिनी-परिचित है। कान्यकुब्ज की प्रशंसा है—

> इदं द्वयं सर्वमहापवित्रं परस्परालङ्करणैकहेतुः।
> पुरं च हे जानकि कान्यकुब्जं सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला॥ १०.८६

कान्यकुब्ज से प्रयाग की ओर विमान उड़ा। वहां से विमान, वाराणसी के पास से उड़कर मिथिलानगरी की ओर सीता की जन्मभूमि देखने की इच्छा से उड़ा। वहां से विमान अयोध्या आया, जहां वसिष्ठ, भरतादि ने इनका अभिनन्दन किया। अन्त में अभिषेक से नाटक समाप्त होता है।

राजशेखर ने इस नाटक की कथा महावीरचरित के आदर्श पर रामविवाह से थोड़ा पहले से आरम्भ करके उनके रावण-विजय के पश्चात् तक प्रवर्तित की है। कथा में

रावण को विशेष महत्त्व दिया गया है। वही राम का वनवास तक कराता है। कैकेयी आदि के चरित्र का श्वेतीकरण इसमें महावीरचरित के आधार पर है। रामायण की कथा को परिवर्तन द्वारा एक नये सांचे में ढालने का जो प्रयास भास, भवभूति, शक्तिभद्र, मुरारि आदि ने किया है, वैसा ही कुछ-कुछ इसमें भी प्रतिफलित होता है।

बालरामायण अपनी प्रकरण-वक्रताओं के कारण संस्कृत का अनूठा काव्यरत्न है।

रस

राजशेखर ने बालरामायण में वीर और अद्भुत रसों की विशेष योजना की है। उनका कहना है—

वीराद्भुतप्रायरसे प्रबन्धे लोकोत्तरं कौशलमस्ति यस्य। १.२

राजशेखर का जनक संन्यासी होने पर भी रावण से लड़ने के लिए धनुर्धर हो सकता है।

नारद की विकृति हास्य के लिए है। वे कहते हैं—

तन्मम ब्रह्म परमं तत्तपः सा क्रतुक्रिया।
स स्वाध्यायः स च जपो यद्वीक्षे युद्धमुद्धतम्॥ २.८

ऋषि उद्धत युद्ध को इतना महत्त्व देता है। वे फिर कहते हैं—

अलाभे वीरयुद्धस्य नखवादनसम्भृतम्।
सापत्न्यककलिं स्त्रीणां पश्यामि च शृणोमि च॥ २.६

कहीं-कहीं राजशेखर ने भाववैषम्य एक ही पद्य के आधे-आधे में प्रस्तुत किया है। यथा,

यः स्नेहाज्जनकेन वेणिरचनां नीताः स्वयं विभ्रमान्
मैत्रेय्या परिचुम्बिताः प्रणमने या याज्ञवल्क्येन च।
ताः सीताप्यतिकान्तकुन्तलसटाः कर्तुं जटाः प्रस्तुता
पादौ मूर्ध्नि निधाय संभ्रमवशात् सौमित्रिणास्मिन् धृताः॥ ६.२२

सारे नाटक में रावण की शृङ्गारित प्रवृत्तियों और विप्रलम्भ का वातावरण प्रस्तुत किया गया है।

वर्णन

कवि अपने वर्णनों को कतिपय स्थलों पर आख्यान से समञ्जसित करते हुए प्रकृति का मानवीकरण करता है। यथा,

दिवसन्ध्यावरवध्वोर्वहति विवाहाग्निविभ्रमं भानुः।
लाजायते च साक्षाद्उत्तरलस्तारकानिकरः॥ ३.८७

अन्यत्र वासन्तिक श्री में नायिका का दर्शन कराया गया है। यथा,

लावण्यार्धं मधूकान्यनुवदति दृशावुत्पलानां सनाभी
दन्तश्रीर्मल्लिकाभिः सहचरति सुहृत्सौरभं केसरस्य।

वैदेह्याः पाटलानां सुजनयति रुचं किञ्च विम्बाधरोष्ठं
क्रीडाभिश्चित्र चैत्र त्वमसि तदिह मे वल्लभो दुर्लभश्च ॥ ५.४२

कतिपय स्थलों पर राजशेखर कालिदास का अनुहरण करते हैं। सीता के वनवास का दृश्य उन्हें शकुन्तला के वन छोड़ने की स्मृति कराता है। तभी तो—

केलीहंसो गतिमनुसरन् कारितः पंजरे यत्
पश्चाल्लग्ना प्रमदहरिणी वारिता यत् सखीभिः।
यद्वैदेह्या गृहशुकगिरो नाद्दताश्च व्रजन्त्या
तत्केनास्यां पुरि न रुदितं नोदितः साधुवादः ॥ ६.२८

सीताराम और लक्ष्मण के वन में पैदल चलने का राजशेखर जैसा मार्मिक वर्णन संस्कृत साहित्य में विरल ही है। यथा,

मुञ्चत्यग्रे किसलयचयं लक्ष्मणो, याति सीता
पादाम्भोजे विसृजदसृजी तत्र संचारयन्ती।
रामो मार्गं दिशति च ततस्तेऽखिलेनापि चाह्ना
शैलोत्संगप्रणयिनि पथि क्रोशमेकं वहन्ति ॥ ६.४७

वालरामायण में सेतुवन्ध का वर्णन प्रवरसेन के रावणवध का अनुहरण करता है। यथा,

क्षिप्तो गिरिः कच्छपपृष्ठपीठात् संघट्टवेगोच्छलितोऽनुपातः।
ग्रासीकृतोऽयं तिमिना किमन्यत् स चापि लोलेन तिमिंगलेन ॥ ७.५२

तपस्वियों का वर्णन है—

एते व्योमनि शोषयन्ति हरिणत्रासाच्चिरं चीवरे
सन्ध्याचामविधौ कमण्डलुमिमं पश्यन्ति रिक्तं कृतम्।
भिक्षन्ते च फलान्यमी करपुटीपात्रे वनानोकहान्
तेषामर्घविधौ च सन्निधिगताः पुष्यन्त्यकाण्डे लताः ॥ १०.६०

शैली

राजशेखर ने वालभारत में अपनी शैली का परिचय देते हुए कहा है—अहो, मसृणोद्धता सरस्वती यायावरस्य। इसका उदाहरण भर्तृहरि की शैली पर है—

ब्रह्मभ्यः शिवमस्तु वस्तु विततं किञ्चिद्वयं ब्रूमहे
हे सन्तः श्रृणुतावधत्त च धृतो युष्मासु सेवाञ्जलिः।
यद्वा किं विनयोक्तिभिर्मम गिरां यद्यस्ति सूक्तामृतं
माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्ञा परं दैन्यभूः ॥ १.५

दाहिने-वायें अनुप्रास-विन्यास की प्रवृत्ति कवि में कूट-कूट कर भरी है, जो निस्सीम शब्दराशि पर उसके एकाधिकार का स्पष्ट प्रमाण है। यथा,

वत्स सोदर वृकोदर परपुरंजय धनंजय, मण्डितपाण्डवकुल नकुल, द्विषद्दुःसह सहदेव, इह हि महाराजसमाजे न जाने कमवलम्बिष्यते राधावेधकीर्तिवैजयन्ती।

अनुप्रास की संगीत-संगति का उदाहरण है—

द्युतिजितकरवालः सूतवंशी प्रवालः
स्फुटितकुटजमालः स्पष्टनीलत्तमालः ।
इह हि गतमरालः केतकाली कराले
शिखरिणि मम कालः सोऽभवन्मेघकालः ॥ १०.५२

बालरामायण में कवि ने अपनी नाट्योचित शैली का निदर्शन किया है—

वाग्वैदर्भी मधुरिमगुणं स्यन्दते श्रोत्रलेह्यं
वस्तुन्यासो हरति हृदयं सूक्तिमुद्रानिवेद्यः ।
सद्यः सूते रसमनुपमप्रौढिजन्मा प्रसादः
सन्दर्भश्रीरिति कृतधियां धाम गीर्देवतायाः ॥ ३.१४

सुवर्णबन्धविद्योति कुरुत श्रवणाश्रयम् ।
सच्छायमुल्लसद्वृत्तं काव्यं मुक्तामयं बुधाः ॥ ३.१५

अर्थात् एक-एक वर्ण तक का विचार करके अच्छे नाटक को सन्दर्भित करना चाहिए।

कवि को पद्यात्मक रचना का अतिशय चाव था।[1] चतुर्थ अङ्क में महर्षि, देव, अप्सरा, विद्याधर और सिद्धों का नाममात्र पांच पद्यों में गिनाते हैं।

राजशेखर असाधारण का उपासक था। वह कल्पना द्वारा आकाश में प्रासाद खड़ा करता है। इस कर्म में सफलता मिली है। रावण का शीतोपचार है—

पादौ पीडय ताम्रपर्णि मुरले हस्तौ हृदि स्थाप्यतां
भोः कावेरि मृणालदाम वितर द्राङ्नर्मदे वीजय ।
त्वं गोदावरि देहि चन्दनरसं हे तापि तापोष्मणः
शान्त्यर्थं सृज यन्त्रवारि विरही लंकेश्वरः सीदति ॥ ५.५०

राजशेखर की भाषा पात्र और परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है। रावण नकटी शूर्पणखा से कहता है कि चन्द्रहास राम का विनाश करेगा। इस प्रकरण की भाषा है—

त्रुट्यद्दोर्दण्डखण्डोड्डमरपुरुपतत्कण्ठकोष्ठप्रकोष्ठं
स्फारास्फिक्पृष्ठपीठं हठदलितशिराकन्धराकाण्डखण्डम् ।
सस्तम्भं क्षत्रडिम्भं चटदिति विचटन्मुण्डपिण्डं प्रचण्ड-
श्चण्डीशोच्चण्डदंष्ट्रा क्रकच इव दृढं चन्द्रहासस्तृणेढु ॥ ५.७६

आरभटी वृत्ति, गौडी रीति और ओजोगुण का समन्वय इस पद्य में अपूर्व ही है।

राजशेखर ने संवाद में एक प्रयोग किया है, जिसके द्वारा तीन व्यक्ति माल्यवान्,

---

1. नाटक में पद्यों की अधिकता नहीं होनी चाहिए। इस युग के कवि इस नाट्योचित नियम को दृष्टिपथ में नहीं रखना चाहते थे।

मायामय और शूर्पणखा संवाद में भाग लेते हैं, जिनमें से मायामय प्रश्न करता है और उसका उत्तर एक वार माल्यवान् और उसके पश्चात् के पूछे प्रश्न का उत्तर शूर्पणखा अनेकशः देते चलते हैं।

राजशेखर की कुछ उक्तियाँ अमर होकर रहीं। उनमें विना कोई परिवर्तन किये ही हनुमन्नाटक में ग्रहण किया गया है। हिन्दी के महाकवि तुलसीदास जी ने भी उन्हें अनुवाद मात्र कर लिया है। एक ऐसी प्रसिद्ध उक्ति है—

सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी
गत्वा जवात् त्रिचतुराणि पदानि सीता।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥ ६.३४

राजशेखर को चुलुक शब्द विशेष प्रिय है। इसका प्रयोग पचीसों वार इनके नाटकों में मिलता है।

आलोचना

राजशेखर ने वालरामायण की आलोचना स्वयं की है—

ब्रूते यः कोऽपि दोषं महदिति सुमतिर्वालरामायणेऽस्मिन्
प्रष्टव्योऽसौ पटीयानिह भणितिगुणो विद्यते वा न वेति।

अर्थात् विशाल होने से नाट्योचित भले न हो, इसमें भणितिगुण (वचन-माधुरी) है।

संस्कृत-साहित्य में विरल ही हैं वे कवि, जो लघु गद्य की रचना में राजशेखर के समान निष्णात हैं। छोटे-छोटे वाक्य सर्वथा सुवोध, असमस्त पदावली से मण्डित और द्रुत-शैली-निवद्ध होकर मन को मोह लेते हैं।

राजशेखर शब्दों के सुप्रयोग में निष्णात हैं। वे पुष्पक का विशेषण देते हैं नभ-स्तरुपुष्प, शिव के लिए शिपिविष्ट, शिशु के लिए क्षीरकण्ठ, पुत्र के लिए गर्भरूप, कठोर वाणी के लिए हृदयकरीषंकष वचस्, जन्म से राजकुमार के लिए गर्भेश्वर, दुःख देने-वाले के लिए सर्वङ्कष, अलङ्कृत के लिए तिलकित आदि। अप्रस्तुतप्रशंसा की योजना से शैली प्रभविष्णु है। यथा,

स एप हुतवहं वर्षितुकामो मृगाङ्कमणिः ॥
यस्य वज्रमणेर्भेदे भिद्यन्ते लोहसूचयः।
करोतु तत्र किं नाम नारीनखविलेखनम् ॥ ३.६६

वालरामायण के दस अङ्कों में ७८० पद्य हैं। पद्यों की अतिशयता परवर्ती नाटकों की एक विशेषता रही है। इनके द्वारा वर्णनातिरंजन की प्रवृत्ति प्रकट होती है। कवि ने शार्दूलविक्रीडित छन्द में २०० से अधिक और स्रग्धरा में लगभग ९० पद्य लिखे हैं। इन दोनों में क्रमशः १९ और २१ अक्षर होते हैं।

राजशेखर के लिए वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि महाकवियों की रचनाओं से शब्द और अर्थ चुन लेना एक साधारण सी बात है। निःसन्देह इन सभी स्थलों पर कवि ने उनका सदुपयोग करके अपनी काव्यचन्द्रिका को अतिशय विशद बनाया है।

सूक्ति-सौरभ

जैसा राजशेखर का आत्मविनिर्णय है, वे सूक्तियों के सर्वश्रेष्ठ निर्माता हैं।[1] उनकी कुछ सूक्तियों का रसास्वादन करें—

१. सुप्रमत्तकुपितानां हि भावज्ञानं द्रष्टव्यम्।
२. प्रभुचित्तानुवर्तनं हि सेवकजनसिद्धविद्या।
३. दुराराधा लक्ष्मीरनवहितचित्तं चलयति।
४. एकोऽपि गरीयान् दोषः समग्रमपि गुणग्रामं दूषयति।
५. क नु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः। १.३६
६. न सर्वदा सर्वस्य सदृशो दशापाकः।
७. अविमृश्यकारिता हि पुंसः परं परिभवस्थानम्।
८. विकृतरूपतापि कचिन्महतेऽभ्युदयाय।
९. न विना हिमानीमचण्डो मार्तण्डः।
१०. स हि चन्द्रमसोऽनुभावो यदस्य ग्रावाणोऽपि निस्यन्दन्ते।
११. अतथाविधो न तथाविधरहस्यवेदी।
१२. अनाकलितसारा हि वीरप्रकाण्डप्रसूतिः।
१३. इदं तन्नटगर्जितं नाम
१४. प्रज्ञातत्तं हि चक्षुरक्षुद्रमतिविषयासु धिषणासु प्रतिवसति।
१५. पद्मा पद्मे निषीदतु।
१६. वह्निरेव वह्नेर्भेषजम्।
१७. डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम्। ४.६१
१८. स्त्रीणां प्रेम यदुत्तरोत्तरगुणग्रामस्पृहाचञ्चलम्। ५.२
१९. क पुनः सुधा दीधितिरातपस्यन्दी।
२०. चतुर्थीचन्द्रो दृष्ट इति।
२१. अयमपरः क्षते क्षारावसेकः।

---

१. यद्वा किं विनयोक्तिभिर्मम गिरां यद्यस्ति सूक्तामृतं
मायन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्ञा परं दैन्यभूः॥ बाल० १.१०
राजशेखर ने सूक्तियों की नाटकीय उपयोगिता का आकलन किया है—
वस्तुन्यासो हरति हृदयं सूक्तिमुद्रानिवेद्यः॥ ३.१४

२२. शशिकान्तः कथं ग्रावा भजते वह्निरत्नताम् ।
२३. दैवं शिक्षयति ।
२४. अहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ।
२५. कः शक्तिमानपि मृगाङ्कमूर्तिं शिलापट्टके पिनष्टि ।
२६. वद्धो वाससि ग्रन्थिः ।
२७. कियत्कालं जलदतिरस्करिणी मार्तण्डमण्डलमन्तरयति ।
२८. सर्वो गुणेषु रज्यते न शरीरेषु ।

ऐसा विशाल नाटक रंगमंच पर साधारणतः एक बैठक में नहीं हो सकता था। ग्रीस में बहुत पहले पूरे दिन नाटक चला करते थे। ऐसा लगता है कि भारत में भी इस प्रकार पूरे दिन या आजकल की रामलीला की भांति अनेक दिनों तक एक ही नाटक का प्रयोग चलता रहता था।

ऐसे बड़े नाटकों से स्पष्ट होता है कि ये दृश्य कम और श्रव्य अधिक हो चले थे। जिस प्रकार कोई आख्यायिका या चम्पू पढ़ने या सुनाने के लिए थीं, वैसे ही नाटक भी पढ़ने के लिए हो चले थे।[1] अन्यथा महाकाव्य शैली पर इनको आख्यान-तत्त्व से स्थान-स्थान पर विरहित करके वर्णनों से भरने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसी परिस्थिति में इनकी नाटकीयता का स्तर हीन प्रतीत होता है। रङ्गमंच पर कोरे संवाद ही संवाद सुनाये जाते हैं, कायाभिनय (Action) का प्रायशः अभाव है।

बालरामायण रसिकता के साथ ज्ञान का अक्षय्य भण्डार है। इसके पढ़ने-सुनने से तत्कालीन भूगोल और इतिहास का सरस विधि से ज्ञान कराना कवि का अभीष्ट प्रतीत होता है।

शारदातनय ने महानाटक को समग्रकोटि के नाटक में रखा है—

सर्ववृत्तिविनिष्पन्नं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
समग्रं तत्प्रतिनिधिं महानाटकमुच्यते ॥

बालरामायण को अपने युग में महती प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। कुन्तल ने सुसम्मानित कतिपय नाटकों में इसको स्थान दिया है और इसके विषय में कहा है—

ते हि प्रबन्धप्रवराः कथामार्गेण निरर्गलरसासारगर्भसन्दर्भ-सम्पदा प्रति-पदं प्रतिवाक्यं प्रतिप्रकरणं च प्रकाशमानाभिनवभङ्गी···अतिरेकमनेकश आस्वाद्यमाना अपि समुत्पादयन्ति सहृदयानाममन्दमानन्दम् ।

---

१. राजशेखर ने इसे पठनरुचिवाले पाठकों के योग्य १.१२ में बताया है—वह इसके भणितिगुण की आशंसा करता है। १.१२। अभिनेयता के विषय में राजशेखर स्वयं सन्दिग्ध हैं। बालरामायण और बालभारत की प्रस्तावना में उनकी अभिनेयता की दुष्करता की चर्चा है।

कथानक

वालभारत

द्रौपदी के विवाह के लिए स्वयंवर हो रहा है। पाण्डव-बन्धु ब्राह्मण वेश में उसमें सम्मिलित होने के लिए जा पहुँचे हैं। वे मंच पर सभी राजाओं के साथ नहीं बैठते, अपितु ब्राह्मण-मुनियों के मंच पर जा विराजते हैं। द्रौपदी आ गई। वन्दी ने स्वयंवर-समय सुनाया—

सकलभुवनरक्षास्रस्ततन्द्रा नरेन्द्राः
श‍ृणुत गिरमुदारामादराच्छ्रावयामि।
इह हि सदसि राधां यः शरव्यीकरोति
स्मरविजयपताका द्रौपदी तत्कलत्रम्॥ १.३२

विष्णु का धनुष उठाना था और राधा का वेध करना था। द्रोणाचार्य ने घोषणा कर दी कि अर्जुन को छोड़कर कोई इसमें सफलता नहीं पा सकता। कर्ण, अनेक कौरव-बन्धु और विविध देशों के राजा अपने स्वयंवर-विषयक अभिप्राय से किसी न किसी कारणवश विमुख हो चुके थे। उस समय ब्राह्मण-मंच से एक युवा उतर कर धनुष को देखने लगा। उसने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और बाण छोड़ा तो—

आकर्णाञ्चितचापमण्डलमुचा बाणेन यन्त्रोदर-
च्छिद्रोत्सङ्गविनिर्गतेन तरसा विद्धा च राधामुना॥ १.७८

प्रश्न हुआ कि अज्ञात कुलशीलवाले इस ब्राह्मण को द्रौपदी कैसे दी जाय। उस ब्राह्मण (अर्जुन) ने कहा कि प्रतिज्ञा पूरी कर लेने के पश्चात् कुलशील का प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। वह द्रौपदी को लेकर चला। उधर से शेष राजाओं ने आक्रमण कर दिया। भीम ने ताल के पेड़ को आयुध बनाकर उन्हें रोक दिया। अर्जुन बोला—

वीर्यं वचसि विप्राणां क्षत्रियाणां भुजद्वये।
इदमत्यन्तमाश्चर्यं भुजवीर्या हि यद्द्विजाः॥ १.८८

द्यूतक्रीडा का आयोजन विदुर की इच्छा के विरुद्ध हुआ, जिसमें युधिष्ठिर को हराकर पांडवों का ऐश्वर्य विलुप्त करने की योजना दुर्योधन और शकुनि ने कार्यान्वित की। युधिष्ठिर क्रमशः अपना हार, वाराङ्गनायें, हाथी, रथ राज्य, सभी भाई, पत्नी द्रौपदी आदि हार गये। अन्तिम प्रण था १२ वर्ष का वनवास। उसमें हारकर युधिष्ठिर को निर्वासित होना पड़ा।

दुःशासन द्रौपदी के केशपास पकड़कर सभा भवन में लाया। वह उसको वस्त्र-हीन करने के लिए एक-एक वस्त्र खींचकर उतारने लगा किन्तु वह माया से नये-नये वस्त्रों से परिहित होती रही।

दुर्योधन के एक भाई विकर्ण ने विभीषण का काम किया और कहा—

भोः दुःशासन कः क्रमो द्रुपदजाकेशाम्बराकर्षणे
दुर्वृत्तं क्षमते न कस्यचिदयं भ्राता विकर्णस्तव ॥ २.४३

न्यायवादी विकर्णोऽत्र भवद्भ्यो यद्यहं बहिः
तद्यूयं शतमेकोनं षट् च सम्प्रति पाण्डवाः ॥ २.४४

भीम ने प्रतिज्ञा की—जिस हाथ से दुःशासन ने यह सब किया है, उसे उखाड़कर तुम्हारी छाती पर मारूँगा और तुम्हारी छाती का रक्तपान करूँगा।

इसके पश्चात् पाण्डव वनवास के लिए चलते बने।

बालभारत में बालरामायण की भाँति रामायण की पूरी कथा होनी चाहिए। इसके पहले दो अंकों में केवल मुखसन्धि मिलती है। शेष अङ्क अभी अप्राप्त हैं।

बालभारत में राजशेखर ने अपना वृत्त कुछ विस्तार से दिया है, जिसके अनुसार महोदय में इस नाटक की रचना हुई और वहाँ के विद्वान् सामाजिकों के समक्ष इसका प्रथम अभिनय हुआ। राजा थे निर्भयनरेन्द्र। राजशेखर को महेन्द्रपाल का आश्रय मिला था, जो कभी उनका शिष्य था।

इस नाटक में व्यास और वाल्मीकि का मनोरंजक संवाद प्रस्तावना के पश्चात् है। इस संवाद में दोनों ऋषियों ने एक दूसरे के काव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। व्यास के अनुसार रामायण है—

योगीन्द्रश्छन्दसां द्रष्टा रामायणमहाकविः।
वल्मीकजन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसो कविः ॥ १.१५

यदुक्तिमुद्रासुहृदर्थवीथी कथारसो यच्चुलुकैश्चुलुक्यः।
तथामृतस्यन्दि च यद्वचांसि रामायणं तत्कवितॄन् पुनाति ॥ १.१७

वाल्मीकि ने कहा—

दन्तोलूखलिभिः शिलोञ्छिभिरिदं कन्दाशनैः फेनपैः
पर्णप्राशनिभिर्मिताम्बुकवलैः काले च पक्वाशिभिः।
नीवारप्रसृतिंपचैश्च मुनिभिर्यद्वा त्रयीध्यायिभिः
सेव्यं भव्यमनोभिरर्थपतिभिस्तद्वै महाभारतम् ॥ १.१६

राजशेखर के प्रशंसकों की संख्या पर्याप्त रही है। धनपाल ने तिलकमञ्जरी में कवि को मुनियों के समान श्लेष द्वारा सिद्ध किया है—

समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः।
यायावर-कवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः ॥ ३३

सोड्ढल ने उदयसुन्दरी-कथा में राजशेखर की प्रशंसा में लिखा है—

यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशंसितः सूरिसमाजवर्यैः।
नृत्यत्युदारं भणिते रसस्था नटीव यस्योढरसा पदश्रीः ॥

मङ्ख ने श्रीकण्ठचरित महाकाव्य में राजशेखर की चर्चा की है—

प्रक्रमैर्हठवक्रिम्णो मुरारिमनुधावतः ।
श्रीराजशेखरगिरौ नीवी यस्योक्तिसम्पदाम् ॥ २५.७४

राजशेखर की कलम बेरोक थी। प्रतिभालम्बित कल्पनाओं की उड़ान चाहिए, भले ही ऊटपटांग बात ही क्यों न कहनी पड़े—यह राजशेखर की कृतियों में अनेक स्थलों पर दिखाई पड़ता है। नीचे के पद्य में इसका उदाहरण है। सूर्यविम्ब की उपमा वानर के लाल मुख से दी गई है—

अयमहिमरुचिर्भजन् प्रतीचीं
कुपितवलीमुखतुण्डताम्रविम्बः ।
जलनिधिमकरैरुदीक्ष्यते द्राङ्
नवरुधिरारुण-मांसपिण्डलोभात् ॥ १.२१

विद्धशालभञ्जिका

विद्धशालभञ्जिका राजशेखर की नाटिका है। इसका नाम इसलिये सार्थक है कि इसमें नायिका की प्रतिकृति शालभञ्जिका है, जिसे देखने पर नायक की आसक्ति उसके प्रति बढ़ी। नाट्यसाहित्य में नायिका की प्रतिकृति को इस प्रकार प्रयुक्त करना राजशेखर ने एक नई देन मानकर इस उपलब्धि को प्रमुखता प्रदान करने के लिये इस नाटिका का नाम विद्धशालभञ्जिका रख दिया[1]। नाटिका ९२६ ई० में मध्यप्रदेश में त्रिपुरी में लिखी गई, जहाँ कवि कुछ दिनों के लिये कलचुरि राजा का आश्रित था। इसका प्रथम अभिनय नायक युवराजदेव की सभा की आज्ञा से हुआ।

नाटिका का नायक विद्याधरमल्ल (युवराज अथवा केयूर वर्ष भी) त्रिपुरी में कलचुरिवंश का सम्राट् था। वह त्रिलिंगाधिपति भी था।[2] नायिका है मृगाङ्कावली, जो पुरुष वेष में रहती थी। वह लाट देश के सन्तानहीन राजा चन्द्रवर्मा की पुत्री थी। पिता ने उसे पुत्र जैसा रखा। विद्याधर के मन्त्री भागुरायण ने उसी पुत्र वेष में मृगाङ्कावली को अपने राजा से विवाह करने के लिये मँगा लिया। पुत्ररूप में उसका नाम मृगाङ्क वर्मा था। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी भागुरायण को ज्ञात थी कि उसका पति चक्रवर्ती सम्राट् होगा।

---

१. संस्कृत रूपकों के नाम कवि की देन को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से प्रायशः रखे मिलते हैं। यथा, भास का प्रतिमानाटक, शूद्रक का मृच्छकटिक, सुभट का छाया-नाटक, सिंहभूपाल की रत्नपञ्चालिका आदि।

२. परवर्ती युग में कलचुरिवंशी सामन्त विज्जल ने ११५६ ई० में चालुक्य राज्य पर अधिकार कर लिया था। उसने त्रिभुवनमल्ल और गिरिदुर्गमल्ल की उपाधि धारण की थी। भार्गव-प्राचीन भारत का इतिहास पृ० ४०६।

राजा ने स्वप्न में एक रमणीरत्न का दर्शन किया। उसने अपने विदूषक से स्वप्न की नायिका की चर्चा की। विदूषक ने कहा कि अभी नर्मदा में स्नान करनेवाली कन्या कुवलयमाला को आपको प्राप्त कराने के लिये उपाय रच ही रहा हूँ कि दूसरी नायिका भी विचारणीय हो गई।[1] राजा ने स्वप्न की नायिका के विषय में कहा—जातोऽस्मि तद्वन्दी। उसने स्वप्न में ही मेरे गले में यह हार डाल दिया। राजा की ऐसी मानसिक स्थिति देखकर विदूषक उसे महामन्त्री भागुरायण के द्वारा बनवाये हुये उस स्फटिक-शिलामन्दिर की ओर ले गया, जिसका उद्देश्य था नायक को मृगाङ्कावली के प्रति उत्सुक करना स्वप्न में हार भागुरायण की योजनानुसार मृगाङ्कावली ने पहनाया था।

उधर जाते हुए नायक ने देखा कि उसकी नई नायिका का मुख उसके झूला झूलते समय चन्द्रमा सा प्रतीत हो रहा है। स्फटिक-मन्दिर के केलिकैलास भवन की भित्ति पर उसी स्वप्नदृष्ट नायिका का चित्र था। राजा ने उसे पहचाना। उसे देखते ही राजा गाकर उसकी शोभा का वर्णन करने लगा—

> चक्षुर्मेचकमम्बुजं विजयते वक्त्रस्य मित्रं शशी
> भ्रूसूत्रस्य सनाभिमन्मथधनुर्लावण्यपण्यं वपुः।
> रेखा कापि रदच्छदे च सुतनोर्गात्रे च तत्कामिनी—
> मेनां वर्णयिता स्मरो यदि भवेद्वैदग्ध्यमभ्यस्यति ॥ १.३३

उस नायिका के अनेक चित्रों के साथ ही वहाँ राजा ने स्तम्भ पर शालभञ्जिका देखी। राजा ने उस हार को शालभञ्जिका के गले में डाल दिया, जिसे उसकी नायिका ने स्वप्न में दिया था।[2]

तभी केलिकैलास में नायिका मृगाङ्कावली दृष्टिगोचर हुई। वह स्फटिक भित्ति की दूसरी ओर थी। राजा जब तक वहाँ पहुँचे, वह अन्तःपुर में घुस गई। नायिका को साक्षात् या चित्र और मूर्ति के माध्यम से नायक के समक्ष लाने का कार्यक्रम भागुरायण मन्त्री के सूत्र-संचालन से चल रहा था।

राजभवन में दो विवाहों की सज्जा हो रही थी—(१) मृगाङ्कवर्मा का कुवलय-माला से और (२) विदूषक चारायण का मृगाङ्कवर्मा के पुरोहित की कन्या से।[3]

विदूषक के विवाह के लिए एक चेट को वधूवेष में रानी ने प्रस्तुत किया। भ्रामरी

---

१. कुन्तल देश के राजा चण्डमहासेन की कन्या कुवलयमाला थी। राज्यभ्रष्ट राजा सकुटुम्ब नर्मदा में स्नान कर रहा था, जब नायक ने कुवलयमाला को देखा। वह भी राजभवन में आ गई।

२. विद्धशालभञ्जिका का यह दृश्य परवर्ती छायानाट्य का उद्भावक है। इसका विस्तृत विवेचन इस पुस्तक में सुभट के छायानाटक और मेघप्रभ के धर्माभ्युदय के प्रकरण में किया गया है। उल्लाघराघव के चित्रप्रकरण से भी इसका साम्य है।

३. ऐसी घटना को कूटनाटक घटना और उसके घटक को कूटपात्र कहते हैं।

डाली गई। आग में लाजाञ्जलि का होम हुआ। विदूषक ने वधू को ध्रुव और सप्तर्षि-मण्डल दिखाया। तभी कूटवधू ने कहा—देवीदासो डमरुकः खल्वहं कथं परिणयामि। अर्थात् मैं डमरुकदास हूँ। कैसे मेरा विवाह तुम्हारे (पुरुष) के साथ होगा? विदूषक लज्जित होकर चलता बना। राजा उसके पीछे गया और रत्नवती नामक चौकी पर राजा को स्वप्नदृष्टा नायिका प्रत्यक्ष दिखाई पड़ी। थोड़ी देर में नायिका कन्दुक-क्रीडा करने लगी। उसने तिरछी दृष्टि से नायक को कृतार्थ किया। नायिका के चले जाने के पश्चात् नायक को कन्दुक-क्रीडास्थली पर एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—

विधत्ते सोल्लेखं कतरदिह नाङ्गं तरुणिमा
तथापि प्रागल्भ्यं किमपि चतुरं लोचनयुगे।

यह सब मन्त्री भागुरायण की योजनानुसार प्रवर्तित हो रहा था। नायिका मृगाङ्कावली नामक विद्याधरमल्ल के पूर्वराग में अति उत्कण्ठित हो चली थी। उसकी सखी ने सच्चे मन से उसकी दूती बनकर राजा को उसकी दशा का परिचय देने के लिए एक पद्य लिखा।

नायक और नायिका के प्रणय की परिणति के लिए मन्त्री भागुरायण सतत प्रयत्नशील रहा। उसने विचक्षणा नामक चेटी को इस उपक्रम के लिए सहयोगी बना लिया था।

विदूषक महारानी के द्वारा प्रवर्तित अपने अलीक विवाह का प्रतिशोध लेने के लिए व्याकुल था। राजा ने उसकी सहायता की। महारानी की धाई की पुत्री मेखला को रात्रि के गहन अन्धकार में आकाशवाणी से सूचना दी गई कि पूर्णिमा के दिन तुम मर जाओगी। यदि बचना चाहो तो वेदवेत्ता ब्राह्मण की पूजा करके उसकी जाँघों के बीच से निकलो। यह नाटक रचा गया। मेखला ने जब विदूषक के पैर पर सिर रखा तो नेपथ्य से सुनाई पड़ा—एते वयं कालपुरुषाः शृंखलाभिः प्राप्ताः। अन्त में मेखला उसके पैरों के बीच से निकली भी। तभी विदूषक ने कहा कि अलीक विवाह का प्रतिशोध हो गया।

राजा और विदूषक फिर उपवन में पहुँचे। वहीं निकट ही नायिका आ गई। उसके साथ उसकी सखी विचक्षणा थी। उनकी बातें राजा ने विदूषक के साथ छिप कर सुनीं। इसके पश्चात् उनको नायिका का प्रेमपत्र मिला। फिर तो राजा आगे बढ़कर नायिका से मिला। उसने अपना हार नायिका के कण्ठ में डाल दिया।[1] राजा की उससे बात हुई। उधर रानी के आने की सूचना पाकर सभी वहाँ से खिसक गये।

---

१. यह घटना तृतीय अङ्क के अन्त की है। ऐसा होने पर भी डा० डे० का कहना है—and the heroine does not actually meet the king till a quarter the fotwrth act is over. P. 459, History of Sanskrit Literature. यहाँ डे० महादेव की भ्रान्ति प्रतीत होती है।

रानी ने एक कूटनाटक घटना का आयोजन किया, जिससे विदूषक का मेखला को विडम्बित करने का प्रतिशोध हो। रानी अपने पति के अनेक विवाह कराने में निष्णात थी।[1] इस बार वह राजा का विवाह मृगाङ्कवर्मा को स्त्री रूप में मृगाङ्कावली नाम से प्रस्तुत करके उससे करा देना चाहती थी। उसने झूठमूठ बात बनाई कि मृगाङ्क-वर्मा की बहिन मृगाङ्कावली आई है और उससे विवाह करनेवाला चक्रवर्ती होगा। उसी मृगाङ्कावली से विवाह करा रही हूँ।

रानी ने मृगाङ्कवर्मा का अपनी समझ में कूटविवाह विधिपूर्वक सम्पन्न करा दिया। उसी समय मृगाङ्कवर्मा के पिता चन्द्रवर्मा के दूत ने आकर बताया कि मृगाङ्क कन्या है और रानी को उसका विवाह किसी योग्य वर से कराना है। कूटघटना कूट न रही।

रानी कुवलयमाला का विवाह मृगाङ्कवर्मा से करना चाहती थी। मृगाङ्कवर्मा स्त्री निकला। कुवलयमाला कहाँ जाय? विदूषक के समाधान के अनुसार वह भी राजा के साथ बँध गई।

विवाहोत्सव के अवसर पर राजा के पास सेनापति का समाचार आया कि पूर्व, पश्चिम और उत्तर के चंडवृत्तिक राजा दण्डित हो चुके हैं। कुन्तलाधिप वीरपाल (कुवलय-माला का राज्यभ्रष्ट पिता) के साथ पयोष्णी तट के सन्निवेश से कर्णाट का राजा, सिंहल का राजा सिंहवर्मा, पाण्ड्य और मलय के राजा आदि जीत लिये गये। वीरपाल पुनः राजा हो गये। इस प्रकार कलचुरितिलक चक्रवर्ती सम्राट् हैं।

प्रियदर्शिका में जैसा विवाह गर्भाङ्क में कराया गया है, वैसी ही योजना विद्धशालभञ्जिका में बिना गर्भाङ्क-निर्देश के दो बार प्रयुक्त है। इनमें से एक के द्वारा विदूषक का अलीक विवाह होता है और दूसरी के द्वारा राजा का मृगाङ्कावली से विवाह हो जाता है।

नेपथ्य से चूलिका का पुनः पुनः प्रयोग किया गया है। चूलिकायें पर्याप्त लम्बी हैं। चूलिका में कतिपय पात्रों के संवाद भी प्रस्तुत हैं। परवर्ती युग में रङ्गमञ्च को तिरस्करिणी द्वारा विभक्त करके कई समूहों में बँटे पात्रों के एक साथ ही संवाद करने की रीति उस समय तक पूरी तरह प्रवर्तित नहीं हो पाई थी।

चतुर्थ अङ्क की दूसरी चूलिका में वारविलासिनियों के अपने प्रियतमों के साथ जलविहार के पूर्व की शृङ्गारित प्रवृत्तियों का लम्बा विवरण है, जो सर्वथा अनावश्यक

---

१. रानी ने राजा के विवाह (१) मगधनरेश की कन्या अनङ्गलेखा, (२) मालवाधिप की कन्या रत्नावली और प्रियदर्शिका, (३) पाञ्चालराजपुत्री विलासवती, (४) अवन्तीश्वरकन्या केलिमती और कलावती, (५) जालन्धरेश्वर की कन्या लीलावती, (६) केरलराजपुत्री पत्रलेखा से करा दिया था। नायक की सब मिलाकर सहस्र पर्यन्त पत्नियाँ थीं। सहस्राणां पाणिग्राहितस्य इत्यादि राजा के विशेषण हैं।

है। वास्तव में चूलिका में कुछ कथांश भी होना ही चाहिए, जिसका इसमें सर्वथा अभाव है। ऐसा लगता है कि चूलिका के द्वारा शृङ्गारित वर्णनों को सुनकर प्रेक्षकों का मनोरञ्जन करना कवि का उद्देश्य है।

राजशेखर ने नाटिका के अनुरूप रङ्गमञ्च पर नाचने-गाने का दृश्य भी रखा है। नायक का मृगाङ्कावली से विवाह सम्पन्न होने के अवसर बहुत-सी दासियां और उनके साथ विदूषक नाचते हैं। इसी प्रकार का नृत्य कुवलयमाला से विवाह होने पर भी किया जाता है।

नेतृपरिशीलन

विद्धशालभञ्जिका के नायक का नाम विद्याधरमल्ल, श्री युवराज, केयूरवर्ष (कर्पूर-वर्ष) और त्रिलिंगाधिपति इस नाटिका में दिये गये हैं।[1] युवराजदेव की आज्ञा से उसकी सभा के विनोद के लिए इस नाटिका का प्रथम अभिनय हुआ था। यह युवराजदेव कौन हैं? डा० डे ने लिखा है कि युवराजदेव हैं केयूरवर्ष प्रथम त्रिपुरी के कलचुरिवंशीय राजा। उस युग में अपने आश्रयदाता को ऐसी नाटिकाओं का नायक बनाने का प्रचलन था।[2]

ऐतिहासिकता

मिराशी के अनुसार भागुरायण कारीतलाई के शिलालेख में वर्णित भाक मिश्र का कविकल्पित नाम है। पयोष्णी (पूर्णा) नदी के तट के युद्ध का ऐतिहासिक उल्लेख है युवराजदेव के द्वारा जामाता अमोघवर्ष का पक्ष लेकर राष्ट्रकूटनरेश चतुर्थ गोविन्द की सेना को हराना। यह युद्ध अचलपुर के पास पूर्णा नदी के तट पर हुआ था। अमोघवर्ष उसके पश्चात् राजा बना था। इस विजयोत्सव के अवसर पर यह नाटक प्रणीत और अभिनीत हुआ।[3] यह घटना ९३६ ई० की है।[4] मिराशी के अनुसार नाटिका का वीरपाल वस्तुतः इतिहास का (वड्डिग) अमोघवर्ष ही है।[5]

नाटिका पूर्णतः शृङ्गार-निर्भर है। नायिका के आङ्गिक सौष्ठव का वर्णन और प्रकृति

---

१. विद्याधरमल्ल नायक तृतीय अंक में १७ वें पद्य के आगे।

२. बिल्हण ने कर्णसुन्दरी नाटिका की रचना ११ वीं शती के उत्तरार्ध में की। इसमें उसने अपने आश्रयदाता चालुक्य कर्णदेव के विवाह का वर्णन किया है। इसका कथानक राजशेखर की विद्धशालभञ्जिका के सर्वशः समान ही है। मदनकवि की पारिजातमञ्जरी में अर्जुनवर्मा नायक और कवि के आश्रयदाता का विवाह वर्णित है।

३. मिराशी : कलचुरिनरेश और उनका काल पृ० ११४

४. पुरुषोत्तमलाल भार्गव : प्राचीन भारत पृ० ४०१

५. मिराशी : विद्धशालभञ्जिकेतील ऐतिहासिक समस्या-संशोधन-मुक्तावली क्रमाङ्क २७.

का शृङ्गारात्मक विनियोग विशेष चमत्कारपूर्ण है। विद्धशालभंजिका में परिहास की निष्पत्ति पूर्ण है। विदूषक का डमरुक से विवाह और मेखला को उसके पैरों के बीच से निकलवाना शृङ्गार की प्रमुख घटनायें हैं। जैसा घटनात्मक हास्य इसमें है, वैसा नाट्यसाहित्य में अन्यत्र विरल है।

राजशेखर की इस नाटिका में नाट्योचित शैली की विशेषतायें व्यंग्य हैं—उसमें गम्भीरता, सूक्तियुक्त वाणी, रमणीय वैदर्भी रीति, माधुर्य और प्रसाद होना चाहिये।[1] संवाद की भाषा सातिशय चटपटी है। यथा

१. किमस्या मौक्तिकानि गलिष्यन्ति।
२. आतृप्ति पिबेतां श्रवसीरसायनम्।
३. कारय चक्षुषी पारणाम्।
४. शैशशवादपक्रामति ग्रीष्मसमयः।
५. अरं दयिष्यामहे।

कहीं-कहीं संवादों की प्रभविष्णुता अप्रस्तुतप्रशंसा से विशेष झलकती है। यथा

१. केतकी कुसुमवासितस्य खदिरस्यान्यो गन्धोद्गारः।
२. मूले वकुलयष्ट्याः सुरागण्डूषसेकः कुसुमेषुमदिरागन्धोद्गारः।
३. यदि चन्द्रमणिर्हुतवहं निष्यन्दते कोऽत्र प्रतिकारः
४. पाययितव्या जीर्णमार्जारी दुग्धमिति काञ्जिकम्।

कवि ने अपनी शैली की विशेषता स्वयं बताई है—

वक्रोक्तिभूषण इव सुकविवाणीबन्धः।

सूक्तिसौरभ

राजशेखर ने इस नाटिका में कहा है कि मेरी सूक्तियों से सुधा की वर्षा होती है। वास्तव में इस नाटिका में कवि की सूक्तियां उच्चकोटि की हैं—

१. अनुगुणं हि दैवं सर्वस्मै स्वस्ति करोति।
२. आकृतिमनुगृह्णन्ति गुणाः।
३. कथमिव सहकारयष्ट्यां कलकण्ठी कुण्ठितप्रणया भवति।
४. कथमिव जीवतः कृकलासाच्छिरः सुवर्ण प्राप्यते।
५. किं गते सलिले सेतुबन्धेन।
६. किं वृत्ते विवाहे नक्षत्रपरीक्षया।
७. न खल्वनुत्पीडितः सहकारपृष्ठग्रन्थिः रससर्वस्वं मुञ्चति।
८. न प्रेम नव्यं सहतेऽन्तरायम्।

---

१. अहो गाहन्यम्। अहो सूक्तियुक्ता वाचः। अहो हृद्या रीतिः। अहो माधुर्यं पर्याप्तम्। अहो निष्प्रमादः प्रसादः।

९. न खलु मृगलाञ्छनमुज्झित्वान्येन शशिकान्तपुत्रिकानद्धनिर्झरा प्रस्रुच्यति ।
१०. न विना चन्द्रं शेफालिकाया विकसन्ति कुसुमानि ।
११. न हि स्नेहो युक्तायुक्तमनुरुणद्धि ।
१२. यदरिष्टमनधिरूढा कारवली-वल्लरी किमुच्यते कटुकत्वं प्रति ।
१३. लेखमुखा एव लेखवाहा भवन्ति ।
१४. वरं तत्कालोपनतस्तित्तिरः न पुनः दिवसान्तरितो मयूरः ।
१५. शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः ।
१६. श्रुतमन्त्रसंरक्षणं खलु कार्यसिद्धेः कारणम् ।
१७. नटे दृष्टे मुण्डित उपविष्टः पतिर्मुण्डितः ।
१८. स्वप्नलब्धैर्मोदकैर्ग्राममुपनिमन्त्रयसे ।
१९. लीढमधोरनुपानं तप्तदुग्धेन ।
२०. किसुपवने शुको वदति ।
२१. विधत्ते सोल्लेखं कतरदिह नाङ्गं तरुणिमा ।
२२. न खलु व्यापारमन्तरेण करकलितापि शुक्तिर्विमुञ्चति मौक्तिकानि ।
२३. किं मधुकपायति ।
२४. दृष्टा हरिश्चन्द्रपुरीवनष्टा ।
२५. अनाकरे पद्मरागरत्नम् ।
२६. प्रथमं सहकारमंजरी उद्भिद्यते, पश्चात्तु कलकण्ठी मुद्रां शिथिलयति ।
२७. का वर्णना, वकुलावली गन्धभारोद्गारेति ।
२८. हंस एव जलेभ्यो दुग्धमुद्धरति ।
२९. पुराणपत्रमविदार्य पल्लवेन समुल्लसति ।

सूक्तियों की प्रभविष्णुता स्पष्ट है। इनमें से कतिपय सूक्तियां आज भी देशी भाषाओं में प्रचलित हैं।



अध्याय ७

कुलशेखर वर्मा

केरल के महाराज कुलशेखर वर्मा का प्रादुर्भाव ९०० ई० के लगभग माना जाता है। उनके लिखे दो नाटक तपतीसंवरण और सुभद्राधनञ्जय मिलते हैं।[1] कुलशेखर ने आश्चर्यमंजरीकथा नामक गद्यकाव्य का प्रणयन किया था, जिसके उद्धरण मात्र कतिपय परवर्ती ग्रन्थों में मिलते हैं। महाकवि राजशेखर ने इस गद्यकाव्य की प्रशंसा की है।

कुलशेखर ने तपतीसंवरण की स्थापना में अपना परिचय देते हुए लिखा है—

यस्य परमहंसपादपङ्केरुहपटलपवित्रीकृतमुकुटतटस्य वसुधाविबुधधनान्धकारमिहिरायमाणकरकमलस्य मुखकमलादगलद् आश्चर्यमंजरीकथामधुद्रवः। अपि च

> उत्तुङ्गघोणमुरुकन्धरमुन्नतांस[2]-
> मंसावलम्बिमणिकर्णिककर्णपाशम्।
> आजानुलम्बिभुजमञ्चितकाञ्चनाभ-
> मायामि यस्य वपुरार्तिहरं प्रजानाम्॥ १.२

तस्य राज्ञः केरलकुलचूडामणेर्महोदयपुरपरमेश्वरस्य श्रीकुलशेखरवर्मणः कृतिरियमधुना प्रयोगविषयमवतरति।

इससे प्रतीत होता है कि महाराज कुलशेखर की राजधानी महोदयपुर में थी। उनका शरीर-सौष्ठव अतिशय रमणीय था।

कुलशेखर ने अपने नाटकों पर व्यंग्य-व्याख्या नामक टीका एक उच्चकोटि के विद्वान् से लिखवाई। राजा ने उसे बुलवा भेजा और उन्हें लाने के लिए नाव भेजी। उसके आने पर राजा ने उसे दोनों नाटक दिये और बताया कि इनकी शैली ध्वनिप्रधान है। पहले तो उस ब्राह्मण को यह बताना पड़ा कि नाटक उसकी दृष्टि में कैसे हैं? कुलशेखर ने स्वयं उन नाटकों की व्याख्या की, जिनके आधार पर व्याख्या लिखी गई।

---

१. इनका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् सीरीज ११, १३ में हो चुका है। इनकी प्रतियां प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राप्य हैं। कुलशेखर का कालनिर्णय विवादास्पद है। इसका विवेचन कुंजुन्नी राजा ने The Contribution of Keral to Sanskrit Literature के पृष्ठ ८ से १६ तक किया है।

२. इस पद्य की तुलना मृच्छकटिक के ९.१६ पद्य 'घोणोन्नतं मुखमपाङ्गविशालनेत्रं' आदि से की जा सकती है। दोनों में छन्दःसाम्य भी है।

कुलशेखर उच्चकोटि के नाट्याचार्य थे। उनको व्याख्याकार ने परमभागवत बताया है। नान्दीवाक्य और भरतवाक्य से प्रतीत होता है कि उनके आराध्यदेव श्रीधर थे। भरतवाक्य है—

अन्योन्यं जगतामपाकविरसा मूर्च्छन्तु मैत्रीरसाः
संगृह्णन्तु गुणान् कवेः कृतधियां मात्सर्यवन्ध्या धियः।
विश्लिष्यद् विषयानुषङ्गकलुषीभावा घनश्यामले
भक्तिर्मे परिपच्यतामहरहः श्रेयस्करी श्रीधरे॥ ६.१६

तपतीसंवरण

कथानक

हस्तिनापुर के महाराज संवरण की पत्नी साल्वराजपुत्री से कोई सन्तान नहीं हुई। राजा को इस बात से दुर्निवार कष्ट था। उसने रात्रि के बीत जाने पर स्वप्न देखा कि आकाश से सूर्यबिम्ब निकला। मेरे प्रणाम करने पर उसने घोषणा की कि साल्वराजपुत्री से तुम्हें सन्तान न होगी। विदूषक ने राजा को इसका व्यङ्ग्य अर्थ बताया कि आपको सन्तान के लिए दूसरा विवाह करना चाहिए। फिर वे दोनों महारानी से मिलने जाने लगे। मार्ग में उन्हें गुहगृह के निकट मरकत शिलातल पर किसी सुन्दरी के चरणों की छाया दिखाई पड़ी। वह दिव्य कन्या आकाश से उतरी थी। तभी महारानी आ गईं। उन्होंने वहीं छिपकर राजा और विदूषक की बातें सुनीं। राजा को निकट ही एक कर्णपूर मिला। वह संवरण के प्रति आसक्त है, यह विदूषक ने कल्पना की। उस कर्णपूर पर सन्देश पदाक्षर द्वारा संकेतित था—

किं कुणइ चाढअवहू सन्दसिणेहा वि मेहपअरम्मि।
सुहिआ तिस्से दिट्ठी पुण्णा आसन्दवाहेण॥ १.१५

राज को यह सन्देश पढ़ते ही उसकी लेखिका दिव्य कन्या के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया। उसे ढूँढने के लिए जाते समय उनको महारानी मिल गईं, जो उनकी सारी बातें सुन चुकी थीं। वे क्रुद्ध थीं। राजा के मनुहार करने पर भी वे वहाँ से विश्राम करने के लिए चलती बनीं।

नारद ने सूर्य की कन्या तपती को गोद में लेकर कहा था कि इसके योग्य संवरण ही हैं। तपती की संवरण के प्रति रुचि हुई। इसके पश्चात् वह हस्तिनापुर के पास आकर उपर्युक्त मणिशिलातल पर विश्राम कर रही थी। तभी वहाँ संवरण आ गया था। उसे देखते ही तपती छिपकर आकाश में उड़ गई। जाते समय उसकी सखी मेनका ने राजा की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए कर्णपूर पर गाथापदाक्षरात्मक पद्य लिखकर वहाँ राजा के सामने छोड़ दिया था।

एक दिन फिर तपती उस प्रदेश में संवरण की आसक्तिवश उतर आई। वहीं राजा भी मृगया करने आ गया था। विदूषक साथ में था। सन्देश वाला कर्णपूर उसी

के पास था। घोड़े पर वह कुछ दूर आगे बढ़ गया तो उसे वानरों ने अपना भाई समझ कर पकड़ लिया और कर्णपूर ले लिया। राजा के पास दुखड़ा रोने आया तो उससे राजा ने कहा कि कर्णपूर कहाँ है? विदूषक ने कहा कि झगड़े की जड़ उस कर्णपूर से छुटकारा मिल गया है। राजा और विदूषक तपनवन में वामनावतार की पराक्रम-भूमि करतलोदक सरोवर के समीप विनोद के लिए पहुँचे। वहाँ से वामनमन्दिर में वे दोनों गये। वहीं थोड़ी दूर पर नायिका भी एक ओर प्रकट हुई। उधर से पूजा के लिए पुष्पावचय करके लौटते हुए विदूषक ने तपती की छाया सरोवर के जलशैल पर देखा तो उसे लक्ष्मी का चित्र समझ कर नायक को उसे दिखाने लाया। राजा ने वास्तविकता समझ ली कि स्फटिक मणि के बने हुए जलशैल के गोष्ठीमण्डप में आई हुई किसी दिव्याङ्गना का रूप दिखाई पड़ रहा है। क्या वह वही कन्या है। जिसका सन्देश कर्णपूर पर प्राप्त हुआ था? उसकी एकोक्ति सुनकर राजा उसके सम्बन्ध में विचार करते हुए अन्त में प्रसन्न हुआ कि नायिका का साक्षात् दर्शन हुआ।

नायिका वियोग न सह सकती हुई मर जाना चाहती थी। उसकी यह वृत्ति देख-कर उसकी छिपी हुई सखियों ने प्रकट होकर उसे बचा लिया।

नायिका अपने मदनव्यापार को सखियों से छिपा न सकी। उसके लिए शीतो-पचार किया गया। नायक ने सोचा कि नायिका से अपना प्रणय निवेदन करूँ। तभी सन्ध्य-विधि के लिए उपयुक्त समय होने की सूचना नेपथ्य से मिली और नायक को निकटवर्ती कुलपति के आश्रम में चला जाना पड़ा।

राजा संवरण ने अनेक राक्षस-नेताओं को मारकर ऋषियों को आश्वस्त किया। आशंका थी कि उनके परिवार के अन्य राक्षस मायाद्वारा विघ्न करेंगे। राजा राक्षसों का भय दूर कर लेने पर निश्चिन्त हुआ तो उसे नायिका की स्मृति हो आई। वह फिर उसी मणिमण्डप के समीप जा पहुँचा, जहां उसे पहली बार नायिका का दर्शन हुआ था। वहां पहुँचने पर राजा का मदनज्वर दूर करने के लिए विदूषक को शिशिरवस्तुओं का शयन बनाना पड़ा। उसके लेटने पर विदूषक ने नलिनी-पत्र का पंखा चलाया। इसी बीच सखियों के साथ नायिका भी नायक की खोज में निकट ही आ पहुँची। रम्भा नामक सखी को वानरों का छोड़ा हुआ कर्णपूर मिला, जो उसके हाथ में था। नायिका और उसकी सखियां तिरस्करिणी विद्या से अन्तर्हित रहकर नायक और विदूषक का मदन-व्यापार देखने लगीं। नायिका ने समझा कि नायक अपनी गृहिणी के लिए सन्तप्त है। सखियों ने समझाया कि मूर्खे, अपनी पत्नियों के लिए ऐसा प्रेमोन्माद नहीं होता। इसी बीच विदूषक ने मन ही मन कहा कि वह कर्णपूर भी तो बन्दरों ने ले लिया, नहीं तो उसी से मित्र को आश्वासन प्रदान करता। इसे सुनकर सखियों के बताने पर भी नायिका को दृढ निश्चय न हो सका कि राजा मेरे ही लिए सन्तप्त है। रम्भा ने कर्णपूर विदूषक के पास गिरा दिया। विदूषक ने उसे राजा को दिया तो उसने उसे हटा दिया। इससे नायिका को पुनः सन्देह हुआ कि नायक मेरे लिए संतप्त

नहीं है। अन्त में नायक ने जब तपती का नाम लिया तो उसे विश्वास हुआ कि वह मेरे प्रेम में उन्मत्त है। तब तो उसे मूर्च्छा हो आई कि मेरे लिए यह उन्मत्त हो रहा है।

तपती के वियोग में नायक मरणासन्न-सा हो गया। नायिका प्रच्छन्न रहकर उसे निकट से देखने लगी। विदूषक ने समझा कि वह मर ही गया। वह स्वयं भी भृगु-शिखर से कूद कर मरने के लिए दौड़ गया। नायिका भी मूर्च्छित हो गई। सखियों ने कहा कि मर क्यों रही हो? अपने करकमलों से नायक का हृदयस्पर्श करके उसे पुनरुज्जीवित करो। नायिका ने प्रकट होकर नायक के हृदय पर हाथ रखा और नायक उठकर उसे पकड़ने लगा। मेनका ने नायक से कहा कि अभी पाणिग्रहण न करें। सूर्य भगवान् ने तो इस तपती को आपके दाम्पत्य के लिए संकल्पित कर ही दिया है। उनसे आज्ञा लेकर पाणिग्रहण सम्पन्न करें। उधर मरने के लिए गए हुए विदूषक को भी दौड़कर राजा ने बचाया।

संवरण ने तपती के पिता सूर्य के उद्देश्य से तपस्या की। बारह दिन तपस्या कर लेने पर भगवान् वसिष्ठ ने उन्हें तपस्या विरत किया और स्वयं सूर्य के पास जाकर उनकी कन्या को नायक के लिये माँग लिया।[1] सूर्य ने अनुमति दे दी। विवाह हो गया। स्वप्न में गर्भ से उसे कुमार की उत्पत्ति सी हुई।

नायक और नायिका क्षणभर के लिए भी वियुक्त रहना सहन नहीं कर पाते थे। एक दिन एक राक्षसी आई। वह क्रुद्ध थी कि संवरण ने उसके सम्बन्धियों को मार डाला था। उसने अन्य दुःखी राक्षसियों के कहने पर योजना बनाई कि संवरण को समुद्र में डुबा कर मारना है। उसने सुन्दरी का रूप बनाकर राजा के पास आकर प्रणय निवेदन किया।

विदूषक के कहने पर भी संवरण न मान सका कि वह कोई मायाविनी है। उस राक्षसी ने कहा कि गन्धर्वराज चित्ररथ की कन्या गगनमाला अतिसुन्दरी है। वह आपके गुणों से प्रभावित होकर आपसे विवाह करना चाहती है। वह एक दिन अपना कर्णपूर और कामलेख आपके लिए यहाँ आकर छोड़ गई। फिर आपका अपने प्रति अनुराग देखकर पितृपराधीन होने से पिता के नगर चली गई। आप से संगम होने की कोई आशा न देखकर वह भृगुपतन द्वारा मरने जा रही थी। मैंने उसे रोक रखा है। मैं सखी का मरना नहीं देख सकती। अतएव पहले मैं ही आपके सामने मरूँगी। राजा ने कहा कि हम तो जैसा कहती हो करने को उद्यत हैं। राक्षसी ने कहा—आज प्रदोष के समय अपने मित्र विदूषक के साथ आप यहीं रहें। मैं विमान लेकर आपको ले जाने के लिए आऊँगी। वह तो चली गई। उसी समय नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि मोहनिका राक्षसी के जाल में न फँसें। तभी मेनका आ पहुँची। उसके हाथ में कर्णपूर

1. यह कथांश कुमारसम्भव के छठें सर्ग की तत्सम्बन्धी कथा के आधार पर है।

था। उसने बताया कि जब आप राक्षसी से बात करके अभिसार के लिए उद्यत होने की चर्चा कर रहे थे, उसी समय तपती यहाँ आई थी और आपकी बात सुनकर चलती बनी। मैंने अन्त तक सुनकर सत्य जान लिया है। आप शीघ्र चलकर उसे मनायें। वह वामनमन्दिर तक पहुँच रही होगी। राजा ने वहाँ आकर उसे वस्तुस्थिति से अवगत कराया। नायिका के प्राण बचे।

उस वन में राक्षसी-माया के द्वारा एक बड़ा उत्पात आया, जिसके प्रभाव से वन में सब कुछ नष्ट हो गया केवल विदूषक वहाँ बचा और अन्य कुछ त्रस्त प्राणी थे। नायक भी वहाँ नहीं रहा। विदूषक इस जटिल परिस्थिति में व्याकुल था। उस समय वहाँ संवरण का अमात्य आया। उसने बताया कि मैं संवरण को हस्तिनापुर में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ अनावृष्टि से घोर अकाल पड़ा है। राज्य पर पाञ्चालाधिप का अधिकार हो गया है। विदूषक ने बताया कि कल रात तक तपती के साथ विहार कर चुकने के पश्चात् राजा गन्धर्वनगर की भाँति अदृश्य हो गये।

मन्त्री ने समझ लिया कि तपती किसी कारण से अन्तर्हित हो गयी है और संवरण उसे घूम-घूम कर ढूंढ़ रहे हैं। तभी विदूषक ने मन्त्री को एक पदपंक्ति दिखाई, जिसे अमात्य ने पहचान लिया कि यह महाराज संवरण की है। उस समय नेपथ्य से उन्मत्त संवरण की वाणी सुनाई पड़ी कि अरे नीच पर्वत, तुम मेरी प्राणेश्वरी को क्यों नहीं प्रकट करते हो।[1] वे दोनों राजा के पास पहुँच कर राजा की प्रवृत्तियां छिपकर देखने लगे। इधर पर्वत राजा की डांट सुनकर कांपने लगा। राजा ने फिर यह समझ कर कि पर्वत ने ऐसा नहीं किया, पृथ्वी को डांट लगाई क्योंकि—

> दशरथतनयस्य पश्यतः प्रियदयितामपहृत्य मैथिलीम्
> नृपसदसि यया तिरोदधे किमिव तया पुनरत्र दुष्करम् ॥ ५.८

आगे बढ़ने पर संवरण को तपती के कर्णपूर-सा कुछ दिखाई पड़ा। उस समय विदूषक ने प्रकट होकर कहा कि वास्तविक कर्णपूर यह मेरे पास है। संवरण उससे कुछ अश्वस्त हुआ। अन्त में उसे ध्यान आया कि सूर्य तो अपनी कन्या की चिन्ता करेगा ही। तभी राजा को अपने राज्य पर विपत्ति की सूचना नेपथ्य से मिली। इसके पश्चात् वसुमित्र प्रकट हुआ। उसने बताया कि किस प्रकार अनेक शत्रुओं ने मिल कर आपके राज्य को विपत्ति में डाला है। आप ही रक्षा कर सकते हैं।

संवरण को अपने राज्य में ले जाने के लिए सूर्य का भेजा आकाशयान नीचे उतरने लगा। उसके सारथि हयसेन ने एकोक्ति द्वारा बताया कि सूर्य ने मुझे आदेश दिया है कि तपती के संग हिमालय पर संवरण के विहार करने से उसके राज्य में सब प्रकार की अव्यवस्था हो गई है। इस दम्पती को परस्पर वियुक्त करना है। तुम पति के सोते

---

१. यह प्रसंग विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा के उर्वशी को ढूंढनेवाले प्रकरण के आधार पर निरूपित है।

समय तपती को परिजनों के साथ सावित्री के पास ले आओ। मैंने सूर्य की आज्ञा का पालन किया है। अब उन्होंने आज्ञा दी है कि संवरण अपने परिवार के साथ राज्य में पहुँचना चाहते हैं। उन्हें वहाँ पहुँचाना है।

हयसेन ने मन में सोचा कि यदि संवरण के सामने सभी बातें सत्य कहता हूँ तो अनेक बखेड़े उठ खड़े होंगे। क्यों न यह कह कर संक्षिप्त करूँ कि आपकी असुर-विजय प्रसन्न इन्द्र के आदेशानुसार आपको हस्तिनापुर पहुँचाने के लिए आ गया हूँ। उस आकाशयान से राजा हस्तिनापुर आ गये।

महाराज संवरण के हस्तिनापुर पहुँचते ही प्रकाम वृष्टि हुई। वे गङ्गालोक-प्रासाद में जा पहुँचे। वहाँ एक दिन मेनका का रूप धारण करके तपती आ पहुँची।[1] वह अपने पति को अपने वास्तविक रूप में नहीं देख सकती थी, क्योंकि पिता का आदेश था कि सम्प्रति पति से अलग रहना है। राजा ने मेनका रूप में आई नायिका का आलिंगन किया तो उसे तपती के आलिंगन जैसा सुख मिला। उसने अपने आप कहा—

आश्लेषेष्विव देव्याः कण्टकितेयं मुधा तनुः कस्मात्।
अस्यां तस्याः स्पर्शः शङ्के संश्लेषसंक्रान्ता॥ ६.४

मेनकारूपधारी नायिका ने राजा के पूछने पर बताया कि किस प्रकार सूर्य ने तपती को सावित्री के पास सोते-सोते पहुँचवा दिया और आपको अपने जनपद में जल-वृष्टि कराने के लिए भेजवा दिया है। मैं आपके पास उसी तपती का वृत्तान्त बताने आई हूँ। 'राजा ने उससे कहा कि मैं उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। तुम तो सूर्य से प्रार्थना करके उसे तत्काल लाओ। तपती नायक की संगति में उसी रूप में कुछ देर रहकर आनन्द के क्षण बिताना चाहती थी। राजा ने उसे दूर भगाया। राजा ने विदूषक से कहा कि कर्णपूर लाओ।

इसी बीच रम्भा का रूप धारण करके राक्षसी आई, जिसने कहा कि आपके वियोग में सखी तपती मरने जा रही है। मैं भी मर ही जाऊँगी। यह कहकर भाग चली। राजा ने भी मरने की सज्जा की, क्योंकि पत्नी वियोग में उसे जीवन निस्सार प्रतीत हुआ। वह गङ्गास्नान करके जीवन का अन्त करने के उद्देश्य से तट पर नहाने गया। उसे वहां पानी के ऊपर नायिका दिखाई पड़ी। राजा ने डूबती स्त्री को बचाया तो उसने बिना पहचाने डाट लगाई—तुम कौन मुझे स्पर्श से अपवित्र कर रहे हो। शीघ्र ही उसने राजा को पहचान लिया। दोनों किनारे पर आये। उधर मेनका तथा रम्भा कहीं मरने जा रही थीं। उन्हें भी राजा ने बचाया। सभी मरकत शिला पर बैठकर अपनी विपत्ति-गाथा सुनाने लगे। नायिका ने कहा कि मुझसे रम्भा ने कहा कि आप नहीं रहे तो मैंने मरने का उपक्रम किया। रम्भा ने कहा कि मैंने यह कब

---

१. यहाँ से छायानाट्य तत्त्व का बाहुल्य है। इसमें मायापात्रों की अधिकता है।

कहा ? राजा ने कहा कि तुम्हीं ने तो मुझसे भी कहा कि तपती मर गई। रम्भा ने कहा—यह सर्वथा असत्य है। तभी मेनका ने बताया कि हम दोनों तपती को ढूँढ़ने निकली थीं। तभी जम्बूनदिका ने बताया कि तपती के मरने से संवरण प्रायोपवेश कर रहे हैं। हम दोनों यह सब सहने में असमर्थ होकर मरणोद्यत थीं। नायिका ने कहा कि यहाँ कहाँ से जम्बूनदिका ?

राजा ने समझ लिया जि यह सारी माया राक्षसी की है।[1] उसने तपनवन में भी मुझे ठगा था। नायिका ने कहा कि अब मैं सावित्री के पास जाऊँगी। पिता क्या कहेंगे कि कहाँ रही ? सिखियों ने कहा कि आपके पिता ने पुनः आदेश दिया है कि आज से आप अपने पति के साथ रहें। मेनका और रम्भा यह कहकर चलती बनीं कि जम्बूनदिका के रूप में राक्षसी कुछ और उत्पात न करती हो। सबको वस्तुस्थिति बताना है।

उधर से विदूषक राजाज्ञा से कर्णपूर लेकर आया। उसी समय आकाश से शर-पंजर निरुद्ध राक्षसी राजा के पैर पर रक्षा की भिक्षा माँगती हुई गिर पड़ी। राक्षसी ने राजा से अपनी कथा बताई कि मैं मोहनिका राक्षसी हूँ। मैंने रम्भा और जम्बूनदिका बन कर झूठे समाचारों से आप लोगों के प्राण लेने का उपक्रम किया। यह सब करके सूर्यलोक जाती हुई मुझ को मार्ग में आपके पुत्र ने बाणों से बींध दिया, जब मैं उसे खाने का प्रयास कर रही थी।

तपती ने कहा—मेरा पुत्र कहाँ से ? मुझे तो पुत्र ही नहीं है। तभी वसिष्ठ धनुर्धर पुत्र लेकर प्रकट हुए। राजा ने प्रणाम करने पर पुत्र को आशीर्वाद दिया—चक्रवर्ती भूयाः। वसिष्ठ ने पुत्रोत्पत्ति की कथा बताई कि तपती ने तपनवन में पुत्र उत्पन्न किया। देवताओं से भी परास्त न होनेवाले असुरों को मारने योग्य बनाने के के लिए रम्भा इसको सूर्य के आदेश से सावित्री के पास ले गई। तपती ने इस घटना को स्वप्नवत् अनुभव किया। इसने देवताओं का कार्य सम्पन्न कर लिया है और अब आपके पास आया है।

इस कथानक से स्पष्ट प्रतीत होता है प्रणय की पद्धति राजकुल की सीमाओं से बाहर अरण्य और स्वर्गलोक तक परिबृंहित है।

समीक्षा

तपतीसंवरण नाटक का आरम्भ रंगमंच पर विदूषक की एकोक्ति (Sobiloquy) से होता है। एकोक्ति का उच्चकोटिक उपयोग द्वितीयाङ्क में छठें पद्य के पश्चात् नायिका के वक्तव्यों के रूप में एक अनूठे नाट्यशिल्प को प्रकट करता है। रंगमंच पर एक ओर नायिका है। उसी रंगमंच पर दूसरी ओर नायक और विदूषक और तीसरी ओर तपती की सखियाँ मेनका और रम्भा हैं। नायिका इनमें से किसी को बिना देखे ही अपनी

१. यह कूट घटना-वैचित्र्य प्रकरण-वक्रता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

मानसिक उद्भावनाओं को बड़ी देर तक प्रकट करती जा रही है, जिसकी प्रतिक्रिया उपर्युक्त चारों पात्रों पर होती है, जिसे वे छिपे हुए पुनः पुनः प्रकट तो करते हैं, पर नायिका नहीं सुन पाती। संस्कृत नाट्यसाहित्य में ऐसी रंगमंचीय शिल्प-योजना अविरल नहीं है। ऐसी ही उत्कृष्ट एकोक्ति पञ्चम अङ्क में है, जिसे विदूषक और अमात्य वसुमित्रा प्रच्छन्न रह कर सुनते हैं।

तिरस्करिणी विद्या से प्रच्छन्न रह कर तीसरे अंक में प्रेमोन्मत्त नायक की बात सुनने की स्थिति कुलशेखर ने कालिदास के विक्रमोर्वशीय से ग्रहण की है।

तीसरे अंक में सीता के वियोग में मरणासन्न राम को उत्तररामचरित में जैसे सीता अपने संस्पर्श से पुनरुज्जीवित करती है, वैसे ही इस नाटक के तीसरे अंक में मरणासन्न नायक को नायिका अपने स्पर्श से पुनरुज्जीवित करती है।

तपतीसंवरण की कथा का उपजीव्य महाभारत के आदिपर्व में कुरु की उत्पत्ति की कथा है। तपती से कुरुचरित नामक संवरण का पुत्र उत्पन्न हुआ था।

रङ्गमञ्च पर आलिंगन भारतीय नाट्यशास्त्र के नियमों के विरुद्ध है, जो इस नाटक में दिखाया गया है।

नेतृपरिशीलन

संस्कृत-नाट्यसाहित्य में विवाह की लोकप्रिय घटना बहुशः चित्रित है। कुलशेखर इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं रह सके। पर जहाँ अन्य कवियों ने पहले की नायिकाओं को नई नायिका के आगमन की योजना के विचार मात्र से पीड़ित दिखाया है, वहाँ कुलशेखर ने यह दिखाया है कि नायक की पूर्वपत्नी को सन्तान नहीं हो रही है और राजा को पुत्रोत्पत्ति के लिए दैवी योजना के अनुसार दूसरी पत्नी लाना ही है।[1] इस प्रकार नायक के चरित्र का श्वेतीकरण हुआ है और साथ ही स्त्रीजाति महिमान्वित हुई है। आगे चलकर कवि ने अपनी सखी मेनका का रूप धारण करके नायक से प्रणय करने के लिए आनेवाली नायिका को नायक द्वारा भगाना चित्रित करके एकबार और नायक में चरित्र की दृढता दिखाई है कि वह निरा कामलोलुप नहीं है। सम्भवतः उस युग में यह स्थिति राजभवनों में कहीं अवश्य थी कि अपनी पत्नी की सहचरी भी प्रणयपाश में आबद्ध की जा सकती थी।[2] इस कुरीति पर कवि ने अङ्कुश लगाने का प्रयास किया है।

---

१. उपजीव्य महाभारतीय कथा में नायक सन्तानहीन पूर्वपत्नी की चर्चा नहीं है। इससे यह योजना कवि द्वारा किसी विशेष उद्देश्य का समाधान करने के लिए सम्प्रधारित है। यह प्रकरण-वक्रता के लिए है।

२. संवरण ने मेनका का गाढालिंगन किया—इससे भी इस प्रकार की प्रवृत्ति संकेतित है कि कम से कम राजाओं के लिए सहचरियां प्रणय के प्रथमावतार पर प्रतिष्ठित थीं।

भास ने माध्यमव्यायोग और पञ्चरात्र में तथा अपने अन्य कई रूपकों में ऐसे संवाद प्रस्तुत किये हैं, जिनमें भाग लेनेवाले पुरुषों में से कोई एक ऐसा होता है, जिसे शेष पुरुष पहचानते हैं कि यह मेरा निकट सम्बन्धी है, पर वह किसी को वस्तुतः नहीं पहचानता। ऐसे संवादों में एक विशेष प्रकार का मनोरञ्जन स्वाभाविक है। इसी कोटि का मनोरञ्जन कुलशेखर ने तपतीसंवरण के छठें अङ्क में प्रस्तुत किया है, जिसमें मेनकारूपधारी तपती नायक को पहचानती है कि ये मेरे पति हैं, किन्तु नायक उसे मेनका समझता है। इस अवसर का संवाद परिचेय है—

नायिका (मेनकारूपधारिणी)—(राजानं सस्पृहमवलोकयन्ती) महाराज, तव दर्शनसुखं कंचित्कालमनुभूय गमिष्यामि।

राजा—(सवितर्कमात्मगतम्)

दौत्यौचित्तं प्रियजने प्रतिवेदनीयं
कामं सखीप्रणयपेशलमस्तु वाक्यम्।
विष्यन्दमानरतिरागरसप्रवाह-
मालोकितं पुनरलक्षितपूर्वमस्याः॥ ६.७

(प्रकाशम्) अलं स्वैरासिकासुखेन। मम पर्युत्सुकं मनस्त्वरयति भवतीं गमनाय।

नायिका—(जलधर ध्वनिं श्रुत्वा प्रस्तुतं विस्मरन्ती)

अहं भीतास्मि। आर्यपुत्र, गाढं मामालिङ्गस्व।

राजा—(सक्रोधम्) आः पापे, किमर्थमनाचरसि।

नायमभिमतदयितागुणनिर्गलितहृदयो जनस्तथा मन्तव्यः, यथा त्वं तर्कयसि।

इसके पश्चात् नायक मेनका के विषय में खोटी-खरी कहता है।

गीततत्त्व

कतिपय स्थलों पर कवि ने गीततत्त्व का सन्निवेश सफलतापूर्वक किया है। यथा,

आयासितानामशरीरबाणैर्नितम्बिनीनां परिदेवितानि।
आत्मार्थमाकर्णयतां हि यूनां समागमो नाम सुखान्तरायः॥ २.१०

अधोलिखित पद्य में मेघ की चर्चा मेघदूत के छन्द मन्दाक्रान्ता में यक्ष की स्वर-लहरी में प्रस्तुत है—

लास्यारम्भप्रविततशिखान्नर्तयन्तं कलापान्
केकापूरप्रचितकुहरां कन्धरां द्रावयन्तम्।
त्वं प्रेक्षस्व प्रणयविवशः प्रेमवन्तं मयूरं
मा भूर्मेघ क्षणमपि रवेर्मण्डलस्योपरोधी॥ ५.११

रस

नायक का पूर्वराग-कोटि का शृङ्गार इस नाटक की एक नवीनता है। नायिका को देखने मात्र से ही वह उदग्र है—

> आरूढप्रणयेन यूनि मनसा क्रान्तां क्वचित् कामिनी-
> मेनां मत्पुरतो निधाय किरतः पौष्पानमून् मार्गणान्।
> पुष्पेषोर्यदिनाम शक्तिकलया मोहान्धकारस्पृशा
> सम्भिद्येत सखे ममापि हृदयं धैर्याय बद्धोऽञ्जलिः॥ २.९

एकोक्ति का रस-निष्पत्ति की दिशा में सर्वोपरि उपयोग इस नाटक में मिलता है, जिसका उल्लेख नायक के शब्दों में इस प्रकार है—

> आयासितानामशरीरबाणैर्नितम्बिनीनां परिदेवितानि।
> आत्मार्थमाकर्णयतां हि यूनां समागमो नाम सुखान्तरायः॥ २.१०

दिवस का अवसान समीप है—यह बताने के लिए नायक कहता है—

> अवसित एवायमरुणसारथेर्दिवसदीक्षाधिकारः।

कहीं-कहीं विदूषक के माध्यम से हास्य की प्रसादपूर्ण धारा प्रवाहित की गई है। तृतीय अङ्क में उस कर्णपूर को प्रच्छन्न रम्भा ने विदूषक के सामने गिराया, जिसे वानरों ने ले लिया था। झट से विदूषक ने कहा कि डरी हुई वानर जाति ने अन्तर्हित रहकर मेरा धन लौटा दिया। रम्भा ने कहा कि इसने तो मुझे खूब बनाया। उसने कहा—ध्वंसस्व ग्रामिकबटुक। त्वमेव वानरः।

वर्णन

शृङ्गारप्रधान इस नाटक में उद्दीपन-विभाव के रूप में प्रकृति की चारिमा का वर्णन प्रस्तुत है।[1] शिशिर-वसन्त का आन्तरालिक काल है, जिसमें कल्पवल्ली नायिका बन गई है—

> आपाटलं किसलयाधरमर्पयन्ती
> व्यावृण्वती मधुपझङ्कृतिसीत्कृतानि।
> अभ्याशचूतमरविन्दकुचोपपीड-
> मत्यायतं समुपगूहति कल्पवल्ली॥ २.४

अकाल (दुर्भिक्ष) का वर्णन संस्कृत साहित्य में विरल है। कुलशेखर ने मानो आँखों देखा अपने युग के अकाल का चित्र खींचा है—

---

१. दिवसावतार १.५, भागीरथी १.१० और आराम १.११ के वर्णन उच्चकोटिक हैं।

उद्युक्ता वागुराद्यैरहरहरुचितैर्मत्स्यबन्धप्रकारै-
र्मर्त्या निर्मत्स्यगंगाह्रदगतशफरीशेषमग्नावशिष्टा।
आसन्नारूढकण्ठैरपचिततनवः प्रायशः प्राणशेषैः
संगृध्यद्गृध्रचञ्चु व्रजकुटिलशिरः कर्मकर्मान्तभूमिः ॥

आकाशयान का वर्णन है—

कालः पातेष्वमीषां खुरपुटयुगयोर्मेघपृष्ठे हयाना-
मेकस्यैव क्षणस्य प्रथमचरमयोः पूर्वपाश्चात्त्यभागौ।
वेगस्तब्धा इवामुः कनकवलयवद् व्याप्तपर्यन्तरेखं
नेमीरावर्तमानाः पिशुनयति तडिच्चक्रभ्राक्रान्तिचक्रम् ॥ ५.१६

शैली

कवि कहीं-कहीं शब्द-चित्र खींच कर थोड़े शब्दों में बहुत-कुछ कह देने में निष्णात है। यथा,

दुष्टतुरंगेण कन्दुकक्रीडं मया क्रीडता कापि प्रक्षिप्तोऽस्मि।

अर्थात् घोड़े की पीठ से गेंद की भाँति दूर फेंक दिया गया।

इसी प्रकार का वाक्य है—ज्योत्स्नादुकूलावगुण्ठितोऽयं प्रदोषः।

गरिमा की अभिव्यक्ति विशेषरूप से समस्त पदावली के द्वारा की गई है। यथा,

राजा—अत्र तावदनिर्वाणमाणिक्यदीपमाला-दूरीकृत-गर्भगृहान्धकारा जाम्बूनदाकल्पकल्पितदिव्याकृतिवेषविशेषा सुधासौरभसुभगसुरतरुसुमनः-सम्पादितभक्तिसन्ताना सेयं सपर्या सूचयति दिव्यजनसम्पातम्।

उपर्युक्त गद्यांश में कवि की ललित पदावली अनुप्रासित है।

कवि ने इस रचना में ध्वनि की प्रौढिमा का निर्देश स्वयं किया है। इसके असंख्य उदाहरण मिलते हैं। यथा, नायिका को कहना है कि मेरी सखियाँ अब मुझे मरने नहीं देगीं। इसको व्यञ्जना से कहती है—

इदानीमेताभ्यां मम भ्रातुर्वैवस्वतस्य दर्शनं प्रतिषिद्धं भवति।

कहना है कि नायिका को देहज्वर महान् है। मेनका कहती है—

एतस्या अङ्गसंसर्गादतिसुकरो हुतवहोत्संगप्रवेशः।

राजा को मेनका से जानना है कि तपती कैसी है? वह पूछता है—अपि कुशलमस्मदसूनाम्।

कतिपय स्थलों पर झूठ बोलकर भी नायिकादि को उदग्र स्थिति में डालकर भावात्मक निष्पेषण किया गया है। षष्ठ अङ्क में परिस्थितिवशात् नायिका मेनका का रूप धारण करके नायक को देखने आ रही है। उसे विदूषक सर्वप्रथम देखता है और आगे संवाद है—

विदूषकः — एषा तत्रभवती तपती सम्प्राप्ता ।
राजा—कासौ, कासौ ?
नायिका—(सविषादम्) हं, ज्ञातास्मि ।
विदूषकः — पश्यैषा मेनकारूपेण प्राप्ता ।
नायिका—(सविषादम्) अवश्यं ज्ञातास्मि । सर्वथा अपराद्धास्मि तातस्य ।
राजा—(विलोक्य) अये सखी मेनका सम्प्राप्ता । सखे, कथमेनां मे प्रियां व्यपदिशसि ।
विदूषकः —एषा तस्याः शरीरभूतेत्येवं मया भणितम् ।

उपर्युक्त संवाद से प्रतीत होता है कि नायक और नायिका को ऐसी व्याकुलता में डालना झूठ बोले बिना सम्भव नहीं हो पाता ।

डा० डे ने तपतीसंवरण की आलोचना करते हुए, लिखा है कि 'यह वस्तुतः शिथिल रूपक के परिवेश में आख्यान है ।'[1] कथा में सान्धिक एकतानता के अभाव में यह आलोचना सर्वथा सत्य है । ऐसा लगता है कि कुलशेखर को जो संघटना-प्रवृत्ति अच्छी लगती थी, उसे सन्निवेशित करने का लोभ वे संवरण नहीं कर पाते थे । इस प्रकार यह नाटक अंग्रेजी के Closet drama के निकट पड़ता है ।

सुभद्राधनञ्जय

कुलशेखर का दूसरा नाटक सुभद्राधनञ्जय पाँच अङ्कों में प्रणीत है ।[2] इसमें सुभद्रा-धनञ्जय की सुप्रसिद्ध महाभारतीय प्रणयात्मक कथा का अभिनयात्मक विन्यास है ।[3]

कथानक

अर्जुन ने नियमानुसार एक वर्ष की तीर्थयात्रा समाप्त कर ली थी । उनका अन्तिम काम था सुभद्रा का प्रणयसुख प्राप्त करना, जिसके लिये वे घर नहीं लौट रहे थे । इस दिशा में प्रयास करने के उद्देश्य से कृष्ण से मिलने के लिए द्वारका की ओर

---

१. (The Tapatisaṁvaraṇa) is rather a narrative in a loose dramatic form. Hist. Skt. Lit. P. 466.

२. इस नाटक का प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज सं० १३ में हो चुका है । इसकी प्रति प्रयाग-विश्वविद्यालय-पुस्तकालय में है ।

३. सुभद्रा और अर्जुन के विवाह के प्रकरण में शृङ्गार और वीररस होने के कारण इसकी अतिशय लोकप्रियता रही है । इस विषय पर अनेक काव्यों का प्रणयन हुआ । केशवशास्त्री का सुभद्रार्जुन, गुरुराम का सुभद्राधनञ्जय, माधवभट्ट का सुभद्राहरण, रामदेव का सुभद्रापरिणयन आदि रूपक ही हैं । वेङ्कटाध्वरी ने भी एक नाटक सुभद्रापरिणय लिखा । नल्लाकवि और रघुनाथाचार्य के सुभद्रापरिणय नाटक इनके अतिरिक्त हैं । नाटकों के अतिरिक्त चम्पुओं की रचना भी इस प्रकरण पर हुई ।

चले। मार्ग में उन्हें प्रभासतीर्थ के समीप आश्रम मिला। उसमें वटवृक्ष के नीचे वे विश्राम कर रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि कोई राक्षस किसी कन्या (सुभद्रा) का अपहरण करके भागा जा रहा है। अर्जुन ने आग्नेयास्त्र के प्रभाव से उसे बचा लिया। उस कन्या को अर्जुन ने प्रथम दर्शन में ही मोह लिया। अर्जुन भी उसे देखकर मोहित हो गया। सुभद्रा के लिए प्रश्न था कि वह पहले ही अर्जुन से प्रेम कर रही थी। उसे यह ज्ञात नहीं था कि उसे बचानेवाला भी अर्जुन है, जो उसे स्निग्ध प्रतीत हो रहा है। उसे लगा कि मेरा मन व्यभिचारपरायण हो गया है। अर्जुन को भी लगा कि सुभद्रा में लगे मेरे मन को क्या हो गया कि वह किसी दूसरी सुन्दरी की ओर प्रवृत्त हुआ। कन्या तो अन्तर्धान होकर चलती बनी। अर्जुन के साथी विदूषक ने देखा कि अर्जुन इन्द्रप्रस्थ की द्रौपदी को मानो भूल चुका है। सुभद्रा के लिए अर्जुन यहाँ आया, पर इस सुन्दरी को देखकर उसे भी विस्मृत कर बैठा। उसकी इस गुत्थी को अर्जुन ने सुलझाया—

> एकस्याः किमपि वपुःश्रुतेन नाम्ना
> संकल्पैर्लिखितममुत्र चित्रभित्तौ।
> अन्यस्याश्चरितफले दृशौ शरीरे
> प्रेयस्योः पृथुलदृशोरियं दशा मे॥ १.१६

विदूषक से अर्जुन ने कहा कि इस दृष्ट सुन्दरी को मिलाओ।

विदूषक ने कहा कि यह असंगत बात है कि जिसका नाम-संकेतादि ज्ञात नहीं, उसके चक्कर में पड़े हो। अर्जुन ने कहा कि तब चलो नगर में चलें। सुभद्रा के चक्कर में अर्जुन साधु बना और विदूषक उसका चेला। विदूषक वेषपरिवर्तन-हेतु वस्त्रादि लाने के लिए आश्रम में गया। वहाँ उसे एक स्वर्णिम गात्रिका (गाँती) मार्ग में गिरी मिली। उस गात्रिका पर जो लेख था, उसमें अर्जुन के दश नाम थे। इससे अर्जुन इस परिणाम पर पहुँचा कि जिस कन्या को मैंने बचाया था, वह भी इसी द्वारकापुरी की है। वह गात्रिका उसी कन्या की थी।

साधु बन कर अर्जुन रैवतक पर्वत पर कांचनोद्यान में विराजमान हुआ। उसकी ख्याति सुनकर उसे देखने के लिए कृष्ण और बलराम पहुँचे। कृष्ण साधुवेषधारी अर्जुन को पहचानते ही थे। उन्होंने अर्जुन की सुभद्राप्राप्तिविषयक अभिलाषपूर्ति के विषय में कहा—

> यस्याः कृते यतिधुरामवलम्बमानो
> योगं दधासि न चिरादपुनर्निवृत्तिम्।
> क्लेशं जहत् सहसुखं मधुरां मतिर्मे
> प्राप्नोषि निर्वृतिमचिन्त्यरसां सुभद्राम्॥ २.७

बलराम ने स्वयं प्रस्ताव किया कि साधु को योगसिद्धि के लिए कन्यापुर में रहना

चाहिए। उनके आदेशानुसार साधु को सुभद्रा द्वारा निर्मित माधवीलतागृह ध्यान लगाने के लिए मिल गया। वहाँ सेवा करने के लिए सुभद्रा को नियुक्त कर दिया गया।

अर्जुन प्रभदवन में जा पहुँचा। वहाँ सारा वातावरण शृङ्गारित था—

विश्लिष्यद्दलमालया प्रविरलैः पृथ्वीरुहामासवै-
रन्तर्बद्धकलङ्कया कलिकया प्रस्तूयते मंजरी।
गायन्तो गलरागमङ्कुररसैश्चूतस्य चञ्चुक्षतैः
श्च्योतद्भिः शिशिरोपरोधशिथिलं पुष्णन्ति पुंस्कोकिलाः॥ २.६

सुभद्रा आई। उसे देखकर अर्जुन ने पहचान लिया कि मैंने इसकी ही रक्षा राक्षस से की थी। जब अर्जुन से थोड़ी दूर सुभद्रा थी तो उसने अपनी सखी से कहा कि शैशव से ही अर्जुन के पराक्रम को सुनकर उसे अपना मन दे चुकी हूँ। पर अब तो मन किसी अन्य को दे दिया। मैं तो पण्यस्त्री-सी बन गई हूँ।[1]

इधर सुभद्रा की सखियों ने विदूषक को गात्रिका लिये पकड़ा। उसने सुभद्रा से बताया कि कैसे वह मिली है। सुभद्रा ने पूछा कि वह तुम्हारा परमहंस कहाँ है, जिसके साथ तुम प्रभासतीर्थ पर होने की बात कह रहे हो, जब यह गात्रिका तुम्हें मिली। विदूषक ने कहा कि कहीं इसी नगर में होंगे।

सभी मिले। सुभद्रा ने देखा कि यह परमहंस तो कामदेव ही संन्यासी-रूप में है। उसे लगा कि अब तीन के प्रति मेरी प्रेम प्रवृत्ति प्रवर्तित है—शैशव से अर्जुन के प्रति, राक्षस से बचाने के दिन से रक्षक के प्रति और आज से इस परमहंस के प्रति। कुलस्त्री का यह समुदाचार नहीं होता। सखियों ने देखा कि सुभद्रा ने जब से इस परमहंस का दर्शन किया है, तब से इसकी शृङ्गारित वृत्तियाँ और बढ़ गई हैं। परमहंसरूपधारी अर्जुन की पूजा सुभद्रा ने की। यह सब देखकर विदूषक के मुँह से सहसा निकल पड़ा—

भोः केनेदानीं मूढेन पाटच्चरो भाण्डागाररक्षाधिकारे लम्भितः।

सुभद्रा नित्य परमहंस के लिए भिक्षादि की व्यवस्था करने लगी। वह साथ ही पूर्वराग की विरहज्वाला में सन्तप्त होकर कृश होती जा रही थी। एक दिन उसकी माता ने उसके बहुमूल्य हार का दान पूजा के पश्चात् विदूषक को दिलवाया। नगर में समाचार फैल गया कि साधुवेश बदले हुए कोई देवकुमार हैं। इसी बीच सभी पुरुष नागरिक किसी दूसरे द्वीप में उत्सव मनाने के लिए चलते बने।

अर्जुन भी सुभद्रा के पूर्वानुराग में गलने लगा। उसने विनोद के लिए गात्रिका की सोची। उसी समय विदूषक वहाँ गात्रिका लिये आ पहुँचा। उसे वह सुभद्रा के शुभ के लिए ब्रह्मदान में मिली थी। अर्जुन ने उसे हृदय से लगाकर अपने को शान्त

---

१. यह उक्ति अदृष्टाहति (Irony) का कलात्मक उदाहरण है।

किया। विदूषक से उसने कहा कि 'सुभद्रा से मिलाओ। मैं तो अब मर ही रहा हूँ।' विदूषक ने कहा—'कृष्ण ने तुम्हें सुभद्रा दे ही दी है। वह भी तुम्हें चाहती है। तुममें अद्वितीय बल है। इतने से सब कुछ ठीक हो जाता है।' फिर वह अर्जुन को शीतोपचार के लिए सहकारमण्डप में ले गया।

इधर सुभद्रा मदनातङ्क से मरी जा रही थी। वह पहले से ही सहकारमण्डप में थी। अर्जुन ने उसकी मदनोन्मत्त बातें सुनीं कि मुझे आरम्भ से अर्जुन से प्रेम रहा है, फिर राक्षस से बचानेवाले से प्रेम हो गया और अब इस आगन्तुक साधु से प्रेम हो गया। अर्जुन ने कहा—

> अस्यामुल्लसदूर्मिभङ्गकलिकाक्लृप्तप्रभेदः प्रिये
> वाप्यामेष परिस्फुरत् प्रतितनुः सूतिः सुधानामिव।
> संक्रान्तस्तव मानसाम्भसि मुहुः संकल्पवीचीचयै-
> र्मूर्च्छद्भिर्बहुधाभिदामुपगतः सोऽयं सुजन्मा जनः॥ ३.१०

सुभद्रा अपने चित्त का लगाव तीन-तीन से प्रतीत करके अपने को पापी समझ कर फाँसी लगाकर मरने ही जा रही थी कि सखियों ने आकर उसे बताया कि वह साधु तो तुम से भी बढ़ कर मदनपीडित हैं। सुभद्रा ने मन में सोचा कि साधु को शृङ्गारपाश में मेरे कारण आबद्ध होना भी मेरे लिए कलङ्क की बात होगी। उसने दोनों सखियों को काम पर भेज कर फिर मरने के लिये फाँसी लगाने का उपक्रम किया तो अर्जुन ने आकर फाँसी के लिए प्रयुक्त लतापाश को फेंक दिया। सुभद्रा ने उससे कहा कि मुझे तीन से प्रेम की विडम्बना पीडा दे रही है। मरने दें। अर्जुन ने रहस्योद्घाटन किया—

> सार्धं प्रेम्णा स्तनसरसिजे प्रोद्गते यद्गतेन
> त्वत्संस्पर्शात् पुलकितवपुर्यः प्रभासोपकण्ठे।
> प्रव्रज्यायां प्रणयमकरोद् यश्च सम्प्राप्तये ते
> मामेवामूनसितनयने तानपि त्रीनवेहि॥ १३

अर्जुन ने उसका पाणिग्रहण करना चाहा। पर इसके पहले कन्या का याचना करनेवाला और देनेवाला भी तो होना चाहिए था। उन्होंने क्रमशः कृष्ण और महेन्द्र का स्मरण किया। वे दोनों स्मरण मात्र से ही उपस्थित हुए। काश्यप पुरोहित बने।[1]

कृष्ण ने बलराम और उद्धव आदि से बिना बताये ही सुभद्रा को अर्जुन के लिए दे दिया। यह सारा कार्य गुपचुप विधि से हो गया। एक दिन सुभद्रा साङ्ग्रामिक रथ पर बैठकर स्यन्दनव्रत के बहाने बाहर गई और वहीं से अर्जुन के साथ चलती बनी। तब तो द्वारिका में बड़ी हलचल मची। सभी यादव अर्जुन से लड़ने के लिए सन्नद्ध थे।

---

1. इस प्रकरण पर कुमारसम्भव की छाया है।

अर्जुन ने सबके छक्के छुड़ाये। यादव सन्धि करके लौट आये। अर्जुन, विदूषक, सुभद्रा और उसकी चेटी रथ पर आगे बढ़े। सुभद्रा रथ पर सारथ्य कर रही थी। फिर बलराम के नेतृत्व में सात्वत लड़ने आये। वे अपने हल-मूसल से सभी पाण्डवों सहित त्रिलोक का विनाश करने को उद्यत थे—

लोकः स एष सहतां मुसलाभिघातम्। ४.१२

तभी कृष्ण आये। उन्होंने बलराम को समझाया कि आप ही ने तो अर्जुन को गान्धर्व विवाह का अवसर दिया और कहा कि यह विवाह हम लोगों के लिए गौरवास्पद है। बलराम को मानना ही पड़ा। कृष्ण ने उपहार सामग्री के साथ खाण्डवप्रस्थ की यात्रा की, जहाँ पाण्डव-बन्धु थे।

इन्द्रप्रस्थ में अर्जुन और सुभद्रा के आगमनोत्सव की बड़ी सज्जा की गई। कृष्ण, बलरामादि भी थोड़ी दूर पर उपहार सामग्री के साथ रुके हुए थे। सुभद्रा मार्ग में नगर के बाह्योद्यान में काली के मन्दिर में दर्शन के लिए गई। वहाँ से कोई निशिचर उसे ले उड़ा। अर्जुन उसके वियोग में मरणासन्न हो गये। उसे सुभद्रा की गात्रिका के स्पर्श से पुनः चेतना प्राप्त हुई। विदूषक के कहने पर वह पुनः सुभद्रा को राक्षस से बचा लाने के लिए समुद्यत हुआ। इसी बीच द्रौपदी का रूप धारण करके काली और ग्वालिन के वेश में सुभद्रा उसके पास आ गई। अर्जुन ने उन्हें देखकर कहा कि सुभद्रा तो ठीक है, किन्तु द्रौपदी को उसे मेरे पास लाने की क्या आवश्यकता आ पड़ी। इस छद्मरूपिणी द्रौपदी के सूखे व्यवहार से अर्जुन खिन्न था। इसी बीच वास्तविक द्रौपदी भी आ पहुँची। वह सुभद्रा के नष्ट होने के समाचार को सुनकर स्वयं मरणोद्यत हो चुकी थी। आने पर वहाँ उसने देखा कि अर्जुन के पास सुभद्रा वर्त्तमान है। उधर सुभद्रा ने देखा कि मेरे साथ याज्ञसेनी बन कर आई हुई स्त्री के समान कोई दूसरी स्त्री आ रही है। वह समझ गई कि आनेवाली स्त्री वास्तविक द्रौपदी है। विदूषक ने देखा कि ये दो-दो पाञ्चाली उद्यान में वर्त्तमान हो गई। उसने अर्जुन से कहा कि मुझे डर लगता है। यह सब राक्षसों का गड़बड़-घोटाला है। काली ने देखा कि मेरे रूपपरिवर्तन का भण्डाफोड़ हुआ। अर्जुन ने समझ लिया कि पहले आई हुई द्रौपदी मायात्मक है, क्योंकि नीरस है। दूसरी वास्तविक है, क्योंकि प्रेमशीला है। काली ने अपनी मायारूपिणी होने का रहस्योद्घाटन किया—

किरीटिन् मास्म कुप्यस्त्वं सहजां मे कनीयसीम्।
आर्येहागता दातुमेनां ते सहचारिणीम्॥ ५.६

तब तो सभी परिचित होकर परस्पर प्रेम से मिले। काली ने सुभद्रा की विपत्तिमयी घटना का विवरण सुनाया—दुर्योधन ने सुभद्रा से विवाह करने के लिए एक बार अलम्बुष नामक राक्षस से उसका अपहरण कराया था। तब तुमने उसे बचाया था। आज फिर वही राक्षस उसे अपहरण करके भगाने आया तो मैंने बचाया।

अन्त में अन्य गच्छमान यादवों के साथ आकर कृष्ण युधिष्ठिरादि से मिल कर प्रसन्नतापूर्वक बोले—

रत्नालङ्कारनिश्रं हरणमुपहृतं पादपद्मौ पृथायाः
प्राप्तौ मूर्ध्नाप्रयातं सकलसफलतां कर्म दुर्योधनस्य ।
निःशेषन्निष्टरोषः सह मधुनिवहैरागतः सीरपाणि-
र्धर्मः साक्षात्कृतोऽसाविह सह सहजैः साम्प्रतं निर्वृतोऽस्मि ॥

सुभद्राधनञ्जय की कथा का मूल महाभारत के आदिपर्व में मिलता है। कुलशेखर ने इसमें समकालिक प्रेक्षकों की रुचि के अनुकूल नीचे लिखे कथांशों को जोड़ा है—दो बार अलम्बुष का सुभद्राहरण करना, गात्रिका की योजना, परमहंसरूपधारी अर्जुन से मिलने के लिए कृष्ण और बलराम का जाना, सुभद्रा को परमहंसरूपधारी अर्जुन की सेवा करने का अवसर पाना, सुभद्रा का तीन पुरुषों के प्रति प्रेमाकृष्ट होना, अर्जुन का आत्मरक्षा में युद्ध करना, सुभद्रा का लतापाश से फाँसी लगाना, द्रौपदियों का अन्तिम अङ्क में आना आदि नई बातें हैं, जिनसे इस नाटक का अभिनय सुरुचिपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।

शिल्प

नायकों को किंचित् अज्ञान में रखकर उनके मन में वितर्क और अन्यथाभाव उत्पन्न कराने में कुलशेखर दक्ष हैं। सुभद्रा को अधूरा ही जान कर उसकी बातें सुनकर अर्जुन के मुँह से कवि ने कहला दिया है—

अलमनया स्वकुलकलङ्कभूतया ।

ऐसी स्थिति अस्थायी रहती है। अर्जुन के भ्रम को कवि ने सुभद्रा की बातों से ही दूर करा दिया तो उसने गाना गाया—

इमौ कर्णौ कर्णौ श्रुतिसुखनिविष्टेदशगिरा-
वमू दृष्टी दृष्टी सपदि परिपीताकृतिसुधे ।
अमून्यङ्गान्यङ्गान्यवशमपतद् येषु गगना-
दिदं चित्तं चित्तं वहति यदि मां वामनयनाम् ॥ २.१२

उपर्युक्त शिल्प द्वारा तृतीय अङ्क में कवि ने दिखाया है कि सुभद्रा अर्जुन, राक्षस से रक्षा करनेवाले और आगन्तुक साधु को अलग-अलग मान कर इन तीनों के प्रति प्रेम होने से अपने को पापी समझ कर मरणोद्यत थी। ऐसी स्थिति नाट्य साहित्य में इतने वैविध्यपूर्वक प्रथम बार समुपस्थित की गई है। कुलशेखर को इस प्राच्छन्निक शिल्प का परिनिष्ठाता माना जा सकता है।

रूप बदलने की प्रक्रिया इस नाटक के पञ्चम अङ्क में आती है। यद्यपि यह नितान्त आवश्यक नहीं था, फिर भी मायामय पात्रों की लोकप्रियता के कारण कवि

ने कात्यायिनी करे द्रौपदी-रूप में प्रस्तुत करा दिया तब तो रङ्गमञ्च पर दो द्रौपदियों को दर्शकों ने देखा ।

संवाद

संवाद की स्वाभाविकता कहीं-कहीं अतिरुचिर है । यथा,

विदूषकः— भो, एतस्मिन् विवादे तव मया दत्तो जयः । अन्यत् किमपि रहस्यं प्रक्ष्यामि ।

कुलशेखर ने एकोक्ति का प्रायशः समीचीन प्रयोग किया है । द्वितीय अङ्क में विषकम्भक के पश्चात् अर्जुन एकोक्ति में कामदेव को सम्बोधन करके अपनी परिस्थिति को समझाता है । इसी प्रकार की अनुत्तम एकोक्ति तृतीय अङ्क में सुभद्रा की है, जब वह अपने को तीन पुरुषों के प्रेम मे पगी होने के भ्रम से अवसन्न है । ऐसी एकोक्तियों में पात्र के अन्तस्तम के उद्गीर्ण होने से रसनिर्झरिणी का अप्रतिम और अन्यथासिद्ध प्रवाह बन पड़ता है । लोकोक्तियों से संवाद प्रभविष्णु बन पड़ा है । यथा,

निर्मूला हि पापकानां प्रलापा भवन्ति ।
साधीयसां वचसां कामदुघाः शक्तयः ।
दुर्विभाव्या दैवगतयः ।

कतिपय स्थलों पर असङ्गति के प्रयोग से मन्तव्य की अभिव्यक्ति की गई है । यथा सुभद्रा के विषय में,

अये स एवायमनिर्णीताकरो मणिर्यदुपलम्भे वयमनाशंसवः संवृत्ताः ।

अन्य ऐसी उक्तियाँ हैं—

उद्वेलस्य मकराकरस्य तरङ्गावलेपं हस्तेन निवारयसि ।
ऋषभकान्महिषको दुर्बलः संवृत्तः ।

शैली

कवि ने उक्तियों में वाक्पाटव का परिचय दिया है । यथा,

जललिखितान्यक्षराणि कालान्तरे वाचयितुमुपक्रमे ।

कहीं-कहीं अनुप्रास में संगीत का ध्वनन रमणीय है । यथा,

अनिलयसि लज्जां धैर्यबन्धं धुनासि ।
प्रथयसि परितापं प्रश्रयं प्रक्षिणोषि ॥ २.७

त्रुटियाँ

अपनी माता को अर्जुन कुन्तिभोजतनया कहता है । यह अनुचित प्रतीत होता है । अर्जुन को सुभद्रा के वियोग में मरने के लिए उद्यत बताना भी अभारतीय प्रयोग प्रतीत होता है । उसे बल से पुनः प्राप्त करने के स्थान पर स्वयं मरने लिए उद्यत

होना कापुरुषता है, जो अर्जुन से कोसों दूर थी। अर्जुन रङ्गमञ्च पर नायिका का पञ्चम अङ्क में आलिङ्गन करता है। यह प्रयोग भी अभारतीय है।

रस

हर्षाधिक्य की परिस्थिति में गहरी वेदना की अनुभूति का साक्षात् दर्शन कुलशेखर ने कराया है। सुभद्रा मरने जा रही थी—यह समझकर कि मुझे तीन से प्रेम करने का व्यभिचारिक पाप लग रहा है। अर्जुन ने प्रकट होकर कहा कि वे तीनों प्रणयपात्र मैं ही हूँ। तब तो नायिका को कहना पड़ा—

हा धिक्, शोकाद् द्विगुणमसह्यवेदना मे प्रीतिः। शोके तावत् प्राणानां परित्यागे महान् प्रयासः कृतः। इदानीं पुनः स्वयमेव निर्गच्छन्तीव मे प्राणाः।

सुभद्राधनञ्जय और तपतीसंवरण—ये दोनों रूपक छायानाटक की श्रेणी के हैं, क्योंकि इनमें अनेकशः नायकों की छायात्मक उपस्थिति हुई है।

अध्याय ८

विबुधानन्द

विबुधानन्द नाटक का प्रणयन शीलाङ्क ने नवीं या दसवीं शती में किया।[1] इसमें राष्ट्रकूट राजवंश की चर्चा से अनुमान होता है कि यह रचना राष्ट्रकूटयुग (८ वीं से १० वीं) शती से सम्बद्ध है और कवि का राष्ट्रकूट राजाओं का आश्रित होना सम्भाव्य है। शीलाङ्क का नाम जैन साहित्यकारों में सुप्रसिद्ध है। उन्होंने एकादश अङ्गों पर टीकायें लिखीं, जिनमें से दो आज भी प्राप्य हैं। विबुधानन्द में राष्ट्रकूट-वंश का नायक है। यह वंश आठवीं से दशवीं शती तक समुन्नत रहा।[2]

लक्ष्मीधर नामक राष्ट्रकूटवंशी राजकुमार एकाकी पृथ्वीभ्रमण करने के लिए निकल पड़ा। उसे अपने पिता की बात लग गई थी कि कोई मनुष्य अपने निजी पराक्रम से बहुत आगे नहीं बढ़ सकता। लक्ष्मीधर को यह सिद्ध करना था कि निजी पुरुषार्थ सबसे बढ़कर है।

राजशेखर नामक राजा की राजधानी में लक्ष्मीधर आया। राजा ने उसे अपनी कन्या बन्धुमती और आधा राज्य देने का सन्देश कञ्चुकी से भेजा। नायिका और नायक में क्रीडोद्यान में प्रथम दर्शन में ही प्रणय का सूत्रपात हो चुका था।

एक दिन विदूषक और नायक जब मिले तो विदूषक के निर्देशानुसार वह कन्यान्तःपुर चित्रशाला में विश्राम करने पहुँचा। वहीं नायिका अपनी सखी के साथ आ पहुँची। सखी के निर्देशानुसार नायिका ने नायक का चित्र बनाया और सखी से कहा—

> सखि, चित्रगतोऽपि प्रियतमः किमपि तरलयति मानसावेगम्।
> अङ्गैः सरसप्रियकोमलैः किं पुनः स्वरूपेण ॥ १६

वे दोनों विदूषक और नायक की बातें सुनने लगीं। नायक ने नायिका का वर्णन किया—

---

१. जैन संस्कृति का यह प्रथम प्राप्य नाटक प्रतीत होता है। इसका प्रकाशन चउपन्नमहापुरुषचरियं में काशी से हो चुका है। अलग से इसका प्रकाशन हरियाना बुक डिपो, रेलवे रोड, रोहतक से १९५५ में हुआ है। इसकी प्रति पार्श्वनाथ विद्यालय, रिसर्च इंस्टीट्यूट वाराणसी में है।

२. इस वंश का राजा अमोघवर्ष (८१४-८७८ ई०) जैन धर्म में अभिरुचि रखता था। उसके शासनकाल में इस ग्रन्थ के प्रणयन की सम्भावना हो सकती है।

रूपं सातिमनोहरा चतुरता वक्त्रेन्दुकान्तिस्फुटा
बिब्बोका हृदयङ्गमाः स्मितसुधागर्भं च तद्भाषितम् ।
लावण्यातिशयस्सखे पुनरसौ तत्प्रेक्षितं सस्पृहं
मुग्धायाश्चरितं नितान्तसुभगं तत्केन विस्मार्यते ॥ १८

नायिका के प्रेम में नायक निमग्न है, पर नायिका को अभी पूरा विश्वास नहीं पड़ रहा है कि नायक उसी के प्रेम में निमग्न है। इसका प्रमाण पाने के लिए नायिका और उसकी सखी नायक और विदूषक की बातें और अधिक दत्तचित्त होकर सुनने लगीं, जिससे प्रतीत हुआ कि नायक को भी सन्देह था कि नायिका उसी के प्रेम में सन्तप्त है। विदूषक नायिका के प्रेम को उसके अनुभावों के वर्णन से प्रमाणित कर रहा था। तभी कंचुकी आ पहुँचा। उसने नायक से कहा—

गृह्णातु चास्मदूधृतये राज्यार्धं बन्धुमतीसुकन्यकामिति ।

नायक का उत्तर सुनकर भी नायिका की द्विविधा मिटी नहीं, क्योंकि उसने बन्धुमती को स्वीकार करने के साथ ही कहा कि किसी दूसरी ओर प्रवृत्त चित्त को किसी अन्य दिशा में नहीं मोड़ा जा सकता। यह सुनकर नायिका मूर्छित हो गई कि जिस पर मैं अनुरक्त हूँ, उसका चित्त कहीं अन्यत्र आसक्त हो सकता है।[1] अन्त में नायक ने बन्धुमती को स्वीकार कर लिया।

विदूषक ने वहीं बने हुए नायक का चित्र उसे दिखाया। नायक ने अपने चित्र के पास ही अपनी प्रेयसी नायिका को चित्रित कर दिया, जिसे वह नहीं जानता था कि यह बन्धुमती ही है। नायक ने अपने चित्रकर्म की मीमांसा की—

घुणाक्षराकारमदो मतिर्मे मन्ये विधात्रापि न शक्यमन्यत् ।
रूपं विधातुं रुचिताङ्गयष्टेः कुर्यात् कथं तद्विधि मादृशोऽन्यः ॥ २६

फिर वे चलते बने। थोड़ी दूर जाने पर नायक ने विदूषक से कहा कि मेरा बनाया चित्र मिटा आओ, नहीं तो उससे कोई कुछ अन्यथा सोच सकता है। जब विदूषक चित्र मिटाने आया तो वहाँ पहले से ही आई हुई सखी ने उसे पकड़ लिया। उसे बचाने के लिए नायक भी आ पहुँचा। विदूषक ने नायक और नायिका का पाणिग्रहण करा दिया। नायिका के मान को दूर करने के लिए नायक ने कहा—

चिरमाशंसितस्पर्शो येन स्वप्ने प्रतारिताः ।
स कथं मुच्यते प्राप्तः परितोषकरः करः ॥ २६

कंचुकी ने आकर बताया कि विवाह का मुहूर्त अभी है। विवाह हुआ।

---

१. यह प्रकरण तत्सदृश नागानन्द के प्रकरण पर उपजीवित है। नागानन्द में द्वितीय अंक में नायिका ने नायक के विषय में कहा है—किं विस्मृतं त एतस्यान्य-हृदयत्वम्। नायक ने नायिका को ग्रहण करने के प्रस्ताव के उत्तर में नागानन्द में कहा है—न शक्यते चित्तमन्यतः प्रवृत्तमन्यतः प्रवर्तयितुम्। विबुधानन्द में नागानन्द के इस वाक्य को प्रायः पूरा का पूरा ही ले लिया है।

राजकुमार नायिका की आभूषण-पेटिका देख रहा था। उसमें छिपे साँप ने उसे काटा और वह मर गया।

वन्धुमती उसी के साथ चिता में जल मरी। राजा के प्रव्रज्या लेने के विचार का विरोध रानी ने यह कहकर किया कि अभी आपका पुत्र अशक्त है। राजशेखर ने कहा—मोक्षं प्रति यतिष्ये।

समीक्षा

विबुधानन्द का कथानक जैनसंस्कृति के अनुरूप है, जिसके अनुसार राजकुमार श्रमण करने के लिए निकलते थे।

रंगमंच कम से कम कुछ देर के लिए दो भागों में विभक्त है। एक ओर नायिका अपनी सखी चित्रलेखा के साथ बैठी हुई दूसरी ओर बैठे हुए नायक और विदूषक की बातें सुनती हैं और अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई बातें करती हैं।

शैली

शीलाङ्क का अलङ्कारों का प्रयोग कहीं-कहीं प्रत्यक्षीकरण के लिए प्रयुक्त है। यथा,

त्वं हृदय, जलभृत इव घटो न शतधा भेदमुपगच्छसि।

अन्यत्र—दृश्यते तव मनोरथतरोः कुसुमोद्गमः।

विबुधानन्द की भाषा सरल और अभिनयोचित है। अलंकारों की सूक्ष्मता से पद्यों में निखार उत्पन्न किया गया है।

उपदेश

धार्मिक नाटक का उपदेशात्मक होना अस्वाभाविक नहीं है, यद्यपि इसमें ९०% अंश प्रेमकथात्मक ही है। नायक की मृत्यु के पश्चात् उपदेश का अवसर कवि को मिला है। वह कहता है—

मन्त्रैर्योगरसायनैरनुदिनं शान्तिप्रदैः कर्मभिः
युक्त्या शास्त्रविधानतोऽपि भिषजा सद्बन्धुभिः पालितः।
अभ्यङ्गैर्वसुभिर्नयेन पटुना शौर्यादिभी रक्षितः
क्षीणे ह्यायुषि किं कश्चित् कथमपि त्रातुं नरः शक्यते ॥ ३५ ॥

अर्थात् परलोक की चिन्ता करो।

विबुधानन्द सूक्तिरत्नाकर है। सूक्तियों के द्वारा जीवन के गहन अनुभव और शान्ति के सन्देश प्रस्तुत किये गये हैं। यथा,

१. घटयति विघटयति पुनः कुटुम्बकं स्नेहमर्थमनवतरम्।
२. भवितव्यतैव लोके न खेदनीयं मनस्तेन।
३. विहाय शोकसरणीं कार्ये मनो दीयताम् ॥

४. वज्रप्रकोष्ठकरजाग्रचपेटघात-
निष्पिष्टदन्तिदशनोत्कटमौक्तिकौघः ।
सिंहः सहायविकलोऽपि दलत्यरातीन्
अन्तर्गतं ननु सदैककमेव सत्त्वम् ॥ १२
५. अविरुद्धं कन्यादर्शनम् ।
६. सहकारमंजरीं वर्जयित्वा महामहिमपरिमलोद्गाराम् ।
अभिलषत्यर्कवल्लीं कुत्रापि किं मधुकरो युवकः ॥ १६
७. न च कमलाकरं वर्जयित्वान्यं राजहंसमालाभिलपति ।
८. न शक्यमन्यतः प्रवृत्तं चित्तमन्यतो दातुम् ।
९. यच्चिन्त्यते हृदयेन नैव युज्यते न चैव युक्तिभिः ।
विघटन-संघटनपरस्तदपि हताशो विधिः करोति ॥ २५
१०. स्त्रीणां रोदनेनैव स्नेहाविष्करणं नानुष्ठानेन ।

रङ्गमञ्चीय निर्देश

विबुधानन्द में रंगमञ्चीय निर्देश प्रकाम विस्तृत हैं । यथा,

१. ततो बन्धुमतीं दृष्ट्वा साशङ्केव विस्मयोत्फुल्ललोचना गृहीतवर्त्तिका लिखितुमारब्धा ।

२. समारूढो विधृतश्चन्द्रलेखया । ततो वातायनस्थः कुमारमाह्वयति फूत्करोति च ।

३. कुमारस्तथा करोति पश्यति च समारूढश्चन्द्रलेखा समन्वितां बन्धुमतीम् । परस्परानुरागं नाटयतः ।

एकोक्ति

विबुधानन्द में एकोक्ति का वैशद्य स्वाभाविक है । आरम्भ में कंचुकी रंगमञ्च पर अकेला है । वह अपनी वृद्धावस्था, दासवृत्ति आदि की निन्दा करते हुए कहता है—

पिपतिषुरद्य श्वो या जराघुणोत्कीर्णदेहसारोऽपि ।
धर्मं प्रति नोद्यच्छति वृद्धपशुस्तिष्ठति निराशः ॥ ६

इसी एकोक्ति में वह अपने भावी कार्यक्रम की सूचना देता है कि कैसे इसमें करुणात्मक कथान्त होगा ।[1]

चतुरिका नामक चेटी भी अपनी एकोक्ति द्वारा अपना कार्यक्रम बताती है—मुझे मेरी स्वामिनी ने भेजा है कि इन कुलदेवी को चढ़ाये लड्डुओं को अतिथि-विशेष को दे आओ ।

अन्त में नायक की एकोक्ति है, जिसमें वह आत्मपौरुष और पिता के साथ अपने सम्बन्ध की चर्चा करता है ।

---

१. यह अर्थोपक्षेपक में होना चाहिए था, अङ्क में नहीं

रस

करुण की इस कथा में हास्य की छटा कहीं-कहीं पाठक को उबारने के लिए प्रयुक्त है। कंचुकी और विदूषक की बातचीत इस प्रकार चलती है—

कंचुकी—विरूपोऽपि भूत्वा एवं विकुरुपे।

विदूषकः—अयि कृतान्त, न हि सम्यगात्मानं प्रलोकयसि। उद्वसितदन्तमाला-मुखं वेपितशरीरं येन परमुपहससि।

ऐसी ही परिस्थिति में शृङ्गाराभास का रंगढंग भी अनूठा है। विदूषक चेटी चतुरिका से कहता है—

भवति, एभिः सुस्निग्धैः सुपरिणाहैः बहुजनप्रार्थनीयैस्तवस्तनकलशैरिव दर्शनमुपगतैरपि तथा परितुष्टो न यथा वयस्यलाभप्रयुक्त्या अपि।

अन्यत्र भी कवि शृंगार का विशेष प्रेमी है, यद्यपि वह जैनाचार्य है।[1] आचार्यों को शृंगार के विषय में अपनी लेखनी संयत रखनी चाहिए थी, पर वे शृंगार-प्ररोचन को भी धर्मप्रचार का साधन मानते हुए उसे छोड़ न पाये।

---

१. कवि ने नायिका का वर्णन किया है—

सच्चामीकरचारुकुम्भयुगवत् तन्व्याः स्तनौ राजतः।
श्रोणीमन्मथमन्दिरोरुयुगलं स्तम्भायतेऽस्याः स्फुटम्॥ २७

अध्याय ९

कल्याणसौगन्धिक

नीलकण्ठ-विरचित कल्याणसौगन्धिक व्यायोग है।[1] इसके रचयिता नीलकण्ठ केरल में परमाग्रहार के रहने वाले थे, जहाँ कात्यायनी के पूजक ब्राह्मणों का सम्प्रदाय अभ्युदय कर रहा था।[2] कल्याणसौगन्धिक की रचना कब हुई—इस प्रश्न का कोई पक्का समाधान नहीं हो सका है। नीलकण्ठ को नवीं शती से लेकर १५ वीं शती के बीच संशोधकों ने रखा है। डा० डे० के मतानुसार वे ९०० ई० के कुलशेखरवर्मा के समकालीन हो सकते हैं।

कल्याणसौगन्धिक में महाभारत के वनपर्व की वह सुप्रसिद्ध कथा है, जिसमें द्रौपदी के प्रीत्यर्थ भीम सौगन्धिक पुष्प लाने के लिए गन्धमादन पर्वत पर यक्ष-राक्षसों से युद्ध करते हैं और लौटते हुए हनुमान् से विवाद करते हैं।

किसी दिन वायु के द्वारा उड़ाकर लाये हुए दिव्य कुसुम को देखकर द्रौपदी ने कहा कि ऐसे अन्य पुष्प भी चाहिए। झट भीम पुष्प लाने दौड़ पड़े। मार्ग की संकट-मयी परिस्थितियों को जाननेवाले एक तपस्वी ब्राह्मण-दम्पती ने कुछ देर तक उनका पीछा करके उनको रोकना चाहा, पर वे वायुजयी भीम का कहाँ तक पीछा करते, क्योंकि भीम का भागना क्या था—

> व्यायच्छन् गदया वने मृगकुलं शंखस्वनैस्त्रासय-
> न्नुद्वेलीकृतसिन्धुरम्बुभिरुरः क्षिप्ताम्बुवाहस्तुतैः।
> पाञ्चाल्या मनसः प्रियाणि कुसुमान्याहर्तुमिच्छन् गुरोः
> संघर्षादिव गन्धमादनमहं शैलेन्द्रमारूढवान्॥

भीम उस जलाशय के समीप पहुँचे, जिसमें उनके अभीष्ट फूल खिल रहे थे—

> हैमाः स्वच्छे पयसि निकराः पद्मसौगन्धिकानाम्।
> नालैः शुभ्रैर्मरकतमयैर्विद्रुमैश्चाभिरामाः॥

भीम निर्भीक होकर पुष्पावचय करने लगे। तभी क्रोधवश नामक राक्षस भीम को दण्ड देने के लिए आ पहुँचा। उसने भीम को धमकाते हुए कहा—

---

१. इसका प्रकाशन बार्नेट ने Bulletin of the School of Oriental and African Studies, London III, PP. 33–50 में किया था। भारत में इसका प्रकाशन मेहरचन्द लछमणदास ने किया था। पुस्तक चिरंजीव पुस्तकालय आगरा में प्राप्य है।

२. नीलकण्ठ का केरल का होना केवल इतने से ही प्रमाणित है कि उनके रूपक का अभिनय केरल के चाक्यारों में बहुप्रचलित है।

खड्गेन क्षतविग्रहस्य पिशितैः क्लृप्तोपदंशोत्तरं
कोष्णं ते रसयन्कपालचषकेणाकण्ठमस्रासवम् ।
आन्त्रस्रग्गुणमुद्वहन् विरचयन्नेपथ्यमस्थिव्रजै-
र्नृत्यन् मत्तविलासजां धनपतेः प्रीतिं करिष्याम्यहम् ॥

भीम ने कहा कि यह सब तू कहाँ करेगा ? तू मरेगा । भीम ने आत्मपरिचय दिया—

गुप्ता राक्षसपुंगवं हतवता येनैकचक्रा बकं
प्राप्ता येन घटोत्कचस्य जननी हत्वा हिडिम्बं क्षणात् ।
यः किर्मीरमपि क्षणान्मृदितवानग्रेसरं रक्षसां
तस्य त्वं मम दुर्मते वद शिरः खड्गेन किं छेत्स्यसि ॥

दोनों ने युद्ध किया । गदा की चोट खाकर अस्त्र छोड़कर डर के मारे भागता हुआ राक्षस वहाँ से पलायमान हुआ ।

इस बीच नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि भीम को पुष्पावचय करने दिया जाय । भीम पुष्प लेकर लौट पड़े। उनकी सहायता करने के लिये विद्याधर-दम्पती वहाँ आई, जब वे गन्धमादन के कदलीवन में जा पहुँचे थे । उस स्थान की महिमा देखकर भीम ने समझ लिया कि यहाँ पर कोई प्रतापी रहता है, जिससे मुझे बेरोकटोक लड़ने का अवसर मिल सकता है । भीम ने ललकारा । तभी उधर से उत्तर मिला—

आः दुरात्मन् अनात्मज्ञ पराज्ञासमुल्लंघनपर अपरिज्ञात प्रकृष्टपुरुष बल-पराक्रमप्रभाव अतिक्रान्तमर्याद क्रूरकर्मनिरत मानुषापसद दुर्विनीत किमियन्तं कालं ते श्रुतिपथमुपगतवानस्मि ।

श्लक्ष्ण प्रविष्टवपुषं भुवि मुष्टिपातै-
रल्पप्रयासहृत जीवितमन्तकेन ।
अक्ष्णोर्निमेषसमकालमहं करोमि
क्रव्याददन्तमुखचर्वितकीकसं त्वाम् ॥

भीम ने देखा कि वानर उत्तेजित होकर संस्कृतोच्चार कर रहा है तो बोला—वानर क्या करेगा ? भीम ने हनुमान् के साथ धृष्टता की और बोला कि यहाँ से हटो बुड्ढे वानर ! हनुमान् ने कहा कि बुढ़ापे के कारण हिलडुल नहीं सकता । भीम ने कहा कि तुम्हें पर्वत की चोटी पर फेंक देता हूँ । पर वह पुच्छाग्र तक उठाने में असमर्थ था । तब तो भीम के मुँह से अपने लिए धिक्कार-वाणी निकली—

धिङ् नागायुतसन्निभं मम बलं धिङ् मारुतादुद्भवं ।
धिग्वा दिग्विजये जयं क्षितिभृतां धिग्जिष्णुसोदर्यताम् ॥

फिर भी भीम ने बात बनाते हुए कहा कि हे वानर ! तुम्हारी देह देवताओं ने स्तम्भित कर दी है । अब मुक्के मारकर ही तुम्हारा चूर्ण बना देता हूं । एक ही बात

है कि कहीं मेरा भाई हनुमान् अपने जाति-भाइयों की रक्षा करने के लिए मुझे रोकने न आ जाय ।[1] वानर ने कहा कि मुक्के भी मार लो। दोनों में मुष्टि-युद्ध हुआ। वहाँ पहले से ही आया हुआ विद्याधर-दम्पती यह सब देख रहा था। दोनों के बीच में आकर विद्याधर ने कहा—

हनुमन् भीम युवयोर्भ्रात्रोर्ज्येष्ठकनिष्ठयोः ।
मारुत्योः किमिदं घोरमसाम्प्रतमुपस्थितम् ॥

इसके पश्चात् दोनों वीर भाइयों का सौदर्यभाव उमड़ा। हनुमान् ने कहा—

लज्जानमद्वदनमन्थरमीक्षणार्धं सम्प्रश्रयाहृतकरद्वयरुद्धवक्षः ।
साकूतदर्शनकृतैककटाक्षपातमाश्लेषसौख्यमनुजस्य सुधेत्यभेदः ॥

विद्याधर ने बताया कि मैं स्वर्ग से आ रहा हूँ। मुझसे इन्द्र ने कहा है कि मैं यहाँ आकर आप दोनों को बता दूँ कि आप राम और लक्ष्मण के समान भ्रातृभाव को प्रतिष्ठित रखें। राम का नाम सुनकर हनुमान् भावविह्वल हो गये। उन्होंने भीम को रामचरित सुनाया—

हित्वा राज्यसुखं पितुर्वचनतो नक्तंचरान् कानने
हत्वा शूर्पणखानिकाररुषितानन्विष्य सीतां हृताम् ।
कृत्वा वालिवधार्जितेन सुहृदा सेतुं व्यतीताम्बुधि-
र्लङ्केशं हतवांस्तमन्यसकरोत् प्रायादयोध्यां पुनः ॥

हनुमान् ने कहा कि तुम्हारे पक्ष की सहायता करने के लिए मैं अर्जुन की ध्वजा पर विराजमान रहूँगा।

कल्याणसौगन्धिक की कथा मूलतः महाभारत के वनपर्व से ली गई है। इस कथानक को अनेक कवियों ने व्यायोग रूप में विकसित किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनमें नीलकण्ठ का कृतित्व अनुत्तम है। नीलकण्ठ ने महाभारत की तत्सम्बधी कथा को नाट्योचित बनाने के लिए पर्याप्त परिवर्तित किया है। महाभारत में भीम की भेंट पुष्पावचय के पहले होती है।

अपने वर्णन में कवि ने अनेक वर्ण्य वस्तुओं की लड़ी जोड़ी है। यथा,

अन्तर्गुहोद्गतमहाजगरस्यदंष्ट्रा-
व्याकृष्टपादमुरुगर्जितमेपसिंहः ।
दंष्ट्राग्रकृष्टपृथुकुम्भतटास्थिवल्गाद्-
ग्रीवानिखातनखमाक्षिपति द्विपेन्द्रम् ॥

इसमें सिंह के पैर को अजगर ने पकड़ा है, सिंह ने हाथी के कुम्भस्थल पर अपनी दाढ़ें गड़ा रखी हैं। इस प्रकार इसमें सिंह, हाथी और अजगर को एकपदे निगृहीत किया गया है।

---

१. यह अदृष्टाहति (Dramatic irony) की उक्ति है।

रूपक में यात्रावर्णन की परम्परा परवर्ती युग में विशेषरूप से विकसित हुई। इस व्यायोग में विद्याधर-दम्पती की आकाशयात्रा के मध्य पृथ्वी, निषिधपर्वत, हेमकूट, हिमालय, कैलास, गन्धमादन, अलकापुरी आदि पड़ती हैं।

संवाद की दृष्टि से व्यायोग विशेष सफल है। रोषावेश में पात्र जो कुछ कहते-सुनते हैं, वह प्रेक्षकों के लिए अतिशय रोचक है। शब्दावली अपनी ध्वनि से ही रस को साकार कर देती है। यथा हनुमान् का वक्तव्य है—

स्वैरं गोष्पदवद्विलंघ्य जलधिं नक्तंचराणां गणान्
हत्वैरावतदन्तकोटिलिखितैर्वक्षःस्थलैर्भीषणान् ।
प्लुष्टा येन पुरा करैर्दिनकृताप्यस्पृष्टपूर्वा भया-
ल्लङ्का किन्न स वानरो वद जगत्यस्मिन् नवा विश्रुतः ॥

संवाद की रमणीयता बढ़ाने के लिए कुछ कवियों ने पात्रों के परस्पर सम्बन्धी होने पर भी उनमें से एक को या दोनों को अपरिचित रखकर आवेशपूर्ण बातें कराई हैं। इस विधान की इस व्यायोग में सफलता है। हनुमान् भीम को पहचानता है, भीम हनुमान् को नहीं पहचानते कि यह मेरा भाई है। फिर दोनों की वार्तों का प्रेक्षक आनन्द लेते हैं।

नीलकण्ठ के अनुसार—

इदमभिनयालंकारालंकृतमनुदर्शयेति ।

ये नाट्यालङ्कार हैं—

आशीः, साक्रन्द, कपट, अक्षमा, गर्व, उद्यम, आश्रय, उत्प्रासन, स्पृहा, क्षोभ, पश्चात्ताप, उपपत्ति, आशंसा, अध्यवसाय, विसर्प, उल्लेख, उत्तेजन, परीवाद, नीति, अर्थविशेषण, प्रोत्साहन, साहाय्य, अभिमान, अनुवर्तन, उत्कीर्तन, याच्ञा, परिहार, निवेदन, प्रवर्तन, आख्यान, युक्ति, प्रहर्ष, उपदेशन।[1] पाठक देख सकेंगे कि इस रूपक में नाट्यालंकारों का सन्निवेश सफल है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार द्वाराह्वान और युद्ध आदि का अभिनय रंगमञ्च पर नहीं होना चाहिए। नीलकण्ठ ने इस नियम का उल्लंघन किया है। आरम्भ में ब्राह्मण भीम के लिए दूराह्वान करता है, क्रोधवश नामक राक्षस भीम से युद्ध करता है।[2] ऐसा लगता है कि इस नियम का अपवाद व्यायोग में हो सकता था।

कल्याणसौगन्धिक में अनेक तत्त्व ऐसे हैं, जिन्हें देखने से प्रमाणित होता है कि नीलकण्ठ पर भास का विशेष प्रभाव था। एक तो समुदाचार का पदे-पदे ध्यान रखा गया है, जैसा भास के रूपकों में मिलता है। भीम के लिए कुन्तीमातः सम्बोधन भी भास के सुमित्रामातः आदि के समान पड़ता है।

---

१. साहित्यदर्पण ६. १९५-१९६।
२. उभौ युद्धं कुरुतः। उभौ मुष्टिभिः प्रहृत्य युद्धं कुरुतः।

अध्याय १०

चण्डकौशिक

प्रमुदितसुजना समृद्धसस्या
भवतु महीविजयी च भूमिपालः।
कविभिरुपहिता निजप्रबन्धे
गुणकणिकाप्यनुगृह्यतां गुणज्ञैः॥ ५.३०

चण्डकौशिक के रचयिता क्षेमीश्वर के आश्रयदाता महीपाल देव थे।[1] प्रस्तावना के अनुसार—

यः संश्रित्य प्रकृतिगहनामार्यचाणक्यनीतिं
जित्वा नन्दान् कुसुमनगरं चन्द्रगुप्तो जिगाय।
कर्णाटत्वं ध्रुवमुपगातानद्य तानेव हन्तुं
दोर्दर्पाढ्यः स पुनरभवच्छ्रीमहीपालदेव.॥

इससे ज्ञात होता है कि नन्दवंश में जैसे गृहकलह होने पर चन्द्रगुप्त मौर्य सम्राट् हुआ, उसी प्रकार महीपाल भी गृहकलह होने पर अग्रणी हुआ। ऐसा महीपाल प्रतीहारों के गृहकलह होने पर चन्देल राजा हर्ष की सहायता पाकर आगे बढ़ा था।[2] वह दसवीं शती के आरम्भिक भाग में शासक हुआ। उसका शासनकाल ९१० ई० ९४४ ई० तक था। महीपाल अपने सभाकवि राजशेखर के अनुसार आर्यावर्त का महाराजाधिराज और मुरल, मेकल, कलिंग, केरल, कुलूत, कुन्तल तथा रमठ प्रदेशों का विजेता था।

चण्डकौशिक का कई शताब्दियों तक बहुमान था[3]। कार्तिकेय नामक राजकुमार इसका अभिनय अत्यन्त हर्षोल्लास से करवाता था और ऐसे अवसरों पर वस्त्र, अलंकार और स्वर्णराशि सम्भवतः अभिनेताओं के बीच वितरण करता था। कवि की इस कृति की उत्तमता में लोकप्रियता के कारण ही यह विश्वास था कि—

---

१. इसका प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी से १९६२ ई० से हुआ है।

२. दसवीं शती के आरम्भ में इस (चन्देल) कुल के राजा हर्ष ने प्रतीहारों के गृहकलह में महीपाल प्रथम को सहायता देकर अपने कुल की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ाई। पुरुषोत्तम लाल भार्गव : प्राचीन भारत का इतिहास पृ० २८०। महीपाल ने अपने सौतेले भाई भोज द्वितीय से राज्य छीन लिया। वही, पृष्ठ २७२।

३. विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इससे एक पद्य उद्धृत किया है। १२०५ ई० में श्रीधरदास-रचित सदुक्तिकर्णामृत में इससे तीन पद्य संकलित हैं।

पारे क्षीराख्यसिन्धोरपि कवियशसा सार्धमग्रेसरेण ॥ ५.३१

अपनी शिव की उत्तम स्तुतियों से कवि शैव प्रतीत होता है।

क्षेमीश्वर की एक अन्य रचना नैषधानन्द है, जिसमें सात अङ्कों में नल-दमयन्ती की कथा कही गई है।[1]

कथानक

अपशकुन से भावी विपत्तियों की समाप्ति से लिए कुलपुरोहित ने दूसरों से बिना बताये हुए कुछ व्रत और रात्रिजागरण के लिए महाराज हरिश्चन्द्र को निर्देश दिये। राजा ने रानी शैव्या से भी अज्ञात रहकर रात बिताई। प्रातःकाल वह रात्रिजागरण के कारण बेचैन था। बौधायन नामक विदूषक के पूछने पर राजा ने बताया कि गत रात्रि रानी ने मुझे अपने पास न पाकर अनेक प्रकार की आशंकायें की होंगी। वे दोनों रानी से मिलने चले। उन्होंने देखा कि रानी चारुमती नामक चेटी से बातें कर रही हैं। वे छिपकर उनकी बातें सुनने लगे। चारुमती से रानी को कहना पड़ा कि राजा रात्रि में नहीं आये। चेटी ने बताया कि राजाओं की बहुत-सी वल्लभायें होती हैं। शैव्या रोने लगी तो चारुमती ने उसे मान करने के लिए कहा। शैव्या ने कहा कि राजा के सामने आते ही मान धरा रह जायेगा। तभी राजा उसके पास प्रकट हुआ। राजा ने उसका मान देखकर हाथ जोड़कर कहा—

चण्डि प्रसीद परिताम्यसि किं मुधैव
नाहं तथा ननु यथा परिशङ्कसे माम्।
दण्डं वराङ्गि मयि धारय यत्क्षमं ते
मन्निर्णये कुलपतिर्भवतां प्रमाणम् ॥ १.२२

तभी उनके समक्ष कुलपति के शिष्य ने आकर उन्हें शान्ति-उदक दिया और आशीर्वाद दिया कि अपशकुन के उत्पात शान्त हों। इससे मुनिनिर्दिष्ट जागरण के पश्चात् आप अपना अभिषेक करें। रानी को अपनी मान-सम्बन्धी भूल प्रतीत हुई। राजा ने शैव्या की पत्रावली रचने का उपक्रम किया। अन्त में रानी कुलपुरोहित के बताये अनुष्ठानों को पूरा करने चली गई।

राजा विनोद करना चाहता था। तभी किसी वनेचर ने सूचना दी कि एक महावराह उत्पात मचाये हुए है। राजा मृगया की प्रशंसा करते हुए मृगया करने चल पड़ा।

विघ्नराट् मूर्तिमान् होकर आता है और कहता है कि आज वराह बनकर मैं जाता हूँ विश्वामित्र से विद्याओं को बचाने के लिये। हरिश्चन्द्र को चकमा देकर मैं यहाँ तक लाया। अब उसे विश्वामित्र के आश्रम की ओर अपने पीछे-पीछे ले जाता हूँ। विश्वामित्र उन तीन विद्याओं को अकेले ही हस्तगत करना चाहते हैं, जो एकैकशः

---

1. अभी तक अप्रकाशित है। पीटरसन की रिपोर्ट ३.३४० तथा आगे।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव में हैं। क्रोधी विश्वामित्र के इस समारम्भ में कुछ भी सम्भव है।

उसी समय हरिश्चन्द्र को नेपथ्य से सुनाई पड़ता है—रक्षा करो, रक्षा करो। हम अभागिनियों को अग्नि में फेंका जा रहा है। राजा ने स्त्रियों के इस प्रलाप को सुनकर कहा कि कौन मेरे रहते ऐसा कर सकता है। तभी आगे चलकर वे देखते हैं कि कोई मुनि तीन दिव्य स्त्रियों की आहुति देने जा रहा है। इधर विश्वामित्र ने देखा कि विधि-विधान में कोई अपूर्णता आ रही है। हरिश्चन्द्र ने यह सब देखकर कहा—

वासो वल्कलमक्षसूत्रवलयो पाणिर्जटालं शिरः
कोऽयं वेषपरिग्रहो गुरुतपो दान्तस्य शान्तात्मनः।
केयं ते शठ दुर्मतेरकरुणा बीभत्सनारीवध-
क्रीडापातकिनी मतिर्भज फलं स्वस्याधुना कर्मणः॥ २.१६

यह सुनकर विश्वामित्र क्रोधान्ध हो गये। उन्होंने कहा कि हरिचन्द्र, अब मैं तुम्हें जलाता हूँ। हरिश्चन्द्र को अपनी भूल प्रतीत हुई। उन्होंने कहा कि मुझे धोखा हो गया इन स्त्रियों का आर्तनाद सुनकर। क्षमा करें। मैंने रक्षा करना अपना कर्तव्य समझकर ऐसा किया। विश्वामित्र ने कहा—तुम्हारा कर्तव्य क्या है? हरिश्चन्द्र ने कहा—

दातव्यं रक्षितव्यं च योद्धव्यं च क्षत्रियैः। २.२६

विश्वामित्र ने कहा कि मुझे दान दो। हरिश्चन्द्र ने कहा—

कृत्स्नामिमां वसुमतीं विनिवेदयामि॥ २.२८

अर्थात् आपको सारी पृथ्वी दे देता हूँ। विश्वामित्र ने कहा—ठीक है, किन्तु इसकी दक्षिणा भी दो। राजा ने कहा–एक मास के भीतर एक लाख स्वर्णमुद्रा की दक्षिणा भी दूँगा। विश्वामित्र ने कहा कि यह दक्षिणा वसुमती के बाहर से लानी पड़ेगी। हरिश्चन्द्र ने विचार करके जान लिया काशी पृथ्वी से बाहर शिव की नगरी है। वहाँ से लाकर दूँगा। उन्होंने विश्वामित्र से कहा कि आश्वस्त रहें। ऐसा ही होगा। विश्वामित्र ने मन ही मन कहा कि तुम्हें सत्य से डिगाकर ही चैन लूँगा—

पश्यामि यावच्चलितं न सत्याद्राज्यादिव स्वादचिराद्भवन्तम्।
त्वद्दुर्नयोद्दीपिततीव्रतेजास्तावन्न मे शान्तिमुपैति मन्युः॥ २.३४

काशी में पहुँच कर हरिश्चन्द्र एकबार प्रसन्न हैं। यह वह काशी है, जहाँ—

विमुच्यन्ते जन्तोरिह निविडसंसारनिगडाः
शिरस्तद्ब्रैरिञ्चं न्यपतदिह हस्तात् पशुपतेः।
विमुक्तस्तत्पापादभवदविमुक्तः स भगवान्
न मुक्तं तेनैतत् सह दयितया क्षेत्रमसमम्॥ ३.७

हरिश्चन्द्र ने विचार करके जान लिया कि दक्षिणा के लिए अपने को बेचना ही पड़ेगा। वे इसके लिए वणिग्वीथी में पहुँचे। तभी विश्वामित्र ने आकर कहा—दक्षिणा अभी तक नहीं मिली? सीधे गालियों से बात की और शाप देने के लिए उद्यत थे—

दुरात्मन्, अलीकदानसम्भावनाप्रख्यापितमिथ्यापौरुषप्रपञ्च तिष्ठ, तिष्ठ।

हरिश्चन्द्र ने प्रार्थना की कि सन्ध्या तक का समय दें। इसके पश्चात् वे अपना मूल्य एक लाख मुद्रा माँगने लगे। क्रेता ने कहा कि बहुत अधिक माँगते हो। तभी शैव्या आ गई। उसने कहा—

किणध मं अज्जा इदो अद्धमुल्लेण समअदासिं।

उसके साथ ही रोहित ने कहा—मुझे भी क्रय कर लो।

शैव्या को किसी उपाध्याय ने क्रय किया। रोहिताश्व भी उसके साथ गया। उपाध्याय ने इन महानुभावों को देखा तो दयाद्रवित होकर कहा कि अपना विक्रय क्यों करते हो? दक्षिणा का धन मुझ से दान में ले लो। हरिश्चन्द्र ने कहा—हम क्षत्रिय हैं। दान कैसे ले सकते हैं?

अभी हरिश्चन्द्र को अपने को बेचना ही था कि विश्वामित्र फिर आ पहुँचे। हरिश्चन्द्र ने कहा—अभी आधी दक्षिणा ले लीजिये। विश्वामित्र ने कहा कि जब लूँगा तो पूरी लूँगा। तभी नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

धिक् तपो धिग्व्रतमिदं धिग्ज्ञानं धिग्बहुश्रुतम्।
नीतवानसि यद् ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशाम्॥ ३.२७

विश्वामित्र ने देखा कि ये तो विश्वेदेवाः हैं, जो उन्हें धिक्कार रहे हैं। उन्हें भी मुनिवर ने शाप दे डाला।

हरिश्चन्द्र ने यह सब देखा तो सिटपिटा गये और बोले कि मैं चाण्डाल के हाथ भी अपने को बेचकर दक्षिणा पूरी करता हूँ।

तभी धर्म चाण्डालवेश धारण करके आ पहुँचा। उसने ५०,००० मुद्रायें देकर हरिश्चन्द्र का क्रय करना चाहा। हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र से कहा कि ५०,००० में आप हमें ही दास बना लें। इस चाण्डाल के हाथ बिकना ठीक नहीं। विश्वामित्र ने डाँट लगाई—

धिङ्मूर्ख स्वयं दासास्तपस्विनः। तत्किं त्वया दासेन मे क्रियते।

हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया—"जो कुछ आप कहेंगे", वही करूँगा। मुनि विश्वामित्र ने कहा कि तब यह जो तुम्हें क्रय करना चाहता है, उसके हाथ बिक जाओ। इस प्रकार बाध्य होकर हरिश्चन्द्र बिके और विश्वामित्र को दक्षिणा पूरी दी।

चाण्डाल ने हरिश्चन्द्र को काम बताया—दक्षिण श्मशान में रहकर रात-दिन मृतकों से उनके वस्त्र कररूप में संग्रह करो। उस भयानक भूमि में सन्ध्या के समय हरिश्चन्द्र को पहुँचाकर चाण्डाल चलते बने।

श्मशान में धर्म कापालिक का वेश धारण करके आता है और कहता है कि मैं अपनी विद्या से आपको बहुत अधिक धन देकर अनृण करूँगा। थोड़ी देर में अपने पीछे आनेवाले वेताल के कन्धे पर निधि रखकर वह ले आता है। राजा कहता है कि यह निधि मेरी नहीं है। इसे मेरे स्वामी चाण्डाल को दो।

श्मशान में विमान से तीन विद्यादेवियां उतरती हैं। विद्यायें त्रिलोक-विजयिनी हैं। वे राजा से कहती हैं कि हमें आज्ञा दें। हरिश्चन्द्र ने कहा कि आप विश्वामित्र के अधीन हो जायें—यही आदेश है।

अनेक वर्षों तक हरिश्चन्द्र को श्मशान-घाट पर सेवा करनी पड़ी।[1] अन्त में एक दिन शैव्या साँप काटने से मरे हुए रोहिताश्व का शव लेकर उसी श्मशान में आई। राजा ने उसके विलाप से पहचान लिया कि यह शैव्या है।

पुत्रशोक से पीडित हरिश्चन्द्र कहते हैं—

वरमद्यैव निर्मग्नमन्धे तमसि दारुणे
पुत्राननेन्दुरहिता न पुनर्वीक्षिता दिशः ॥ ४.१३

उन्होंने भागीरथीतीर-प्रपात से मरने का सोचा। तत्क्षण ध्यान आया कि पराधीन को मरने का अधिकार कहाँ है ? रानी ने सोचा कि अब किसके लिए प्राण धारण करूँ ? वह श्मशान वृक्ष पर फांसी लगाने वाली थी। हरिश्चन्द्र ने तभी सुनाया—

मरणान्निर्वृत्तिं यान्ति धन्याः स्वाधीनवृत्तयः।
आत्मविक्रयिणः पापाः प्राणत्यागेऽप्यनीश्वराः ॥ ५.१५

इसे सुनकर रानी ने भी फांसी का फन्दा दूर फेंका।

परिचय दिये विना ही राजा ने मृतक का कम्बल माँगा। रानी ने कम्बल देते समय उसे लेने के लिए बढ़ाये हुए राजा के हाथ को देखकर पहचान लिया कि यह मेरे पतिदेवता का हाथ है।

रानी ने कहा—मेरा परित्राण करें। राजा ने कहा—मुझे छुओ मत। मैं चाण्डाल-दास हूं। रानी ने रोहित के शव का कम्बल दे दिया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। धर्म प्रकट हुआ। रोहित जी उठा। उन्होंने बताया कि विश्वामित्र ने आपकी परीक्षा ली है। राजा ने धर्म द्वारा दी हुई दिव्य दृष्टि से जाना कि शैव्या को दासीरूप में रखनेवाले शिव और पार्वती हैं। चाण्डालराज बनकर धर्म ने स्वयं राजा को खरीदा था। धर्म के कहने से रोहिताश्व का अभिषेक हुआ। धर्म ने हरिश्चन्द्र से कहा कि ब्रह्मलोक चलें। हरिश्चन्द्र ने कहा कि विश्वामित्र के मेरे राज्य ले लेने पर जो प्रजा मेरे

---

१. हरिश्चन्द्र ने मृत रोहिताश्व को देखकर कहा था—

कष्टमियता कालेन वत्सो रोहिताश्वो नूनमस्यामेव वयोऽवस्थायां वर्तते। पंचम अङ्क में।

साथ आने को प्रस्तुत थी, उसे छोड़कर मैं ब्रह्मलोक कैसे जाऊँ? राजा ने कहा कि मेरे पुण्य से प्रजा को भी ब्रह्मलोक मिले।

नेतृपरिशीलन

इसमें विघ्नराट् वराह है।[1] वह पशु का व्यवहार करता है और मनुष्योचित व्यवहार भी। प्रतीक नाटकों की भाँति इसमें एक प्रतीकात्मक चरित्र पाप है। यह मूर्तिमान् पाप पुरुषरूपधारी है। उसने स्वयं अपना चरित्र-चित्रण किया है—

मुखमात्रमधुरः शोकवियोगाधिव्याधिकटुमध्यः।
बहुनरकदुःखदारुणपरिणामो दुष्करः खल्वहम्॥ ३.१

इस नाटक में उपाध्याय का चरित अतिशय उदात्त है। जब हरिश्चन्द्र ने उसे बताया कि मुझे ब्राह्मण का ऋण पीड़ा दे रहा है, तो उसने तत्काल कहा—

तेन हि प्रतिगृह्यतां नो धनम्।

हरिश्चन्द्र का दुःख स्वानुभूत करने पर उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होती है। वह अपने-आप कहता है—

न युक्तमिदानीमनयोर्वैक्लव्यमवलोकयितुम्।

कवि ने विश्वामित्र को खोटी-खरी सुनाने के लिये विश्वेदेवों को ठीक ही नेपथ्यापन्न किया है। उनका कहना है—

धिक् तपो धिग्व्रतमिदं धिग्ज्ञानं धिग्बहुश्रुतम्।
नीतवानसि यद् ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशाम्॥ ३.२७

प्रायशः कथापुरुषों को अपनी प्रकृति के ठीक विपरीत कार्य करना पड़ा है। राजा और रानी तो दास-दासी बने। धर्म को चाण्डाल बनना पड़ा। हरिश्चन्द्र विकल होकर शैब्या के विषय में कहता है—

यदि तपनकुलोचिता वधूस्त्वं यदि विमले शशिनः कुले प्रसूता।
मयि विनिपातितासि भस्मराशौ सुतनु घृताहुतिवन्नदा कथं त्वम्॥

प्रतीकात्मक सत्ताओं को पुरुष-परिधान में प्रस्तुत कर देने की कला का विशद विकास इस नाटक में दिखाई पड़ता है।[2] इसका चाण्डालवेशधारी धर्म कहता है—

मया ध्रियन्ते भुवनान्यमूनि सत्यं च मां तत्सहितं बिभर्ति।
परीक्षितुं सत्यमतोऽस्य राज्ञः कृतो मया जातिपरिग्रहोऽयम्॥

---

१. पहले विघ्न डालने के लिए अप्सराओं का उपयोग होता था। यह एक नई योजना विघ्न डालने की अपनाई गई है, जो किरातार्जुनीय की वराह-योजना पर आधारित प्रतीत होती है। अभिज्ञानशाकुन्तल में हरिण के पीछे-पीछे दुष्यन्त कण्व के आश्रम में पहुँचता है।

२. कृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय के लगभग सौ वर्ष पहले लिखे हुए इस नाटक में प्रतीक तत्त्व का अनुत्तम विकास हुआ है।

हरिश्चन्द्र का चरित्र-चित्रण उदात्त स्तर पर किया गया है। रघुवंश के राम के समान ही वह राज्य को भार समझता है। विश्वामित्र को राज्य देने के पश्चात् वह सोचता है कि मुनि का क्रोध अच्छा रहा—

स एष कुसुमापीडः पतितो मम मूर्धनि ॥ २.३२

श्मशान में चाण्डाल का दास होने पर भी हरिश्चन्द्र को उसका महानुभाव नहीं छोड़ता है। वह दिग्विजयी के स्वर में कहता है—

ब्रह्मेन्द्रवायुवरुणप्रतिमोऽपि यः स्या-
त्तस्याप्ययं प्रतिभटोऽस्तु भुजो मदीयः ॥ ४.२४

हरिश्चन्द्र ने अपनी प्रजा को छोड़कर ब्रह्मलोक जाना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने धर्म से कहा कि मेरे पुण्य से मेरी प्रजा भी ब्रह्मलोक भोगे।

कथाविन्यास

कथानक में पात्रों को एक दूसरे से प्रच्छन्न रखने की जिस कथा-पद्धति की उद्भावना भास ने की थी, उसका प्रवर्तन इस नाटक में मिलता है। हरिश्चन्द्र पहचानता है अपनी पत्नी को, जो दासी बनकर मृत रोहिताश्व को लेकर श्मशान में आई है और उसका कम्बल लेते हुए हाथ को देखती है तो कहती है—

कथं चक्कवत्तिलक्खणसणाहो वि अअं पाणी इमस्स वावारस्स उवणीदो।

वह विचारी क्या जानती थी कि यह वही हाथ था, जिससे उसका कभी पाणिग्रहण हुआ था। धर्म ने कुछ गूढ पात्रों को पहचानने के लिए हरिश्चन्द्र को दिव्य दृष्टि दी[1]—

क्रेताप्यस्या ब्राह्मणो यः सदारो
यश्चाण्डालो यत्र राज्यं च तत्ते।
राजन् गुह्यं तत्त्वतो ज्ञातुमेतद्
दिव्यं चक्षुः साम्प्रतं ते ददामि ॥ ५.२३

विश्वामित्र स्वभाव-प्रच्छन्न है। धर्म ने उनके विषय में कहा—

भवत्सत्यजिज्ञासयैवासौ मुनिस्तथा कृतवान्, न तु राज्यार्थितया।

कथा की भावी प्रवृत्तियों की व्यञ्जना कहीं-कहीं की गई है। यथा,

पदे पदे साध्वसमावहन्ति प्रशान्तरम्याण्यपि मे वनानि।
सर्वाणि तेजांसि मृदूभवन्ति स्वयोनिमासाद्य यथाग्निरम्भः ॥ २.१६

---

१. क्रेता स ते प्रकृतिकारुणिको द्विजन्मा
जायासखो ननु शिवौ किल दम्पती तौ।
क्रेता ममापि खलु यो भगवान् स धर्म-
स्तेनाधुना मनसि शल्यमुपैति शान्तिम् ॥ ५.२४

विश्वामित्र से मिलने के पहले हरिश्चन्द्र के मन की यह कल्पना उसकी भावी विपत्तियों की सूचिका है।

हरिश्चन्द्र का नाम ऐतरेयब्राह्मण में सर्वप्रथम आता है, जहाँ वह सत्यवादी नहीं हैं। महाभारतीय कथा के अनुसार हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ किया था और महान् सत्यवादी हैं। यथा,

सत्यं वदत नासत्यं सत्यं धर्मः सनातनः।
हरिश्चन्द्रश्चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत्॥ अनु० ११५.७१

मार्कण्डेयपुराण में सर्वप्रथम विश्वामित्र के द्वारा हरिश्चन्द्र के परीक्षण का आख्यान है। इस पुराण में हरिश्चन्द्र हरिण की मृगया करते हुए विपन्न विद्यादेवियों का आर्तनाद सुनकर वहाँ पहुँचते हैं। विघ्नराट् राजा में प्रवेश करके उन्हें क्रुद्ध बनाकर विश्वामित्र से संघर्ष कराता है। विश्वामित्र को क्रोध आ गया तो देवियां लुप्त हो गईं। राजा ने मुनि को पहचानकर क्षमा माँगी और कहा कि मैं राजा के कर्तव्य—आर्तरक्षा, दान तथा युद्ध—पूरा कर रहा था। विश्वामित्र ने कहा कि मुझे भी दान दो। उन्हें सारा राज्य मिल गया। तब तो विश्वामित्र ने उन्हें राज्य से बाहर कर दिया और एक मास के भीतर दक्षिणा देने के लिए कहा। विश्वामित्र ने रानी को राजा के साथ धीरे-धीरे जाते देख उसे डण्डे से पीटा। वाराणसी में रानी का जिस ब्राह्मण ने क्रय किया, उसने उसका केश पकड़कर खींचा तो रोहित रोने लगा। राजा चाण्डाल के हाथ बिके और दक्षिणा पूरी हुई। श्मशान में नियुक्त राजा के सामने रानी साँप काटने से मरा पुत्र लाई। राजा और रानी भी पुत्र की चिता पर मरना चाहते थे। धर्म ने आकर उन्हें रोका। अन्त में राजा प्रजा के साथ स्वर्ग में पहुँचे।

उपर्युक्त मार्कण्डेयपुराण की कथा को क्षेमीश्वर ने अनेक अभिनव प्रकरणों की वक्रता से प्रपन्न किया है। इस पुराण के अनेकानेक पद्यों की स्पष्ट छाया भी चण्डकौशिक पर पड़ी है।

वर्णन

चण्डकौशिक के वर्णनों में अनेक स्थलों पर कवि कालिदास की पद्धति का अनुसरण करता प्रतीत होता है। इसके साथ ही स्थान-स्थान पर ऐसा लगता है कि उसे प्रकृति को देखने के लिए कालिदास की दृष्टि प्राप्त थी, जिसके द्वारा प्रकृति के लोकोपकारी स्वरूप का साक्षात्कार होता है। यथा, तपोवन है—

आमूलं क्वचिदुद्धृता क्वचिदपिच्छिन्नस्थलीबर्हिपा-
मानम्रा कुसुमोच्चयाच्च सदयाकृष्टाग्रशाखा लता।
एते पूर्वविलूनवल्कलतया रूढव्रणाः शाखिनः
सद्यश्छेदमसी वदन्ति समिधां प्रस्यन्दिनः पादपाः॥ २.१२

और भी—

नीपस्कन्धे कुहरिणि शुकाः स्वागतं व्याहरन्ति
घ्राणग्राही हरति हृदयं हव्यगन्धः समीरः ।
एता मृग्यः सलिलपुलिनोपान्तसंसक्तदर्भ
पश्यन्त्योऽस्मान् सचकितदृशो निर्भराम्भः पिबन्ति ॥ २.१४

काशी की पुण्यदा प्रवृत्ति है—

विमुच्यन्ते जन्तोरिह निबिडसंसारनिगडाः
शिरस्तद् वैरिञ्चं न्यपतदिह हस्तात् पशुपतेः ।
विमुक्तस्तत्पापादभवदविमुक्तः स भगवान्
न मुक्तं ते नैतत् सह दयितया क्षेत्रमसमम् ॥ ३.७

इसके द्वितीय अंक में मृगया का वर्णन अभिज्ञानशाकुन्तल के समकक्ष है । अपने वर्णनों में कवि ने उद्दीपन विभाव की सफल सर्जना की है । दानवीर नीचे के वातावरण में प्रोत्तेजित होता है—

तपतिहपनस्तीक्ष्णं चण्डः स्फुरन्निव कौशिको
वहति परितस्तापं पन्था यथा मम मानसम् ।
इयमपि पुनश्छाया दीनां दशां समुपाश्रिता
हतविधिवशाद्वीबाधो निषीदति भूरुहाम् ॥ ३.१०

इस वर्णन में कलात्मक विधि से आख्यान तत्त्व वर्णन तत्त्व में सश्लिष्ट है ।

सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन इस नाटक में एक विरल तत्त्व है । ऋणी का वर्णन है—

लोकद्वयप्रतिभयैकनिदानमेतद्
धिक् प्राणिनामृणमहो परिणामघोरम् ।
एकः स एव हि पुमान् परमखिललोके
क्रुद्धस्य येन धनिकस्य मुखं न दृष्टम् ॥ ३.१५

वर्णनों में भावों के विशदीकरण के लिए अलङ्कारों के द्वारा उनको मूर्तरूप देना प्रभविष्णु योजना है । यथा,

तदाक्षिप्तं दृष्ट्वा प्ररुदितमुखं बालतनयं ।
तदन्तःशल्यं मां व्रणमिव विरूढं ग्लपयति ॥ ४.२

राजा के मानसिक क्लेश को हृदय के फोड़े के समान दुःखदायी कहा गया है ।

वर्णनों में कहीं-कहीं वक्ता, देश और काल की प्रतिच्छाया सम्यक् समञ्जसित है । यथा,

सन्ध्यावध्यास्रशोणं तनुदहनचिताङ्गारमन्दार्कबिम्बं
तारानारास्थिकीर्णं विशदनरकरङ्कायमाणोज्ज्वलेन्दु ।
हृष्यन्नक्तंचरौघं घनतिमिरमहाधूमधूम्रानुकारं
जातं लीलाश्मशानं जगदखिलमहो कालकापालिकस्य ॥ ४. १५

इसमें वक्ता हरिश्चन्द्र चाण्डाल-दास है, स्थान श्मशानभूमि है और काल सन्ध्या है। वक्ता की मानसिक वृत्ति के अनुरूप सभी उपमान श्मशानभूमि से लिये गये हैं। ऐसे वक्ता को अखिल जगत् श्मशान ही दिखाई दे—यह कितना स्वाभाविक है।

चाण्डालों के मुँह से मसानी सन्ध्या का वर्णन यथायोग्य है—

> अस्तं गच्छति शूले वध्यस्थानं गतो यथा वध्यः।
> एष तमःसंघातः चाण्डालकुलमिवावतरति ॥ ४.१६

शैली

क्षेमीश्वर को अनुप्रासों के प्रति आसक्ति है। नीचे के श्लोक में म और न की पुनरावृत्ति श्रेणीबद्ध है—

> विच्छिन्नामनुवध्नती मम कथां मन्मार्गदत्तेक्षणा
> मन्वाना सुमुखी चलत्यपि तृणे मामागतं सा मया।
> नाश्लिष्टा यदलक्षिते न निभृतं पश्चादुपेत्यादराद्
> यन्नास्या नवनीलनीरजनिभे रुद्धे कराभ्यां दृशौ ॥ १.१३

संवादों में शिष्टाचार-परायण सौष्ठव निर्भर है। उपाध्याय जब हरिश्चन्द्र को क्रय करने के लिए मिलता है तो उसे सहानुभूति उत्पन्न होती है। वह पूछता है—

> भो महात्मन् स्वदुःखसंविभागिनं मां कर्तुमर्हसि।

कतिपय स्थलों पर अन्योक्ति द्वारा वक्तव्य को प्रभविष्णु बनाया गया है। यथा,

> जलधरपटलान्तरिते यदि भानौ खण्डनं गता नलिनी।
> तस्या न विप्रलम्भो नोपालम्भोऽप्ययं भानोः ॥ १.१६

इसमें भानु हरिश्चन्द्र स्वयं है और नलिनी शैब्या है।

क्षेमीश्वर की शैली अनेक स्थलों पर नाट्योचित नहीं है और न पात्रानुरूप है। प्रथम अंक में वनेचर १७ पंक्तियों का वाक्य बोलता है, जिसमें अनेक पद दीर्घ समास-ग्रस्त हैं। ऐसे समस्तपदों में कहीं-कहीं २० पद अन्तर्भूत हैं। क्या वनेचर ऐसी जटिल भाषा बोलता था? स्वाभाविकता का अभाव ऐसे स्थलों में स्पष्ट है।

कवि को जो कुछ कहना है, उसमें अलङ्कार-योजना प्रभविष्णुता आपादित करती है। यथा,

> देवीभावं नीत्वा परगृहपरिचारिका कृता यदियम्।
> तदिदं चूडारत्नं चरणाभरणत्वमुपनीतम् ॥ ३.२३

कवि ने भाषा को देश, काल और पात्र की दृष्टि से सज्जित किया है। यथा, श्मशान की चर्चा है—

> विदूरादभ्यस्तैर्वियति बहुशो मण्डलशतै-
> रुदञ्चत्पुच्छाग्रस्तिमितविततैः पक्षतिपुटैः।
> पतन्त्येते गृध्राः शवपिशितलोलाननगुहा
> गलल्लालाक्लेदस्थगितनिजचंचूभयपुटाः ॥ ४.७

और कात्यायनी का वर्णन है चाण्डाल मुख से—

णिम्महिअलुलिअ चण्डमस्तिए
महिशमहाशुलभिण्णगस्तिए
कच्चाइणि गज चम्मवस्तिए
लस्कशु मं चलशूलिहस्तिए ॥ ४.११

हरिश्चन्द्र की सारी परिस्थितियां द्रुतविलम्बित थीं। उसी का द्योतक यह छन्द है—

प्रथितमंगलगुग्गुलकल्पितं प्रतनुलोलजटावलिमण्डितम्।
मधुपलंघितमुग्धसरोरुहद्युति मुखं तदिदं न विराजते ॥ ५.१०

द्रुतविलम्बित में केवल दो पद्य इस नाटक में हैं।

नाटक में १६२ पद्य १९ छन्दों में विरचित हैं। सबसे अधिक पद्य श्लोक छन्द में हैं ३६। फिर तो वसन्ततिलका में २७, शार्दूलविक्रीडित में २५, शिखरिणी में २०, उपजाति में १०, मन्दाक्रान्ता और स्रग्धरा में ८, आर्या में ७, पुष्पिताग्रा में ६, हरिणी में ४ और शालिनी में ३ पद्य हैं। अपरान्तिका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवजा, औपच्छन्दसिक, पृथ्वी, मालिनी और वंशस्थ में प्रत्येक में एक पद्य है।

एकोक्ति

चण्डकौशिक की एकोक्तियाँ अतिशय मार्मिक हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एकोक्ति है हरिश्चन्द्र की वाराणसी में पहुँचने पर। यथा,

यद्वाञ्छन्ति क्षपिततमसो ब्रह्मचर्यैस्तपोभिः
प्रव्रज्याभिः श्रुतशमदमानाशकैर्ब्रह्मनिष्ठाः।
तद्देहान्ते कथयति हरस्तारकं ज्ञानमस्मिन्
प्राणत्यागाद्भवति न पुनर्जन्मने येन जन्तुः ॥ ३.६

(ततः प्रविशति सचिन्तो राजा)

राजा—दत्त्वैतां द्विजसत्तमाय वसुधां प्रीत्या प्रसन्नं मनः
स्मृत्वा ताम्यति दक्षिणां विधिवशाद् गुर्वीमनिर्यातिताम्।
कर्तव्यो न धनागमोऽस्य विषये स्थानं भवानीपते-
राहुर्यन्न वसुन्धरेति यदहं वाराणसीं प्रस्थितः ॥ ३.४

(चिन्तां नाटयित्वा दीर्घं निश्वस्य) कष्टं भोः कष्टम्

दाराः सूनुरिदं शरीरकमिति त्यागावशिष्टं त्रयं
सम्प्राप्तोऽवधिरद्य सत्यमपरित्याज्यं मुनिः कोपनः।
ब्रह्मस्वोपहतं च जीवितमिदं न त्यक्तुमप्युत्सहे
किं कर्तव्यविचारमूढमनसः सर्वत्र शून्या दिशः ॥ ३.५

(अग्रतोऽवलोक्य सहर्षम्) कथमियं वाराणसी। भगवति वाराणसि नमस्ते (विचिन्त्य साश्चर्यम्)।

इसी प्रकार इस अंक के ग्यारहवें पद्य तक हरिश्चन्द्र की एकोक्ति विन्यस्त है, जब तक कौशिक रङ्गमञ्च पर नहीं आ जाते।

चतुर्थ अङ्क में हरिश्चन्द्र श्मशान में अकेले हैं, जब चाण्डालद्वय निशा-कलकल से घबड़ाकर चले जाते हैं। इस अवसर पर अपनी एकोक्ति द्वारा वे कौणपनिकाय, पिशाचों का क्रीडा-कलह-कौशल, यातुधानों की केलि और निशीथिनी की गम्भीरता का आँखों देखा वर्णन करते हैं।

एकोक्ति की एक अन्य विधा भी इस नाटक में अपनाई गई है। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में रङ्गमञ्च पर राजा आगे-आगे चल रहा है। उससे कुछ दूरी पर पीछे-पीछे दो चाण्डाल अनुगमन कर रहे हैं। दोनों चाण्डाल मिलकर कुछ कह रहे हैं, जिसे राजा न तो सुनता है और न उसका प्रत्युत्तर देता है। वह अलग से अपने-आप अपनी स्थिति पर अपने विचार व्यक्त करता है। पञ्चम अङ्क में इसी विधा के अनुसार अपने पुत्र के शव को श्मशान में लेकर आई हुई शैव्या का करुण विलाप एकोक्ति के रूप में है, जिसे हरिश्चन्द्र रङ्गमञ्च पर स्थित होने पर भी शैव्या के द्वारा अदृष्ट होकर सुनता है। हरिश्चन्द्र का इस अवसर पर प्रतिक्रियात्मक भाषण स्वगत के रूप में है :

द्वितीय अङ्क के आरम्भ में 'नेपथ्ये' के दो पद्यों के पश्चात् विघ्नराट् की एकोक्ति तीन पद्यों और दो गद्यांशों की है।

पाँचवें अङ्क का आरम्भ हरिश्चन्द्र की एकोक्ति से इस प्रकार होता है—

(ततः प्रविशति विकृतमलिनवेषो राजा)

राजा—(सनिर्वेदं निःश्वस्य) कष्टं भोः कष्टम्।

यद्वैरं मुनिसत्तमस्य सुहृदां त्यागस्तथा विक्रयो
दाराणां तनयस्य चेदमपरं चाण्डालदास्यं च यत्।
दुर्वाराणि मया कठोरहृदयेनाप्तानि मूढात्मना
यस्यैतानि फलानि दुष्कृतमहा किं नाम तद्दारुणम्॥ ५.६

यहाँ से आरम्भ होकर सातवें पद्य तक एकोक्ति इस प्रकार समाप्त होती है—

(विचिन्त्य) अथवा किमद्यापि व्यसनाभ्युदयचिन्तया। पर्याप्तः खलु दुरात्मा हरिश्चन्द्रहतकः। तथा हि

अतः परं यद्व्यसनं नूनमभ्युदयो हि सः।
पापस्याभ्युदयद्वारमिदानीं मरणं हि मे॥ ५.७

इसके पश्चात् चाण्डाल रंगमञ्च पर आ जाता है।

सूक्तिसौरभ

चण्डकौशिक की कुछ सूक्तियाँ अतिशय समर्थ हैं। यथा,

१. नरं वामारम्भः कमिव न विधाता प्रहरति॥ ३.२१

२. अनपराद्धं किल शैशवम्।

३. स्वयंदासास्तपस्विनः।
४. परिशान्तं व्यसनेष्वहो न दैवम्।
५. दुःखं दुःखैस्तिरोधीयत।
६. सुखं वा दुःखं वा किमिव हि जगत्यस्ति नियतं
विवेकप्रध्वंसाद्भवति सुखदुःखव्यतिकरः।
मनोवृत्तिः पुंसां जगति जयिनी कापि महतां
यथा दुःखं दुःखं सुखमपि सुखं वा न भवति ॥ ४.२६
७. चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः ॥ ४.३५

रस

चण्डकौशिक में दानवीर की रसमयता आद्यन्त स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त शान्त रस के लिए श्मशान-वैराग्य का निदर्शन है। यथा,

तन्मध्यं तदुरस्तदेव वदनं ते लोचने ते भ्रुवौ
जातं सर्वममेध्यशोणितवसामांसास्थिलालामयम्।
भीरूणां भयदं त्रपास्पदमिदं विद्याविनोदात्मनां
तन्मूढैः क्रियते वृथा विषयिभिः क्षुद्रोऽभिमानग्रहः ॥ ४.१०

कहीं-कहीं करुण की भाव-सरिता में प्रेक्षक को बहाया गया है। यथा,

यदि तपनकुलोचिता वधूस्त्वं यदि विमले शशिनः कुले प्रसूता।
मयि विनिपतितासि भस्मराशौ सुतनु घृताहुतिवत्तदा कथं त्वम् ॥

श्मशान-वर्णन में स्वभावतः बीभत्स है।

उपदेश

हरिश्चन्द्र की कथा द्वारा कवि ने प्रेक्षकों को सन्देश दिया है—

मनोवृत्तिः पुंसां जगति जयिनी कापि महतां।
यथा दुःखं दुःखं सुखमपि सुखं वा न भवति ॥ ४.२६
चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः ॥ ४.३५

भाग्य प्रधान है। वह कहाँ से कहाँ ले जा सकता है—यह जानने के लिए कल्हण की राजतरंगिणी परवर्ती युग में लिखी गई, पर कल्हण के स्वर का आदर्श राग क्षेमीश्वर ने छेड़ा है। हरिश्चन्द्र का कहना है—अहो भवितव्यता—

मामानम्रशिरोधरं प्रभवता क्रुद्धे न राज्यश्रिया
यद्विश्लेपयतापि तेन मुनिना निःशेषित नत्रयम्।
तत्रापि व्यसनाग्रियेण विधिना वृत्तं तथा निष्ठुरं
येनात्मा तनयः कलत्रमपि मे सर्वं विलुप्तं क्षणम् ॥ ५.२

राजा और प्रजा का आदर्श व्यवहार इस नाटक का प्रमुख उपदेश है।

वैदेशिक दृष्टि रखनेवाले आलोचकों को इस नाटक में दोष दिखाई देता है कि नायक को पुनः पुनः अतिशय विपत्तियों में पड़ना पड़ा है। कतिपय भारतीय आलोचक भी उन्हीं की हाँ में हाँ मिलाते हैं।[1] ऐसे आलोचकों को संक्षेप में यही उत्तर दिया जा सकता है कि भारत कष्टों की परम्परा द्वारा स्वर्ण-परीक्षा करता है। रामायण में राम पर क्या अनेकानेक कष्ट नहीं पड़ते—निर्वासन, पितृमरण, सीता-हरण, भ्रातृमरण और इससे भी सन्तुष्ट न होकर सीता की स्वर्ण-परीक्षा और पुनः गर्भवती होने पर उसका वनवास !

चण्डकौशिक की महिमशालिनी श्रेष्ठता और लोकप्रियता का यही प्रमाण है कि हरिश्चन्द्र ने भारत में असंख्य नर-नारियों को सत्यमार्ग पर चलाया है। राष्ट्रपिता गान्धी ने हरिश्चन्द्र का महत्त्व अपने चरित्र-निर्माण के लिए आत्मकथा में बताया है। उस हरिश्चन्द्र को नाटकीय अमरता देनेवाला प्रथम कवि क्षेमीश्वर है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इस नाटक के प्रायशः छायारूप में अपना नाटक सत्यहरिश्चन्द्र लिखा। हरिश्चन्द्र की कथा के लिए पार्थिव रंगमंच ही नहीं, भारतीय हृद्देश ही रङ्गमंच बनकर रहा है।[2]

हरिश्चन्द्र की कथा परवर्ती युग में भी कुछ कवियों को आकृष्ट करती रही। रामचन्द्र ने छः अङ्कों में बारहवीं शती में सत्यहरिश्चन्द्र की रचना की। इसमें विश्वामित्र और धर्म नहीं हैं। रानी शैव्या के स्थान पर सुतारा है। इसमें आश्रम की मृगी मारने के लिए राजा को अपना पूरा राज्य और एक लाख स्वर्णमुद्रा उस आश्रम के कुलपति और उसकी कन्या के लिए देना पड़ता है।

नेपाली भाषा में हरिश्चन्द्र-नृत्य नामक रचना में संस्कृत पद्य तथा नेपाली गद्य के माध्यम से कथा-योजना प्रस्तुत की गई है। कथा पौराणिक है। हरिश्चन्द्र पर कुछ महाकाव्य भी लिखे गये।

चण्डकौशिक का नाम कुछ अटपटा-सा लगता है। इसके नाम को हरिश्चन्द्र से समञ्जसित होना चाहिए था, न कि क्रोधी विश्वामित्र से। इस नाटक का नाम सत्य-हरिश्चन्द्र सुप्रिय होता।

---

१. But the piling up of disasters as an atonement of what appears to be an innocent offence unnecessarily prolongs the agony. S. K. De, History of Skt. Lit. P. 470.

२. हरिश्चन्द्र की कथा का यह रूप सर्वप्रथम मार्कण्डेयपुराण में मिलता है, जो क्षेमीश्वर का उपजीव्य है।

अध्याय ११

प्रबोधचन्द्रोदय

प्रबोधचन्द्रोदय प्रतीक नाटक है। इसके लिए भावात्मक या निर्जीव या वाणीविहीन सत्ताओं में मानवोचित व्यवहार की कल्पना होती है। ऐसी कल्पना का आधार वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलता है।[1] महाभारत की अनेक कथाओं में प्रतीक के सहारे जीवन-दर्शन का स्पष्टीकरण मिलता है। अभिनय की दृष्टि से प्रतीकों का सर्वप्रथम उपयोग बौद्ध महाकवि अश्वघोष ने किया। इनके एक रूपक में कीर्ति, धृति, बुद्धि आदि को पात्र बनाया गया है। कालिदास ने कुमारसम्भव में वसन्त को पात्र बनाया है।

अश्वघोष के प्रतीक-नाटक की परम्परा में १० वीं शती तक कौन-कौन रूपक लिखे गये—यह अभी तक अज्ञात है। सम्भव है कि ऐसे रूपकों की संख्या विरल ही हो, अन्यथा इनके उल्लेख या उद्धरण परवर्ती नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में अवश्य ही मिलते। परवर्ती युग का सर्वप्रथम प्रमुखतः प्रतीक-नाटक ११ वीं शती का कृष्णमिश्र का प्रबोधचन्द्रोदय है। इसमें दर्शन, धर्म और मनोविज्ञान की त्रिवेणी संगमित है। आंशिक रूप से प्रतीक नाट्य भास के बालचरित में और क्षेमीश्वर के चण्डकौशिक में वर्त्तमान हैं। सम्भव है, कृष्णमिश्र के समक्ष ये कृतियाँ आदर्शरूप में रही हों।

प्रतीक नाटकों की परम्परा कृष्णमिश्र के पश्चात् चलती रही, पर इसके पीछे कोई सामर्थ्य नहीं थी। अभिनय की दृष्टि से भावात्मक पात्रों का मानवरूप में रङ्गमञ्च पर उतरने से तद्रूपता की बुद्धि दर्शक के लिए दुस्साध्य है। ऐसी स्थिति में प्रतीक नाटकों का लोकप्रिय होना सम्भव नहीं था। साथ ही, जिस सम्प्रदाय या साधुभाव का संवर्धन करने के लिए प्रतीक नाटकों की रचना की गई है, वह अभिनय-प्रेमी रसिकता के लिए सिकता ही है।

प्रबोधचन्द्रोदय की रचना मध्यप्रदेश में खजुराहो के चन्देलनरेश कीर्तिवर्मा के

---

१. ऋग्वेद में भावात्मक देवता मन्यु (१०. ८३, ८४), श्रद्धा (१०. १५१), अनुमति (१०. ५९), सूनृत (१. ४५; १०. १४१) आदि का मानवोचित व्यवहार निदर्शित है। परवर्ती वैदिक साहित्य में भी ऐसे नये-नये देवता विकसित होते गये। भारतीय धारणा के अनुसार भावात्मक तत्त्व रूपधारी भी हो सकते हैं। यथा, धर्म भावात्मक तो है ही; साथ ही, वह मानव जैसा रूपधारी बन कर आचरण करता है।

द्वारा चेदिनरेश कर्ण की विजय के उपलक्ष्य में हुई थी।[1] कर्ण का प्रादुर्भाव १०५० ई० के लगभग हुआ था। इससे हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि १०५० ई० के लगभग प्रबोधचन्द्रोदय की रचना हुई होगी।

कृष्णमिश्र को राजाश्रय प्राप्त था। वे समानरूप से कवि और धर्मानुसन्धायक थे। उनकी रुचि वैष्णवभक्ति और वेदान्त में थी। जिस पद्धति पर चल कर अश्वघोष काव्य-रस में घोलकर निर्वाणामृत का पान कराते हैं, उसी पद्धति पर कृष्णमिश्र भी चलते हैं। निस्सन्देह कृष्णमिश्र वैदिक और अवैदिक दर्शन और धर्म के प्रकाण्ड पण्डित थे। राढादेश की पुनः-पुनः प्रशंसा करने से कवि की जन्मभूमि वहीं प्रतीत होती है। प्रबोधचन्द्रोदय छः अङ्कों का आध्यात्मिक नाटक है।

कथानक

प्रबोधचन्द्रोदय की कथा का बीज है—

> विवेकेनेव निर्जित्य कर्णं मोहमिवोर्जितम्।
> श्रीकीर्तिवर्मनृपतेर्बोधस्येवोदयः कृतः॥ १.६

काम की पत्नी रति उससे कहती है कि आपके महाराज महामोह का प्रतिनायक विवेक है।[2] काम ने अपनी और अपनी कोप, लोभादि की सेना की सामर्थ्य की प्रशंसा की। उसने रति के पूछने पर बताया कि नायक और प्रतिनायक के पिता एक ही हैं। मन, मोह आदि और विवेकादि का उद्भव उसकी दो पत्नियों—प्रवृत्ति और निवृत्ति से हुआ है।

काम ने रति को सूचना दी कि कुलक्षयकारिणी विद्या की उत्पत्ति होगी और उसका भाई होगा प्रबोधचन्द्र।

विवेक ने तीर्थों में शमादि को भेज दिया है। उसका प्रतिकार करने के लिए मोह ने दम्भ को भेजा। दम्भ के प्रभाव से काशी में—

> वेश्यावेश्मसु सीधुगन्धिललनावक्त्रासवामोदितै-
> र्नीत्वा निर्भरमन्मथोत्सवरसैरुन्निद्रचन्द्राः क्षपाः।
> सर्वज्ञा इति दीक्षिता इति चिरात् प्राप्ताग्निहोत्रा इति
> ब्रह्मज्ञा इति तापसा इति दिवा धूर्तैर्जगद् वञ्च्यते॥ २.१

अहंकार भी काशीपुरी पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट अपने पौत्र दम्भ से हुई। दोनों ने

---

१. विवेकेनेव निर्जित्य कर्णं मोहमिवोर्जितम्।
श्रीकीर्तिवर्मनृपतेर्बोधस्येवोदयः कृतः॥ १.९

२. 'महाराजमोहस्य प्रतिपक्षो विवेकः' इससे स्पष्ट होता है कि प्रबोधचन्द्रोदय एक दुःखान्त नाटक (Tragedy) है। इसमें नायक महामोह का विध्वंस होता है।

महाराज महामोह का स्वागत किया, जब वे इन्द्रपुरी से वहाँ विवेक का सामना करने के लिए आये।

इधर काशी में शान्ति अपनी माता श्रद्धा को ढूँढ रही है। वह बौद्ध भिक्षु, जैन क्षपणक और कापालिक की तामसी पाषण्डिक श्रद्धा से निराश होती है।

महाभैरवी के चक्कर में पड़ी श्रद्धा मरते-मरते बची। वह बाज की भाँति झपट्टा मारकर श्रद्धा और धर्म को आकाश में ले उड़ी। श्रद्धा आर्तनाद करने लगी और भैरवी ने दया करके उसे छोड़ दिया था।

राढादेश के चक्रवर्ती तीर्थ में विवेक महाराज पड़े हैं। वे महामोह को पराजित करने के लिए उत्सुक हैं। वे वस्तुविचार, क्षमा, सन्तोष आदि से परामर्श करके अपनी सेना के साथ काशी की ओर प्रस्थान करते हैं। काशी नगरी में सर्वप्रथम वे आदि-केशव के मन्दिर में विष्णु भगवान् का दर्शन करते हैं।

विवेकपक्ष के सैनिकों ने मोहपक्ष के सैनिकों को पछाड़ दिया। महाराज विवेक ने महामोह को आदेश दिया कि म्लेच्छ देश में जा बसो। युद्ध में भाग लेनेवाले थे वेदोपवेद, वेदाङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्र, इतिहास, षड्दर्शन, सरस्वती आदि। दुश्मनों के छक्के छूट गये। फिर तो बौद्ध भागकर सिन्धु, गान्धार, पारसीक, मगध, आन्ध्र, हूण, वङ्ग, कलिंग आदि देशों में जा बसे।

वस्तुविचार, क्षमा, सन्तोष आदि ने प्रतिपक्षियों—काम, क्रोध, लोभ आदि को धराशायी कर दिया।

सरस्वती मन के पास पहुँची और उसे प्रवृत्ति-मार्ग से निवृत्ति-मार्ग की ओर लगाया। वैराग्य अपने पिता मन के पास आ गया। वैराग्य ने मन को सांसारिक सम्बन्धों की क्षणभंगुरता की सीख दी। अन्त में सरस्वती ने सिखाया—

> नित्यं स्मरञ्जलदनीलमुदारहार-
> केयूरकुण्डलकिरीटधरं हरिं वा।
> ग्रीष्मे सुशीतमिव वा ह्रदमस्तशोकं
> ब्रह्म प्रविश्य भज निर्वृतिमात्मनीनाम्॥ ५.३१

अन्त में पुरुष और उपनिषद् के सम्भाषण में वैदिक दर्शनों के उत्पथ की मीमांसा की गई है। पुरुष को उपनिषद् ज्ञान देती है—

> असौ त्वदन्यो न सनातनः पुमान्
> भवान्न देवात् पुरुषोत्तमात्परः।
> स एष भिन्नस्त्वदनादिमायया
> द्विधेव बिम्बं सलिले विवस्वतः॥ ६.२५

प्रबोधोदय पुरुष को मिलता है। वह पुरुष का पुत्र है।

कृष्णमिश्र के इस नाटक में कहीं-कहीं प्रहसन के तत्त्व की विशेषता है। यथा,

रण्डाः पीनपयोधराः कति मया चण्डानुरागाद् भुज-
द्वन्द्वापीडितपीवरस्तनभरं नो गाढमालिङ्गिताः।
बुद्धेभ्यः शतशः शपे यदि पुनः कुत्रापि कापालिकी
पीनोत्तुङ्गकुचावगूहनभवः प्राप्तः प्रमोदोदयः ॥ ३.१८

ऐसा प्रतीत होता है कि इसी प्रहसन के चक्कर में लेखक को अपने नाटक में अनेक स्थलों पर शिष्टता और गम्भीरता का स्तर हीन कर देना पड़ा है, जिससे इसकी गरिमा स्खलित हुई है।

कवि का उद्देश्य है वैराग्यभाव को समुदित करना। इसमें उसको पूरी सफलता मिली है। उसने पुनर्जन्मवाद की अनुस्मृति जागरित करते हुए सांसारिक सम्बन्धों के प्रति अनासक्त होने की सीख इस प्रकार दी है—

न कति पितरो दाराः पुत्राः पितृव्यपितामहा
महति वितते संसारेऽस्मिन् गतास्तव कोटयः।
तदिह सुहृदां विद्युत्पातोज्ज्वलान् क्षणसंगमान्
सपदि हृदये भूयोभूयो निवेश्य सुखी भव ॥ ५.२७

कवि के लिए दो मार्ग प्रशस्त हैं—वैष्णवभक्ति और ब्रह्मज्ञान—

नित्यं स्मरञ्जलदनीलमुदारहार-
केयूरकुण्डलकिरीटधरं हरिं वा।
ग्रीष्मे सुशीतमिव वा ह्रदमस्तशोकं
ब्रह्म प्रविश्य भज निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥ ५.३१

इस नाटक में कार्य (action) का अभाव-सा है। रंगमंच पर कोरे सम्भाषण और व्याख्यान प्रायशः अभिनयशून्य हैं। वृत्तों को सुनाया गया है। उनका रंगमंच पर अभिनय नहीं होता।

नेतृपरिशीलन

प्रबोधचन्द्रोदय में प्रायशः नेता और उनके सहाय भावात्मक हैं। इने-गिने मनुष्य हैं, जिनमें बौद्ध भिक्षु और जैन क्षपणक प्रमुख हैं। कवि की दृष्टि में ये दोनों निन्द्य हैं। फिर दोनों अपने मत की हास्यास्पद प्रशंसा करते हैं। भिक्षु का क्षपणक से कहना है—

आः पाप, स्वयं नष्टः परानपि नाशयितुमिच्छसि।

भावात्मक होने पर भी सुवृत्त मानवीकरण के द्वारा वे मानव नहीं प्रतीत होते हैं—यह चरित्र-चित्रणकला का परम वैशिष्ट्य है। मूर्तिमान दम्भादि कवि की कला के द्वारा मनुष्य ही प्रतीत होते हैं।

प्रबोधचन्द्रोदय में प्रतिनायक महाराज विवेक हैं और उनकी नायिका उपनिषद् देवी हैं। इसमें नायक महामोह है। दर्शन और धर्मशास्त्र के बहुसंख्यक पारिभाषिक शब्दों का विशदीकरण करने के लिए और उनका परस्पर सम्बन्ध बताने के लिए उनका मानवीकरण किया गया है।

रस

प्रबोधचन्द्रोदय में अङ्गीरस शान्त है और अङ्ग रस हैं शृङ्गाराभास, हास्य और वीर आदि। कवि ने भिक्षु, क्षपणक और कापालिक की शृंगारित वृत्ति का निदर्शन करते हुए हास्य की सर्जना की है। यथा, क्षपणक की उक्ति है—

अयि पीनघनस्तनशोभने परित्रस्तकुरंगविलोचने।
यदि रमसे कापालिकीभावैः श्रावकाः किं करिष्यन्तीति ॥ ३.१६

नाटक में वीररस के लिए युद्ध के वातावरण का समाकलन है। यथा, सेना को लीजिये—

सज्ज्यन्तां कुम्भभित्तिच्युतमदमदिरामत्तभृङ्गाः करीन्द्रा
युज्यन्तां स्यन्दनेषु प्रसभजितमरुच्चण्डवेगास्तुरंगाः।
कुन्तैर्नीलोत्पलानां वनमिव कुकुभामन्तराले सृजन्तः
पादाताः संचरन्तु प्रसभमसिलसत्पाणयोऽप्यश्ववाराः ॥ ४.२५

कृष्णमिश्र का कलाप्रेम सविशेष है। उन्होंने कापालिक तथा कापालिकी के साथ क्षपणक और भिक्षु को नृत्य-निमग्न कर दिया है।

शैली

कृष्णमिश्र बाण की शैली के अनुरूप जटिल गद्य और पद्य लिखने में समर्थ हैं। यथा,

कल्पान्तवातसंक्षोभलंघिताशेषभूभृतः।
स्थैर्यप्रसादमर्यादास्ता एव हि महोदधेः ॥

आदिकेशव का १५ पंक्तियों का चतुर्थ अंक के अन्त में वर्णन आख्यानात्मक विशेषणों से सम्पोषित समस्तपदावली की छटा से सुमण्डित है। ऐसी पदावली नाट्योचित नहीं होती। फिरभी उन्हें यह सुविदित था कि नाटक में संवादोचित है सरल प्रासादिक शैली। उनके संवाद के गद्य और पद्य वैदर्भी का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। यथा,

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं शृणोति
धीमानधीतमपि न प्रतिसन्दधाति ॥ २.२६

प्रबोधचन्द्रोदय नामक रूपक में रूपकालङ्कार का वैशिष्ट्य स्वाभाविक है। यथा,

मृत्युर्नृत्यति मूर्ध्नि शश्वदुरगी घोरा जरारूपिणी
त्वामेषा ग्रसते परिग्रहमयैर्गृध्रैर्जगद् ग्रस्यते।
श्रुत्वा बोधजलैरबोधबहुलं तल्लोभजन्यं रजः
सन्तोषामृतसागराम्भसि मनाङ् मग्नः सुखं जीवति ॥ ४.२३

इसमें मृत्यु को साँपिन, परिग्रह को गृध्र, ज्ञान को जल और सन्तोष को अमृतसागर निरूपित किया गया है।

वीररसोचित पदविन्यास नीचे के पद्य में है—

उद्धूतपांसुपटलानुमितप्रबन्ध-
धावत्खुराग्रचयचुम्बितभूमिभागाः।
निर्मथ्यमानजलधिध्वनिघोरह्रेष-
मेते रथं गगनसीम्नि वहन्ति वाहाः ॥ ४.२६

गंगा-विषयक उत्प्रेक्षा है—

यत्रैवं हसतीव फेनपटलैर्वक्रां कलामैन्दवीम्। ४.२६

जिन रहस्यों को कवि उद्घाटित करता है, उनके सत्य को सुप्रमाणित करने के लिए कहीं-कहीं अनुप्रासित ध्वनियों का सहारा लिया गया है। यथा,

श्रियो दोलालोला विषयज-रसाः प्रान्तविरसा
विपद्गेहं देहं महदपि धनं भूरिनिधनम्।
बृहच्छोको लोकः सततमबलानर्थबहुला
तथाप्यस्मिन् घोरे पथि बत रता नात्मनि रताः ॥ ५.२४

इसमें देह का विपद्गेह होना अनुप्रास की स्वरलहरी में दोनों पदों के समञ्जसित होने से सम्भावित होता है।

छन्दोयोजना

कृष्णमिश्र शार्दूलविक्रीडित छन्द के लिए सुप्रसिद्ध हैं। युद्धात्मक वातावरण के परिचय के लिए शार्दूलविक्रीडित की योजना समीचीन है। शिखरिणी की निर्झरिणी इस नाटक में अनेक स्थलों पर अपनी कलकल निनाद से स्निग्ध प्रतीत होती है। इसमें अन्य प्रयुक्त छन्द हैं—अनुष्टुप्, आर्या, इन्द्रवज्रा, पृथ्वी, मन्दाक्रान्ता, शालिनी, वंशस्थ और वसन्ततिलका।

वर्णन

इस नाटक में वर्णनों का बाहुल्य नहीं है। जहाँ-कहीं वर्णन हैं, वे कवि के अभिप्रेत उद्देश्य की सम्पूर्ति के लिए प्रयुक्त हैं। काशी का वर्णन कवि ने उत्साहपूर्वक

किया है। कवि के लिए काशी त्रिभुवनपावनी है, वहाँ की वायु भी पाशुपत तापस है—

> तोयार्द्राः सुरसरितः सिताः परागै-
> र्चन्तश्च्युतकुसुमैरिवेन्दुमौलिम्।
> प्रोद्गीतां मधुपरुतैः स्तुतिं पठन्तो
> नृत्यन्ति प्रचललताभुजैः समीराः॥ ४.२८

काशी मुक्ति प्रदान करती है। वहीं अनादिविष्णु का मन्दिर है।

काशी के वर्णन के प्रसङ्ग में आदिकेशव विष्णु की चर्चा बाणभट्ट के आदर्श पर लगभग १५ पंक्तियों में समासजटिल शैली में प्रस्तुत है। इसमें विष्णु के अनेक अवतारों की पराक्रम-गाथा भी चर्चित है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

कृष्णमिश्र का सारा प्रयास इस नाटक में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर समाधारित है। नीचे के पद्य में क्रोध और क्षमा का तत्त्वानुसन्धान है—

> क्रोधान्धकारविकटभ्रुकुटीतरङ्ग-
> भीमस्य सान्ध्यकिरणारुणरौद्रदृष्टेः।
> निष्कम्पनिर्मलगभीरपयोधिधीरा
> वीराः परस्य परिवादगिरः सहन्ते॥ ४.१५

कवि का मनोवैज्ञानिक चिकित्सालय है, जिसमें सिखाया जाता है—क्रोध करने-वाले को हँस कर टालो, आवेश में आनेवाले को अपनी प्रसन्नता से व्यर्थ बनाओ, गाली देनेवाले से कुशल-क्षेम पूछ लो और यदि किसी ने प्रहार ही कर दिया तो समझो कि पाप कटा।[1]

मानव का शोक उसकी ममता से उत्पन्न होता है—इस तथ्य को कवि ने सोदाहरण प्रमाणित किया है—

> मार्जारभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे।
> न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके॥ ५.२०

कवि ने व्रत लिया है विरागभाव उत्पन्न कराने का। विराग का उपनेत्र लगा लेने पर पुत्रादि ढील, चिल्लड़ और जूँ की भाँति दिखाई देते हैं। यथा,

> प्रादुर्भवन्ति वपुषः कति वा न कीटा
> यान्यन्यतः खलु तनोरपसारयन्ति।
> मोहः स एप जगतो यदपत्यसंज्ञां
> तेषां विधाय परिशोषयति स्वदेहम्॥ ५.२१

१. प्रबोध० ४.१८

पाखण्डानुसन्धान

काशीपुरी में दाम्भिक याज्ञिकों को दूसरों के पसीने को छू कर आती हुई वायु भी वर्ज्य है। प्रभविष्णु-शैली में यज्ञ और श्राद्ध की व्यर्थता बताई गई है। यथा,

> निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते।
> स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हन्यते॥ २.२०

अपि च

> मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
> निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्धयेच्छिखाम्॥ २.२१

स्त्रीनिन्दा

कृष्णमिश्र ने भावगत-सम्प्रदाय से प्रेरणा लेकर स्त्री-निन्दा में नैपुण्य प्राप्त किया है। यथा,

> सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति
> निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति।
> एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
> किं नाम वामनयना न समाचरन्ति॥ १.२७

अन्यत्र कृष्णमिश्र ने नारी के सम्मोहन का उल्लेख करते हुए कहा है—

> मुक्ताहारलता रणन्मणिमया हैमास्तुलाकोटयो
> रागः कुंकुमसम्भवः सुरभयः पौष्पा विचित्राः स्रजः।
> वासश्चित्रदूकूलमल्पमतिभिर्नार्यामहो कल्पितं
> बाह्यान्तः परिपश्यतां तु निरयो नारीति नाम्ना कृतः॥ ४.६

सूक्तिसौरभ

प्रबोधचन्द्रोदय में सूक्तियों की माला नाटकीय संवाद के माध्यम से तर्कसङ्गत प्रतीत होती है। कवि की विचारणा प्रायशः सूक्तियों के रूप में प्रस्फुटित हुई है। यथा,

> प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम्।
> अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥

भर्तृहरि के स्वर में स्वर मिला कर कवि तत्त्वावबोध कराता है—

> फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां
> पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम्।
> मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलतापल्लवमयी
> सहन्ते सन्तापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः॥ ४.१६

सूक्तियों में तुलनात्मक ऊहापोह है—

विपुलपुलिनाः कल्लोलिन्यो नितान्तपतज्झरी
मसृणितशिलाः शैलाः सान्द्रद्रुमा वनभूमयः।
यदि शमगिरो वैयासिक्यो बुधैश्च समागमः
क्व पिशितवसामय्यो नार्यस्तथा क्व च मन्मथः॥

कुछ अन्य सूक्तियाँ हैं—

'मूर्खबहुलं जगत्'

अर्थात् संसार में मूर्ख भरे पड़े हैं।

लघीयस्यपि रिपौ नानवहितेन जिगीषुणा भवितव्यम्।

अर्थात् शत्रु को छोटा समझ कर असावधान मत बनो।

सेर्ष्यं प्रायेण योषितां भवति हृदयम्।

अर्थात् स्त्रियों का हृदय ईर्ष्यापूर्ण होता है।

गुणावगुणिका

कृष्णमिश्र आधुनिकता के अग्रदूत हैं। वे महामोह के मुख से मिथ्यादृष्टि को कहलाते हैं कि प्रकाशित अङ्गों से घूमा-फिरा करो। रंगमंच पर आलिंगन-चुम्बन आदि का भारतीय निषेध उनको मान्य नहीं है।

कीथ के अनुसार इस नाटक में 'यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न व्यर्थ होगा कि इसमें नाटकीय गुण हैं। इसका मुख्य गुण इसके प्रभावशाली और भव्य पद्य हैं।' डा० डे की सम्मति है—The gift of satire and realism, as well as of poetry, which the author undeniably possesses, saves his pictures from being caricatures....Nevertheless, of all such plays in Sanskrit, Kṛṣṇa Miśra's work mnst be singled out as an attractive effort of much real merit.

अध्याय १२

भगवदज्जुकीय

संस्कृत का प्रथम प्रख्यात प्रहसन महेन्द्रविक्रमवर्मा का मत्तविलास सातवीं शती के आरम्भ में लिखा गया। इसके पहले और पीछे अगणित प्रहसनों की रचना होती रही, पर उनमें से केवल कुछ ही मिलते हैं। अन्य प्रहसनों के नाम मात्र मिलते हैं और शेष अभी तक अप्राप्य हैं। मत्तविलास के पश्चात् प्रथम प्राप्त प्रहसन भगवदज्जुकीय है, जिसके लेखक और रचनाकाल अनिश्चित हैं। डा० डे का मत है कि इसकी रचना १२ वीं शती के पूर्व हुई और नाट्यशैली की दृष्टि से प्रत्यक्ष ही यह लटकमेलक से पहले लिखा गया।[1] इसकी रचना सम्भवतः ११ वीं शती में हुई।

भगवदज्जुकीय का लेखक सांख्य और योगदर्शन का उच्चकोटि का विद्वान् था। इनका नाम बोधायन-सन्देह-परिधि से बाहर नहीं है।

इस प्रहसन की प्रस्तावना में कुछ उपयोगी बातें मिलती हैं। इसमें सूत्रधार नटी को नहीं बुलाता और विदूषक को प्रियसंवाद देने के लिए बुलाता है। इसमें नाट्य-रसों में हास्य को प्रधान बताया गया है। इससे प्रतीत होता है कि जिस युग की यह रचना है, उसमें हास्य की महिमा बढ़ी-चढ़ी थी। वार नामक नाट्यकोटि की चर्चा है। संभवतः यह अभिनवभारती का नाट्यपार है।[2]

कथावस्तु

किसी परिव्राजक को शाण्डिल्य नामक कोई शिष्य मिल गया, जो ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर पेटपूजा का अच्छा डौल देखकर बौद्ध भिक्षु हो गया। भिक्षु होने पर उसने देखा कि यह भी कुछ अच्छा नहीं हुआ। भिक्षुओं को दिन में एक ही बार खाना मिलता है। बौद्धचर्या भी छोड़कर वह परिव्राजकाचार्य का चेला बन गया। शाण्डिल्य उनकी झोली ढोया करता था। अपने वर्त्तमान गुरु को वह अकारण ही दुष्टाचार्य कहता है और सोचता है कि आचार्य अकेले ही प्रातराश की भिक्षा के लिए कहीं निकल गया है। शाण्डिल्य ने कभी गुरु से पूछा कि आप कैसे भिक्षा माँगते हैं? आचार्य ने बताया—

---

1. Compared with later specimens of the Prahasana, it reveals features of style and treatment which render a date earlier than the 12th century very probable.

२. नाट्यशास्त्र २५. ५० पर।

अमानकामः सहितव्यधर्षणः कृशाज्जनाद् भैक्षकृतात्मधारणः।
चरामि दोषव्यसनोत्तरं जगद् ह्रदं बहुग्राहमिवाप्रसादवान् ॥ ४

शाण्डिल्य ने स्पष्ट स्वीकार किया कि मैं तो भोजन के लिए आपका शरणागत हूँ, धर्म-कर्म से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। चलिए, भिक्षा के लिए चलें। आचार्य ने कहा कि सबेरे ही सबेरे थोड़े ही भिक्षा माँगी जाती है। चलो, इस अशोक-उद्यान में विश्राम करें। उद्यान में कौन प्रवेश करे पहले? इस प्रश्न को लेकर शिष्य ने कहा कि अशोक-पल्लव में व्याघ्र छिपे रहते हैं। अतएव आप आगे-आगे चलें। जाते समय बीच में ही वह चिल्ला उठा कि बचाइये, बचाइये। मुझे व्याघ्र ने पकड़ लिया। वास्तव में उसे मोर ने पकड़ा था किन्तु पकड़ते ही उसने आँखें मींच ली थीं। आचार्य के बतलाने पर कि यह मोर है, शिष्य ने कहा कि मेरे डर से आँख खोलते ही यह बाघ से मोर हो गया। आचार्य शिष्य को पढ़ाना चाहता था। शिष्य की समझ में पढ़ने से कुछ लाभ नहीं होता। आचार्य ने कहा कि पढ़ने से यौगिक ऐश्वर्य प्राप्त होगा। शिष्य ने कहा कि कथनमात्र से क्या होता है? दिखाइये तो जाने। आप योग की चिन्ता करें और मैं भोजन की।

इसी बीच उस उद्यान में वसन्तसेना नामक गणिका विहार करने के लिए चेटी के साथ आ पहुँची। उसका प्रेमी रामिल अभी आनेवाला था। तब तक वह पुष्प-चयन कर रही थी और उसे यमपुरुष ने साँप बनकर काटा और वह मर गई। शिष्य ने उसे मरा देखा तो उससे प्रेम करने का अच्छा अवसर मिला। गुरु को बाधा उपस्थित करते देख उसने उन्हें एक लाख गालियाँ सुनाईं कि तुम अकरुण, निस्नेह, कर्कशहृदय, दुष्टबुद्धि, भिन्नचारित्र, क्रूरशकट और क्षुधालुण्ड हो। अरे, यह तो हमारी ही वैराग्यपरायण जाति की है—संन्यासी की भाँति यह भी कहीं स्नेह नहीं करती। गुरु विमुख हुआ। शिष्य ने प्रेमी की भाँति उसको जीवित मानकर ही उसके स्पर्श का आनन्द लिया। चेटी ने देखा कि यह तो शव की देखभाल भलीभाँति कर रहा है और वह गणिका की माता को बुलाने चली गई।

इधर आचार्य ने शिष्य को प्रभावित करने के लिए अपनी योगमहिमा दिखाई और अपना प्राण गणिका के शरीर में संचारित कर दिया। गणिका जी उठी, पर उसका आचार-व्यवहार परिव्राजक का था। उसने सबसे पहले शाण्डिल्य को डाँटा कि हाथ-पैर धोये बिना मुझे मत छूना। शाण्डिल्य और भी हैरान हुआ, जब गणिका ने कहा कि आओ, पढ़ो। उसने कहा कि गणिका के यहाँ भी पढ़ना ही है तो इससे अच्छा है कि आचार्य के पास चलूँ। जाकर देखा तो आचार्य का शव मिला। शिष्य ने कहा—क्या बहुज्ञ भी मरते हैं?

इस बीच दूर से गणिका की माता और चेटी ने आकर देखा कि वसन्तसेना भली-चंगी है। वसन्तसेना ने आचार्य के स्वरों में अपनी माता से कहा—वृषलवृद्धे,

मुझे छूना मत। उन्होंने समझा कि सांप के विष के प्रभाव से यह ऐसा बोल रही है और चेटी को वैद्य बुलाने के लिए भेज दिया। थोड़ी देर में वसन्तसेना का प्रेमी रामिलक आ पहुँचा, पर यह क्या? उसकी प्रेयसी वसन्तसेना उसे अपना वस्त्र भी नहीं छूने देती। उसने समझ लिया कि इसे भूत लगा है। इधर वैद्य ने मन्त्र से सर्प विष दूर करने का समारम्भ किया और शिरावेध करने के लिए कुल्हाड़ी उठाई। गणिका ने कहा—मूर्ख वैद्य, अलं परिश्रमेण। वैद्य ने बताया कि इसे पित्त चढ़ा है। इसका पित्त, वात और कफ तीनों दूर करता हूँ। वह गोली लाने चला गया।

इसी समय यमदूत लौटकर आया और मन ही मन कहने लगा—यम ने मुझे डांटा है कि दूसरी वसन्तसेना की आयु पुरी हुई है, इसकी नहीं। जलाने के पहले ही इसे पुनर्जीवित करता हूँ। उसने देखा कि यह तो पहले से ही जी उठी है। यह क्या? उसे यह समझते देर न लगी कि आचार्य ने अपना प्राण इसमें संचारित कर दिया है। उसने उपाय यही समझा कि वसन्तसेना का प्राण आचार्य के शव में नियुक्त कर दे। यह करके वह अलग हुआ। आचार्य में गणिका का व्यक्तित्व समुदित हुआ। वे रामिलक को बुलाकर उससे श्रृङ्गारित चर्चा करने लगे और कहा कि मुझे मद्यपान कराओ। वसन्तसेना की मां ने वसन्तसेना को बुलाया तो आचार्य बोले—हां, कहिए। वैद्य के आने पर आचार्य ने पूछा कि किस सर्प ने काटा है। वैद्य ने कहा व्याकरण-सर्प ने। आचार्य ने उसे बेवकूफ बनाया और वह भाग खड़ा हुआ यह कहकर कि यहां मेरा काम नहीं है। अन्त में यमदूत ने गड़बड़ी दूर की। उसने वसन्तसेना से कहा कि क्या आप वृषली के शरीर में पड़े हुए हैं। इसे छोड़कर अपने शरीर को अपनायें। आचार्य ने शरीर-विनिमय योग द्वारा कर लिया। सभी प्रसन्न होकर अपनी राह चलते बने।

समीक्षा

इस प्रहसन की कथा दो भागों में है—प्रथम में आचार्य-शिष्य संवाद है, जिसमें हास्य तत्त्व कम है। द्वितीय में गणिका-प्रसंग में शिष्य, वैद्य आदि की प्रवृत्तियों से उच्चकोटि का हास्य है।

भगवदज्जुकीय की कथा पर मृच्छकटिक की गहरी छाप है। दोनों की समानतायें इस प्रकार हैं:—(१) दोनों में गणिका-नायिकाओं का नाम वसन्तसेना है। (२) दोनों उद्यान में अपने प्रियतम के साथ, विहार करने जाती हैं, जहाँ वह नहीं मिलता। (३) दोनों नायिकाओं की कुछ देर के लिए मृत्यु हो जाती है। (४) दोनों नायिकाओं को जीवनदान परिव्राजक करते हैं। (५) सारी झंझटों के पश्चात् नायक और नायिका मिल जाते हैं।

ऐसा लगता है कि प्रहसन बनाने के लिए उपर्युक्त तत्त्व मृच्छकटिक से ग्रहण कर लिये गये हैं। इसमें नई योजना है। एक आचार्य के शिष्य की, जो भासयुगीन अर्ध-

विदूषक प्रतीत होता है। वह पेट से ही भुक्खड़ नहीं है, कामुक भी है। दूसरा हास्यास्पद कार्यकलाप है वैद्य का। चरक-सुश्रुत के देश प्राचीन भारत में ऐसे वैद्यों का होना कोई अचरज की बात नहीं है। उपनिषदों के देश में ऐसे धर्मान्ध हैं तो क्या उल्टी-सीधी चिकित्सा करनेवाले वैद्य न होंगे? इन्हीं को लेकर प्रहसन का रूप निर्मित है। इन नये तत्त्वों को परवर्ती प्रहसनों में ग्रहण किया गया है। इस दृष्टि से इसकी उपजीव्यता स्वयंसिद्ध है। यमदूत को पात्र बनाना और यौगिक क्रियाओं से अपना प्राण दूसरों में संचारित करके उच्च प्रहसन की निष्पत्ति की गई है।

प्रहसन में कोरी गप्पें ही नहीं हैं, अपितु रंगमंच पर कार्यों का अभिनय भी होता है।

डा० विन्टरनित्ज का इस प्रहसन के विषय में कहना है—*But in our Prahasana, it is not so much the characters as the plot in which the witty and comical element is to be found.*

नेतृपरिशीलन

हास्य की सृष्टि के लिए पुरुषों की चारित्रिक विषमताएँ बढ़ा-चढ़ा कर कही जाती हैं। इस प्रहसन के प्रथमार्ध में परिव्राजकाचार्य और उसके शिष्य शाण्डिल्य दोनों ही कुछ ऐसे ही हैं, जो अपनी प्रवृत्तियों से हँसाते हैं। पहली बात तो यही है कि आचार्य की योग्यता उसके शिष्यों की योग्यता से प्रमाणित होती है। धन्य थे परिव्राजकाचार्य, जिनका शिष्य शाण्डिल्य ऐसा गया-गुजरा था। शिष्य गुरु को भी ले डूबा था। गुरु के शब्दों में शिष्य तमोवृत है। आचार्य मानहीन थे। शिष्य उनको कभी-कभी त्वम् कहता था, उनकी उपस्थिति में अश्लील वाक्यों का उच्चारण करता था। गुरु ने कहा—पढ़ो। शिष्य ने कहा—अभी पढ़ना दूर रहा। उसने गुरु से स्पष्ट कह दिया कि पेट भरने के लिए तुम मुण्डित हो। तब भी आचार्य उसे भगा नहीं देते। शिष्य का गणिकाप्रेमी होना आधुनिकता को भी परास्त करता है।

प्रहसन में वैद्यजी पूरे बैल ही हैं। उनका चरित्र बहुत निखरा नहीं है। परवर्ती वैद्यों की शृंगारित अश्लीलता का वे प्रदर्शन नहीं करते।

यमदूत दिव्य पुरुष है। वह भी रसिक है। गणिका का वर्णन करने से नहीं चूकता—

> श्यामां प्रसन्नवदनां मधुरप्रलापां
> मत्तां विलासजघनां वरचन्दनार्द्राम्।
> रक्तोत्पलाभनयनां नयनाभिरामां
> क्षिप्रं नयामि यमसादनमेव बालाम्॥ २३

रस

प्रहसन में स्वभावतः हास्य और शृंगार की बहुलता है। इसमें गणिका की मृत्यु-प्रकरण में करुण और योगी के द्वारा उसमें प्राणसंचारण प्रकरण अद्भुत रहे हैं। परिव्राजक की बातें शान्तानुदायिनी हैं।

शैली

भगवदज्जुकीय की शैली नाट्योचित और प्रहसन के सर्वथा अनुकूल है। इसमें छोटे-छोटे वाक्यों की प्रायः असमस्त परम्परा नातिदीर्घ और सुबोध है। पद्यों के पद नन्हें हैं और उपमा के सहारे वे अर्थानुमिति तक पहुँचते हैं। यथा,

यदा तु संकल्पितमिष्टमिष्टतः
करोति कर्मावहितेन्द्रियः पुमान्।
तदास्य तत् कर्मफलं सदा सुरैः
सुरक्षितो न्यास इवानुपाल्यते ॥ ६

पद्यों में अन्त्यानुप्रास संगीतप्रवण है। यथा,

सुखेषु दुःखेषु च नित्यतुल्यतां
भयेषु हर्षेषु च नातिरिक्तताम्।
सुहृत्सु च मित्रेषु च भावतुल्यतां
वदन्ति तां तत्त्वविदो ह्यसंगताम् ॥ ७

भाषा में बातचीत के योग्य सम्बोधनों और अर्ध-गालियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में है। कवि के वक्तव्यों में तर्कसंगति और प्रभविष्णुता है।

पूरे प्रहसन में टीकाकार ने व्यञ्जना से आध्यात्मिक अर्थ की उद्भावना की है, जो अनेक स्थानों पर अत्यन्त सटीक प्रतीत होती है।

इस प्रहसन के इन्हीं गुणों से मुग्ध होकर डा० डे० ने इसके विषय में कहा है— It is easily the best of Sanskrit farces.

अध्याय १३

कर्णसुन्दरी

कर्णसुन्दरी नाटिका के लेखक महाकवि बिल्हण विक्रमाङ्कदेवचरित नामक महाकाव्य के रचयिता कश्मीरी हैं, किन्तु उन्होंने अखिल भारत को अपनी काव्यप्रतिभा का क्षेत्र बनाया था। उनका जन्म १०३० ई० के लगभग और मृत्यु ११०० ई० के लगभग हुई। उनकी जन्मभूमि के परिसर में वितस्ता नदी बहती थी। खुनमुह नामक बिल्हण का गाँव श्रीनगर से ६ मील दूर है। वहीं हर्षीश्वर नामक तीर्थ है। खुनमुह में केसर की खेती से सारा प्रदेश सुवासित था। इसी परिप्रेक्ष्य में कविवर की व्यञ्जना से आत्मप्रशंसा है—

सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥

बिल्हण अपने को वाल्मीकि और व्यास की परम्परा में मानते थे—

यन्मूलं करुणानिधिः स भगवान् वल्मीकजन्मा मुनि-
र्यस्यैके कवयः पराशरसुतप्रायाः प्रतिष्ठां दधुः।
सद्यः यः पथि कालिदासवचसां श्रीबिल्हणः सोऽधुना
निर्व्याजं फलितः सहैव कुसुमोत्तंसेन कल्पद्रुमः॥

बिल्हण को शास्त्रार्थ की निरतिशय अभिरुचि थी। उन्होंने अपने विषय में कहा है—

यं तु ग्रन्थसहस्रशाणकषणत्रुट्यत्कलङ्कैर्गिरा-
मुल्लेखैः कवयन्ति बिल्हणकविस्तेष्वेव सन्नह्यति॥

और भी—

लब्ध्वा लक्ष्मीर्दिशि दिशि कृताः सम्पदः साधुभोग्याः
प्राप्ता योग्यैः सह कलहतः कुत्र नोच्चैर्जयश्रीः।
गोष्ठीबन्धः सपदि सुजनैः सारनिष्कर्षदक्ष-
प्रज्ञालब्धस्तुतिभिरचिरादस्तु काश्मीरकैर्मे॥ वि० १८.१०३

वृन्दावन, कन्नौज, प्रयाग और वाराणसी के तीर्थों से होते हुए वे सोमनाथ और सेतुबन्ध तक पहुँचे। बीच में उन्होंने राजाओं को अपने काव्यामृत से परितृप्त किया। गुजरात के नृपति कर्ण की राजसभा में रहते हुए बिल्हण ने कर्णसुन्दरी नामक नाटिका का प्रणयन किया। इसकी रचना १०७५ ई० के लगभग हुई होगी,

जब कर्ण (१०६४-१०९४ ई०) राजा था और उसने गर्जनवंशी राजाओं को सिन्धुतट पर हराकर गर्जनकाधिराज की उपाधि ग्रहण की थी।[1]

कर्णसुन्दरी का प्रथम अभिनय अणहिलपाटण में श्रीशान्ति-उत्सवदेवगृह में भगवान् नाभेय के यात्रामहोत्सव के अवसर पर प्रातःकाल में सम्पन्न हुआ था।[2] यात्रामहोत्सव का प्रवर्तन महाराज कर्ण के महामात्य सम्पत्कर ने किया था। बिल्हण ने इस नाटिका का इतिवृत्तसार इस प्रकार दिया है—

विद्याधरेन्द्रतनयां नयनाभिरामां
लावण्यविभ्रमगुणां परिणीय देवः।
चालुक्यपार्थिवकुलार्णवपूर्णचन्द्रः
साम्राज्यमत्र भुवनत्रयगीतमेति ॥ १.१३

महाराज कर्ण का मन्त्री सम्पत्कर उदयन के यौगन्धरायण की भाँति कुशल था। उसे महारानी के संरक्षण में रहती हुई नायिका का विवाह कर्ण से कराना है। नायिका है स्वर्ग से उतरी हुई विद्याधरी, जिसे नायक ने लीलावन में उतरते देखा था—

स्रस्ता काचनलिंगलंघनवशात् तद्वेद्मि विद्याधरी ॥ १.२०

विद्याधरी को देखकर कर्ण की शृङ्गारित वृत्तियाँ समुदित हुईं। वह विदूषक के साथ विश्राममण्डप में पहुँचा। नायिका की तिरछी दृष्टि से उसका अन्तः बींध गया था।

राजा ने विदूषक को अपना स्वप्न सुनाया कि एक सुन्दरी मेरे वियोग में बारंबार मूर्च्छित होने के पश्चात् पाशबन्ध से अपना जीवन समाप्त कर देना चाहती थी। मैंने उसे आश्वासन तो दिया, पर स्वप्न के पश्चात् वह कहाँ गई ? महारानी ने स्वप्न में राजा का प्रलाप सुन लिया था। वह क्रुद्ध थी। विनोद के लिए विदूषक के साथ राजा मदनोद्यान में पहुँचा। वहाँ भित्ति पर उसी नायिका का चित्र था। उसे देखकर राजा ने पहचाना—

सैवोन्मज्जत्कनककलशप्रेक्षणीयस्तनुश्री-
र्मूर्त्तिर्लोकत्रयविजयिनी राजधानी स्मरस्य।
एतच्चक्षुस्तदपि विदलत्केतकीपत्रमित्रं
छाया सेयं नियतमधरे विद्रुमोत्सेकमुद्रा ॥ १.४३

इसी समय महारानी वहाँ आ गई। उसने भित्तिचित्र देखा कि वह तो नई

---

१. कर्णसुन्दरी ४.२२

२. इसी कारण कवि ने इस नाटिका का नान्दी पाठ 'जिनः पातु वः' पद्य से किया, जो अर्हन् की स्तुति है। इसके पश्चात् शिव और विष्णु की स्तुति है।

नायिका कर्णसुन्दरी का चित्र है। उस नायिका को रानी ने अपने संरक्षण में रखा था। रानी क्रुद्ध होकर चलती बनी।

राजा ने चरणपतन द्वारा महारानी को प्रसन्न तो कर लिया, पर कर्णसुन्दरी का चक्कर न छूट सका। वह आत्मविनोद के लिए तरङ्गशाल में भित्तिचित्रों को देखने के लिए चल पड़ा। वहाँ रानी ने उनको मिटवा दिया था। वहाँ से विदूषक के साथ राजा लीलावन में मनोविनोद के लिए पहुँचा जहाँ केलिकमलिनी के बीच नायिका का दर्शन हुआ। राजा ने देखा कि—

सुतनुरनवलोकयन्त्युपान्ते स्थितमपि काञ्चनकुम्भमम्बुपूर्णम्।
क्वचिदपि गतमानसा करेण स्पृशति कुचप्रतिबिम्बमम्बुमध्ये॥ २.२२

स्नान करके नायिका निकली और सखी के साथ लतागुल्म में जा पहुँची। वहीं छिपकर राजा उनकी बातें सुनने लगा। उन दोनों ने नायक के विषय में जो पद्य बनाये थे, वे सुनाये गये। उन्हें सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। नायिका तो पूर्वराग में सन्तप्त होकर जीवन का अन्त करने में ही कुशल मानने लगी थी। वह कहती है—

हा निश्चितं मरणमेव ममेह जातम्॥ २.३५

यह कर वह मूर्च्छित हो गई। तभी राजा उसके पास आ पहुँचा। राजा के स्पर्श से नायिका ने आँखें खोलीं। सखी ने उसे राजा के पास बैठा दिया। नायक-नायिका की विस्रम्भ गोष्ठी का अवसर विदूषक और उसकी सखी ने देना चाहा। तभी महारानी स्वयं कर्णसुन्दरी को ढूँढती हुई आ पहुँची। तब तो नायिका को कहना पड़ा—'अनभ्र इदं वज्रपतनं प्रेक्षितम्' सभी वहाँ से चलते बने।

रानी ने कार्यक्रम बनाया कि राजा की कर्णसुन्दरी की प्रणय-योजना में वञ्चना करनी है। वह स्वयं तो कर्णसुन्दरी बनी और उसकी सखी हारलता कर्णसुन्दरी की सखी वकुलावली बनी।[1] इधर नायिका का विरहलेख नायक को मिला था। विदूषक ने उन दोनों के लिए संकेत-स्थान रात्रि के लिए निर्णीत किया था। वहीं राजा पहुँचे और महारानी भी कर्णसुन्दरी बनकर आ गई। राजा ने उसे प्राणेश्वरी (नई नायिका) समझा और आलिंगन किया तो महारानी अपने रूप में प्रकट हो गई। राजा को उसके पैर पड़ना पड़ा।

रानी ने एक दूसरा भी कपटनाटक रचा, जिसमें उसे मुँह की खानी पड़ी। उसने राजा का विवाह कर्णसुन्दरी से करने का आयोजन किया। इस आयोजन में वह कपटपूर्वक कर्णसुन्दरी के स्थान पर स्त्रीवेश में अपने भागिनेय से विवाह कराकर राजा को वञ्चित करना चाहती थी। रानी ने स्वयं कन्यादान दिया। पर रानी ने जब उसे निहारा तो उसके मुँह से निकला—

---

1. इस प्रकार दूसरे की वेषभूषा धारण करके किसी को ठगने की नाटकीय योजना को कपटनाटक कहते हैं।

आश्चर्यम् । प्रत्यक्षं सैवेषा । अहो माहात्म्यं कपटनाटकस्य ।

विदूषक के आदेशानुसार उसे राजा ने ग्रहण किया । उसी समय राजा का कर्णसुन्दरी से विवाह रचानेवालों ने भण्डाफोड़ किया कि वह भागिनेय तो कहीं बाहर घूम रहा है । तब रानी का माथा ठनका कि यह तो कर्णसुन्दरी ही से राजा का विवाह वास्तविक रहा । उसने कहा—तद्वञ्चितास्मि ।

इस नाटिका का ऐतिहासिक महत्त्व है । राजा कर्ण की सेना का गर्जननगर (गजनी) की राजसेना को सिन्धुतट पर परास्त करने का वृत्तान्त इसके अन्तिम भाग में है । इसके पश्चात् कर्ण सम्राट हुआ और उसने गर्जनकाधिराज की उपाधि धारण की ।

त्रातारं जगतां विलोलवलयश्रेणीकृतैकारवं
सोन्मादामरसुन्दरीभुजलतासंसक्तकण्ठग्रहम् ।
कृत्वा गर्जनकाधिराजमधुना त्वं भूरिरत्नाङ्कुर-
च्छायाविच्छुरिताम्बुराशिरशनादाम्नः पृथिव्याः पतिः ॥ ४.२२

समीक्षा

बिल्हण कवि नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन करना सम्भवतः अपनी गरिमा के विरुद्ध मानते थे । नाटिका का रूप क्या होना चाहिए—इसका ध्यान उन्हें कम था । उनको सदैव चिन्ता इस बात की दिखाई देती है कि अभी पाठक को अधिकाधिक पद्य पढ़ाकर पूर्ण परितोष काव्यविलास के द्वारा करा दिया कि नहीं ।

इस नाटिका की सबसे बड़ी त्रुटि है—रंगमंच पर अङ्कभाग में भी कार्यव्यापार का अभाव । कार्यरहित कोरे संवादों से रूपक थोड़े सफल होता है ।

कर्णसुन्दरी राजशेखर की विद्धशालभञ्जिका और हर्ष की रत्नावली के आदर्श पर अधिकांशतः रूपित है ।[1] इसके अतिरिक्त कर्पूरमञ्जरी की छाया कर्णसुन्दरी के अनेक पद्यों पर है ।

कर्णसुन्दरी में पद्यों का बाहुल्य है, जिनमें कतिपय गीतकाव्य का आदर्श प्रस्तुत करते हैं । यथा,

यत्ताररमणोऽपि निर्वृतिपदं नास्याश्चलच्चक्षुषो-
र्यद्गात्रं शतपत्रपत्रशयनेऽप्युत्फालमुद्वेल्लति ।
शीतं यच्च कुचस्थलीमलयजं धूलीकदम्बायते
किं वान्यत्तदनङ्गमंगलमयी भङ्गी कुरङ्गीदृशः ॥ २.१

---

१. कर्णसुन्दरी का नीचे लिखा पद्य रत्नावली के पद्य के तद्रूप है—

त्वां प्रत्येव मयापि नर्मकृतमित्युक्ते कुतो मन्यसे
निर्दोषोऽहमिति ब्रवीमि सहसा दृष्टव्यलीकः कथम् ।
क्षन्तव्यं मयि सर्वमित्यपि भवेदङ्गीकृतोऽयं विधिः
किं वक्तुं मम युक्तमित्यनुगुणं देवि त्वमेवादिश ॥ ३.२२

नायिका का विरहलेख सात पद्यों का गीत है। यथा,

> धूर्तोऽयं सखि वध्यतामिति विधुं रश्मिव्रजैः कर्षति
> ज्योत्स्नाम्भः परतः प्रयात्विति रिपुं राहुं मुहुर्याचते।
> अप्याकांक्षति सेवितुं सुवदना देवं पुरद्वेषिणं
> भूयो निग्रहवाञ्छया भगवतः शृङ्गारचूडामणेः ॥ ३.१६

संवाद बहुधा पद्यात्मक होने से अस्वाभाविक लगते हैं। कहीं-कहीं कुछ विशेष बातों को कहने के लिए चेटी, नायिका आदि पात्र प्राकृत के स्थान पर संस्कृत बोलते हैं। कर्णसुन्दरी की सखी नायक के लिए संस्कृत में श्लोक रचना करती है, यद्यपि नायिका स्वयं प्राकृत में श्लोक बनाती है। अनेक स्थलों पर एकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। तृतीय अङ्क के आरम्भ में सात पद्यों की एकोक्ति है, जिसमें वह नायिका की ध्यान-स्तुति करता है। यथा,

> कन्दर्पदैवतनिकेतनवैजयन्ती यान्ती विलासरसमन्थरमुत्पलाक्षी।
> दृष्टिं निवेदितवती मयि कालकूटलेशान्धकारितसुधालहरीविचित्राम् ॥ .३६

भावात्मक उथल-पुथल का सुपरिचित उदाहरण है राजा का कर्णसुन्दरी-नायिका के भ्रम से वञ्चनापरायण महारानी से संकेत-स्थान में मिलना। जब राजा कहता है—

> जयति धनुरधिज्यं भ्रूविलासः स्मरस्य
> स्पृशति किमपि जैत्रं तैक्ष्ण्यमक्ष्णोः प्रचारः।
> अपि च चिबुकचुम्बीश्यामलाङ्ग्यास्तनोति
> स्तनकलशनिवेशः पेशलश्रीः पृथुत्वम् ॥ ३.३०

यह कहकर कपट-कर्णसुन्दरी का आलिंगन करता है तो महारानी अपना कर्णसुन्दरी का कपटवेष हटा लेती है।[1]

---

१. रङ्गमञ्च पर आलिङ्गन भारतीय विधान के विपरीत है।

अध्याय १४

लटकमेलक

भगवदज्जुकीय के पश्चात् के प्राप्त प्रहसनों में लटकमेलक की रचना १२वीं शती के पूर्वार्ध में कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र के आश्रित कविराज शंखधर ने की।[1] लटक का अर्थ है धूर्त और मेलक है सम्मेलन।

कवि शंखधर आत्मप्रशंसक थे। उन्होंने अपना और अपनी रचना का परिचय दे डाला है—

चित्रं चरित्रं स्खलितव्रतानां शीलाकरः शंखधरस्तनोति।
विद्वज्जनानां विनयानुवर्ती धात्रीपवित्रीकरणः कवीन्द्रः॥ १.७

शील के आकर और पृथ्वी के पवित्र करनेवाले हैं कवीन्द्र शंखधर। वे विनयानुवर्ती हैं। इस पद्य से व्यक्त होता है कि इस प्रहसन की रचना कवि ने इस उद्देश्य से की है कि आचारभ्रष्ट लोगों की पोल खुले और धरातल उनके कुकृत्यों से कलंकित न रहे। ऐसा लगता है कि कवि साधारण कोटि का था और कन्नौज के बाहर उसे कहीं स्थान न मिल सका।[2] वैसे उसे कविकर्म की योग्यता का विश्वास था। उसने कहा है—

कतिपयनिमेषवर्तिनि जन्मजरामरणविह्वले जगति।
कल्पान्तकोटिबन्धुः स्फुरति कवीनां यशः प्रसरः॥ १.६

कथानक

दो अङ्कों के इस प्रहसन की कथा मदनमञ्जरी की कुट्टनी दन्तुरा के भुजंग-संगीतक से आरम्भ होती है। दन्तुरा ने गुप्त वेश्यागामियों की गणना की है—

तपस्वी अज्ञानराशि, जटासुर दिगम्बर, आचार्य सभासलि, फुंकटमिश्र, जन्तुकेतु महावैद्य, ब्रह्मचारी कुलव्याधि, संग्रामविसर, झगडूसाह ठक्क और वन्दी व्यसनाकर। अपने नाम से ही इनका चरित्र व्यक्त है।

आचार्य सभासलि अपने शिष्य कुलव्याधि के साथ दन्तुरा के पास मदनमंजरी के प्रेम की खोज में आ पहुँचे। शिष्य कुलव्याधि ने उन्हें भय बताया कि आपकी पत्नी

---

१. अगणित प्रहसन अपनी अयोग्यता के कारण अब केवल नामशेष रह गये हैं। यथा, शारदातनय के भावप्रकाश में सैरन्ध्रिका, सागरकौमुदी तथा कलिकेलि की, भूपाल के रसार्णवसुधाकर में आनन्दकोश, बृहत्सुभद्रक की तथा विश्वनाथ के साहित्य-दर्पण में धूर्तचरित और कन्दर्पकेलि की चर्चा है।

२. गोविन्दादपरः परः परगुणग्राही न कश्चित् पुनः॥ १.८

कलहप्रिया आपकी खोपड़ी तोड़ेगी। कलहप्रिया ने क्या किया था—सभासलि के साथ गृहयुद्ध में एक-दूसरे को दाँतों से काटा, नखों से चिचोहा, हाथ-पैर का मारण प्रयोग किया। अन्त में कलछुल, लुआठी, पीढा, हाँड़ी आदि के प्रयोग से कलहप्रिया ने अपने पतिदेवता का सत्कार करके विदा किया। सभासलि को उसकी बुढ़ापा खल रही थी। उन्होंने मदनमंजरी के सौन्दर्य पर अपने को निछावर कर दिया था। सभासलि ने देखा कि दन्तुरा की जाँघ को कुत्ते ने काट खाया है और उन्होंने उपचार के लिए जन्तुकेतु वैद्य को बुलाया, जो विशेषज्ञ था—

व्याधयो मदुपचारलालिता मत्प्रयुक्तमसृतं विषं भवेत्।
किं यमेन सरुजां किमौषधैर्जीवहर्तरि पुरः स्थिते मयि॥ १.२२

दिगम्बर जटासुर बकरी पालते थे। एक दिन अज्ञानराशि ने उसे भूल से बछिया समझकर खाने के लिए मार डाला। भूल से मारा—अतएव दण्डनीय नहीं है, यह सभासलि ने निर्णय दिया। यह सब निर्णय मदनमंजरी की सभा में हुआ। तभी मिथ्याराशि की तपस्विनी को प्रसव हुआ। इस बीच जटासुर को सूझा कि स्वर्ण-निर्मित अर्हत् मूर्ति को प्रीतिदान में मदनमञ्जरी को दे दूँ। उसकी गन्दगी देखकर उसे दन्तुरा ने मार भगाने का आदेश दिया।

दूसरे अंक में मदनमञ्जरी के प्रेमी संग्रामविसर, झकटकसार, मिथ्याशुक्ल, फुंकटमिश्र आदि ने मदनमञ्जरी की स्तुति की।

मिथ्याशुक्ल का कहना है—

किं नेत्रयोरमृतवर्तिरियं विधातु-
राद्या किमद्भुतशरीरविधानलेखा।
संसारसारमहह त्रिजगत्पवित्रं
तद्रत्नमेदुपसर्पति पङ्कजाक्षी॥ २.१८

फुंकटमिश्र का सौन्दर्यदर्शन है—

लावण्यामृतसरसी ललितगतिर्विकचकमलदलनयना।
कस्य न मदनशरासनविधुरमनस्तापमनुहरति॥ २.२०

फुंकट को मिथ्याशुक्ल ने झगड़ा करके बलात् बाहर किया।

व्यसनाकर जी आ पहुँचे। उन्हें एक मोटी धोबिन का सहवास प्राप्त था। उनसे दिगम्बर जटासुर लड़ पड़े और उसे बाहर भगाया। जटासुर दन्तुरा से ही प्रेमक्रीडा करने के लिए आतुर थे। उन दोनों का विवाह कराने के लिए जंगम चतुर्वेदी ने मन्त्र पढ़ा—

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितमर्हसि॥ २.३४

उन्हें दक्षिणा में दो हरें मिले। वह जटासुर से दक्षिणा के लिए लड़ पड़ा। सभासलि प्रसन्न होकर दखिन-पवन का गुणगान करते हैं।

कवि की सदिच्छा का परिचय इस प्रहसन के भरतवाक्य से मिलता है—

> आस्तां विद्वत्प्रकाण्डश्रवणपुटचमत्कारिकाव्यं कवीना-
> मस्तु व्यामोहशान्तिः सृजतु हृदि मुदं निश्चलां चन्द्रचूडः।

शैली

कवि में प्रतिभा थी। वह प्रकृति के जीवन्तपक्ष का द्रष्टा था, जैसा कि उसके निम्नोक्त पद्य से प्रतीत होता है—

> मुखकमलं परिचुम्बन्नलिभरदरदलितपद्मिनीनिवहः।
> अयमुपसर्पति मन्दश्चन्दनवनपावनः पवनः॥ १.१०

इस पद्य में व्यंजना से भौंरों का भार स्वल्पतम बताने के लिए कवि ने अलिभर शब्द का प्रयोग किया है। अलिभर शब्द में सर्वत्र ह्रस्वता है।

अध्याय १२

ललितविग्रहराज

ललित विग्रहराज की रचना महाकवि सोमदेव ने शाकम्भरि नरेश विग्रहराजदेव चतुर्थ के अभिनन्दन हेतु किया था।[1] नाटक को शिलाओं पर ११५३ ई० में उत्कीर्ण करके मन्दिर-भित्तियों में जड़ दिया गया था, पर उस मन्दिर को तोड़कर उस उत्कीर्ण शिला को मसजिद की दीवाल में जड़ा गया है। आज भी नाटक की उत्कीर्ण शिला दर्शकों को उस युग के धार्मिक अभिनिवेश की झाँकी प्रस्तुत करती है।

चरितनायक चाहमान वंश के सम्राटों में अग्रगण्य है। उसने तोमरों से दिल्ली जीती थी। यवनों को अनेक युद्धों में उसने परास्त किया था। उसने हरकेलि नाटक की रचना की थी, जो मन्दिर-भित्ति पर उत्कीर्ण था, पर अब वह ढाई दिन का झोपड़ा नामक मसजिद में लगा है। विग्रहराज कम से कम ११५३ से ११६३ ई० तक शासक रहा।

कथानक

विग्रहराज इन्द्रपुर के वसन्तपाल की कन्या देसलदेवी के प्रति आसक्त थे। प्रेम का प्रारम्भ स्वप्न से हुआ था। नायिका की सखी शशिप्रभा नायक के पास आई और उसने जान लिया कि वह नायिका के प्रति पर्याप्त समुत्सुक हैं। नायक ने नायिका के पास कल्याणवती को यह सन्देश देने के लिए भेजा कि इधर तुरुष्कों से लड़ने के लिए जाना है। उनसे निपटकर तुमसे मिलूँगा।

विग्रहराज के स्कन्धावार में दो तुरुष्क वन्दी थे। एक दिन उनकी भेंट उस चर से हुई जिसे म्लेच्छराज ने विग्रहराज का समाचार प्राप्त करने के लिए भेजा था। उसने बताया कि सोमेश्वर दर्शन के लिए आये हुए यात्रियों के साथ घुस आया हूँ। विग्रहराज की सेना में १००० हाथी, एक लाख घोड़े और दस लाख पैदल हैं। उसने उनको राजा का आवास बताया और चलता बना। दोनों वन्दी राजा के आवास के पास ही टिके थे। उन्होंने राजा की प्रशस्ति की और पुरस्कार पाये।

विग्रहराज ने शत्रुराज हम्मीर के पास जो गुप्तचर भेजा था, उसने बताया कि हम्मीर के पास असंख्य हाथी, रथ, घोड़े और पैदल सैनिक हैं। उसका स्कन्धावार सुरक्षित है। वह अब एक ही योजन दूर स्थित है।

---

१. इसका प्रकाशन इण्डियन एण्टिक्वेरी, वर्ष २० में हुआ है।

विग्रहराज अपने मामा सिंहवल से मिला और मन्त्री श्रीधर से भी परामर्श किया। उन्होंने कहा कि शत्रु वलवत्तर है, उससे न लड़ें। विग्रहराज ने कहा कि मैं सन्धि-प्रस्ताव भेजने के पक्ष में नहीं हूँ। इसी बीच हम्मीर का दूत आया।

यहीं उत्कीर्ण लेख चतुर्थ अंक में समाप्त हो जाता है। ऐसा लगता है कि युद्ध नहीं हुआ और विग्रहराज को नायिका से मिलन हुआ।

दिल्ली शिवालिक लेख से ज्ञात होता है कि उन्होंने मुसलमान आक्रमणकारियों से लड़कर उन्हें परास्त किया। उसके उत्तराधिकारी को ११९३ ई० में यवन आक्रमणकारियों ने जीता और मार डाला।

अध्याय १६

हरकेलिनाटक

हरकेलिनाटक के प्रणेता महाराजाधिराज, परमेश्वर विग्रहराजदेव हैं, जिनको उनके सभाकवि सोमदेव ने अपने नाटक ललितविग्रहराज का चरितनायक बनाया। इसका प्रणयन ११५० ई० के लगभग हुआ होगा।

इसमें शिवगौरी-संवाद का वैशिष्ट्यवाला भाग अवशिष्ट है, जो पञ्चम अंक का अन्तिम अंश है। शिव और गौरी के साथ विदूषक और प्रतिहार हैं। इसमें रावण के द्वारा शिव की सेवा की चर्चा है।

शिव और उसके सेवक शबर बन जाते हैं। सुगन्धि आती देखकर शिव ने मूक को भेजा कि देखो, कहाँ से आ रही है। मूक ने कहा कि अर्जुन यज्ञ कर रहा है। मूक को किरातवेश में अर्जुन के पास भेजा गया। शिव ने देखा कि पहले के वैरी मूक और अर्जुन लड़ने लगे। वे स्वयं किरात बनकर पहुँचे और मूक का पक्ष लेकर लड़ने लगे। शिव और अर्जुन में घोर युद्ध हुआ।

प्रतिहार ने गौरी को बताया कि घोर युद्ध हो रहा है। शिव ने अर्जुन के पराक्रम को मान्यता दी और युद्ध का अन्त हुआ।

हरकेलिनाटक का कथानक किरातार्जुनीय के कथानक से बहुत कुछ भिन्न है। यह कूटनाटक है, जिसमें शिवादि कूटपात्र हैं। ऐसे नाटक को परवर्ती युग में छाया-नाटक कहा गया है।[1]

चन्द्रप्रभाविजयप्रकरण

चन्द्रप्रभाविजयप्रकरण के रचयिता देवचन्द्र हेमचन्द्र के शिष्य थे। इसमें आठ अङ्क हैं। इसका प्रथम अभिनय अजितनाथ के वसन्तोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसके अन्त में प्रशस्ति में कुमारपाल की अर्णोराज की विजय का उल्लेख है।[2] इस प्रकरण की रचना ११५० ई० के लगभग हुई।

---

१. रामदेव व्यास का सुभद्रापरिणयन इन्हीं कारणों से छायानाटक कहा गया है।

२. Krishnamacharya : History of Classical Skt. Lit—P, 644. इस पुस्तक की प्रति जैसलमेर के भाण्डार में है।

अध्याय १७

रामचन्द्र का नाट्यसाहित्य

रामचन्द्र सुप्रसिद्ध, जैनाचार्य हेमचन्द्र के प्रधान शिष्य थे।[1] हेमचन्द्र की प्रतिभा का विलास गुजरात के राजा कुमारपाल के शासनकाल (११४३–११७२ ई०) में १२वीं शताब्दी में हुआ था। सिद्धराज जयसिंह (१०९४–११४२ ई०) ने उन्हें कवि कटारमल्ल की उपाधि से अलङ्कृत किया था। रामचन्द्र ने अनवरत श्रम करते हुए भारती-भण्डार को सम्भृत किया। उन्होंने अपने विषय में विशेषण दिया है— अचुम्बित काव्यतंद्र और विशीर्ण काव्यनिर्माणतन्द्र। रामचन्द्र एकदृष्टि थे। कथाओं के अनुसार उन्होंने स्वयं अपने को ऐसा बना लिया था।

रामचन्द्र कुमारपाल को प्रिय थे। कुमारपाल के पश्चात् जैनधर्म का विरोधी अजयपाल राजा हुआ। उसके उत्पीडन से रामचन्द्र की इहलोकलीला समाप्त हुई। यह दुर्घटना ११७३ ई० की है। रामचन्द्र का रचनाकाल १२वीं शती के द्वितीय और तृतीय चरण हैं।

रामचन्द्र में विनय का अभाव था। वे आत्मप्रशंसा करते हुए अघाते नहीं थे, साथ ही दूसरे महाकवियों की हीनता बताने में भी रुचि लेते थे। स्वतंत्रता के परम उपासक थे रामचन्द्र।

रामचन्द्र ने अपने को प्रबन्धशतकर्ता कहा है।[2] अबतक उनकी ४७ पुस्तकों के नाम मिले हैं। सम्भव है, भविष्य में उनके अन्य ग्रन्थ मिलें। इतना तो निश्चित प्रतीत होता है कि उन्होंने यदि सौ ग्रन्थ न भी लिखें हों तो भी पचास से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन उन्होंने किया ही है।

रामचन्द्र के ग्रन्थ तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं—रूपक, काव्य तथा स्तोत्र और शास्त्र। उनके ११ रूपकों में से केवल ६ प्राप्य हैं—नलविलास, सत्यहरिश्चन्द्र, कौमुदीमित्रानन्द, निर्भयभीमव्यायोग, रघुविलास तथा मल्लिकामकरन्द। शेष रूपक नहीं मिलते।[3]

---

१. हेमचन्द्र का जन्म १०८८ ई० और मृत्यु ११७२ ई० में हुई थी।

२. शत अधिक संख्या का वाचक होता है। इसका अर्थ पूरे सौ होना आवश्यक नहीं। लगभग सौ या केवल बहुसंख्यक के अर्थ में शत का प्रयोग साभिप्राय है।

३. रोहिणीमृगाङ्क-प्रकरण, राघवाभ्युदय-नाटक और यादवाभ्युदय-नाटक नहीं मिलते। इनके कतिपय पद्य रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में उद्धृत हैं।

रामचन्द्र के काव्यों में से कुमारविहारशतक प्राप्य है।[1]

इनके अतिरिक्त उनके द्वारा प्रणीत २८ स्तोत्र हैं। स्तोत्रों में प्रायः जैन तीर्थङ्करों की स्तुतियाँ हैं।

रामचन्द्र ने अपने दो शास्त्र-ग्रन्थों में गुणचन्द्र को अपना सहयोगी बनाया है। ये दो ग्रन्थ हैं—द्रव्यालङ्कार तथा नाट्यदर्पण। इनका तीसरा शास्त्र है—हैमबृहद्वृत्तिन्यास।

नलविलास में कवि ने अपनी स्वातन्त्र्य-प्रियता का पुनः-पुनः परिचय दिया है। वे अन्य काव्यों का अनुहरण करते हुए काव्यरचना के घोर विरोधी थे। उनका कहना है—

> असावस्यायामप्यविकलविकासीनि कुमुदा-
> न्ययं लोकश्चन्द्रव्यतिकरविकासीनि वदति ॥

स्वातन्त्र्य का जीवन में महत्त्व बताते हुए इस नाटक में कवि का कहना है—

> स्वातन्त्र्यं यदि जीवितावधि मुधास्वर्भूर्भुवो वैभवम् ॥ २.२

> अनुभूतं न यद् येन रूपं नावैति तस्य सः।
> न स्वतन्त्रो व्यथां वेत्ति परतन्त्रस्य देहिनः ॥ ६.७

> यशोभिरनिशं दिशः कुमुदहाससभासः सृज-
> न्नजातगणनाः समाः परमतः स्वतन्त्रो भव ॥

ऐसा लगता है कि उस युग में मुसलमानी आक्रमणों की पारतन्त्र्यात्मक वृत्ति की हानियों से कवि चिन्तित थे।

कवि में लेखनी पर संयम नहीं था। वह कह सकता था—'परवंचनव्यसनिनः काशीवासिनः श्रूयन्ते।' वैदिक संस्थाओं की निन्दात्मक प्रवृत्तियों की ऊहापोह में भी रामचन्द्र भरपूर रस लेते थे।

नलविलास के सातवें अङ्क में रामचन्द्र ने ब्राह्मणों के ऊपर कीचड़ उछाला है—

अहो सर्वातिशायी द्विजन्मनां निसर्गसिद्धो लोभातिरेको यदयमन्त्येऽपि वयसि वृथा वृद्धो निधनधनपरिग्रहान्न विरमति।

नलविलास

रामचन्द्र का नलविलास सात अङ्कों का नाटक है।[2]

कथानक

विदर्भ के राजा भीम की कन्या दमयन्ती से विवाह करने के लिए कलचुरि-(चेदि) नरेश उत्सुक था। उसने अपने चर को कापालिक बनाकर विदर्भनरेश के

---

१. इनके सुधाकलश और दोधकपंचशती नहीं मिलते।

२. इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरिज में बड़ौदा से हुआ है।

पास भेजा था, जिसके प्रभाव में आकर भीम अपनी कन्या कल्चुरिनरेश को दे देना चाहता था।

एक दिन नल सूर्यवन में सूर्योपस्थान के पश्चात् विश्राम कर रहा था। उसने अपने साथी विदूषक और कलहंस को अपना स्वप्न नैमित्तिक के समक्ष बताया कि आज प्रातःकाल स्वप्न में मैंने जो मुक्तावली धारण की, वह गिर पड़ी, फिर गले में धारण कर ली गई। फिर तो हमारी शोभा द्विगुणित हो गई। नैमित्तिक ने कहा कि आपको स्त्रीरत्न की प्राप्ति होगी, किन्तु बाधाओं के साथ। नैमित्तिक ने बताया कि शीघ्र ही आपको आनन्दप्रदायक कोई वस्तु प्राप्त होगी। कुछ समय के पश्चात् वहाँ एक कापालिक आया जिसका नाम लम्बोदर था। नल ने उससे बातचीत करके जान लिया कि यह ढोंगी तपस्वी चर है। विदूषक ने उससे बात-चीत करते हुए झगड़ा कर लिया और उनके लड़ते समय एक पोटली गिरी, जिसमें कल्चुरिनरेश चित्रसेन के नाम पत्र था और साथ ही उसके लिए एक सुन्दरी का चित्र था। उसे देखकर राजा के मुँह से निकला—

> वक्त्रं चन्द्रो नयनयुगली पाटलाम्भोजयुग्मं
> नासानालं दशनवसनं फुल्लबन्धूकपुष्पम्।
> कण्ठः कम्बु कुचयुगमथो हेमकुम्भौ नितम्बौ
> गङ्गारोधश्चरणयुगलं वारिजद्वन्द्वमेतत्॥ १.१६

कापालिक ने पूछने पर बताया कि यह पोटली यहीं वन में मिली है।

राजा की दासी मकरिका ने बताया कि यह दमयन्ती का चित्र है। जो विदर्भराज की कन्या है। वह विदर्भदेश की राजधानी कुण्डिनपुर की रहनेवाली थी।

नल ने अपने साथी कलहंस और मकरिका को दमयन्ती के पास नल और दमयन्ती के चित्र के साथ भेजा कि वे नल से प्रणयपथ प्रशस्त करें। कलहंस[1] और मकरिका ने आकर बताया कि काम कुछ-कुछ बन रहा है। कलहंस ने दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन किया—

> वैदर्भी यदि बद्धयौवनभरा प्रीत्या सरत्यापि किम्।

कलहंस ने नल से बताया कि पहले मकरिका अपने सम्बन्धियों के माध्यम से दमयन्ती से मिली। फिर उसने नल का परिचय दिया। दमयन्ती ने जब नल के किसी आन्तरिक व्यक्ति से मिलना चाहा तो मकरिका ने मुझे वैद्य बनाकर दमयन्ती से मिलाया। नल ने मकरिका से कहा—चतुरासि विकटकपटनाटकघटनासु। फिर तो कलहंस के हाथ से दमयन्ती ने नल का चित्र ले लिया और उसके स्पर्श से पुलकित हो गई। तभी मकरिका ने दमयन्ती का वह चित्र उसे दिखाया जो कापालिक से मिला था। दमयन्ती ने नल का चित्र देवतागृह में रखवाया और अपना चित्र अपने पिता के पास भेज दिया। उन्होंने बताया कि घोरघोण नामक कापालिक भीम

---

१. कलहंस नाम नल-दमयन्ती कथा के महाभारतीय हंस के अनुरूप है।

का विश्वासपात्र है। वह दमयन्ती का विवाह चेदिनरेश चित्रसेन से करने के लिए राजा की स्वीकृत ले चुका है। दमयन्ती चाहती है कि घोरघोण की पत्नी लम्बस्तनी को यदि नल अपने पक्ष में कर लें तो मेरे पिता मुझे चित्रसेन को न देकर नल को दें।

नल ने कलहंस के साथ आई हुई लम्बस्तनी को अपने पास बुलवाया। लम्बस्तनी ने अपना प्रभाव बताया कि निष्पुत्रों को पुत्र देती हूँ, अनाचार से उत्पन्न गर्भ का स्राव करती हूँ। सब कुछ करा सकती हूँ। नल ने कहा कि दमयन्ती को प्राप्त कराओ। लम्बस्तनी ने कहा—एवमस्तु।

इधर कापालिक नल के युवराज कूबर के संग लग गया। नल को शंका हो गई कि कूबर से कोई अनर्थ करायेगा—

असौ पाखण्डिचाण्डालो युवराजस्य निश्रितम्।
वातापितापकारीव विन्ध्यस्योन्नतिकारकः ॥ २.२३

दमयन्ती के विवाह के लिए स्वयंवर वसन्तऋतु में हुआ। भीम को ज्ञात हो गया था कि घोरघोण चित्रसेन का चर है। उसको भीम ने गदहे पर बैठाकर निर्वासन कर दिया। इस अवसर पर घोरघोण ने घोषणा की कि दमयन्ती का पति राज्यच्युत होगा। वह वहाँ से नल की नगरी में जाकर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगा। कूबर उसके साथ था।

कुसुमाकरोद्यान में नल अपने साथियों के साथ ठहरा। उधर से दमयन्ती अपनी पण्याङ्गनागायिकाओं के साथ उसी वन में मदनपूजा के लिए निकली। नल किसी लता के पास छिपकर उसे देख रहा था। मकरिका के संकेत पर दमयन्ती पूजा के लिए पुष्पावचय का बहाना करके उधर आई तो नल ने उसका हाथ पकड़ लिया। बड़े प्रेम से परस्पर मनुहार और विरोध करते हुए उन्होंने परस्पर अपने मन्तव्य प्रकट किये और तभी अलग हुए जब दमयन्ती की माता ने उसे बुला भेजा।

स्वयंवर में सभी राजा आ बैठे। दमयन्ती ने काशीनरेश, कोङ्कणराज, कश्मीराधिप, कौशाम्बीपति, गौडेश्वर, मथुराधिपति आदि का वर्णन किये जाने पर अस्वीकार करके नल को चुना।

विवाह के पश्चात् कूबर से जुए में सर्वस्व हारकर नल को सपत्नीक वन में जाना पड़ा। दमयन्ती ने मकरिका को अपने पिता के घर वनवास का समाचार देने के लिए भेज दिया। नल ने अपनी पत्नी को सान्त्वना देते हुए कहा—

मा स्म विषीद। सर्वमपि शुभोदर्कं भविष्यति।

मार्ग में थक जाने पर दमयन्ती को प्यास लगी। नल पानी ढूँढ़ने गया। निकट ही घोरघोण का शिष्य लम्बोदर नामक संन्यासी का आश्रम था। वह इन्हीं को ढूँढ़ रहा था। लम्बोदर से नल ने अपनी स्थिति बताई और कहा कि ससुसाल जा रहा हूँ।

लम्बोदर ने कहा कि राज्यभ्रष्ट होने पर ससुराल जाना लज्जास्पद है। नल की समझ में यह बात आ गई कि दमयन्ती तो पिता के घर जाय—यह ठीक है, पर मेरा ऐसी दुःस्थिति में वहाँ जाना ठीक नहीं है। जैसी गुरु की आज्ञा थी—यह एक काम लम्बोदर ने पूरा कर लिया। उसने विदर्भ जाने का मार्ग भी बता दिया।

पानी लेकर नल दमयन्ती के पास पहुँचा। दमयन्ती ने उसकी बात और मुद्रा से समझ लिया कि वह मुझे छोड़कर जाना चाहता है, जिससे मैं अकेले ही पिता के घर जाऊँ। दमयन्ती को नींद आ रही थी। उसने अपनी साड़ी से नल को लपेट लिया और सो गई, जिससे नल उसे छोड़कर न चला जाय। नल ने तलवार से वस्त्र को काटा और मुक्त होकर चलता बना। तभी उधर से एक सार्थवाह के आने का समाचार मिला, जिसके साथ दमयन्ती रोती-विलखती अपने पिता के घर पहुँची।

नल को मार्ग में सर्परूपधारी उसके पिता मिले, जिन्होंने उसके रूप को परिवर्तित कर दिया।[1] अब उसे कोई पहचान नहीं सकता था। ऐसी स्थिति में वह बाहुक नाम रखकर अयोध्या के राजा दधिपर्ण की सेवा में नियुक्त हो गया। एक दिन बाहर से आई हुई नाटक-मण्डली ने नल-दमयन्ती-वियोग प्रकरण-विषयक एक नाटक किया, जिसके अनुसार नल के छोड़ देने पर दमयन्ती सार्थवाह के अनुचरों को मिली। वे रोती-विलखती उसे अपने स्वामी के पास ले जा रहे थे। मार्ग में विश्राम करने के लिए एक कुंज में वह घुसी तो वहाँ सिंहशावक दिखा। वह स्वयं वहाँ से हट गया। तब तो वह लतापाश से फाँसी लगाकर मरने के लिए उद्यत हुई। उसे अनुचरों ने बचा लिया।

दधिपर्ण ने उपर्युक्त गर्भाङ्क के अभिनय के समय नल की प्रतिक्रियाओं से अनुमान किया कि बाहुक नल है। उस समय विदर्भ देश से राजा भीम के दूत ने सुपर्ण के पास आकर सन्देश दिया कि कल दमयन्ती के स्वयंवर में आप उपस्थित हों। इतनी दूरी इतने थोड़े समय में कैसे पहुँचा जाय—इस कठिनाई को नल ने अपने ऊपर सारथि का भार लेकर दूर कर दिया।

नल ने स्मरणमन्त्र से अभिमन्त्रित करके रथ को यथासमय वायुवेग से कुण्डिनपुर पहुँचा दिया। वहाँ उसने देखा कि नगर में शोक का वातावरण है। लगा कि किसी पर विपत्ति आनेवाली है। किसी वृद्ध ब्राह्मण से पूछने पर ज्ञात हुआ कि दमयन्ती आज चिता में जल मरनेवाली है। नल ने आगे बढ़कर देखा कि चिता के पास दमयन्ती है और वहीं उसके सभी परिचित मकरिका, कलहंसादि हैं। नल के पूछने पर दमयन्ती ने कहा कि नलविषयक अशुभ वार्ता सुन चुकी हूँ। अब मरना है। नल ने कहा कि उस पापी के नाम पर मरना ठीक नहीं है। दमयन्ती ने उसे डाँटा कि प्रियतम के विरुद्ध क्या बकवास कर रहा है। नल ने परिस्थिति की विषमता

१. रूपपरिवर्तन की यह योजना परवर्ती युग में छायानाटकों में मिलती है।

देखकर दमयन्ती से कहा कि यदि नल मिल जाय तो क्या नहीं जलोगी ? नल ने अपने को विरूप करनेवाले पिता की बताई योजना के द्वारा अपने को पुनः वास्तविक नलरूप में परिणत कर लिया। वह बोला—

येनाकस्मात् कठिनमनसा भीषणायां कराल-
व्यालायां त्वं वनभुवि हतेनातिथेयी कृतासि।
निर्लज्जात्मा विकलकरुणो विश्वविश्वस्तघाती
पत्याभासः सरलहृदये देवि सोऽयं नलोऽस्मि ॥ ७.८

नल-दमयन्ती का पुनर्मिलन हो गया।

नल के पूछने पर ज्ञात हुआ कि भस्मक नामक मुनि ने नल की मृत्यु का संवाद दिया था।[1] उसे लाये जाने पर नल ने पहचान लिया कि यह तो वही है, जिसने वन में मुझे दमयन्ती को छोड़ने के लिए प्रेरित किया था। जब उसे बेंत से मार पड़ी, तब उसने सच बताया कि मैं लम्बोदर ही हूँ। घोरघोण मेरा गुरु है। उसने कूबर से आपको जुए में हरवाया। घोरघोण के कहने से मैंने वन में और यहाँ भी आपका अनर्थ किया है। उसे शूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया गया।

दमयन्ती ने नल के पूछने पर बताया कि मैंने दूतों से जाना कि दधिपर्ण का सूपकार सूर्यपाक बनाता है। मैंने समझ लिया कि मेरे पतिदेवता के अतिरिक्त कोई इस कला को नहीं जानता। तब मैंने यह नाटक दधिपर्ण की सभा में कराया, जिसमें कलहंसादि पात्र बने थे। यह निश्चित हो जाने पर कि आप वहाँ हैं, आपको लाने के लिए स्वयंवर का विधान रचा गया। नल ने बताया कि जब मैं दावाग्नि में प्राणाहुति करने जा रहा था तो मेरा रूप मेरे पिता ने बदल दिया और बताया कि बारह वर्षों के पश्चात् पुनः दमयन्ती मिलेगी।

समीक्षा

अनावश्यक विवरणों से नाटक का कलेवर बहुत बढ़ गया है। साथ ही, उपदेश देने की कवि की प्रवृत्ति इतनी अधिक है कि अनेक स्थलों पर यह नाटक भर्तृहरि-शतक और पञ्चतन्त्र की भाँति लोकव्यवहार और सामाजिक का परिचय समुच्चय प्रतीत होता है।

लेखक यद्यपि जैनमुनि है, तथापि यह नाटक भारत की सनातन सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आलिखित है। इसमें जैन संस्कृति केवल गौणरूप से निदर्शनीय है।

कथानक में स्थान-स्थान पर कथा की प्रधान भावी प्रवृत्ति के संकेतक तत्त्वों का उपन्यास है। नैमित्तिक की बात, मागधों का माध्यन्दिनवर्णन आदि ऐसे तत्त्व हैं। तीसरे अङ्क के अन्त में दमयन्ती का पत्र है—

---

१. यह कथांश वेणीसंहार में भीमादि के मरने का समाचार राक्षस के द्वारा दिये जाने के आधार पर रूपित है।

सौदामिनीपरिष्वङ्गं मुञ्चन्त्यपि पयोमुचः।
न तु सौदामिनी तेषामभिष्वङ्गं विमुंचति॥

इस पद्य का पूर्वार्ध कलहंस की दृष्टि में सूचित करता है—

परिणयानन्तरं दमयन्तीपरित्यागम्।

चतुर्थ अङ्क के अन्त में नल-दमयन्ती का विवाह होते ही वन्दी ने जो सन्ध्या-वर्णन किया, उससे भीम के अमात्य वसुदत्त की दृष्टि में यही ध्वनित हुआ कि—

भ्रष्टराज्यस्य स्ववधूं परित्यज्य वरस्य देशान्तरगमनमावेदयति सन्ध्यासमय-वर्णनव्याजेन मागधः।

ऐसे संकेतों से कवि ने दर्शकों को उस भीषण परिस्थिति के लिए शनैः शनैः उद्यत कर लिया है, जिसमें निर्दोष दमयन्ती की करुण स्थिति हृदयविदारक है।

इस नाटक में नायक और नायिका का रंगमञ्च पर सोना शास्त्रीय विधानों के विपरीत अभिनीत है। आवश्यक होने से यह कथांश उपादेय है।

रामचन्द्र ने महाभारतीय नलकथा में पर्याप्त परिवर्तन किया है। नाट्यदर्पण में नाटकीयकथा के अन्यथा प्रकल्पन का उदाहरण देते हुए उनका कहना है—

यथा नलविलासे धीरललितस्य नायकस्य दोषं विना सहधर्मचारिणीपरि-त्यागोऽनुचित इति कापालिकप्रयोगेण निबद्धः।

षष्ठ अङ्क के आरम्भ में रङ्गमञ्च पर अकेले नल है। इसमें नायक वृत्त और वर्तिष्यमाण कथांश का परिचय दे रहा है, जो अपने-आप से भी सम्बद्ध है और उसके पिता के विषय में भी है। यह स्वगत-भाषण के सदृश है, जिसमें सूचनीय तत्त्व हैं, दृश्य नहीं। वास्तव में साधारणतः किसी अन्य पात्र से बात करते हुए उससे छिपाने योग्य अपनी प्रतिक्रियाओं को स्वगत से व्यक्त किया जाता है। स्वगत के लिए रङ्गमञ्च पर अन्य पात्रों का होना आवश्यक है। इसमें ऐसा नहीं है। वास्तव में यह एकोक्ति (Soliloquy) है।

छठें अङ्क में नायक के वियोग में नायिका का प्रलाप और पशु-पक्षियों से पूछना विक्रमोर्वशीय में पुरूरवा के प्रलाप के समान है। जब वह उर्वशी से वियुक्त था।

नलविलास में कथानक का विकास कलापूर्ण विधि से हुआ है। जहाँ अनेक नाटकों में रहस्यात्मक बातें बीच-बीच में बताकर प्रेक्षक की उत्सुकता को जागने नहीं दिया गया है। वहाँ इस नाटक के अन्त में यह स्पष्ट किया गया है कि वे कौन-कौन-सी अज्ञात बातें हैं, जिनके संयोजन से कथावृत्ति सुरूपित हुई है। प्रेक्षक आद्यन्त इस ऊहापोह में रह जाता है कि यह सब क्यों और कैसे हो रहा है? प्रेक्षक को कहीं-कहीं एतत्सम्बन्धी संकेत मात्र देकर घटनाचक्र फंसने पर क्षीण प्रकाश की लौ भले ही दिखाई गई है।

नेतृपरिशीलन

नल के मुख से कापालिक को पाखण्डि-चाण्डाल, कौक्कुटिक, तापसच्छद्मा आदि कहलवाना नायक की उच्चता के योग्य नहीं है।[1] नल स्वयं भी अपने को पापिष्ठ-श्रेष्ठ, निस्त्रिंशशिरोमणि, परवंचनाचतुर, ब्रह्मराक्षस, क्रूरकर्मा, चाण्डालचक्रवर्ती आदि कहता है।[2]

इस नाटक में नायकों तथा अन्य पुरुषों की अधिकता खलती है। किसी भी उच्चकोटि के काव्य में लम्बस्तनी और घोणघोर जैसों की भूमिका हेय होनी चाहिए। नल का लम्बस्तनी से अपना काम बनाने के लिए प्रार्थना करना नायक की गरिमा के स्तर से नीचे की बात है।

नाटक का नायक धीरोदात्त होना ही चाहिए—यह नियम सार्वत्रिक नहीं प्रतीत होता।[3] स्वप्नवासवदत्त की भाँति इस नाटक में भी नायक धीरललित है।

शैली

कवि ने अपनी वैदर्भी शैली का परिचय देते हुए कहा है—

> वैदर्भीरीतिमहं लभेय सौभाग्यसुरभितावयवाम्। १.१
> कविः काव्ये रामः सरसवचसामेकवसतिः। १.२

रामचन्द्र नाट्य में रस-निष्पत्ति को सबसे बढ़कर विशेषता मानते हैं।[4] उन्होंने कहा है—

---

१. इस नाटक में गालियों का संकलन बृहत् है। यथा, कर्णेजप, आघूर्ण, अतिजाल्म, अन्नदावानल, दुरात्मा। ७.१२ के नीचे गर्दभमुख, मर्कटकर्ण, वक्रपाद। ऐसा लगता है कि इस युग के प्रेक्षक अपवादों में रुचि लेते थे।

२. नल ने अपने को अन्य अपशब्दात्मक विशेषण दिये हैं—क्षत्रियापसद, पुरुषसारमेय, भर्तृजाल्म, श्वपाकनायक, कृपाविकल, हतनल। ५.१८ के नीचे।

३. भरत के अनुसार—

> प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकं चैव।
> राजर्षिवंशचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्॥ १८.१०

४. रस की अतिशयता इस नाटक में दोष की सीमा तक प्रगुणित है। रसों के लिए वर्णनाधिक्य के लिए आधिकारिक वस्तु से अछूती सामग्री और वर्णना का विस्तार करना पड़ता है। रस के लिए दमयन्ती का वर्णन आवश्यकता से दस गुना अधिक है।

दशरूपक के अनुसार तो—

> न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्।
> रसो वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलंकारलक्षणैः॥ ३.३३

ऋते रामान्नान्यः किमुत परकोटौ घटयितुम्।
रसान् नाट्यप्राणान् पटुरिति वितर्को मनसि न. ।। २.३

रामचन्द्र ने इस नाटक में सपर्ण नामक पात्र से नाटक में रस को सर्वश्रेष्ठ तत्त्व के रूप में प्रतिपादित करते हुए कहलवाया है—

रसप्राणो नाट्यविधिः। वर्णार्थबन्धवैदग्धीवासितान्तःकरणा ये पुनरभिनयेष्वपि प्रबन्धेषु रसमपजहति विद्वांस एव ते न कवयः।

न तथा वृत्तवैचित्री श्लाघ्या नाट्ये यथा रसः।
विपाकक्रममप्याम्रमुद्वेजयति नीरसम् ।। ६.२३

वास्तव में कवि को रस-निर्झरिणी की अप्रतिम सृष्टि करने में सफलता मिली है।

इस नाटक में करुण और शृंगार रसों की निष्पत्ति सफल है किन्तु विदूषक का हास्य दीर्घ, निष्प्रयोजन और हीन कोटि का ही है।

नाटक की सफलता कवि की दृष्टि में यह है कि दर्शक उसके अभिनय को वास्तविक घटना मानकर प्रभावित हो। छठें अंक में जो कूटनट प्रयोग होता है, उसे देखनेवाले राजा दधिपर्ण, उसका अमात्य सपर्ण और नल करुणारसातिरेक से यह भूल जाते हैं कि यह नाटक है, वास्तविक नहीं। कवि के शब्दों में—

कथं नाट्यमपिसाक्षात् प्रतिपद्यसे।

संवाद

संवाद में लेखक ने कहीं-कहीं उत्सुकता की पुट दी है। जब कलहंस दमयन्ती के पास से लौटकर आया तो नल ने पूछा—क्या मनोरथ का समर्थन हुआ? कलहंस ने कहा—मनोरथ समर्थित नहीं है। इसे सुनकर नल ने कहा—हताः स्मः। इसी प्रकार जब नल ने पूछा कि दमयन्ती ने कहा क्या? कलहंस ने उत्तर दिया—राजतनया न किंचित्। नल ने पुनः कहा—हा हताः स्मः।

कतिपय स्थलों पर विषम परिस्थितियों में किंकर्तव्यविमूढ़ पात्रों के भाषण अति दीर्घ हो गये हैं। पंचम अङ्क के आरम्भ में रंगमंच पर अकेला पात्र कलहंस है, जो एक पृष्ठ से बड़ा व्याख्यान दे जाता है। इस वक्तव्य की बातें विष्कम्भक या प्रवेशक के माध्यम से दी जा सकती थीं पर इस नाटक में विष्कम्भक और प्रवेशक तो हैं ही नहीं।[1] इसी अंक के अन्त में दो पृष्ठ के नल के भाषण के बीच गीतों का सन्निवेश किया गया है। यथा,

---

१. षष्ठ अङ्क के आरम्भ में रंगमंच पर अकेले नल का भाषण विष्कम्भक आदि के द्वारा प्रस्तुत होना चाहिए था।

त्वया तावत् पाणिः प्रसभमुपगूढः परिणये
त्वमेवास्याः पीनस्तनजघनसौरभ्यसचिवः।
ततश्छेत्तुं वासः कृशकृपकृपाणं करधरं-
स्त्रुटन्मर्मोत्सङ्गः कथमहह नोपैषि विलयम् ॥ ५.१४

भर्तृहरि के आदर्श पर एक गीत है[1]—

भ्रातश्चूत वयस्य केसर सखे पुन्नाग यामो वयं
मास्माकमनार्यकार्यपरतां जानीत यूयं हृदि।
द्यूतेच्छा क्व च कूबरस्य निषधाभर्तुः क्व चाक्षैर्जयो
वैदर्भीत्यजनं क्व चैष निखिलः कल्पः प्रसादो विधेः ॥ ५.१७

सामाजिक स्थिति

विद्याजीवियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। कवि का कहना है—

देवीं वाचमविक्रेयां विक्रीणीते धनेन यः।
क्रुद्धेव तस्मै सा मूल्यमत्यल्पमुपढौकयेत् ॥ १.१४

रामचन्द्र का इस नाटक में एक उद्देश्य है सामाजिक अन्धविश्वासों और उनके प्रवर्तकों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कराना। कापालिकों की घृणित चरितावली का विस्तार इसी दृष्टि से किया गया है। वेश्या की भरपूर निन्दा भी इसी दृष्टि से तीसरे अंक में की गई है।

नाट्यशिल्प

रामचन्द्र ने इस नाटक में पाँचवें और छठें अङ्क के आरम्भ में क्रमशः कलहंस और नल को अकेला पात्र रखकर उनसे लम्बे भाषण कराये हैं, वे योरपीय नाटकों की एकोक्ति (Soliloquy) हैं। एकोक्ति जैसा कोई भारतीय विधान नहीं कल्पित हैं।[2] इस एकोक्ति के द्वारा कोई पात्र वृत्त और वर्तिष्यमाण वृत्त का परिचय देने के साथ ही अपनी आन्तरिक अनुभूतियों का वर्णन करता है। संस्कृत नाट्य-साहित्य में एकोक्तियों का प्रचलन प्रायः आदिकाल से ही रहा है। अभिषेक नाटक में द्वितीय अंक में विष्कम्भक के पश्चात् सीता की और फिर हनुमान् की एकोक्तियाँ सुप्रमाणित हैं।

---

१. भर्तृहरिशतक में 'मातर्मेदिनि तात मारुत आदि का यह पद्य अनुवर्तन है।

२. संस्कृत के नाट्यधर्म हैं—

सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च।
सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् श्राव्यं स्वगतं मतम् ॥ दश० १.६४

एकोक्ति वस्तुतः संवाद का अंश नहीं होती।

निर्भयभीम

निर्भयभीम व्यायोग कोटि का रूपक है।[1] इसके रचयिता रामचन्द्र ने इसकी प्रस्तावना में अपने को प्रबन्धशत-कर्ता महाकवि बताया है।

भीम द्रौपदी को वनवास के समय वनश्री दिखा रहे हैं। वे उनका वन्यवेश देखकर कौरवों को जला देने के लिए समुत्सुक हैं। भीम के मुख से कवि ने शृङ्गारित वातावरण समुपस्थित कराया है, जिसमें—

> एते निर्झरझात्कृतैस्तु मिलितप्रस्थोदराः क्ष्माभृतः
> किञ्चैते फलपुष्पपल्लवभरैर्व्यस्तातपाः पादपाः।
> चक्रोऽप्येष वधूमुखार्धदलितैर्वृत्तिं विधत्ते बिसैः
> कान्तां मन्द्ररुतस्तथैव परितः पारापतो नृत्यति॥ ६

तभी एक पुरुष आकर भीम के पूछने पर कहने लगा कि इस ऊँचे पर्वत पर बक नामक राक्षस रहता है। उसके लिए समीपस्थ नगर के लोग प्रतिदिन एक जन्तु देते हैं। जिसका बार होता है, वह व्यक्ति निर्धारित वस्त्र पहनकर वध्यशिला पर आ बैठता है। उसे काट-पीटकर बक खा जाता है।

उसी समय कोई माता अपने पुत्र और वधू के लिए विलाप करती उधर आई द्रौपदी और भीम छिपकर देखने लगे कि अब आगे क्या होता है। युवा भी कुछ रोता हुआ शिलातल पर बैठ गया। उसने अपनी माता से कहा कि अब तो मर रहा हूँ। मुझे बचानेवाला कोई नहीं है। भीम ने कहा कि मैं बचाऊँगा तो द्रौपदी ने रोका। भीम ने कहा—

> त्रस्ताँस्त्रातुं सुदति न सहो यद्यहं गाढबन्धः
> स्कन्धस्थामग्रहिललतितौ धिक् तदेतौ भुजौ मे।
> रक्षोवक्षः सपदि गदया चेन्न संचूर्णयामि
> व्यक्तं विश्वत्रितयविजयी नास्ति भीमस्तदानीम्॥ ६

उस युवक ने पत्नी से कहा कि अब बक के आने का समय हो गया है। तुम जाओ। पत्नी ने उत्तर दिया—

आर्यपुत्र. अस्तमितो ममेदानीं जीवलोकः। समर्थितो मे विलासः। अवशं संहारितो शृङ्गारः। तदहं हुताशने प्रविश्य तव मार्गमनुसरिष्यामि।

भीम उस युवक के समक्ष आकर बोला कि तुम मेरी शरण में हो। युवक ने उसके भीमाकार को देखकर समझा कि यह मुझको खानेवाला राक्षस ही है। वह मार जाने के भय से आँखें मूँदकर मूर्च्छित हो गया। द्रौपदी ने कहा कि ये राक्षस नहीं

---

१. इसका प्रकाशन वाराणसी से यशोविजय ग्रन्थमाला १९ में हो चुका है।

हैं, वे युधिष्ठिर के भाई भीम तुम्हारी रक्षा के लिए आये हैं। तब तो भीम राक्षसेश्वर से जीवितेश्वर में परिणत हो गया।

राक्षस आया। उसके आने के पहले भीम और द्रौपदी के अतिरिक्त सभी भाग खड़े हुए। भीम के कहने पर भी द्रौपदी गई नहीं। वहीं पेड़ के नीचे कुछ दूरी पर छिपकर बैठ गई। तभी बक के साथ दो और राक्षस आये। उन्होंने गन्ध से समझ लिया कि कोई और निकट ही है और द्रौपदी को ढूँढ़ निकाला। उससे कहा कि तुमको हम लोग खा जायेंगे। बक ने भीम के पास गया देखी तो द्रौपदी से पूछा कि यह क्या योगाल है। द्रौपदी ने कहा कि यह आपका काल ही है।

राक्षस भीम की कठोरता के कारण उसे दाँतों से काटने में असमर्थ हो गये। फिर यह निर्णय हुआ कि इसे उठा-पटाकर पर्वत पर ले जायें और वहाँ शस्त्रों से इसे काटकर खा जायें। वे भीम को ले गये। तब तो द्रौपदी आम वृक्ष की शाखा पर फाँसी लगाकर आत्महत्या की योजना कार्यान्वित करने लगी। उस समय अन्य भाई वहाँ आ पहुँचे। द्रौपदी ने बताया कि बक आदि अनेक राक्षस यहाँ से उन्हें खाने के लिए ले गये हैं। अर्जुन ने कहा कि उन राक्षसों से हम लोगों को क्या भय? भीम उन्हें मार डालेंगे। सहदेव ने कहा कि क्या अकेले ही यम सारे संसार को नहीं खा जाता? अर्जुन ने कहा कि मैं भीम की सहायता करने जाता हूँ। युधिष्ठिर ने कहा कि इसकी आवश्यकता नहीं। तभी भीम राक्षसों को मारकर आ गये। भीम ने बताया कि यहाँ से राक्षसों ने मुझे ले जाकर एक शिला पर बैठाया। जब बक मुझे मारने आया तो उससे मैं लड़ पड़ा और उसे मार डाला। उस समय वह भीत ब्राह्मण-परिवार वहाँ आ पहुँचा और उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की।

इस व्यायोग पर भास के मध्यम व्यायोग और नागानन्द का प्रभाव स्पष्ट है। कथा महाभारत से ली गई है। इस व्यायोग के द्वारा रामचन्द्र ने भारतीय वीरों को भीम का आदर्श अपनाकर विदेशी आक्रमणकारियों से देश की रक्षा करने के लिए प्रोत्साहित किया है। उस युग में भारतीय राजाओं के पारस्परिक युद्ध और विदेशी आक्रमणों से भारत जर्जरित हो रहा था।

सत्यहरिश्चन्द्र

रामचन्द्र ने छः अङ्कों में हरिश्चन्द्र के चरित को लौकिक आदर्श प्रस्तुत करने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया है।[1]

कथानक

एक कुलपति ने इन्द्र को सुधर्मा सभा में यह कहते सुना कि मर्त्यलोक में

1. इसका प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से हुआ है।

हरिश्चन्द्र सबसे बढ़कर सात्त्विक है। कुलपति को हरिश्चन्द्र की यह प्रशंसा सह्य न हुई। उन्होंने इस वक्तव्य को मिथ्या सिद्ध करने के लिए कूटघटना रची।

हरिश्चन्द्र ने शक्रावतार के निकट वनषण्ड में बाधा पहुँचानेवाले वराह को मारने के लिए बाण चलाया था। उसने वराह तो मरा ही, उसके साथ ही एक चीता मरा और एक गर्भिणी हरिणी। हरिश्चन्द्र को महती ग्लानि हुई। उन्होंने अपना मन्तव्य व्यक्त किया—

सर्वस्वपरित्यागमीहामहे।

राजा आश्रम में पहुँचे। वहाँ उनका समुचित अभिनन्दन तो हुआ किन्तु उन्हें ज्ञात हुआ कि आश्रम की गर्भिणी हरिणी की हत्या शिकारी के बाण से हो गई। कुलपति की कन्या वंचना उस हरिणी को बहुत चाहती थी। वह उसके लिए अनशन करने पर उतारू हो गई। कुलपति ने क्रोध से राजा को धिक्कारा कि आप उसे दण्ड दें जिसने हरिणी को मारा है। राजा ने प्रकट किया कि मुझसे ही वह मारी गई है। कुलपति ने क्रोध किया और अन्त में निर्णय बताया कि 'भ्रूणहा सर्वस्वदानेनैव शुध्यति।' अर्थात् भ्रूण की हत्या करनेवाला सर्वस्व दान करके ही शुद्ध होता है। हरिश्चन्द्र ने सर्वस्व दान दे दिया।

हरिणी का अग्निसंस्कार होना था। वंचना ने कहा कि उसी के साथ मैं भी जल मरूँगी। राजा ने उसे प्रणाम करके कहा—

एकं क्षमस्व दुःसाधमपराधं तपोधने।
वितरिष्याम्यहं तुभ्यं हेम्नो लक्षमसंशयम्॥ १.३०

एक लाख स्वर्णमुद्रा प्राप्त करने के लिए अंगारमुख नामक तापस के साथ कुलपति हरिश्चन्द्र की राजधानी साकेत पहुँचा। कोश से लाई मुद्रा का मुनि ने अस्वीकार करते हुए कहा कि इसके स्वामी आप हैं या मैं। राजा ने कहा—आप। फिर तो वह पुनः राजकोश में डाल दिया गया। फिर पाँच-छः वणिये राजा को देने के लिए बहुत अधिक धन लाये, पर जब उन्होंने राजा की स्थिति देखी तो भाग खड़े हुए। उन्होंने कहा कि हमारे पास इतना धन कहाँ है? राजा ने अपने आभरण मँगाये। अङ्गारमुख ने कहा कि ये गहने तो हमारे सेवकों के हैं। इन्हें क्योंकर हम लें। मन्त्री ने कहा कि हाथी-घोड़े ले लें तो कुलपति ने कहा कि पृथ्वी के साथ तो वे सब हमें पहले से ही प्राप्त हो चुके हैं।

कुलपति और अंगारमुख के व्यवहार से वसुभूति नामक मन्त्री ने पहचान लिया कि यह कुलपति मुनि नहीं है।

अपितु तपोव्याजच्छन्नं किमपि नियतं दैवतमिदम्॥ २.१२

कुन्तल नामक परिचर को अङ्गारमुख को श्मशानवासी शृगाल और वसुभूति को शुक होने का शाप दे दिया।

अन्त में राजा को कुलपति ने एक मास की अवधि दी कि अपने को बेचकर एक लाख स्वर्णमुद्रा दो। उनका आदेश था—

वसुन्धरां त्यज मे सत्वरम्।

रानी ने कहा कि मैं भी पति के साथ जाऊँगी। कुलपति ने कहा कि तुम तो हमारे अधीन हो, फिर राजा के साथ जाना कैसा? फिर भी कुलपति ने आदेश दिया कि अपने आभरण उतार दो। केवल पहनने के कपड़े पहन कर जा सकती हो। राजा ने भी मुकुट आदि उतार दिये। रानी का अविधवालक्षण आभरण भी कुलपति ने जब उसके शरीर पर न रहने दिया तो उसने कुलपति को ऊँचा-नीचा कहा। कुलपति ने उसे शाप दे डाला—शुको भव। वसुभूति नामक मन्त्री शुक होकर आकाश में उड़ पड़ा।

मुद्रा की व्यवस्था के लिए दम्पती रात-दिन चलकर काशी के निकट पहुँची। जिस दिन एक लाख देने की अवधि समाप्त होनेवाली थी। पत्नी श्रान्त थी, पुत्र को भूख लगी थी। भूख मिटाने के लिए उनके पास कुछ भी नहीं था। मां से नहीं रहा गया। उसने रोते हुए कहा—

चक्रवर्तिपुत्रलक्षणसमलङ्कृतशरीरस्य भरतकुलजातस्य ते किमिदं समुपस्थितम्।

राजा ने चाहा कि रोहित गंगादर्शन में रुचि लेकर भूख के वेग को भूल जाय। उसने कहा—रोहित देखो—यह गगा, यह कलहंसिका। रोहित ने कहा—यह मेरी भूख। वह लड्डू माँगता था। एक बुढ़िया ने अपने भोजन से उसे कुछ देना चाहा तो उसे स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि राजा अनुकम्पा से दिया भोजन नहीं ग्रहण करता।

नगर में प्रवेश करने पर जब बिकने का समय आया तो रोहित ने स्पष्ट कहा कि मुझे न बेचा जाय। मैं मां के साथ रहूँगा। राजा ने सिर पर घास का पूला रख लिया, जिससे ज्ञात हो कि यह बिकनेवाला है। रोहित के सिर पर भी पूला रखा गया, पर उसने उसे फेंक दिया। रानी रोने लगी तो राजा ने कहा कि तुम तो रोहित को लेकर पिता के घर जाओ। रानी ने कहा कि पहले मुझे बेचिये।

एक ब्राह्मण ने रानी को मोल लिया। केवल ५००० स्वर्णमुद्रायें उसने राजा को दीं। रोहित को माता के साथ जाने के प्रयास में पहले तो थप्पड़ खाना पड़ा उसे ठोकर भी खाना पड़ा। अन्त में ब्राह्मण ने उसके लिए १००० मुद्रा देकर मोल लिया। तभी कुलपति धन लेने के लिए आ पहुँचे। राजा उसे प्राप्त मुद्रा देने लगे। उसने नहीं ली और कहा कि पूरी मुद्रायें चाहिए। तुम यहाँ के राजा चन्द्रशेखर से उन्हें प्राप्त कर लो। हरिश्चन्द्र ने कहा—किसी से माँग कर धन नहीं ले सकता। तभी एक निषाद आ पहुँचा। उसने बताया कि भागीरथी के दक्षिण श्मशान का

चाण्डालाधिपति मैं हूँ। वहाँ जो आय हो, उसमें एक भाग तुम्हारा रहेगा। राजा ने सहमति दे दी। काम था—(१) आधी जली चिताओं से लकड़ी खींच निकालना। (२) शव से कफन लेना, (३) श्मशान की रक्षा करना और (४) अन्य जो कुछ राजाज्ञा हो। निषाद ने राजा का मूल्य कुलपति को चुका दिया और राजा को लेकर चलता बना।

काशी में महामारी थी। लम्बस्तनी कुट्टिनी ने काशी के राजा चन्द्रशेखर से कहा कि मेरी पुत्री अनंगलेखा रात में सुख से सोई और सबेरे मरी पाई गई। राजा ने अकालमरण-निवारण के लिए उज्जयिनी से अकस्मात् आये हुए मान्त्रिक से बात की। मान्त्रिक ने कहा कि यदि अनंगलेखा मरी नहीं है तो उसे जीवित करता हूँ। राजा ने कहा कि क्या राक्षसी को सामने प्रस्तुत कर सकते हो? मान्त्रिक ने कहा—

लक्ष्मीं श्रीपतिवक्षसः कमलभूवक्त्रोदराद् भारतीं
सूर्याचन्द्रमसौ च तारकपथान् पातालतो वासुकिम्।
सार्धं मातलिहस्तिमल्लसुमनः कल्पद्रुदम्भोलिभि-
कर्षामि त्रिदशालयाद्वलमिदं मन्त्रेण तन्त्रेण वा ॥ ४.२

उसने आकाशमार्ग से उस तथाकथित राक्षसी को उतारा। लम्बस्तनी ने कहा कि मैं इसकी हत्या करूँगी क्योंकि इसने मेरी कन्या का प्राणापहरण किया। तभी सूचना मिली कि इसकी कन्या जीवित हो उठी। वह प्रसन्नता से नाचने लगी। राक्षसी को दण्ड देने चाण्डाल बुलाया गया।

तभी एक पुरुष पिंजरे में एक शुक लाया। वह संस्कृत बोलता था। उसने राक्षसी को दण्ड देने के लिए आये हुए चाण्डाल के सेवक का अभिवादन करते हुए कहा—

भरतवंशचूडाय महाराजाय हरिश्चन्द्राय स्वस्ति।

राजा ने कहा कि शुक झूठ बोलता है। फिर हरिश्चन्द्र को उस राक्षसी को दण्ड देने के लिए उसका अवगुण्ठन हटाना पड़ा। हरिश्चन्द्र ने पहचान लिया कि यह मेरी पत्नी सुतारा है। शुक ने उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—

सतीचक्रचूडामणे उशीनरमहाराजपुत्रि सुतारे देवि नमस्तुभ्यम्।

राजा ने कहा कि शुक झूठ बोलता है। उसने श्वपाकसेवक से पूछा कि तुम कौन हो? उसने कहा कि मैं हरिश्चन्द्र नहीं हूँ। वह अपने परिपन्थी के समक्ष अपने को दीन स्थिति में प्रकट नहीं करना चाहता था। रानी ने भी कहा कि मैं वज्रहृदय ब्राह्मण की दासी हूँ। शुक ने हरिश्चन्द्र का सारा इतिहास बताया कि कैसे उन्होंने कुलपति को पृथ्वी दान दिया है और फिर दास बना है और उसकी पत्नी दासी बनी है।

राजा ने दण्ड सुनाया कि राक्षसी (रानी) को गधे की पीठ पर बिठाकर निर्वासित किया जाय। शुक ने कहा कि मैं सत्य कहता हूँ—इसके प्रमाण के लिए मैं चिता में कूदता हूँ। यदि अग्नि न जलाये तो मेरी बात सत्य मान लें। ऐसा किया गया और शुक अक्षत रहा। अन्त में रानी गधे की पीठ से उतारी गई। राजा आश्चर्य में पड़ा ही रह गया कि यह सब क्या है।

हरिश्चन्द्र श्मशान में अपना कार्यभार सम्भाल रहे थे। किसी रात एक रोती हुई रमणी ने रोते हुए सूचना दी कि मेरा पति मारा जा रहा है। हरिश्चन्द्र ने देखा—

ऊर्ध्वौ पादौ निबद्धावथ वदनमधःकेशपाशः प्रलम्बी
रक्तश्रीखण्डचर्चा वपुषि च कुसुमैः पाटलैर्मुण्डमाला।
कापालं श्रोणिदामज्वलितहुतभुजस्त्रीणि कुण्डानि पार्श्वे
न्यग्रोधस्कन्धशाखाशिखरनियमितः कोऽयमग्रे मनुष्यः ॥ ४.३

उस पुरुष ने बताया कि मैं काशिराज का पुत्र हूँ और मेरी यह स्त्री है। रात में सोये हुये मुझको विद्याधरी इस आश्रम में ले आई। वह मेरे मांस से होम करने के पहले गंगा नहाने गई है। हरिश्चन्द्र ने उससे कहा कि मैं आपके स्थान पर आ जाता हूँ और आप प्राणरक्षार्थ खिसक जायें। अपनी पत्नी की इच्छा से पुरुष ने यह किया। फिर हरिश्चन्द्र उसके स्थान पर बँध गये। विद्याधरी अपने पति चित्राङ्गद के साथ आकर उनके मांस से होम करने लगी जिसके लिए हरिश्चन्द्र ने स्वयं काटकर मांस दिया। तभी एक शृगाल ने वहाँ आकर हुआँस भरी। इससे विद्याधरी का विघ्न हो गया। तभी उधर से एक तापस आ निकला। उसको देखते ही विद्याधर-दम्पती तिरोहित हो गई। यह कुलपति का शिष्य था। उसने हरिश्चन्द्र से कहा कि गुरु का पूरा ऋण चुकाये बिना तुम्हें मरने नहीं दूँगा। उसने लेप लगाकर हरिश्चन्द्र का शरीर पूर्ण स्वस्थ कर दिया।

श्मशान में हरिश्चन्द्र के पास अपने वत्स का शव लेकर एक स्त्री आ पहुँची। उसके रोने से हरिश्चन्द्र ने पहचान लिया कि वह मेरी पत्नी सुतारा है और शव रोहिताश्व का है। हरिश्चन्द्र आपा खो बैठे। उन्होंने कहा—

नन्वयं विपन्नो वत्सः। कथं मामालपति श्लिष्यति च। तदहमतः परं वृथा प्राणिमि। वत्सेनैव सह चितामारोहामि। यदि वा धिङ् मे चिन्तितम्। निषादाधीनस्य मे चिताधिरोहणं कीदृशमौचित्यमावहति।

अन्त में हरिश्चन्द्र ने कफन माँगा ही। सुतारा ने कहा—

आर्यपुत्र, पुत्रकं ते हस्ते ददामि।

हरिश्चन्द्र ने कहा—लड़का रखें। केवल कफन दें। तभी आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और आकाशवाणी हुई—

अहो दानमहो धैर्यमहो वीर्यमखण्डितम् ।
उदारधीरवीराणां हरिश्चन्द्रो निदर्शनम् ॥ ६.११

चन्द्रचूड और कुन्दप्रभ देवों ने आकर उनसे कहा—

आखेटा मुनिकन्यका कुलपतिः कीरः शृगालोऽध्वगा
विप्रो म्लेच्छपतिर्मनुष्यसरणं लम्बस्तनी मान्त्रिकः ।
उद्बुद्धः पुरुषो वियच्चरवधूर्गोमायुनादः फणी
सर्वं सत्त्वपरीक्षणैकरसिकैरस्माभिरेतत् कृतम् ॥ ६.१२

इस प्रकार इस कूटनाटक घटना की समाप्ति हुई ।

समीक्षा

सत्यहरिश्चन्द्र का कथानक पौराणिक युग से चरित्र-निर्माण तथा लोकानुरञ्जन के लिए प्रायः सदैव घर-घर में सुप्रतिष्ठित रहा है । इसकी मूल कथा-धारा तो प्रायः सर्वत्र एक-सी है किन्तु शाखीय वृत्त कवियों ने अपने मन से कल्पित कर लिए हैं । रामचन्द्र की कथा अनेक दृष्टियों से प्रचुर प्रभावोत्पादक और नाटकीय तत्त्वों से समायुक्त है ।

सत्यहरिश्चन्द्र के कथानक में रामचन्द्र कहीं-कहीं अधिक भावुकता का सर्जन करने के लिए पिष्टपेषण करते हैं । नायक की असमंजसता की घोरता बताने के लिए अनेक साधनों से एक लाख मुद्रा पाने की योजनायें पुनः-पुनः प्रस्तुत करके उनकी व्यर्थता बताई गई है । इसी प्रकार तृतीय अङ्क में रोहिताश्व का पुनः पुनः यह कहना कि मैं भूखा हूँ और माता-पिता का पुनः-पुनः असमर्थता प्रकट करना है । लेखक एक ही घटना की चरम तीव्रता प्रकट करने में असमर्थ-सा है । अत एव पौनःपुन्येन समान घटनाओं के द्वारा भावोद्रेक उत्पन्न करना चाहता है ।

कथानक में रङ्गमञ्च पर अभिनय-व्यापारात्मक कार्य-परम्परा पूरे नाटक में परिव्याप्त है । जहाँ अन्य नाटकों में अनेक अङ्क कोरी बातचीत के द्वारा घटनाओं का वर्तन बताने के लिए प्रयुक्त हुए हैं, वहाँ सत्यहरिश्चन्द्र में रंगमंच पर पात्रों को हम आङ्गिक और वाचिक अभिनय में व्यापृत पाते हैं । कथा के नायक में देवता और ऋषियों का इस स्तर पर रुचि लेना संस्कृत साहित्य में अन्यत्र विरल-सा है ।

नेतृपरिशीलन

सत्यहरिश्चन्द्र में नायक अनुत्तम है । कवि ने उसकी सर्वातिशायिता सिद्ध करने में पूरी सफलता पाई है । वह राजा रूप में, आत्मविक्रयी रूप में अथवा चाण्डाल-सेवक रूप में सर्वत्र महान् है और अपने उदात्त चारित्रिक स्तर से बड़ी से बड़ी विपत्तियाँ पड़ने पर भी च्युत नहीं होता । ऐसे नायक को परिस्थितिवशात् झूठ बोलना पड़ा ।

इस नाटक में कथापुरुषों का वैविध्य उल्लेखनीय है। मानव, देव, ऋषि, विद्याधर, पिशाच और पशु-पक्षी कोटि के पात्र हैं और मानव कोटि में वज्रहृदय ब्राह्मण, हरिश्चन्द्र राजा से लेकर कालदण्ड निषादपति और लम्बस्तनी वेश्या-माता हैं। लेखक ने इन सभी का चारित्रिक सूत्र संचालन निपुणता से किया है।

नायक और नायिका को विविध परिस्थितियों में डालकर उनके चरित्र का विकास और वैविध्य भी इस नाटक का एक विशेष तत्त्व है।

शैली

रामचन्द्र ने इस नाटक की प्रस्तावना में अपनी शैली का परिचय दिया है—

व्युत्पत्तिर्मुखमेव नाटकगुणव्यासे तु किं वर्ण्यते
सौरभ्यप्रसवा नवा भणितिरप्यस्त्येव काचित् क्वचित्।
यं प्राणान् दशरूपकस्य सकरोत्त्वेपं समाचक्षते
साहित्योपनिषद्विदः स तु रसो रामस्य वाचां परम्॥ १.३

रामचन्द्र के ऊपर कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा,

गाहन्तां सरयूतटानि तुरगाः स्वैरं गणः सादिनां
तन्द्रालुर्बहुलाश्रमक्षितिरुहच्छायासु विश्राम्यतु।
कुञ्जेषु व्यवधास्थितेषु दधतासाधोरणाः कुञ्जरान्
वीक्षन्तां च मृगध्रुवारवनिताः शक्रावतारश्रियम्॥ १.३१

इस पर कालिदास के नीचे लिखे पद्य की छाया है—

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितम्।

इस नाटक में कुछ गालियाँ पशु-पक्षियों के नाम पर उनके स्वभावानुसार बनाई गई हैं। इसमें कुलपति तथा अङ्गारमुख राजा को कौक्कुटिक जंघाल आदि कहते हैं और मन्त्री को जूर्ण मार्जार की उपाधि देते हैं। भार्या के लिए कैतव निधि, दंभनिपुणा आदि उपाधियाँ दी गई हैं।

कवि ने रसानुकूल पदावली का प्रयोग किया है। श्मशान के वीभत्सोचित वर्णन की पदावली है—

किंचिद्दग्धकलेवरं परिपतद्गृध्रं चिताभीषणं
भ्राम्यद्भूतमभूतपल्लवतरुध्वांक्षध्वनिव्याकुलम्।
ताराक्रन्दमहृद्यगन्धमतनुश्वानारवं विस्फुरद्
धूनश्यामलमुच्छलद्गुरुशिवाफेत्कारघोरान्तरम्॥ ६.२

अन्यत्र साधारणः नाट्योचित वैदर्भी का प्रयोग किया गया है।

सूक्तिसौरभ

सत्यहरिश्चन्द्र में लोकचरित के उन्नयन के उद्देश्य से सूक्तियों का समाहार किया गया है। यथा,

> सत्त्वैकतानवृत्तीनां प्रतिज्ञातार्थकारिणाम्।
> प्रभविष्णुर्न देवोऽपि किं पुनः प्राकृतो जनः॥ १.६

वर्णन

कवि ने प्रकृति का भी कतिपय स्थालों पर भावुकतापन्न वर्णन किया है। यथा, सुतारा के साकेत छोड़ते समय सूर्य का—

> असूर्यपश्यायाः प्रकटमिदमालोक्य सहसा
> सदस्यंग देव्याः शिविनृपतिदुग्धार्णवसुवः।
> अयं तिग्माभीशुर्भरतकुलमूलप्रसविता
> रघूगात्रस्पर्शाचकितचकितः कर्षति करान्॥ ३.२५

राजा ने पुरलोक से क्षमा माँगी और चलते बने।

शिल्प

रंगमञ्च पर चतुर्थ अङ्क में लम्बस्तनी का नृत्य, भले ही हास्य के लिए हो, इस नाटक के गम्भीर और काले वातावरण को कुछ सह्य बनाने के लिए है। इसी उद्देश्य से लम्बस्तनी का यह वक्तव्य है—

> यदि मे बालकालप्रभृत्यखंडितसस्तनीत्वं तदा त्वं चिरं नन्द।

छठें अङ्क में आरम्भ में पिशाच नृत्य भी अभिनय के वातावरण में विशेष आनन्द सर्जन के लिए है।

चतुर्थ अङ्क में चाण्डाल का सेवक बना हरिश्चन्द्र राक्षसी-घोषित अपनी पत्नी का अवगुण्ठन हटाता है तो वह आत्मगत निवेदन करता है—

> मुनिभ्यः संप्रदत्ता चतुरुदधिकांची वसुमती
> ऋणार्थं विक्रीता ससुतदयितात्मा सुभृतकः।
> कृतश्चाण्डालानां विधिरथ दिशद्दुःखमपरं
> हरिश्चन्द्रः सोऽहं तदपि परिसोढास्मि नियतम्॥ ४.८

यह उच्चकोटि की एकोक्ति (Soliloquy) है। ऐसी ही एकोक्ति षष्ठ अङ्क में पैशाचिक-प्रवेशक के पश्चात् है, जिसमें नायक दुर्भाग्यवशात् अपनी असफलताओं पर विचार करता है। यथा,

> अपरिभ्रष्टसत्त्वस्य नापूर्णं मम किञ्चन।
> खेचरीहोमभङ्गस्तु केवलं मां दुनोति सः॥ ६.१

कथानक की प्रगति के लिए चूलिका (नेपथ्ये) नामक अर्थोपक्षेपक की पुनः-पुनः योजना मिलती है, जो इस युग के लिए सर्वसाधारण-सी हो चली थी। अङ्कों के आरम्भ में पात्रों की एकोक्तियों के द्वारा अभिनय के लिए समीचीन अभिनयात्मक वातावरण की सृष्टि की गई है।

भावात्मक अभिनय की जो योजना इस नाटक में है, वह विरल ही अन्यत्र मिलती है। यथा,

हरिश्चन्द्रः—(विमृश्य) अतिनिर्दयमिदम्। यदहं मृतस्य सुतस्य वसनमपहरामि। तदलममुना तरणिकुलकलंकेन कर्मणा। निषादपतिः सुकुप्यतु व्यापादयतु वा माम्। (कतिचित् पदानि गत्वा प्रतिनिवृत्य स पश्चात्तापम्) कोऽयं मे पूर्वापरहतः संकल्पः। यतः,

अयं कलङ्को यदहं मृतस्य पुत्रस्य वस्त्रं किल संहरामि।
सत्यव्रतं यत्तु निजं त्यजामि भानोः कुलेऽसौ न पुनः कलंकः॥ ६.६

कथा की भावी प्रवृत्ति की सूचना कतिपय स्थलों पर पताका स्थानक के द्वारा दी गई है। यथा,

राजा—कुन्तल वयमिदानीं सर्वस्वपरित्यागमीहासहे।

कपिञ्जलः—(प्रविश्य) प्रत्यासन्नं पश्य।

कपिंजल ने मुनि के आश्रम के विषय में कहा था, किन्तु अप्रस्तुतरूप से उसकी बात का अर्थ था कि शीघ्र ही राजा को सर्वस्व त्याग करना पड़ेगा।

लेखक जैन होते हुए भी कथानक को भारतीय वैदिक और पौराणिक परम्पराओं के अनुरूप विकसित करता है। तदनुसार राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र से प्रश्न पूछता है—

ज्ञानध्यानतपांसि संयमभृतो निर्विघ्नमातन्वते
निष्प्रत्यूहफलप्रसूनसुभगाः कन्यावसिक्ता द्रुमाः।
हस्तन्यस्तपयःसमित्कुशहृतो निर्व्याधबाधामृगाः
कच्चिद्वः प्रतिभूः शिवस्य परमे ब्रह्मण्यचाल्यो लयः॥ १.१६

कथा में वैषम्य का एकपदे सामञ्जस्य करके उसमें उत्सुकता अनेक स्थलों पर जागरित की गई है। जब कुलपति ने हरिश्चन्द्र का अभिनन्दन किया कि—भवति भूतधात्रीं प्रशासति कुतो नामाश्रमाणामसमंजसम्। उसी समय नेपथ्य से सुनाई पड़ा—अकृत्याचरणम्, अब्रह्मण्यम्। तभी मुनि को ज्ञात हुआ कि आश्रम की हरिणी का वध हो गया।

रामचन्द्र ने विष्कम्भकोचित सामग्री को भी सूच्य न बनाकर अङ्क में सन्निविष्ट किया है। द्वितीय अंक के आरम्भ में वसुभूति और कुन्तल की बातचीत राजा के

आने के पहले तक विष्कम्भक में रखी जानी चाहिए थी क्योंकि यह सर्वथा सूच्य है।

रघुविलास

इसकी प्ररोचना में कवि ने रामकथा का सारांश देते हुए उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है—

> सीता काननतो जहार विहितव्याजः पुरा रावण-
> स्तं व्यापाद्य रणेन तां पुनरथो राम. समानीतवान्।
> एतस्मै कविसूक्तिमौक्तिकमणिस्वात्यम्भसे भूर्भुव-
> स्स्वर्व्यामोहनकार्मणाय सूत्रधाररत्नाय नित्यं नमः॥

आठ अङ्कों के रघुविलास की कथा का आरम्भ वनवास से होता है। दशरथ की आज्ञानुसार सीता, राम और लक्ष्मण ने वन के लिए प्रस्थान किया। विमान से उड़ते हुए रावण उधर से निकला और सीता को देखकर मोहित हो गया। वह विराध का रूप धारण करके वहाँ आया। दूसरी ओर से राक्षसों के आने का कोलाहल सुनाई पड़ा और लक्ष्मण उनका शमन करने गये। कुछ देर बीतने पर लक्ष्मण को विपत्ति में पड़ने की आशङ्का से राम सीता को अकेले छोड़कर चलते बने। रावण सीता को विमान पर ले उड़ा। जटायु ने सीता को बचाने के लिए युद्ध करते हुए प्राण विसर्जन किया।

राम ने लौटने पर सीता के लिए घोर विलाप किया। ये उसे ढूँढते हुए जटायु के पास आये। जटायु के प्रकरण से उन्हें ज्ञात हुआ कि रावण सीता को ले गया। एक बार और रावण विराध बनकर आया और उनसे प्रार्थना की—मेरी पत्नी पत्रलेखा को दे दें, जो आपके पास सुरक्षा के लिए रखी हुई है। उसी समय एक विद्याधर वहाँ आया, जिसे देखते ही रावण अन्तर्धान हो गया। उसने बताया कि मुझे हनुमान् ने सुग्रीवे के आदेश से भेजा है। उसने सीता का वृत्त राम को बताया। उसने आगे बताया कि एक विद्याधर सुग्रीव का रूप धारण करके किष्किन्धा में सुग्रीव की पत्नी के साथ रहता है। सुग्रीव ऐसी परिस्थिति में नगर के बाहर रहता है। सुग्रीव ने उस विद्याधर को हनुमान् के पास भेजा था, जहाँ से वह राम के पास भेजा गया। राम ने उस मायासुग्रीव को मारने की प्रतिज्ञा की।

लङ्का में रावण सीता को अपनी प्रेयसी बनाने के लिए अनेक कुटिल प्रयत्न किये। पर वह सीता को डिगा न सका। विभीषण ने रावण को समझाने का प्रयास किया, किन्तु उसके द्वारा दुत्कारे जाने पर वह राम से आ मिला। तब राम के द्वारा भेजा हुआ वालि-पुत्र चन्द्रराशि रावण के पास उसे राम की ओर से समझाने आया। उसे रावण ने माया पवन जय (हनुमान् का पिता) बनाकर दिखाया कि वह सेवा कर रहा है। माया सीता बनाकर उसने दिखाया कि सीता उससे प्रेम करने लगी

है।'[1] दूत के लौटने के पश्चात् युद्ध का आरम्भ हुआ। युद्ध में कुंभकर्ण और इन्द्रजित पकड़ लिए गये। लक्ष्मण घायल हुए। रावण के बाण से वे मूर्छित हुए थे। उन्हें स्वस्थ करने के लिए भरत की ममेरी बहिन के स्नान का जल किसी विद्याधर के निर्देशानुसार हनुमान अङ्गदादि के द्वारा लाया गया और सूर्योदय के पहिले उनके ऊपर छिड़का गया। वे ठीक हुए।

मन्दोदरी और मारीच के साथ आकर मय ने रावण को मनाया कि सीता के प्रेम का पागलपन छोड़ो, पर रावण क्योंकर मानने लगा। रावण ने अन्त तक राम से युद्ध, करने का अपना निश्चय दुहराया।

रावण ने अनेक अभिचार-प्रयोगों द्वारा सीता को अपने प्रति सप्रणय करना चाहा। अन्त में युद्ध में वह राम-लक्ष्मण से आ भिड़ा। राम और रावण का द्वन्द्व युद्ध हुआ। इसी बीच रावण ने माया जनक बनाकर उससे सीता को कहलवाया कि राम मारे गये। वह अपने को अग्नि में भस्मसात् करना चाहती थीं। तभी हनुमान ने आकर राम को यह समाचार बताया। वे सभी दौड़कर गये और सीता की रक्षा हुई। रावण मारा गया। राम और सीता का पुनर्मिलन हुआ।

समीक्षा

रघुविलास की यह कथा अनेक स्थलों पर कवि की प्रतिभा से नई-नई योजनाओं को लेकर चली है। रामकथा पर भास से लेकर प्रायः सभी कवियों ने जो नाटक लिखे उसमें मनमाने तत्त्व जोड़ कर उसे अधिक रोचक और सुगम बनाने की चेष्टा की है। रामचन्द्र की कथा में एक विशिष्ट तत्त्व सर्वाधिक समुन्नत दिखाई देता है ? जो परवर्ती युग में विशेष रूप से छायानाटकों में अपनाया गया। माया पात्रों की इतने बड़े पैमाने पर कल्पना अन्यत्र विरल ही है। कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का रूप धारण कर ले—यह तो एक बात हुई, किन्तु कोई विशुद्ध नकली पात्र ही दूसरे पात्र की छाया रूप में प्रस्तुत करना जितना सौष्ठवपूर्ण इस नाटक में है, उतना अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। इसमें जैनधार्मिक सुभिनिवेश नहीं है।[2]

सीता के वियोग में राम का विलाप विक्रमोर्वशीय के अनुरूप रचा गया है। यथा,

> अरण्ये मां त्यक्त्वा हरिण हरिणाक्षी क्व नु गता
> पराभूतो दृष्ट्वा कथयसि न चेन्मा स्म कथय।
> अरे क्रीडाकीर त्वमपि वहसे कामपि रुषं
> यदेवं तूष्णीकामनुसरसि वाचंयम इव॥

---

१. आगे चलकर लगभग सौ वर्ष पश्चात् सुभट ने दूताङ्गद में माया सीता का वृत्त इसके अनुरूप अपनाया है। रघुविलास की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के मुनिजिन विजय के पास है।

२. हेमचन्द्र के शिष्य के अनुरूप ही कवि की यह प्रवृत्ति है।

रामचन्द्र की दृष्टि में रामायण की देन है वैराग्य और विस्मय। यथा,

मध्येऽम्भोधि बभूव विंशतिभुजं रक्षो दशास्यं पुनः
तत् पातालमहीत्रिविष्टपभटांश्चक्राम दोर्विक्रमैः।
मर्त्यस्तस्य पुनर्मृणालतुलया चिच्छेद कण्ठाटवीं
वैराग्यस्य च विस्मयस्य च पदं रामायणं वर्तते॥

रघुविलास में रावण को सीता के प्रेम में उन्मत्त सा दिखाया गया है। वह चतुर्थ अङ्क में कहता है—

वक्त्राणि हे हसत गायत तारतारं
नेत्राणि चुम्बत विहस्य च कर्णपालीः।
दोर्वल्लयः कुरुत ताण्डवडम्बरं च
श्रीरावणं ननु विदेहसुता रिरंसुः॥ ४.५५

रावण की सीता-प्रेमपरायणता में श्रृंगाराभास की पराकाष्ठा प्रतीत होती है। वह कहता है—

अविदितपथः प्रेम्णां बाह्योऽनुरागरुजां जडः
वदतु दयितामैत्रीवन्ध्यो यथाप्रतिभं जनः।
मम पुनरियं सीता राज्यं सुखं विभवः प्रियं
हृदयमसवो मित्रं मन्त्री रतिर्धृतिरुत्सवः॥[1]

(पुनः सखेदम्) आर्य, किमेकस्य पामरप्रकृतेर्लङ्कालोकस्य विचारचातुरीवैमुख्यमुद्भावयामि।

अस्यां प्रेम ममैव वाङ्मनसयोरुत्तीर्णमन्यस्य चेद्
वैदेह्यां नयनैकलेह्यलवणप्रारोहभूमौ भवेत्।
कापेयं परिरभ्य स प्रकटयन्नुल्लुण्ठभूयं हठात्
किञ्चित् कामितमादधीत कृतवान् वेधास्तु मां रावणम्॥

यादवाभ्युदय

रामचन्द्र का यादवाभ्युदय नामक नाटक नहीं मिलता है। इसके आठ उद्धरण नाट्यदर्पण में मिलते हैं। इसका रचना राघवाभ्युदय के आदर्श पर हुई होगी। लेखक ने रघुविलास की प्रस्तावना में इसे भी राघवाभ्युदय की भाँति अपनी सर्वोत्तम पाँच रचनाओं में विख्यात किया है। इसमें कृष्ण के द्वारा कंस, जरासन्ध आदि के वध की कथा है और अन्त में कृष्ण के अभिषेक की चर्चा है।

---

१. यह पद्य भवभूति के राम का रावण से वैषम्य दिखाने के लिए प्रयुक्त प्रतीत होता है। भवभूति ने राम के विषय में कहा है—'स्नेहं दयां च सौख्यं च' आदि।

यादवाभ्युदय का बीज है—

उदयाभिमुख्यभाजां सम्पत्त्यर्थं विपत्तयः पुंसाम् ।
ज्वलितानले प्रपातः कनकस्य हि तेजसो वृद्ध्यै ॥

कृष्ण नवम वासुदेव हैं। उनके पिता वसुदेव ने कंस के भय से उनको जन्म के समय गोकुल में छिपाया था। कंस मन्त्रियों के परामर्श से मल्ल-रङ्गभूमि बनवाई। उसमें कंस मारा गया। कृष्ण के परवर्ती पराक्रम छठें अङ्क में हैं रुक्मिणी का स्वयंवर। रुक्मिणी को देखकर कृष्ण ने कहा—

अस्यां मृगीदृशि दृशोरमृतच्छटायां
देवः स्मरोऽपि नियतं विततामिलाषः ।
एतत् समागममहोत्सवबद्धतृष्ण-
माहन्ति मामपरथा विशिखैः कथं सः ॥

सातवें अङ्क में जरासन्ध के विरुद्ध कृष्ण के अभियान की चर्चा है। नारद जरासन्ध के पक्ष में थे। बलभद्र और नारद का इस अवसर पर संवाद है—

बलभद्रः—(स्वगतम्) कथमुपहसति नारदः ? भवतु (प्रकाशम्)

वृद्धोक्षस्य नृपस्य तस्य नियतं को नाम मल्लो युधि
व्याधत्ते किल यस्य विक्रमचणः पक्षं मुनिर्नारदः ।
कंसध्वंसकृतश्रमौ मधुरिपोर्बाहू तथाप्याहवे
क्षामस्थामलवानुरूपमचिरादाधास्यतः किञ्चन ॥

नारदः—(सरोषमिव)

कंसांसभित्तिसदमर्दनकेलिचुञ्चोः
चक्रस्फुलिंगगणसङ्गपिशङ्गबाहुः ।
सम्पूरयिष्यति हरेरपि गाढरूढ-
संग्रामदोहदमसौ मगधाधिनाथः ॥

जरासन्ध का वध कृष्ण के प्रयास के फलस्वरूप हुआ। इस सम्बन्ध में युधिष्ठिर का समुद्र-विजय नामक देवता से इस प्रकार संवाद हुआ—

युधिष्ठिरः—देव कृष्णोऽयं भरतार्धचक्रवर्ती नवमो वासुदेव इति मुनयः शंसन्ति ।
समुद्रविजयः—जाने भरतार्धराज्ये कृष्णमभिषेक्तुं मामुत्साहयति महाराजः ।
युधिष्ठिरः—एतदेव देवस्य जरासन्धवधप्रयासफलम् ।

इसके पश्चात् कृष्ण का राज्याभिषेक हुआ।

इस नाटक का काव्यसंहार है समुद्रविजय का कहना—

त्रातो घोषभुवां विधृत्य मधुजित् कंसः क्षयं लम्भितः
सम्प्रत्येव विनिर्मितं मगधभूभर्तुः कबन्धं वपुः ।
पादाक्रान्तमजायतार्धभरतं तद्ब्रूहि नः किं परं
श्रेयोऽस्मादपि पाण्डवेश पुनरप्याशास्महे यद् वयम् ॥

अन्त में शुभशंसनात्मक प्रशस्ति है—

युधिष्ठिरः—तथापि किमपि ब्रूमो वयम्—

कल्याणं भूर्भुवः स्वः प्रसरतु विपदः प्रक्षयं यान्तु सर्वाः
सन्तः श्लाघां भजन्तामपचयमयतां दुर्मतिर्दुर्जनानाम्।
धर्मः पुष्णातु वृद्धिं सकलयदुमनःकैरवारामचन्द्रः
प्राप्य स्वातन्त्र्यलक्ष्मीं मुदमथ वहतां शाश्वतीं यादवेन्द्रः ॥

राघवाभ्युदय

रामचन्द्र का राघवाभ्युदय एक श्रेष्ठ नाटक है, किन्तु यह अबतक प्राप्त नहीं हुआ है। इसके कतिपय अंश इसी कवि के द्वारा प्रणीत नाट्यदर्पण में विलसित हैं जिनके आधार पर प्रतीत होता है कि यह नाटक है। बृहट्टिप्पणिका के अनुसार इसमें दस अङ्क थे।[1] इसकी कथा का आरम्भ सीता के स्वयंवर से होता है। इसकी रचना रामचन्द्र ने रघुविलास से पहले की। रघुविलास की प्रस्तावना में उसने कहा है कि राघवाभ्युदय मेरी सर्वोत्तम पाँच रचनाओं में से है।

राघवाभ्युदय में स्वयंवर का आरम्भ इस प्रकार होता है—

मतिसागरः—देव, मा शङ्किष्ठाः प्रलयेऽपि किं विपरियन्ति मुनिभाषितानि ?

जनकः—तत्किं भुजदण्डविक्रमाक्रान्तभारतखण्डत्रयस्य तस्यापि पराजयः।

मतिसागरः—(स्वगतम्) अहो! दुरात्मनो राक्षसस्याज्ञैश्वर्यम्। यदयं रहोऽपि देवस्तदभिधानमुच्चारयन् विभेति। (प्रकाशम्) देव, सम्भाव्यत इति किमुच्यते ? सिद्ध एव किं नाभिधीयते देवेन।

सीता ने राम को देखा और वह चाहने लगी कि राम धनुष को उठा लें। उसका अपनी चेटी लवङ्गिका से संवाद होता है—

सीता—(समन्तादवलोक्य रामं च सविशेषं निर्वर्ण्य स्वगतम्) कथमयमनङ्गोऽप्यङ्गमास्थाय चापारोपणं द्रष्टुमायातः। प्रसीद भगवन्ननङ्ग, प्रसीद। तथा कुर्या यथा राम एव चापारोपणाय प्रभवति।

लवङ्गिका—(अंगुल्या रामं दर्शयन्ती) जं भट्टदारिया इत्तियं कालं मणोरहगोयरं कयवदी तं सम्पयं दिट्ठिगोयरं करेदु।

---

१. यह ठीक नहीं लगता क्योंकि इसमें नाट्यदर्पण के अनुसार प्ररोचना नामक सन्ध्यङ्ग सातवें अङ्क में है। केवल निर्वहण सन्धि के लिए तीन अङ्क होना असम्भव सा लगता है। प्ररोचना तो अन्तिम अङ्क में भी रहती है। इसमें सम्भवतः आठ अङ्क थे।

सीता—(ससंभ्रमं स्वगतम्) कथमहं राममेवालङ्घमकाङ्क्षिषम् ।

सीता के स्वयंवर में रावण नहीं उपस्थित हुआ—यह मतिसागर की नीचे लिखी बातों से स्पष्ट है—

मतिसागरः—यत् पुरा भट्टारकेण सागरबुद्धिना विभीषणाय कथितं यथा—'सीतानैमित्तिको दाशरथितो रावणवधः' इति । तस्यार्थस्य तदेतच्चापारोपणं बीजमुपस्थितम् । कथितं च मे करङ्कनाम्ना लङ्काचारिणा चरेण यथा, "भामण्डलस्येव रावणस्यापि सीताया प्रेमास्त्येव, किन्तु दोर्दर्पाच्चापारोपणे नायातः । (विमृश्य) तन्नूनमसौ पश्चादपि सीतामपहरिष्यति ।

'सीता गई' इसका दुःख केवल राम को ही नहीं था, अपि उनके आदिदेव सूर्य को भी था ।

राम कहते हैं—

> कलत्रमपि रक्षितुं निजमशक्तमात्मान्वय-
> प्रसूतमभिवीक्ष्य मामहह जात लज्जाज्वरः ।
> प्रकाशयितुमक्षमः क्षणमपि स्वमास्यं जने,
> प्रयाति चरमोदधौ पतितुमेष देवो रविः ॥

राघवाभ्युदय में सुग्रीव-प्रकरण पताका रूप में विद्यमान है । इसका उल्लेख नीचे लिखे पद्य में है—

> मित्रं दर्शनमात्रतोऽपि गणितः किष्किन्धमागत्य च
> क्षुण्णः क्षुद्रमतिः स साहसगतिर्दत्ता सतारा मही ।
> इत्थं तेन वितन्वता न विहितं देवेन रामेण किं
> यत् सत्यं मम तस्य कर्तुमुचितं प्राणैरपि प्रीणनम् ॥

इस पद्य में पताका में मुखादि पाँच सन्धियों का निर्देश है ।

राम ने सुग्रीव से कहा कि मुझे मेरी सीता मिलाओ । यह छठें अङ्क का संवाद है—

सुग्रीवः—(जाम्बवन्तं प्रति) अनाख्य, भवतु यादृशस्तादृशो वा । स पारदारिको राक्षसस्तथापि देवपादानां वध्यः ।

रामः—(सीतापहारं स्मृत्वा सगर्वविषादम्) कपिराज, प्रतिराजविक्रमयामिनी तपनोदये भवति सहाये सति ।

> निहत्य दशकन्धरं सहविपक्षरक्षःकथा-
> प्रथाभिरविसंगरं जनकजां ग्रहीष्ये ध्रुवम् ।
> शशाक न स रक्षितुं रघुपतिः परेभ्यः प्रिया-
> मयं तदपि सम्भवी चिरमकीर्तिकोलाहलः ॥

उस युग के अन्य नाटकों की भाँति राघवाभ्युदय में भी राम को सीता के वियोग में राम के अपने न मरने का सन्ताप शूलता है। वे कहते हैं—

वैदेहीं हृतवांस्तदेष महतः संख्ये विषह्य क्लमान्
चक्रोत्पाटितकन्धरो दशमुखः कीनाशदासीकृतः।
प्राणान् यद्विरहेऽप्यहं विधृतवांस्तेन त्रपाऽसुन्दरं
वक्त्रं दर्शयितुं तथापि न पुरस्तस्या विलक्षः क्षमः॥

यह फलागम का द्योतक है। अन्त में प्ररोचना के द्वारा भावी अर्थ की सिद्धि बताते हुए इस नाटक में कहा गया है—

सीताया वदनं विकासमयतां रामस्य शोकानलः
शान्तिं यातु सगीतयश्चलभुजैर्नृत्यन्तु शाखामृगाः।
सन्धानाय विभीषणः प्रयततां लङ्काधिपत्यश्रियः
सौमित्रेर्दशकण्ठकण्ठविपिनं कालः कियांश्छिन्दतः॥

राम के कथानक को लेकर कवि ने दो नाटक लिखे। एक ही नायक पर ऐसी दो नाटक लिखने की रीति प्राचीन काल में अनेक कवियों ने अपनाई है, जिनमें भास, हर्ष और भवभूति प्रमुख हैं।

रामचन्द्र को रामचरित अतिशय प्रिय था।

कौमुदीमित्रानन्द

दस अङ्कों के प्रकरण कौमुदीमित्रानन्द में मित्रानन्द नायक है और नायिका है कौमुदी।[1] नायक जिनसेन नामक वनिये का पुत्र है और नायिका का पिता कुलपति है।

कथानक

वरुण द्वीप के समीप जलपोत भग्न होने से अपने विदूषक मित्र मैत्रेय के साथ नायक द्वीप में पहुँचा और वहाँ दोलाक्रीडा करती हुई नायिका से प्रथम दृष्टि में प्रेम करने लगा। नायिका भी वैसी ही थी। नायक कुलपति के पास पहुँचा और उसने अपनी कन्या का पाणिग्रहण उससे करा दिया। उस द्वीप में वरुण अत्याचार करता था। उसने सिद्धराज को वज्रकीलित कर रखा था, जिसे नायक ने मुक्त किया। वरुण ने उसे दिव्य हार दिया।

कौमुदी ने नायक को बताया कि कुलपति नकली है। आप बुरे फँसे हैं। हमसे जो कोई विवाह करता है, वह शय्या पर सोते समय उसके नीचे के गड्ढे में गिरा

---

१. इसका प्रकाशन जैन आत्मानन्द सभा, भावगर से हुआ है। पुस्तक की प्रति भारतीय विद्याभवन, बम्बई में प्राप्य है।

दिया जाता है। नायिका के निर्देशानुसार नायक ने वैवाहिक विधि सम्पन्न हो जाने पर जागुली देवी से हालाहलहरी-विद्या सीख ली।

नायिका नायक के साथ सिंहल द्वीप में भागकर आ तो गई, किन्तु वहाँ उसे नई विपत्ति में पड़ना पड़ा। नायक को चोर समझ कर पकड़ लिया गया और उसे रक्तचन्दन से लिप्त करके गदहे पर बैठाकर नगर की परिक्रमा कराई गई। जब वह राजा के समक्ष लाया गया और उसने अपनी कहानी सुनाई तो राजा तो कुछ ठीक रहा उसका मन्त्री कामरति कौमुदी के फेर में पड़ गया। इसी बीच राजकुमार शशाङ्क को सर्प ने डँस लिया था और मित्रानन्द ने उसके प्राण बचाये। तब तो उसे राजसम्मान मिला। वे मन्त्री के घर में रहने लगे।

नायक की विपत्तियों का अन्त नहीं हुआ था। उसे पल्लीपति सामन्त द्वारा यक्षाधिप के लिए बलि देने के लिए कामरति ने भेज दिया था, पर वहाँ भी उसके मित्र मैत्रेय ने बचा लिया। उसने सामन्त को आरोग्य प्रदान किया था। नायिका की विपत्तियाँ कुछ कम नहीं हैं। मन्त्री कामरति की पत्नी ने देखा कि कौमुदी के प्रति कामरति की कुदृष्टि है। उसने उसे अपने घर से निकाल दिया। उसकी भेंट वाणिक्पुत्री सुमित्रा से हुई। वह उसके साथ रहने लगी किन्तु शीघ्र ही पल्ली के राजा वज्रवर्मा का कोपभाजन होने के कारण उनका कुटुम्ब राजा के समक्ष लाया गया। उसी समय वहीं मित्रानन्द का मित्र मकरन्द भी चोरी में पकड़ कर लाया गया। वह अपने सार्थ के सहित वहाँ आया हुआ था। वे सभी राजा लक्ष्मीपति के कृपापात्र होने के कारण छोड़ दिये गये, सुमित्रा का मकरन्द से विवाह हो गया।

मित्रानन्द अपने लोगों के साथ एकचक्रा पहुँचा। वहाँ एक कापालिक के चक्कर में वे पड़े, जिसने स्त्रियों को पातालगृह में भेज दिया था।[1] वह मित्रानन्द की हत्या करके अपना काम बनाना चाहता था, किन्तु वह अपने ही जाल में ग्रस्त होकर मृत्युमुख में जा पहुँचता है। उसने किसी शव को सप्राण करके तलवार से मित्रानन्द को मारने के लिए प्रवर्तित किया, किन्तु मित्रानन्द ने उसे कापालिक के विरुद्ध नियोजित कर दिया। कापालिक अन्तर्धान हो गया।

मकरन्द के व्यापारिक सम्पत्ति को इस बीच नरदत्त नामक दूसरे वणिक् ने अपना बनाकर हड़पना चाहा। मकरन्द को लक्ष्मीपति के समक्ष यह सिद्ध करना पड़ा कि यह सारी निधि मेरी है। पर उसे ऐसा करने का अवसर नहीं दिया गया। उलटे नरदत्त के संकेत पर उसे म्लेच्छ बताकर शूली पर चढ़ाने का आदेश दिया गया। मारे जाने के कुछ क्षण पहले मकरन्द और वज्रवर्मा ने उसके प्राण बचाये। उसकी विजय हुई।

---

१. इस कथांश में कुछ चीनी तत्त्व है।

सिद्धों के राजा ने कौमुदी और सुमित्रा का अपहरण तो किया, किन्तु मित्रानन्द और मकरन्द ने उनकी रक्षा की। अन्त में सभी सुखपूर्वक मिले।

कौमुदीमित्रानन्द रामचन्द्र की प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है। इसमें प्रकरण विषयक नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया गया है।[1] अपितु जैनकथा-साहित्य की इतिवृत्तात्मक सरणि पर चलते हुए कवि ने संवादों का सहारा लेकर इसे प्रकरण बनाने की चेष्टा की है, जिसमें वह नितान्त असफल है। जहाँ तक इसमें जैनकथाओं की सरणि पर विपत्तियों का सम्भार उपस्थित करते हुए आख्यान वैचित्र्य का सन्निवेश है, वह नाट्योचित कम और कथोचित अधिक है। इसे कवि यदि चम्पू रूप में लिखता तो अच्छी कहानी बन पाई होती। इसमें जादू, मन्त्र-तन्त्र, ओषधि-प्रयोग, नर-बलि और शव में प्राणसंचार आदि पाठक को आश्चर्य में डालने के लिए हैं।

इस प्रकरण के विषय में कीथ की सम्मति है—The work is, of course, wholly without interest other than that prosscrbed by so many matvels appealing to the sentiment of wonder in the avdience.[2] इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूपक में आद्यन्त कार्य-व्यापार की अतिशयता है।

प्रस्तुत प्रकरण में सिनेमा जैसी प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। यथा, नायिका के सिर पर पोटली है। वह नायक के पीछे-पीछे चलती है। अन्यत्र नायक को गदहे पर बैठाया जाता है। उसके शरीर को चन्दन-चर्चित करके, गले में शराव-माला पहनाई जाती है। नायिका के सिर पर करण्डिका रखी जाती है और वह गदहे के आगे-आगे चलती है। उन दोनों को सारे दिन सड़कों पर घुमाकर दूसरे दिन राजा के समक्ष लाया जाता है। करण्डिका की वस्तुयें खोलकर इकट्ठे हुए सभी नागरिकों के सामने रखी जाती हैं कि पहचानें कि किस-किसकी कौन वस्तु चोरी गई है और इनमें मिलती है। मृच्छकटिक के चोर की भाँति इसमें डाकू कहता है—

> नक्तं दिनं न शयनं प्रकटो न चर्या
> स्वैरं न चान्नजलवस्त्रकलत्रभोगः।
> शङ्कानुजादपि सुतादपि दारतोऽपि
> लोकस्तथापि कुरुते ननु चौर्यवृत्तिम्॥ ६.३

पूरे रूपक में मारपीट सिनेमा जैसी ही है।

वैदिक और पौराणिक हिन्दू धर्म की निन्दा करने में कवि अपनी सफलता

---

१. आश्चर्य तो यह है कि नाट्यदर्पण का लेखक और महान् आचार्य इस प्रकार की प्रेम और धोखाधड़ी की कथा को अपनाता है।

२. Sanskrit Drama p. 259

मानता है। उसने दिखाया है कि एक कुलपति वस्तुतः डाकू था। कात्यायनी-मन्दिर का वर्णन है। उस में सूक्ति है—

केतुस्तम्भविलम्बिमुण्डनमितः सान्द्रान्त्रमाला।

अन्यत्र पशुबलि के विरोध में कहा गया है—

पुण्यप्रसूतजन्मानश्चण्डालव्यालसङ्गताम्।
मांसरक्तमयीं देवाः किं बलिं स्पृहयालवः॥ ६.१३

इसी प्रकार एक कापालिक की दूषित प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है।

इस प्रकरण से प्रतीत होता है कि न्यायालय में कभी-कभी पदचिह्न की परख द्वारा अपराधी को पहचाना जाता था।[1]

कहीं-कहीं सदुपदेश भी मिलते हैं। यथा,

अपत्यजीवितस्यार्थे प्राणानपि जहाति या।
त्यजन्ति तामपि क्रूरा मातरं दारहेतवे॥ ७.७

न्यायालय में बहुविध मिथ्या और धोखाधड़ी का व्यवहार होता था।

रामचन्द्र ने इस कोटि के रूपकों का नाम विकटकपटनाटक बताया है। ऐसा लगता है कि इस प्रकार के नाटकों का अभिनय उस युग में लोकप्रिय था। इसकी कथा दशकुमारचरित से प्रभावित प्रतीत होती है।

मल्लिकामकरन्द

रामचन्द्र के मल्लिकामकरन्द नामक प्रकरण में केवल छः अङ्क हैं। यह भवभूति के मालतीमाधव के अनुरूप विरचित है। इसके आदर्श पर पंद्रहवीं शताब्दी में उद्दण्ड ने मल्लिकामारुत नामक प्रकरण की रचना की। उद्दण्ड भवभूति और रामचन्द्र दोनों के ऋणी थे, जैसा इसके कथानक से स्पष्ट है।

मल्लिका नामक षोडशी नायिका निशीथ में कामदेव के मन्दिर में अपने जीवन का अन्त कर देने के लिए प्रयत्न कर रही है। नायक मकरन्द उसे कण्ठपाश से मुक्त करता है। दोनों परस्पर सकाम हैं। मकरन्द ने मल्लिका से पूछकर उसका कष्ट जान लिया। मल्लिका ने उसे कर्णाभरण की जोड़ी भेंट की। आगे चलकर जब नायक को जुआरी अपना ऋण चुकता करने के लिए पकड़ते हैं तो उसे नायिका का पालक पिता ऋण चुकता करके छुड़ाता है। नायिका वस्तुतः वैनतेय नामक विद्याधर की कन्या थी और उसकी माता चित्रलेखा विद्याधरी थी। पालक पिता ने मल्लिका की प्राप्ति की कथा बताई कि आम्रवण में मैंने उसे नवजात शिशु पाया। उसकी अंगूठी

१. पञ्चम अङ्क में ८ वें पद्य के पश्चात् कहा गया है—

अन्यादृशा सा पदपद्धतिः या कात्यायनी भुवनं प्रविष्टा।

यह चोर को पहचानने के सम्बन्ध में कहा गया है।

वैनतेय की थी और सिर पर भूर्जपत्र खोसा गया था, जिस पर लिखा था—आज से १६ वर्ष बीतने पर चैत्र की चतुर्दशी को मैं इसे पति और पालक से बलात् लेकर चला जाऊँगा। मकरन्द ने उसे सुरक्षित रखना चाहा, पर उसे कोई अदृष्ट सत्ता लेकर चली ही गई।[1]

विद्याधर लोक में चित्राङ्गद मल्लिका से विवाह करना चाहता था, किन्तु मल्लिका ने प्रणय-प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। मकरन्द वहाँ जा पहुँचा। उसे देखकर मल्लिका की माता चित्रलेखा क्रुद्ध हुई। मकरन्द ने देखा कि काम बन नहीं रहा है क्योंकि चित्रलेखा नायिका की कठोर अध्यक्षा है। मकरन्द को एक शुक ने अपनी सारी कथा बताई और उसके स्पर्श से मनुष्य रूप में परिणत हो गया। वह वैभल नगर का सामुद्रिक वणिक् वैश्रवण था। वह अपनी पत्नी मनोरमा के साथ यात्रा पर गया था। मार्ग में उसे एक बुढ़िया मिली, जिसने अपनी प्रणय-याच्ञा मेरे द्वारा ठुकराये जाने पर मुझे शुक बना दिया और मेरी पत्नी को अपनी कन्या मल्लिका की दासी बना कर रख लिया। वह बुढ़िया चन्द्रलेखा है। वह गन्धमूषिका के विहार में भिक्षुणी बनकर दूषित चरित्रवाली है। मकरन्द चित्राङ्गद के पास पहुँचा और वहाँ बन्दी बना लिया गया।

वैश्रवण और मनोरमा ने मकरन्द की सहायता करने का वचन दिया। इधर मल्लिका ने अपनी माता और चित्राङ्गद से स्पष्ट बता दिया कि मेरा मकरन्द से प्रेम अडिग है।

मल्लिका ने प्रयोजनवशात् कपट-व्यवहार किया। उसने चित्राङ्गद से कृत्रिम प्रेम दिखाना आरम्भ किया। उसका विवाह विहार में चित्राङ्गद से होना निश्चित हुआ कि विधि पूरा करने के लिए पहले यक्षराज से उसका औपचारिक विवाह करना था। यक्षराज मकरन्द था। उसके साथ मल्लिका का विवाह हो गया। सभी ने इसे स्वीकार कर लिया।

रस की दृष्टि से मल्लिकामकरन्द का सर्वोत्तम पद्य है—

> आस्यं हास्यकरं शशाङ्कयशसा बिम्बाधरः सोदरः
> पीयूषस्य वचांसि मन्मथमहाराजस्य तेजांसि च।
> दृष्टिर्विष्टपचन्द्रिका स्तनतटी लक्ष्मीनटीनाट्यभू-
> रौचित्याचरणं विलासकरणं तस्याः प्रशस्यावधेः॥

यह नायिका की श्री है।

वनमाला

वनमाला रामचन्द्र की रची हुई नाटिका है। यह अभी अप्राप्य है। जैसी परिभाषा नाटिका की कवि ने नाट्यदर्पण में दी है, उसके अनुसार इसमें चार अङ्क,

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के मुनि पुण्यविजय जी के पास थी।

बहुत स्त्रियां, कल्पित कथा और नायक की दो नायिकायें—महादेवी तथा कोई नई नवेली राजकन्या होती हैं।[1]

जैसा इसके नीचे लिखे पद्य से प्रतीत होता है, इसमें राजा नल नायक हैं और दमयन्ती उनकी विवाहिता पत्नी अब महादेवी हो चुकी है। नल का किसी अन्य कन्या से प्रेम चल रहा है—

राजा—(दमयन्तीं प्रति)

दृष्टिः कथं जरठपाटलपाटलेयं
कम्पः किमेष पदमोष्ठदले बबन्ध ।
नारङ्गरङ्गहरणप्रवणः प्रियेऽस्य
वक्त्रस्य कुंकुमभृतेऽरुणिमा कुतोऽयम् ॥

रोहिणीमृगाङ्क

रामचन्द्र का रोहिणीमृगाङ्क नामक रूपक अभी तक नहीं मिला है। इसके दो अवतरण नाट्यदर्पण में मिलते हैं, जिनके प्रसङ्ग में इस रूपक को प्रकरण बताया गया है। प्रकरण की परिभाषानुसार इसमें रोहिणी नायिका है और मृगाङ्क नायक। नायक को अनेक क्लेश उठाने के पश्चात् नायिका मिली होगी। नायक का मित्र वसन्त विदूषक प्रतीत होता है। क्लेशों की परिणति नायिका-मिलन में होगी यह नायिका की प्रवृत्तियों के आधार पर प्रथम अंक में संङ्केत करता है—

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादारभन्ते यदङ्गनाः ।
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः ॥

नायिका के प्रथम दर्शन में उसकी अलौकिक शोभा का वर्णन नायक ने प्रथम अङ्क में किया है—

मृगाङ्कः (सोत्कण्ठम्)

सा स्वर्गलोकललना जनवर्णिका वा
दिव्या पयोधिदुहितुः प्रतियातना वा ।
शिल्पश्रियामथ विधेः पदमन्तिमं वा
विश्वत्रयीनयनसंघटनाफलं वा ॥

इससे नायक का नायिका के प्रति विस्मय प्रकट होता है।

---

1. चतुरङ्का बहुस्त्रीका नृपेशा स्त्रीमहीफला ।
कल्प्यार्था कैशिकीमुख्या पूर्वरूपद्वयोत्थिता ।
ख्यातिख्यातितः कन्या-देव्योर्नाटी चतुर्विधा ॥ २. ५-६

अध्याय १८

पार्थपराक्रम

पार्थपराक्रम व्यायोगकोटि की बारहवीं शती के उत्तरार्ध की रचना है।[1] इसमें महाभारत की सुप्रसिद्ध गोहरण प्रकरण की कथा सुरूपित है।

कवि-परिचय

पार्थपराक्रम के रचयिता परमार प्रह्लादनदेव मारवाड में चन्द्रावती नामक राज्य के राजकुमार थे। यह राज्य उस समय गुजरात के महाराजाओं के अधीन था। प्रह्लादनदेव ने गुजराज में पालनपुर नगर की स्थापना की थी। परमारों का उस युग में यह अर्बुद-प्रदेशीय राज्य सुविख्यात था। कवि का भाई महाराज धारावर्ष महान् विजेता था। वह उच्चकोटि का धनुर्धर था।

प्रह्लादनदेव अपने युग में सुसम्मानित थे। महाकवि सोमेश्वर ने इन्हें आबू की प्रशस्ति में सरस्वती का अवतार और कीर्तिकौमुदी में सरस्वती का पुत्र कहा है। यथा.

> श्रीप्रह्लादनदेवोऽभूद् द्वितयेन प्रसिद्धिमान्।
> पुत्रत्वेन सरस्वत्याः पतित्वेन जयश्रियः॥
> श्रीभोजमुञ्जदुःखार्ता रम्यां वर्तयता कथाम्।
> प्रह्लादनेन साह्लादा पुनश्चक्रे सरस्वती॥ की० कौ० १.१४–१५

जल्हण ने सूक्तिमुक्तावली में उनकी कविताओं का संग्रह किया है। कोटीश्वर की प्रशस्ति में इन्हें षड्दर्शनालम्ब और सकलकला-कोविद कहा गया है।

सोमेश्वर ने इन्हें जयश्री का पति कहा है, जिससे उनका उच्चकोटि का योद्धा होना प्रमाणित होता है। अनेक युद्धों में उन्होंने सुयश अर्जित किया था। सोमेश्वर ने अपने सुरथोत्सव में प्रह्लादन को उच्चकोटि का लोकोपकारी बताया है।[2]

---

१. इसका प्रकाशन गा० ओ० सीरीज सं० ४ में १९१७ में हुआ है। इसकी प्रति गङ्गानाथ झा विद्यानुसन्धान-भवन, प्रयाग में उपलब्ध है। इसका प्रथम अभिनय अचलेश्वरदेव के पवित्रकारोपणपर्व में हुआ था।

२. श्रीप्रह्लादनमन्तरेण विरतं विश्वोपकारव्रतम्।
देवीसरोजासनसम्भवा किं कामप्रदा किं सुरसौरभेयी।
प्रह्लादनाकारधरा धरायामायातवत्येष न निश्चयो मे॥

कथावस्तु

विराट की गायों को छीनकर दुर्योधन के योद्धा ले जा रहे हैं। बहुत-सी गायें हताहत हो गई हैं। गोपाध्यक्ष ने कुमार उत्तर को सूचना दी कि इनकी रक्षा करें। कुमार ने धनुष तो लिया। उसने दुर्योधन की अहंकारभरी वाणी का उत्तर भी गरज कर दिया। उसके लिए युद्ध के योग्य रथ भी सज्जित हो गया। उसने अपनी बहन के आशङ्का प्रकट करने पर उत्तर दिया—

त्वमपि समरसीमन्येष भक्तास्मि भीष्मं
भुवनविदितशक्तिर्यत्र तान्तः कृतान्तः।
धनुरनुदितदर्पप्रातिभं कुम्भकेतु-
र्भजतु च भुजयोर्मे गौरवं गाहमानः॥ १८

बृहन्नला बना हुआ अर्जुन उत्तर के कार्यकलाप देख रहा था। वह जानता था कि उत्तर निकम्मा है। उत्तर के लिए रथ आया तो वह योग्य सारथि के अभाव में जाने से कसमसाने लगा। अर्जुन ने कहा कि मैं सारथि के काम में कुशल हूँ। रथ चला कर वह शीघ्र ही वहाँ पहुँचा जहाँ कौरव वीर थे। उत्तर के पूछने पर अर्जुन ने कौरवपक्ष के वीर कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कर्ण, द्रोण और भीष्म का वीरोद्गारी परिचय दिया और अन्त में कहा,

तदिह विहरतां कुमारः पौरुषोचितम्।

उत्तर ने अर्जुन से कहा कि रथ को मन्द-गति से चलाओ, थोड़ा विचार करना है। अर्जुन ने परिहासपूर्वक कहा कि यही विचार कर रहे हो न कि किससे लड़ें—

किं गांगेयममेयबाहुविभवं द्रोणं किमुद्यद्गुणं
नादत्रासितशात्रवं किमथवा राधेयमत्युद्धतम्।
दुष्टं वा धृतराष्ट्रसूनुमधुना पूर्वं मृधायाह्वये
सर्वान् वा सममित्यमर्षिमनसो मन्ये विमर्शस्तव॥

उत्तर ने उत्तर दिया—ऐसा नहीं। मैं सोच रहा हूँ कि मैं तो अकेला हूँ। ये इतने महारथी हैं। भाग चलना ठीक रहेगा। अर्जुन ने कहा कि तुम्हें धिक्कार है। युद्धभूमि से क्षत्रिय थोड़े ही भागता है। अर्जुन के आदेशानुसार उत्तर सारथि बना। वह रथ से जाकर शमी वृक्ष से अपना गाण्डीव धनुष लेने गया। वहाँ ध्यान लगाते ही रथ पर आकाशमार्ग से कोई दिव्य पुरुष आया उसने अपना वह दिव्य सांग्रामिक रथ अर्जुन को दिया उसकी ध्वजा पर हनुमान् थे। उसे देवदत्त नामक शंख भी दिव्य पुरुष ने दिया। यह सब देखकर उत्तर ने पहचान लिया कि ये अर्जुन हैं। अर्जुन ने अपने सभी भाइयों का परिचय उत्तर को दिया। अन्त में दिव्य रथ पर वे दोनों समरभूमि की ओर चले।

अर्जुन ने देवदत्त शंख बजाया। द्रोण और भीष्म ने उसे पहचान लिया कि यह अर्जुन है। अर्जुन ने भीष्म और द्रोण को प्रणाम करने के निमित्त उसके चरण के पास दो बाण छोड़े। उन दोनों ने आत्मनिन्दा की कि हम लोग अनीति-पथ पर चलकर पाण्डवों के कष्ट का कारण बन चुके हैं। तभी सारथि सुषेण ने आकर बताया कि अश्वत्थामा युद्ध में परास्त होकर घायल पड़ा है। अन्य कौरव वीर प्रहारभीत होकर भाग चले। कर्ण के पराजय की सूचक शंखध्वनि सुनाई पड़ी। अकेले दुर्योधन लड़ने को रहा—

धृतराष्ट्रसुतैर्दृष्टः किरीटी विश्वतोमुखः।
एकोऽप्यनेकधा वल्गन्नात्मा नैयायिकैरिव ॥ ४८

अर्जुन के चारों भाई भी युद्ध में पराक्रम दिखा रहे थे। चोट लगने से घायल होकर राजा विराट युद्धस्थल से अलग हटा दिये गये थे। भीम ने उन्हें बचाया था। अर्जुन ने दुर्योधन को अपने प्रहारों से क्षत-विक्षत कर दिया, पर मार नहीं डाला क्योंकि द्रौपदी के केशाकर्षण के समय भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि इसे मैं मारूँगा।

अर्जुन मूर्च्छित पड़े हुए दुर्योधन के रथ पर चढ़ गया। युधिष्ठिर ने उसे रोका कि मूर्च्छित पर शस्त्रप्रहार नहीं करना है। अर्जुन ने कहा कि इसे मारना तो भीम को है। मैं तो केवल इसके शिर के किरीट को ले लूँगा। अर्जुन ने किरीट ले लिया और बाण से उसकी ध्वजा पर यह पद्य लिख लिया—

छलद्यूते जेतुर्जतुमयमगारं रचयितु-
र्गरं दातुः कान्ताकचसिचयहर्तुश्च सदसि।
स्वयं गन्धर्वेन्द्राद्धिगमितजीवस्य भवतः
शिरःस्थाने मानिन् मुकुटमपनिन्ये विजयिना ॥ ५.७

पार्थपराक्रम की कथा का मूलाधार महाभारत है। कवि ने उस प्राचीन कथा को रोचक और रूपकोचित बनाने के लिए अनेक स्थलों पर कथानक में यथोचित परिवर्तन किये हैं।

इस रूपक की रचना उस विशेष युग में हुई, जब इस देश पर मुसलमानों के आक्रमण से भारतीय संस्कृति छिन्न-भिन्न हो रही थी। वही भारतीय संस्कृति गौ के प्रतीक रूप से रक्षणीय मानकर कवि ने अर्जुन का आदर्श अपनाकर राष्ट्र को युद्धपरायण होने का संदेश दिया है।[1] अर्जुन ने मुख से कवि के नीचे लिखे पद्य इस उद्देश्य से विमर्शनीय हैं—

द्वारं विमुक्तेः प्रतिबन्धमुक्तं कीर्त्यङ्गनानर्तनरंगभूमिम्।
फलं यियासोरिह जीवितस्य कः संगरं प्राप्य पराङ्मुखः स्यात् ॥ ३०

---

१. ताम्यन्त्येताः कुरुपतिहता मातरस्तर्णकानाम् ॥ १४

सम्परायेषु शूराणां शोभामात्रमनीकिनी।
दोर्दण्डं चापदण्डं वा सहायं ते हि वृण्वते ॥ ३१

उत्पत्तिर्जगतीतलैकतिलके गोत्रे धरित्रीभुजा-
मूर्जापात्रमिदं वयः किमपरं कार्योत्सवोऽयं गवाम्।
दिष्ट्या संघटितस्तवैष सुकृतैर्योगस्तदुद्योगवा-
नुर्वी निर्विश निर्जितामसुधनक्रीतां दिवं वाधुना ॥ ३२

दर्शयित्वा द्विषां पृष्ठमजातव्रणविग्रहः।
दर्शयिष्यसि दाराणां वियातवदनं कथम् ॥ ३३

इस व्यायोग में विदेशी शासकों के आक्रमण से देश की रक्षा का प्रतीक आगे चलकर द्रोण और भीष्म के नीचे लिखे संवाद में सुस्पष्ट है—

भीष्मः— यदेते वयं द्रविणकणादानलोभेन भुजिष्यायमाणाः सुदुस्सहदावव्यसनविनिर्गतस्य धर्मार्गलास्खलितशौर्यसिन्धुरप्रसरस्य वत्सबीभत्सोः पुरः शरासनमेव पारितोषिकीकृत्य वर्त्तामहे।

यहां भीष्म उन लोगों की बात कह रहे हैं, जो विदेशियों से मिलकर देशरक्षकों का गला घोंटते हैं।

शैली

कवि ने प्रस्तावना में इस व्यायोग की शैली का निरूपण किया है—

यत्र क्षत्रनिकारकारणरणप्रेमा कुमारः प्रभुः
सन्दर्भः सुकवेः समाधिसमतागर्भः कुमारस्य च।
तत्रास्माकमकुण्ठिताद्भुतरसस्रोतःप्लुते रूपके
चेतः कौतुकलोलुपं सपदि तत्सम्पाद्यतामुद्यमः ॥ ४
प्रह्लादनस्य कविता वसतिः प्रसत्तेः ॥ ५

अर्थात् इस रूपक में समाधि, समता, अद्भुत रस और प्रसाद की निर्भरता है।

प्रह्लादन शब्दालङ्कार की संगीत-ध्वनि का सर्जन करने में निपुण हैं। यथा,

कृतमिदानीमात्मगुणग्रहणेन। कोदण्डगुणग्रहणस्यैव ग्रहणमुहूर्तो वर्तते।

इसमें अनुप्रास और यमक की छटा है। कवि की शैली आद्यन्त सातिशय सानुप्रासिक है। वीररस के प्रकरणों में ओजोगुण का प्रकर्ष है।

शिष्ट-गाली की नातिदीर्घ सूची इस रूपक से संकलित की जा सकती है। इसमें उत्तर को अर्जुन गेहेनर्दी कहता है। दुर्योधन अर्जुन को वाक्शूर और पाण्डवडिम्भफेरण्ड कहता है। अर्जुन दुर्योधन को नरेश्वरपशु कद्वद, सांयुगीनम्मन्य, धार्तराष्ट्राधम आदि कहता है। उत्तर दुर्योधन को कौरवकुक्कुर कहता है।

अभिनव-शिल्प का एक रोचक विवरण इसमें स्पष्ट किया गया है, जिसके अनुसार भगवान् का रथ आजकल के हेलिकाप्टर की भांति आकाश में लम्बमान दिखाया गया है। इस सम्बन्ध में निर्देश है—

ततः प्रविशत्याकाशलम्बमानविमानाश्रितः सहाप्सरोभिर्वासवः।

उस विमान पर स्थित ऊपर से ही वासव ने आशीर्वाद दिया—

तद्रक्षासु विचक्षणाः क्षितिभुजो राज्यं भजन्तु स्थिरम्॥

कीथ ने प्रह्लादनदेव की प्रशस्ति में कहा है—

Prahladana wrote other works, of which some verses are presrved in the onthologies, and must have been a man of considerable ability and merit.[1]

धनञ्जय-विजय

धनञ्जय-विजय के रचयिता काञ्चनाचार्य का प्रादुर्भाव बारहवीं शती में हुआ था।[2] कवि ने अपना परिचय दिया है। तदनुसार नारायण उपाध्याय महान् विद्वान् थे। उन्होंने असंख्य विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। उनके पुत्र थे काञ्चन—

तत्सूनुः काञ्चनो नाम समस्तगुणवल्लभः।
गोष्ठीशालेव विद्यानां यस्य जिह्वा विराजते॥ १३

इसमें महाभारत की सुप्रसिद्ध कथा है। जिसमें विराट की गौओं को अपहरण करने के लिए दुर्योधन ने ससैन्य आक्रमण किया था। विराट के यहां प्रसाधक बने हुए अर्जुन ने शत्रुओं को परास्त करने का अच्छा अवसर देखकर विराटकुमार को सारथि बनाकर कौरवों को क्षत-विक्षत करके भगा दिया। इसमें महाभारत से कुछ भिन्न कथा है। दुर्योधन ने अर्जुन से कहा—

वनवासपरिक्लेशात् किं निर्विण्णोऽसि जीवने।
यदभीरेक एव त्वमनेकैर्योद्धुमुद्यतः॥ ४५

अर्जुन ने उत्तर दिया—

एको निवातकवचान् सह कालकेयैर्भस्मीचकार भगिनीमहरच्च शौरे।
एकेन खाण्डववनं जुहुवेऽनले च पार्थस्य नाभिनव एप रणेपु पन्था॥ ४६

---

1. The Sanskrit Drama P. 265.

२. धनञ्जयविजय का प्रकाशन काव्यमाला ५४ में हुआ है। इसका अभिनव राजा जयदेव के आदेश पर हुआ था। ये बारहवीं शती के जयदेव कन्नौज के राजा हो सकते हैं। इतिहास में १२५६ ई० के कान्तिपुर के नामदेव की चर्चा भी मिलती है। कन्नौज का जयदेव कवियों का सुप्रसिद्ध आश्रयदाता था।

अध्याय १९

रुद्रदेव

रुद्रदेव या रुद्रचन्द्रदेव वारङ्गल के काकतीयवंशी राजा महान् विजेता और कुशल शासक थे।[1] इनका काल लगभग ११५५ ई० से ११९५ ई० तक है। इनके पिता प्रोल द्वितीय थे। रुद्रदेव विद्वानों के आश्रयदाता थे, जिनमें अचलेन्दु दीक्षित, नन्दीकवि आदि थे। स्वयं रुद्रदेव की उपाधि कविचक्रवर्ती थी। अनेक शिलालेखों में रुद्रदेव की नैसर्गिक प्रतिभा के विलास का गौरवगान मिलता है। ये रुद्रदेव प्रताप-रुद्रदेव से भिन्न हैं, जिनके आश्रित महाकवि विद्यानाथ ने प्रतापरुद्रयशोभूषण नामक काव्यशास्त्र का सुविख्यात ग्रन्थ लिखा है।

रुद्रदेव के दो रूपक उषारागोदय और ययातिचरित मिलते हैं। इनके अतिरिक्त उनका लिखा नीतिसार मिलता है।

उषारागोदय

कथानक

द्वारिका में ग्रीष्म ऋतु के अन्त में कृष्ण शोणितपुर के राजा बाणासुर को युद्ध में दण्ड देने के लिये गये। इधर बाणासुर की कन्या उषा की सखी चित्रलेखा कृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध के विदूषक गिरिवर से मिली। रक्ताशोकमण्डप में जब नायक अनिरुद्ध विदूपक के साथ जा पहुँचता है। तब आकाश मेघाच्छादित हो जाता है। नायक उषा के प्रेम में निमग्न है। चित्रलेखा के कथनानुसार उस रक्ताशोकमण्डप में नायिका उषा अनिरुद्ध से मिलने के लिए आनेवाली है। पर आ जाती है अनिरुद्ध की पट्टमहिषी रुक्मवती की सहचरी रूपरेखा। वह जान गई है कि उषा अब रुक्मवती के मार्ग में रोड़ा बन कर आने वाली है। उसने नायक को सन्देश सुनाया कि ऐसे मेघाच्छन्न ऋतु में रुक्मवती आपके साथ हिन्दोलोत्सव का आनन्द लेना चाहती हैं। नायक विदूपक के साथ हिन्दोलोत्सव में भाग लेने के लिए मणिवेदिका पर पहुँच जाता है। रात्रि का समय हो जाता है। वहीं रुक्मवती आकर हिण्डोला-क्रीडन के

---

१. Rudra-I was a well-known writer... During his reign temples were built in Anmakonda, Pillameri and Mantrakūṭa. The city of Orungallu, modern Warangal, was at this time rising into prominence; Rudra founded there a number of quarters and built a temple of Śiva. The struggle for empire. P. 200.

पहले मदनपूजा करने के लिए साक्षात् कुसुमायुध नायक की ही अर्चना करती है। फिर दोनों हिण्डोले पर झूलते हैं। नायक सोचता है कि यह दोला-लीला देर तक चलती रही तो उषा से मिलन होने का समय ही बीत जायेगा। उसने नायिका से कहा कि अब पानी बरसनेवाला है। दोला में आनन्द मन्द होता जा रहा है। नायिका और नायक अन्तःपुर में चले जाते हैं।

विदूषक रूपलेखा से मिलता है और उसके पाँव पड़कर प्रार्थना करता है कि चित्रलेखा की वह योजना रुक्मवती को मत बताना, जिससे अनिरुद्ध और उषा का समागम होनेवाला है। क्रीड़ापर्वत पर मदनमहोत्सव देखते हुए समय बिताने के लिए नायक विदूषक के साथ जा पहुँचता है। इस बीच वसन्त का शुभागमन उद्धव के कहने पर दत्तवरमुनि ने सम्भव कर दिया था। इस समय मदनमहोत्सव में सम्मिलित होनेके लिए रुक्मवतीने अनिरुद्ध को बुलाया। नायक देवी का अनुरञ्जन करने के लिए प्रमदोद्यान में गया। देवी ने पटवास और कुंकुम से नायक की अर्चना की। पर नायक का मन इस समय उचटा-उचटा देखकर रुक्मवती ने कहा—

तस्मादन्तःपुरं गमिष्यामि।

उसी समय कृष्ण के विजय का समाचार मिला कि वे बाणासुर को पराजित करके द्वारका आ रहे हैं। इस समाचार को कहकर रुक्मवती को प्रसन्न करने के लिए अनिरुद्ध और विदूषक चल पड़े।

नारद प्रयास कर रहे थे कि उषा और अनिरुद्ध का विवाह हो जाय। उन्होंने पर्वत को उसके कुछ समय पश्चात् दो मुनिकुमारों को भेजा कि देख आओ कि क्या उषा आ गई? उन्होंने देखा कि वह प्रमदोद्यान में आ गई है। इस समाचार को जान कर नारद को अब रुक्मवती को गृहप्रवेश-विहार के लिए नियोजित करना था।

प्रमदोद्यान में आकर नायिका नायक के लिए प्रतीक्षा करती हुई चित्रफलक पर बने हुए नायक के चित्र को देखती हुई समय बिताने लगी। उसने अनिरुद्ध के चित्र के नीचे लिखा—

मानसगतचिन्तया यस्या मूर्च्छानुप्राणितं शब्दम्।
तमलभमाना हंसी कथं कृत्वा सापि आश्वसतु॥ ३.६

रात्रि का समय हुआ। बिसनीपत्र के शयन पर प्रमदोद्यान में उषा लेट गई।

इस बीच दो मेढ़े अपने खूँटे तोड़ कर उत्पात मचाने लगे। चित्रलेखा को डर लगा कि कहीं बिसनीपत्र के लोभ से इधर आकर वे आक्रमण न कर दें। वे दोनों तमाल वृक्ष की ओट में छिप गईं। नायिका ने पदध्वनि सुनी तो समझा कि कहीं मेढ़े तो नहीं आये, पर उधर से आये नायक और उसका विदूषक। नायिका और उसकी सखी नायक और विदूषक की बातें सुनने लगीं। घूमते-फिरते वे उसी स्थान रप पहुँचे जहाँ नायिका बिसनीपत्र पर सोई थी। वहीं चित्रफलक था, जिस पर

लिखा प्रेमपत्र नायक ने पढ़ा तो उसकी स्थिति देखकर विदूषक ने कहा—मार डाला, पापिनी बाणकन्या ने मेरे मित्र को। तब तो नायिका अपनी सखी का हाथ पकड़े उनके सामने आई। नायक और नायिका को अकेले छोड़कर विदूषक और चित्रलेखा अन्यत्र चली गई। नायक और नायिका के प्रेम में ज्वार आया तो विदूषक ने झट आकर कहा कि इधर तो कंचुकी और देवी की दासी मालविका आ रही हैं। कंचुकी नायक से यह बताने आ रहा था कि नारद की प्रेरणा से रुक्मवती उषा का अनिरुद्ध से विवाह करने की पूरी सज्जा कर चुकी हैं। पर इधर तो नायक उषा से गन्धर्व-विवाह कर चुका था। कंचुकी ने उन्हें रक्ताशोकमण्डप में देखकर कहा—

> घुसणाविवातपश्रीर्जलधर इव निश्चला विद्युत्।
> शशिनीव कौमुदीयं भाति कुमारेण संगमिता॥ ३.३६

नायक और विदूषक वहीं रह गये। अन्य सभी वहां से अन्तःपुर की ओर चलते बने। ये दोनों भी जलयन्त्रगृह में चले गये। अभी एक पहर रात शेष थी। वहां पर महारानी की सहचरी रूपलेखा ने आकर सन्देश दिया कि चलें आपके विवाह का समय हो गया है। कुमार और उषा का विवाह नारद के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ।

उषारागोदय में रुद्रचन्द्रदेव ने पूर्वकालीन कथा को नाटिकोचित बनाने के लिए पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। पौराणिक कथा के अनुसार उषा ने चित्रलेखा के द्वारा उड़ाकर लाये हुए अनिरुद्ध से गान्धर्व-विवाह बाणासुर के प्रासाद में ही किया था। ऐसी परिस्थिति में युद्ध के पश्चात् पकड़े हुए अनिरुद्ध को बाणासुर के द्वारा बन्दी बनाया गया। कृष्ण ने युद्ध करके अनिरुद्ध को छुड़ाया। बाण युद्ध में मरते-मरते बचा। उसने दोनों का विवाह करा दिया।[1]

उषारागोदय में सारी कथा को अभिनव रूप दिया गया है, जिसके अनुसार उषा ही उड़ाकर द्वारका लाई जाती है। अनिरुद्ध की पट्टमहिषी रुक्मवती भी कर्पूरमञ्जरी और रत्नावली के आदर्श पर कवि की अभिनव योजना है।

नेतृपरिशीलन

इस नाटिका में सबसे बड़ी विशेषता है नई नायिका के फेर में पड़े हुए उन्मन नायक का अपनी प्रणयिनी पट्टमहिषी के प्रेमोपचार में अन्यमनस्क दिखाई देना। वह पट्टमहिषी के साथ हिन्दोलोत्सव और मदनमहोत्सव में भाग लेता तो है, किन्तु उसका हृदय कहीं अन्यत्र है। यथा,

---

१. यह कथा शिव० रुद्र० यु० ५२, पद्म० उ० २५०, भागवत १०.६२-६३ आदि में मिलती है। महाभारत में यह कथा प्रक्षिप्त है।

देवी परिजनकरोपनीतचन्दनकुसुमादिना कुमारमभिषिञ्चति, कुमारश्च शिथिलतरं देवीम् ।

रानी ने नायक का मुंह देखकर समझ लिया कि उसे रस नहीं आ रहा है—

नारद का उषा और अनिरुद्ध के विवाह के चक्कर में पड़ना देवर्षियों की संस्कृति के विपरीत पड़ता है ।

नायक का कविहृदय प्रशस्त है । नायिकामय उसका व्यक्तित्व हो चुका है और परिणामतः सारी प्रकृति में उसे अपनी नायिका का ही दर्शन होता है । यथा,

> तस्या रदच्छविरिवोन्मिषतेऽम्बरश्री-
> स्तत्पाणिकान्तिरुचिराणि च पल्लवानि ।
> तस्या मुखानिलसनाभिरथाम्बुजाना-
> मुद्गारगन्धललितो हि विभातवायुः ॥ ४.१०
>
> परस्परसमागमोत्सुकमिदं मम प्रेयसी-
> कुचद्वयसमोदयं स्फुरति चक्रवाकद्वयम् ।
> इदं च मदिरेक्षणा-तनुतरोदराध्यासितं
> कृशत्वमवलम्बते रजनिरागगूढं तमः ॥ ४.१२

यह उषाराग में उषा का निदर्शन है । रुक्मवती का चरित्र कवि ने एक ही पद्य में निखार दिया है—

> विनयः सत्यपि क्रोधे सत्यपि प्रेम्णि धीरता ।
> चरितं सर्वथा धन्यं मन्ये कुलनतभ्रुवाम् ॥ ४.१५

वर्णन

उषारागोदय में वर्णनों का चमत्कार सविवेष है । कवि ने अपनी सारूप्य दृष्टि से कल्पना का वह सम्भार पुञ्जीभूत किया है, जो इतनी छोटी पुस्तिका में अन्यत्र विरल ही है । नीचे के पद्य में प्रावृट् अच्युत की मूर्ति की भांति है—

> चञ्चद्बर्हिकलापपेशलतरा विद्युद्विलासाम्बरः
> संराजद्वनमालयातिसुभगा सारङ्गनादोत्करा ।
> सद्योनन्दितनीलकण्ठनयना गोपीजनाह्लादिनी
> सेयं मूर्तिरिवाच्युतस्य परमा प्रावृट् सुखायास्तु वः ॥ १.११

कवि अपने सारूप्य को सर्वाङ्गीण बनाकर प्रस्तुत करता है । यथा,

> माणिक्यकान्तिपरिमण्डितदीपिकाभि-
> रुत्तेजिताङ्गरचना सहचारिणीभिः ।
> अभ्येति पश्य वत जङ्गमकर्णिकार-
> वल्लीव चम्पकलताभिरुपास्यमाना ॥ १.१८

कवि की वसन्तलक्ष्मी है—

प्रकटितनवकेसराङ्गरागा मुखरमधुव्रतकिंकणीकलापा ।
नवसुरभिपलाशचञ्चदोष्ठी भवतु सुखाय चिरं वसन्तलक्ष्मीः ॥ २.५

रुद्रचन्द्रदेव ने विटप और लता को नायक-नायिका के रूप में देखा है। यथा,

पुष्पासवच्छुरितवेल्लितपल्लवाभि-
रुत्कन्धराभिरुचितं प्रमदालताभिः ।
कौसुम्भरागरुचिराभिरुपास्यमानाः
कान्तारसानुमिलिता विटपा हरन्ति ॥ २.६

ये दोनों कोरे उद्दीपन विभाव नहीं रह गये हैं, अपितु आलम्बन विभाव हैं—

सलतिका विटपैः परिरम्भिताः परभृताभिरुदंचितपंचमाः ।
अतिशयं कुसुमासववासिताः प्रमदयन्ति जनं प्रमदालताः ॥ २.१०

शैली

प्रकृति-वर्णन में कवि ने कहीं-कहीं समयोचित सामञ्जस्य की योजना प्रस्तुत की है। नायक को नायिका से प्रथम मिलन के पहले का अस्ताचल पर प्रतिष्ठित होता हुआ सूर्य अपने समान दिखाई देता है। यथा,

पश्चिमदिगङ्गनायाः संगमलोभादिवातिरक्ताङ्गः ।
समयेऽस्ताचलशिखरे पतति पतङ्गोऽनुरागीव ॥ ३.१२

इसके पहले भी विदूषक ने बरसात के बादलों में देखा था—

क्षणप्रभाखरदशनो गर्जनस्फुरितघोरघोपरवः ।
हिण्डते कामिजनानां वधाय वनशूकरो नभोविपिने ॥ १.१३

इसे सुनते ही नायक ने कहा—

धिङ् मूर्ख, मामुद्दिश्य ।

नायक और नायिका वियुक्त हैं तो सन्ध्या का सामञ्जस्य है—

वासराधिपवियोगविदूनं चक्रवाकमिथुनं हृदयं नु ।
यत्पपाट परितो हि नलिन्यास्तेन लोहितवती किल सन्ध्या ॥

नायक और नायिका के कितना समान पड़ते हैं द्विरेफ और अशोकलतिका—

राजन्त्यशोकलतिकाः स्तबकलताः पल्लवोल्लसिताः ।
मत्तद्विरेफमिलिताः सापत्न्योद्वेगनिर्मुक्ताः ॥ ३.१५

कल्पना का प्रतिभास इस नाटक में रसोचित है। वर्षा ऋतु में विद्युत् और मेघ नायिका से पराजित होकर व्यग्र हैं—

पश्य त्वदङ्गसुषमामुषित-क्रियेव
बध्नाति न स्थिरपदं गगनेऽपि विद्युत् ।
मुञ्चन्ति केशनिचयेन पराजिताश्च
नीलाम्बुदा बहलवारिमिषेण चास्रम् ॥ १.२६

अपनी वर्णना के द्वारा कवि सारी प्रकृति को मदनमहोत्सव में भाग लेनेवाली चित्रित करता है। वन्यतरु तो नागरक हो गये हैं—

एतेऽपि वन्यतरवो विलसत्परागै-
रारब्धकोकिलकलस्वनहेलमुच्चैः ।
कामोत्सवोऽयमिति सम्परिबोध्यमाना
मन्दानिलेन पटवासमिवोत्सृजन्ति ॥ २.१५

छन्दों के उपक्रम से कहीं-कहीं रुद्रचन्द्रदेव ने वाल्मीकि का अनुसरण किया है। यथा,

मेघागमेनेव धरातलानि पुष्पाकरेणेव च काननानि ।
प्रत्यग्रभावोदयपेशलायाः प्रत्युन्मिषन्तीह तथाङ्गकानि ॥ ३.२७

स्वागता छन्द से सन्ध्या का स्वागत किया गया है—

इयं कामप्रायां प्रथमवयसः प्रौढविपदं
दुरावस्थां भूयः किमपि सुदती हन्त मधुनः ।
मुहुर्वेल्लद्वेणी तदिह वदतीव प्रतिपदं
स्खलत्पादन्यासादतिमुखरमंजीरनिनदैः ॥ ३.१४

सूक्तियाँ यथास्थान सन्निवेशित होने के कारण भावनिर्भर हैं। यथा,

१. आपतितोऽयमकाण्डे कूष्माण्डपातः ।
२. युज्यते चकोर्याः सहवर्तनं कुमुदिन्या ।
३. न श्रद्दधे चन्द्रमसोऽग्निपातः ।
४. शुद्धेऽन्तरात्मनि पुनः कियती तीर्थादिना शुद्धिः ।

रस

नाटिका शृङ्गारप्रधान स्वभावतः होती है। इसमें शृङ्गार के साथ वीर का सामञ्जस्य द्वितीय अङ्क में कृष्ण के बाणासुर संघर्ष के प्रकरण में किया गया है।

भावात्मक उत्थान-पतन की योजना कवि ने समुपस्थित की है। जब नायिका भीत होकर मेढों का आना सोचती है। तो उधर से निकल आते हैं उसके प्रियतम।

एक ही क्षण में अनुराग और साध्वस की परिस्थिति रुद्रचन्द्रदेव ने ला दी है। उन्हें रुक्मवती से मिलना है, जिसके साथ उषा है। तब तो—

> तस्याः स्मिताननविलोकनजोऽनुरागो
> देव्यास्तथा प्रणयभङ्गजसाध्वसं नु।
> आविर्भविष्यति पुरः कतमोऽनुपूर्व-
> मित्याकुलेन हृदयेन खिलीकृतोऽस्मि॥ ४.५

सौन्दर्य की पराकाष्ठा है उषा—

> सद्यो विधूयेह रसान्तराणि गृह्णाति नो कस्य मनःप्रवृत्तिम्।
> विमोहयन्ती सकलेन्द्रियाणि निद्रेव नेत्रातिथितां गतेयम्॥ ४.२४

उषारागोदय पर कर्पूरमञ्जरी और रत्नावली का प्रभाव प्रत्यक्ष है। फिर भी कवि ने अपनी प्रतिभा से प्रायशः सर्वत्र ही अपनी अभिनव योजनाओं के समावेश द्वारा इस नाटिका को चमत्कारपूर्ण चारुता प्रदान की है। परवर्ती युग की नाटिकाओं में इसका स्थान पर्याप्त ऊँचा है।

ययातिचरित

रुद्रदेव का दूसरा नाटक ययातिचरित सात अङ्कों में प्रणीत है। इसमें महाराज ययाति की सुप्रसिद्ध महाभारतीय कथा इतिवृत्त है, जिसके अनुसार दैत्यराज वृष-पर्वा की कन्या शर्मिष्ठा ने आवेश में आकर दैत्यों के गुरु शुक्र की कन्या देवयानी को कूयें में डाल दिया। उसे महाराज ययाति ने कुएँ से निकाला। देवयानी ने अपने पिता से यह सब कहा और उसका क्रोध तभी शान्त हुआ जब शर्मिष्ठा को उसके पिता ने १००० अन्य दासियों के साथ देवयानी की सेवा में नियुक्त कर दिया।

देवयानी को कुयें से निकालते समय ययाति ने उसका हाथ पकड़ा था और यह अन्ततोगत्वा पाणिग्रहण में परिणत हुआ। विवाह के समय शुक्राचार्य ने ययाति को वचनबद्ध किया कि मैं शर्मिष्ठा से गान्धर्व विवाह नहीं करूँगा। पर शर्मिष्ठा के सौन्दर्य से पाशित होकर ययाति ने उससे दो पुत्र उत्पन्न किये। शर्मिष्ठा से भी जब उन्हें तीन पुत्र उत्पन्न हुए। तब जाकर देवयानी और शुक्राचार्य को रहस्य विदित हुआ कि ययाति अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ नहीं रह सके। शुक्राचार्य ने उन्हें शाप दे डाला कि जीर्ण हो जा, पर अन्त में परिस्थिति पर विचार कर यह छूट दे दी कि किसी का यौवन लेकर अपनी जीर्णावस्था का उसके साथ विनिमय कर सकते हैं। ययाति के पुत्रों में कनिष्ठ पुरु ने इसे स्वीकार कर लिया। ययाति ने चिरकाल तक यौवन सुख भोग कर पुनः पुरु को यौवन लौटा दिया और उससे बुढापा ले लिया। पितृभक्ति के पुरस्कार रूप में पुरु को ययाति ने अपना राज्य उत्तराधिकार रूप में

दिया। उसी पुरु से कौरव-पाण्डवों का राजवंश चला। ययाति के इस चरित पर अनेक रूपक लिखे गये।[1]

ययातिचरित का प्रथम अभिनय वसन्तागमन के उपलक्ष्य में परिषदाराधन के उद्देश्य से हुआ था।[2]

कथानक

दानव वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा शुक्र की पुत्री देवयानी के साथ दासी बनकर राजा ययाति के घर आई थी। ययाति का देवयानी से प्रेम था, किन्तु वह प्रमदोद्यान में कुन्दचतुर्थी के उत्सव के समय राजा के द्वारा देखी जाने पर मन से उसी की हो गई। देवयानी ने उसे राजा की दृष्टि से बचाने के लिए प्रमदोद्यान में रखा था। एक बार नई नायिका से दृष्टिबद्ध होने पर राजा देवयानी का एकमात्र न रह सका। शर्मिष्ठा और ययाति को संगमित करने के उत्सुक माधविका आदि परिजनों को अपना बुद्धिलाघव दिखाने का अवसर मिला। वसन्त ऋतु में गौरी-अर्चन के लिए फूल चुनने के लिए देवयानी ने मृगवन में सभी सहचरियों को भेजा था। उसी दल में शर्मिष्ठा भी पुष्पावचय के लिए गई थी।

राजा भी रक्षित मृगवन में मृगया करने पहुँचा। वहाँ पुष्पावचय करनेवाली सखियों की खिलखिलाहट राजा को सुनाई पड़ी। राजा ने देखा कि सभी तो चली गईं पर फूलों से पात्र पूरा न भरने के कारण धाई के साथ शर्मिष्ठा रुक गई है। वह यथाशीघ्र पुष्प चयन करने के लिए भटकने लगी। उसकी अंगुली तमाल के पत्ते से विंध गई, पुष्पपात्र गिर पड़ा और वह चिल्ला पड़ी—पिता ने मुझे मार डाला। धाई ने कहा कि तुम्हारे पिता क्या करते? उन्हें शुक्राचार्य की माँग पूरी ही करनी थी। उनकी बातचीत से राजा को उसका परिचय मिला कि यह वृषपर्वा की कन्या दासी बनकर आई है और इसे मैं कुन्दचतुर्थी के उत्सव में देख चुका हूँ। राजा उसके पास पहुँचा। राजा ने उसके अंगुली के घाव पर फूँकने के लिए उसकी अंगुली पकड़ी। राजा ने उसे गोद में बिठाना चाहा। क्षत की ओषधि लाने के लिए स्त्रियाँ वहाँ से चलती बनीं। ऐसे असमय में उधर से एक शार्दूल निकला। तब तो शर्मिष्ठा भय के कारण राजा से लिपट गई। राजा को उससे लड़ने के लिए सब को छोड़कर

---

१. विश्वनाथ ने शर्मिष्ठा-ययाति का उल्लेख किया है। वल्लीसहाय ने ययाति-तरुणानन्द लिखा। इसका प्रकाशन १९५२ ई० की मद्रास शासकीय बुलेटिन संख्या ६ अङ्क १ तथा २ में हो चुका है।

ययातिदेवयानीचरित नाटक के लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। इसकी प्रति मद्रास के शासकीय ग्रन्थागार में है।

२. इसका प्रकाशन भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टीट्यूट से हो चुका है।

जाना पड़ा। उसने कहा कि आप यहीं रहें, पर शर्मिष्ठा को बुलाने के लिए कुछ सहचरियां आ गईं और वह चलती बनी।

राजा ने लौट कर देखा तो नायिका वहाँ नहीं थी। वह उसके लिए विशेष उत्कण्ठित था। तभी वहाँ गालव नामक ऋषि का तापस आया। ऋषि की आचार्य विश्वामित्र को देय दक्षिणा की याचना के लिए उनका गरुड की पीठ पर देश-देशान्तर घूमना बताकर उसने राजा का विनोद किया। राजा गालव से मिलने चला गया।

राजा नायिका से मिलने के लिए अतिशय व्यग्र था। उसने अपने साथी विदूषक से कहा—

> अपि कोऽपि सुविस्मिताननां पुनरानीय ममान्तिके कृती।
> घटयेन्नवसङ्गविक्लवां भुजयोरन्तरमायतेक्षणाम्॥ ३.६

राजा अपने नयन विलोभन के लिए नायिका का चित्र बनाने लगा। राजा ने चित्र बनाने के लिए एक रेखा खींची और स्तिमित हो गया और फिर तूलिका रुकी तो रुकी ही रह गई, क्योंकि—

> तस्याः प्रथमोपनतं यदङ्गमेवाङ्कचित्रके लिखितम्।
> प्रतिबन्धीव तदङ्गं जातं शेषाङ्गरेखायाः॥ ३.११

फिर तो राजा ध्यान में नायिका से मिला। मध्याह्न तक भोजन के पहले नायक इसी ऊहापोह में रहा।

इधर नायिका राजा के प्रेम में पड़ी सन्तप्त हो रही थी। उसने माधविका और चन्द्रलेखा से अपनी पूर्वराग की बातें कहीं कि राजा कितना निर्दय है कि मेरी चिन्ता नहीं करता। उसकी इन सब बातों को दो बालकों ने सुन लिया।

विदूषक और माधविका ने रात्रि में नायिका और नायक के सम्मिलन की योजना बना रखी थी। वे नायिका से मिलने जा रहे थे। मार्ग में वे ही दो बालक नायिका की सन्तापसूचक बातों का वाचिक अभिनय करते मिले।[1] नायक ने नायिका के अपने प्रति भावों को अपने पूर्वजन्म के तप का फल माना। वे नायिका से मिलने दीर्घिका तट पर पहुँचे। घोरान्धकार हो चुका था। नायिका के समीपवर्ती होने पर भी राजा उसके पास झट नहीं पहुँचा, अपितु छिपकर उसकी बातें सुनने लगा क्योंकि—

> प्रियाया रहस्यालापवर्णने सस्पृहं मनः।[2]

---

१. विरहिणी नायिका की सन्तापसूचक बातें नायक को सुनाने के लिए हर्ष ने रत्नावली में सारिका का उपयोग किया है। उससे अधिक स्वाभाविक बालकों के द्वारा सुनाना है।

२. इस प्रकार छिपकर प्रियतमा की बात सुनने की नाटकीय योजना भास के समय से सदा ही रही है।

अन्त में विरहिणी नायिका मूर्च्छित हो गई। फिर तो राजा निकट पहुँचा और उसे गोद में रखकर अपने स्पर्श से सचेत किया। विदूषक ने निर्णय किया कि प्रेम की पराकाष्ठा गान्धर्वविवाह की रीति से पर्याप्त होना चाहिए। उसने निकटवर्ती गृह में नायक और नायिका को पहुँचाया। तब से नित्यप्रति मृगया के बहाने नायक उसी रक्षित मृगवन में नायिका के साहचर्य-सुख में मग्न हो गया। पर यह सुख भग्न हुआ। रानी ने उन बालकों से सुना जो कुछ नायिका का आलाप उन्होंने सुना था। उसने शर्मिष्ठा से पूछताछ की। शर्मिष्ठा ने सब कुछ छिपाने का प्रयास किया। तभी मृगाभिसार से उधर से राजा लौटे। रानी देवयानी उन दो बालकों के साथ राजा के पास पहुँची कि अपनी करतूत का लेखाजोखा इन बालकों के संवाद से जान लीजिये। राजा उनको देखते ही पहचान गया और उनको डराकर कुछ करने न दिया। देवयानी ने शर्मिष्ठा और राजा के सम्बन्ध को सुप्रकाशित कर दिया कि तुम इनकी हो चुकी हो और ये तुम्हारे।

राजा देवयानी के पैर पर गिर पड़े और अपने अपराध के लिए क्षमा माँगी। वह चलती बनी और,

> कोपाद् विस्फूर्जिताक्षी पितुरधिगतये मायया चाप्यदृश्याम्
> कृत्वा दैत्येन्द्रकन्यामहह पितृकुलं प्रस्थिता देवयानी ॥ ५.१४

अर्थात् शर्मिष्ठा को अदृश्य करके देवयानी पिता के घर चली गई। राजा शर्मिष्ठा को खोजने चल पड़ा। उन्मत्त राजा को जलधरतरु, अनिल, निकुञ्ज, राजहंस, पृथ्वी, चन्द्रातपादि से पूछने पर प्रियतमा की कोई ठोस खबर न मिली। उसे अन्त में विदूषक उसे ही ढूँढते हुए मिला। प्रियतमा के चक्कर में वे अन्त में अचेत हो गये। विदूषक को स्मरण हो आया मालविका का बताया उपाय जिससे राजा को शर्मिष्ठा मिले। वह था ससुराल जाना और शुक्राचार्य की प्रीतिपूर्वक पुनः देवयानी और शर्मिष्ठा से संगमित होना।

राजा शुक्राचार्य के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्हें गौतमी नामक तापसी मिली, जो कभी देवयानी और शर्मिष्ठा की शिक्षिका रह चुकी थी। उसको अपनी शिष्या से बात करते समय ज्ञात होता है कि शुक्र ने ययाति को शाप दे डाला है कि तुम बुड्ढे हो जाओ। आगे का कार्यक्रम बन चुका था कि शुक्र आज राजा के आने पर उसे पुनः युवा बना देंगे और पत्नियाँ राजा की हो जायँगी।[1] राजा ने गौतमी से कहा कि आपको आगे करके देवयानी से मिलना चाहता हूँ। गौतमी ने मन में सोचा कि इन्हें भी दिखा दूँ कि शर्मिष्ठा और देवयानी को कितना पश्चात्ताप है। वाटिकामार्ग से शुक्राचार्य के पास पहुँचने का निर्देश राजा को मिला। वहाँ जाते समय वाटिका

१. यह कथांश अङ्क में न देकर अर्थोपक्षेपक द्वारा प्रस्तुत की जानी चाहिए थी क्योंकि यह वर्तिष्यमाण है।

में राजा ने शर्मिष्ठा और देवयानी का परस्पर संलाप सुना। देवयानी दुखी थी कि मैंने अपने प्रियतम और सखी के स्वाभाविक प्रणय-प्रवाह में बाधा डाली, जिसके लिए उसने एकमात्र कारण बताया कि शर्मिष्ठा हठ करके राजा के प्रति अपनी प्रणय-प्रवृत्ति को छिपाये जा रही थी। यथा,

अन्यथा जीवितभूताया सख्याः प्राणवल्लभजनस्य गूढसंगमः कथं न मर्पितव्यो भवति।

अन्त में राजा उनके पास पहुँचा। वार्धक्य के कारण विरूप उसे रानियों ने पहचाना नहीं। उन्होंने परिहास किया, जब वृद्ध ने कहा कि मैं तुम्हारा प्रणयी हूँ—

स्थविर कथं उपहससि। न लज्जसे।

अन्त में राजा को उन्होंने पहचाना तो उसके पैर पर गिर पड़ीं और कहा कि हमारे व्यलीकाचरण से यह दारुण स्थिति उत्पन्न हुई है।

शुक्राचार्य अपने जामाता से अन्त में आलिंगनपूर्वक मिले। तभी राजा १८ वर्ष का युवा हो गया। शुक्र ने कहा कि मेरे लिए तो जैसी देवयानी है, वैसी ही यजमान कन्या शर्मिष्ठा है।

समीक्षा

कथा की भावी प्रवृत्ति की सूचना शकुन से दी गई है। नायिका के वियोग में नायक की दक्षिण भुजा में स्पन्दन होता है तो वह सम्भावना करता है—

अपि सा हृदये मनागपि स्फुटवैलक्ष्यशुचिस्मितानना।
नवसंगमवेपथूत्तरश्लथबाहुद्वितयोपगूहनम् ॥ २.१४

सातवें अङ्क में गौतमी की शिष्या भावी घटनाक्रम की पूर्व सूचना देती हुई कहती है—

कविः प्रसन्न एव सर्व मनोरथं पूरयिष्यति।

मुनि के आशीर्वाद से भी भावी घटनाक्रम की सूचना दी गई है।

पात्रों की आशंका से कथा की भावी प्रवृत्ति की सूचना मिलती है। दो बालकों के विषय में नायिका को आशंका होती है कि ये अनर्थ करेंगे।

मुरारि और राजशेखर ने विमान से यात्रा का वर्णन अपने रामनाटकों में किया है। उस युग में लोगों को ऐसे वर्णन में विशेष रुचि रही होगी। रुद्रदेव ने ययातिचरित में ऐसा वर्णन महर्षि गालव को गरुड की पीठ पर घुमाकर प्रस्तुत किया है।

रुद्रदेव ने भी अङ्कों में केवल दृश्य वस्तु ही होनी चाहिए, इस नियम का पालन करना आवश्यक नहीं समझा है। गालव का वृत्त द्वितीय अङ्क में सूच्य वस्तु है। उसे अङ्क में न प्रस्तुत करके अर्थोपक्षेपक के द्वारा देना चाहिए था। वास्तव में इस गालववृत्त की आवश्यकता भी नहीं थी, जैसा पूरा सातवें अङ्क में तापसी की शिष्या के द्वारा जो कथा देवयानी के पिता के घर आने के पश्चात् की है, उसे अर्थोपक्षेपक में

जाना चाहिए था। नाटक पढने पर विदित होता है। तृतीय अङ्क में तो नायक केवल एक रेखा खींचता है।

किसी काम से किसी पात्र के जाने पर उसके लौटने में थोड़ा समय लगता है, किन्तु कई नाटकों में इस समय का विचार न करके क्षणभर में ही उसका आना जाना।

किसी पात्र को झूठ बोलने के लिए बाध्य करने की कला रुद्रदेव में है। वे शर्मिष्ठा का ययाति से गान्धर्वविवाह होने के पश्चात् देवयानी से उसकी मुठभेड़ करा देते हैं। पूछने पर नायिका को कहना पड़ता है कि कपोल पर अधरक्षत मालतीलता की खँरोच से हो गया है।

पञ्चम अङ्क में आरम्भ में रानी और शर्मिष्ठा रङ्गमंच पर बातें कर रही हैं। उसी समय कहीं दूर से आता हुआ नायक दिखाई देता है। वह रङ्गमंच पर आता है, तो उसे नायिकादि पहले से वहां विराजमान लोग नहीं दिखाई पड़ते। राजा एक ओर उपचारिका से बातें करता है। जैसे पहले से विराजमान लोग नहीं सुन पाते। यह तिरस्करिणी से रङ्गमंच के विभाजन से ही सम्भव है, किन्तु तिरस्करिणी का कोई उल्लेख नहीं है। थोड़ी देर में महारानी स्वयं राजा के पास आ जाती है। यहां त्रुटि यह है कि या तो दोनों समूहों के पात्र अलग-अलग रङ्गमंच पर बात कर रहे हैं अथवा जब एक समूह के पात्र बातें करते हैं तो दूसरे समूह के लोग चुप बैठे रहते हैं। ये दोनों स्थितियां नाट्यविधान के विरुद्ध हैं।

ययातिचरित का वह दृश्य अनूठा ही है। जिसमें शापवश वृद्ध होकर ययाति अपनी नायिकाओं—देवयानि और शर्मिष्ठा के समक्ष पहुँचता है। इस क्षण का संवाद किसे हंसाये बिना रहेगा—

उभे (विलोक्य)—अम्महे कोऽपि स्थविरो दृश्यते।
राजा—कथं नावगच्छत मां प्रणयिजनम्।
उभे—स्थविर, कथमुपहससि। न लज्जसे।
राजा—(सक्रोधम्)।

विवशो जराविपन्नो रोगानीकेन वा ग्रस्तः।
न खलु कुलपालिकानामवमान्यः शाश्वतो भर्ता॥ ७.१८

(उभे चिरमवलोक्य पादयोः पततः)

अन्तिम अङ्क में कुछ रूपकों में अपने इतिवृत्त की भूमिका देने के रीति दिखाई पड़ती है। दर्शन का औत्सुक्य आरम्भ से ही रहता है कि यह सब शुरू हुआ कैसे? इसके समाधान रूप में इस रूपक में राजा कूप में देवयानी के मिलने का, विवाह होने

पर शर्मिष्ठा की सेविका बनने का, राजा का उससे प्रथम दृष्टि से ही आसक्त होने की संक्षिप्त चर्चा राजा ने की है।[1]

रुद्रदेव ने ययातिचरित का कथानक महाभारत से लिया है किन्तु उसे रस-पूरता और औत्सुक्यनिर्भरता प्रदान करने के लिए उसने कथा में अनेक अभिनव मोड़ दिये हैं और नई कलात्मक स्थितियों का संयोजन किया है। इन सबको सुश्लिष्ट संवाद और नाट्योचित वैदर्भी रीति से पुरस्कृत करके कवि ने नाट्यशरीर को समलङ्कृत किया है।

नेतृपरिशीलन

ययातिचरित में नायक का शापवश बुड्ढा होकर अपने पूर्वपरिचितों के समक्ष आना और पहचाने जाने पर उनके विस्मय और खेद का पात्र बनना नाटकीय दृष्टि से वैपरीत्य के कारण विशेष रोचक है। नाटक की परिस्थिति में अन्यत्र इतना तीखा परिवर्तन विरल ही है।

राजा को श्मशान-वैराग्य होता है। वह कहता है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥ ७.१२

रस

रुद्रदेव को नाटक को रसमय बनाने की चेष्टा में सफलता मिली है। उन्होंने इसके लिए किसी कार्यव्यापार को सीधे सम्पन्न न कराकर उसके बीच वक्रपथ से भी भावात्मक परिस्थितियों का सन्निवेश किया है। उदाहरण के लिए सप्तम अङ्क में वृद्ध राजा सीधे कवि के पास जाकर उनका प्रसाद नहीं ग्रहण करता। वह जाते हुए बीच में देवयानी और शर्मिष्ठा की अनुशयात्मक बातें सुनता है, जिसमें रस की अप्रतिम निर्झरणी प्रवाहित हुई है। इसी प्रकार पञ्चम अंक में देवयानी शर्मिष्ठा से ययाति के प्रति उसके बढ़ते हुए प्रणयप्रवाह का लेखा-जोखा अपनी व्यंग्य शैली में लेती है। कवि ने यह स्थिति रससाधना की दृष्टि से यह अनूठी स्थिति कल्पित की है।

वर्णन

ययातिचरित में वर्णनों को प्रायशः रसप्रवण बनाया गया है और उन्हें घटनात्मक प्रासङ्गिकता से समञ्जसित किया गया है। यथा,

---

१. नियमानुसार यह अंश अङ्क में न होकर अर्थोपक्षेपक में होना चाहिए था।

लास्योपदेशकुशलो नवपल्लवानां
भिन्नारविन्दमकरन्दतुषारवर्षी ।
मत्तालिभिः प्रतिपदं प्रतिलंव्यमानो
मन्दानिलः सपदि तापमपाकरोति ॥ २.१

यह पद्य आगे के श्रृङ्गारित कार्यव्यापार की भूमिका में उद्दीपन है। इसके पहले कहा गया है कि अंचल से वीजन मत करो क्योंकि वायु तो मन्द-मन्द बह ही रही है।

प्रकृति को मानव का सहचर दिखाया गया है। यथा,

तस्याः क्षणात्रासतयालिभावं प्राप्ता लता मामनुवेदयन्ति।
तद्विप्रयोगादिव पाण्डुभावं मन्दानिलावर्जितपाण्डुपत्रैः॥

इसमें लता का नायिका से साम्य कल्पित है।

कहीं-कहीं प्रकृति में नायिका का दर्शन करने के कारण तत्सम्बन्धी वर्णन की सप्रसंग चारुता प्रतीत होती है। यथा दीर्घिका है—

शफरीलोलनयना शैवालरुचिरालका।
पुण्डरीकमुखी श्यामा लग्नचक्रयुगस्तनी॥ ३.२

यद्यपि आश्रम-वर्णन अनावश्यक ही है, फिर भी काल्पनिक परिधान में उसकी सुषमा संस्कृत साहित्य में अनूठी ही है। यथा,

अपनयति मृगेन्द्रस्याङ्गकण्डूतिमुच्चै-
र्मसृणमुत कुरङ्गः श्रृङ्गसंघर्षणेन।
करिपतिकरमुक्ता वारिपूर्णाङ्गवालाः
श्रियमहह भजन्ते शल्लकीशालपोतम्॥ ७.१

अपि च

उत्तेजयन्ति शिखिनः परिवृत्य वर्है-
र्होमानलं विनयवानिव शिष्यवर्गः।
शाखामृगा नखचिसंचितवृन्तकानि
स्वैरं फलानि च दलानि समाहरन्ति॥ ७.२

ऐसा वर्णन अन्यत्र विरल ही है।

शैली

किसी बात को स्फुट न कहकर श्रोता के ऊपर व्यञ्जना द्वारा अर्थ निकालने के लिए वाध्य करना कवि की विशेषता है।[1] रुद्रदेव की शैली नाट्योचित सरल वैदर्भी

---

१. कवि का कहना है—अलक्षिता एते श्लोका अनेकार्था भवन्ति।

है। कवि पद्यों का प्रेमी है। गद्योचित स्थलों पर भी पद्यात्मक संगीत का सन्निवेश करने में कुशल है। यथा,

> विद्याकलापमधिगम्य गुरुं ययाचे
> दातुं तमेकमभिकांक्षितमर्थमेकम्।
> नेच्छन्तमात्मविनयाद्गुरुमालपन्त-
> मत्याग्रहेण किल रोपवशं निनाय ॥ २.२०

रुद्रदेव कहीं-कहीं वाल्मीकि की संगीतमयी शैली का स्मरण कराते हैं। यथा,

> पुंजीकृता इव ससारससैकतेषु
> प्रक्षालिता इव नवच्छदगुल्मिनीषु।
> उत्तेजिताश्च कुसुमेषु विभिन्नभासः
> शाखासु भान्ति पतिताः शशिनो मयूखाः ॥ ४.२२

कवि की वाणी में स्वाभाविकता स्निग्ध लगती है। यथा,

> ओल्लं सुएहिं पुढविं परिवेढइव्व
> अंगाणि चन्दनरसेहि विलिंप इव्व।
> थो अंतरेण गअणे उदिओ मिअंको
> सीदेण अम्ह हिअआइ थरंथरंति ॥ ४.२३

इस पद्य के अन्तिम चरण में थरंथरंति ग्रामोचित प्रयोग विदूषक के वैदुष्य के अनुरूप है।

रुद्रदेव की भाषा में परिमार्जित प्रयोगों का बाहुल्य है। यथा,

१. कथं नर्तितास्मि अनार्येण कामेन।
२. बुभुक्षितसिंह इव वयस्योऽस्मत्सपक्षं खादिष्यति।
३. स्मरदीपो न दशान्तमागतः। ७.१२
४. इदं सनाथीकरोतु भुवं राजा।

एकोक्ति

ययातिचरित में एकोक्तियों की विशेषता है। प्रथम अङ्क के आरम्भ में राजा की एकोक्ति द्वारा उसकी मानसिक स्थिति का परिचय दिया गया है। यथा,

> जनयति मनःखेदं सोच्छ्वासं शश्वन्न वेद्मि कुतो मधुः ॥ १.६

> सुधापृक्तं हालाहलमिव निपीयाथ हृदयं
> ममेदं सोच्छ्वासं रणरणकमात्रं द्रढयति ॥ १.७

कहीं-कहीं दूसरे पात्र के रङ्गमंच पर होते हुए भी नायक के अनवधान के कारण उसका अस्तित्व नगण्य है और नायक की एकोक्ति है—

अङ्गानि दक्षिणमरुद्दृष्टिं वाप्योऽपि सोत्पलाः ।
अनिष्पन्दा मधौ वाता दहन्ति प्रसभं मनः ॥ ३.३

चतुर्थ अङ्क में पुनः राजा अनवधान-ग्रस्त होकर चन्द्रमा को सम्बोधन करता है—

विशदय निजभासा कुञ्जमत्र प्रिया मे
निवसति शिशिरांशो येन सालोकिता स्यात् ।
विरम विरम तन्वीमीदृशैस्त्वं मयूखैः
स्पृशसि यदि नितान्तं सर्वथा हा हतोऽस्मि ॥

उन्मत्तोक्ति

एकोक्ति के बहुत कुछ समान ही उन्मत्तोक्ति होती है, जिसमें रङ्गमंच पर अकेले उन्मत्त नायक होता है । वह किसी जीव या अजीव को पात्र होने की कल्पना करता है । उसके भावों की भी कल्पना करता है और तदनुसार प्रतिक्रियायें करता है । इसका आदर्श कालिदास ने विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अङ्क में पुरूरवा की उक्तियों में प्रस्तुत किया है । ययातिचरित के षष्ठ अङ्क में अपनी प्रियतमा शर्मिष्ठा का अन्वेषण करते हुए राजा जलधर के अभिमुख होकर कहता है—

विषममविषमं वा प्रेयसीवृत्तमेतद्
यदि गदितुमशक्तस्त्वं यथावन्मदग्रे ।
अपि तु वद भुवं तां यत्र ने नेत्रकान्ता
विषयमुपगता ते दीनबन्धो कथञ्चित् ॥ ६.५

(पुनरवलोक्य) अये कथमसावतिसरसहृदयदयो मद्दशावलोकनजातदयः प्रशान्तेऽश्रूणि मुञ्चन्नेवास्ते । तदेनमाश्वासयामि ।

लोकोक्तियाँ

१. प्रायः सर्वो भवति हि नवे वस्तुनि प्रेमहार्यः । १.२
२. पुरुषाः स्थिरस्नेहा न भवन्ति ।
३. यद् हस्तेन स्थगितव्यं भवति तत्स्थग्यते ।
४. निर्मलतरे हि गगने क्रियते रविणा स्फुटालोकः ।
तेनैव हन्त न तथा पश्यत जलदाविले भूयः ॥ २.१६
५. प्रथमं क्षीरं ततः खलु ननु क्षीरविकारः ।
६. तरलीकरोति हृदयं जनयति जडतां तुदत्यङ्गम् ।
स्खलयति च वाल्यकृत्ये दूरावस्थां गतः कामः ॥ ३.७
७. राजानो निजकार्यसक्ता बहुवल्लभाश्च भवन्ति ।
८. ननु कष्टसाध्यानि भवन्ति किल जगति श्रेयांसि ।
९. महतामवसरः प्रतीक्ष्यः ।

कामवर्ग

नायक का कामवर्ग का सैद्धान्तिक चिन्तन इस नाटक में प्रस्तुत है। इन सबसे रसराज की अप्रतिम प्रवृद्धि इस नाटक में सम्भव हुई है। कुछ कामपरक उक्तियाँ हैं—

तरलीकरोति हृदयं जनयति जडतां तुदत्यङ्गम् ।
स्खलयति च यात्यकृत्ये दूरावस्थां गतः कामः ॥ ३.७

प्रायेण गौरवर्णाङ्ग्यः शोभाभाजो भवन्ति हि ।
प्रत्यङ्गरूपरुचिराः श्यामाः स्मरशरासनम् ॥ ३.६

प्रथमालोकनविकसल्लज्जावैलक्ष्यहसितानि ।
हृदयं किमपि जनानां चोरितसुरतानि सुखयन्ति ॥ ३.१६

महिलाजनस्य हृदयं निसर्गविषमपि ऋजुकं च ।
क्लाम्यति रूपलुब्धं न खलु लघुगुरु विचारयति ॥ ४.८

रागाकुलमनसामिह नाकरणीयं किमप्यस्ति ।
च्युतमम्बरं न बुबुधे न चिरं प्रिययातिरागेण ॥ ४.११

देव यदि ददासि जन्म महिलानां किमर्थं तत् प्रेम ।
अथ प्रेम तत् किमर्थं न वितरसि विरहे मरणं च ॥ ४.२८

शश्वत् प्रियाप्रणयदुर्ललितं यथावद् ।
रम्येऽपि वस्तुनि न निर्वृतिमेति चेतः ॥ ६.२३

कामिनियों का एक धर्मशास्त्र भी होता है। ययाति की दोनों नायिकायें मिलजुल कर कहती हैं—

सख्या भर्ता भर्त्तैव भवति इति शास्त्रकारा भणन्ति ।

और देवयानी शर्मिष्ठा से कामिनीप्रवण धर्मशास्त्र बताती हैं—

भवति स्त्रीजनस्य पुरुषविशेषेऽभिलाषः ।

इन सबके होते हुए भी शृङ्गारित प्रवृत्तियों को अपनी मर्यादा ही परिनिष्ठित रखने में रुद्रदेव को निस्सन्देह सफलता मिली है।

अध्याय २०

मोहराजपराजय

यशःपाल का मोहराजपराजय पाँच अङ्कों का नाटक है।[1] इसकी रचना ११७४-११७७ ई० के बीच हुई, जब गुजरात में कवि का आश्रयदाता अजयदेव चक्रवर्ती शासक था। इसका प्रथम अभिनय महावीर की यात्रा के महोत्सव के अवसर पर हुआ था। यशःपाल के पिता धनदेव मोढ वनिया जाति के थे। धनदेव स्वयं मन्त्री थे। यशःपाल ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि मैं अजयदेव चक्रवर्ती के चरण-कमल का राजहंस हूँ। अजयदेव ने १२२९-१२३२ ई० तक कुमारपाल के पश्चात् शासन किया। इसके कथानक का सार लेखक ने नीचे लिखे एक पद्य में दिया है—

> पश्चात्सद्म कुमारपालनृपतिर्जज्ञे स चन्द्रान्वयी
>
> जैनं धर्ममवाप्य पापशमनं श्रीहेमचन्द्राद् गुरोः।
>
> निर्वीराधनमुञ्झता विदधता द्यूतादिनिर्वासनं
>
> येनैकेन भटेन मोहनृपतिर्जिग्ये जगत्कण्टकः ॥ १.४

अर्थात् राजा कुमारपाल ने जैन-धर्म के श्री हेमचन्द्र से पापशमन करनेवाले जैन धर्म की दीक्षा ली। उन्होंने अपने राज्य से द्यूत आदि का निर्वासन कर दिया और जगत्कंटक मोह नामक राजा पर विजय प्राप्त की थी।

कथानक

कुमारपाल ने ज्ञानदर्पण नामक चर को भेजा था कि जाकर देखो कि मोह नामक शत्रुराज आ गया कि नहीं। सदाचार नामक दुर्ग में विवेकचन्द्र नामक राजा जनमनोवृत्ति नामक राजधानी में रहता था। मोहराज ने उस पर आक्रमण कर दिया। मोह ने विवेकचन्द्र के दुर्ग सदाचार को घेर लिया। दुर्ग में पानी पहुँचानेवाली नदी धर्मचिन्ता पर बाँध बनाकर दुर्गवासियों को प्यासा रखा गया। उन्होंने सदागम नामक कुआँ बनाया। जब उसे भी शत्रु ने रज से भठ दिया, तब मोह के दुर्गवासी चर काम ने इसकी सूचना मोह को दी। इस प्रकार की अनेकानेक विषम परिस्थितियों में विवेकचन्द्र की याचना के अनुसार मोह ने उसको दुर्ग छोड़कर बाहर निकल जाने के लिए धर्मद्वार दे दिया। विवेकचन्द्र के साथ उसकी पत्नी शान्ति और कन्या कृपासुन्दरी थीं।

---

१. इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज में हो चुका है। पुस्तक संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय में प्राप्तव्य है।

राजा कुमारपाल की पत्नी नीति से कीर्तिमञ्जरी नामक कन्या और प्रताप नामक पुत्र थे। जैन मुनि के प्रभाव से कुमारपाल ने इनका त्याग कर दिया था। कीर्तिमञ्जरी भी मोह से जा मिली थी। मोह ने प्रतिज्ञा की थी कि अब मैं रहूँगा या कुमारपाल रहेंगे। पहले तो मोह ने उसके पक्ष में भेद डालना आरम्भ किया।

कुमारपाल को गुरूपदेश हुआ कि विवेक की कन्या कृपासुन्दरी से विवाह करके मोह को जीत सकोगे। हेमचन्द्र के तपोवन में कुमारपाल ने कृपासुन्दरी का दर्शन किया। राजा कृपासुन्दरी के साथ धर्मवन में विनोद करता था। वहीं कुमार की महिषी राज्यश्री आकर कृपासुन्दरी का प्रणयपाश देखकर मान करके दूर चली जाती है। राज्यश्री देवी के पास जाकर याचना करने लगी कि हे देवि, कृपासुन्दरी का सौन्दर्य क्षीण हो जाय। वहाँ मूर्ति के पीछे छिपे एक अनुचर से कहलवाया गया कि राजा का भावी अभ्युदय और विजय तभी सम्भव है, जब वह कृपासुन्दरी से विवाह कर लेगा। वह स्वयं कृपासुन्दरी के पिता विवेक के पास उसे माँगने गई। विवेक ने कहा कि मेरी कन्या तभी विवाह करेगी जब कुमार सन्तानहीन लोगों का धन लेना बन्द कर दे और सात पापों से छुटकारा पा ले। राजा को यह स्वीकार करना पड़ा। नगर से पशुमारण, द्यूत, मद्यपान, चोरी आदि दूर हो गये। इनके हटाये जाने से राजा की आय गिर गई।

मोह की सेना में राग, द्वेष, अनङ्ग, कोप, गर्व, दम्भ, पाखण्ड, कलिकन्दल, मिथ्यात्वराशि, पञ्चविषय, प्रमाद, पापकेतु, शोक, शृङ्गार आदि थे। कीर्तिमञ्जरी और प्रताप भी उससे जा मिले थे। इनके साथ मिलकर मोह ने कुमारपाल पर आक्रमण कर दिया। कुमार ने योगशास्त्र का कवच पहना और पुण्यकेतु, विवेकचन्द्र और ज्ञानदर्पण को साथ लेकर मोह से लड़ाई की। मोह महायुद्ध के पश्चात् परास्त हुआ। विवेक को जनमनोवृत्ति नामक राजधानी मिल गई।

समीक्षा

मोहराजपराजय प्रतीक-कोटि का नाटक है, यद्यपि इसे विशुद्ध प्रतीकात्मक नहीं कहा जा सकता। इसके नायक कुमारपाल, विदूषक, व्यापारी कुबेर और उसके साथी साधारण नर पात्र हैं। ऐसी रचनाओं का प्रधान उद्देश्य चरित्र-निर्माण होता है और इनके द्वारा लोकदृष्टि में आध्यात्मिक मन्जुलता का सम्प्रवेश कराया जाता है। यशःपाल को इसमें पूरी सफलता मिली है। उन्होंने अपनी भाषा, भाव और तर्कसरणि के द्वारा अपनी रचना में पर्याप्त प्रभविष्णुता सम्पादित की है। यथा,

> उद्यानं फलसंग्रहेण लवणेनान्नं वपुर्जीविते-
> नास्यं नासिकयेन्दुना वियदलङ्कारेण काव्यं पुनः।
> राष्ट्रं भूपतिना सरः कमलिनीषण्डेन हीनं यथा
> शोच्यामेति दशां हहा गृहमपि त्यक्तं तथा स्वामिना॥ ३.२४

इस नाटक में तत्कालीन समाज और राजनीतिक जीवन का प्रकाम चित्रण मिलता है। विण्टरनित्ज ने इसकी प्रशंसा की है—

This play ... is of interest not meraly from the literary point of view but also as throwing light on the history and social condition of Gujrat in the 13th century.

ऐसे प्रतिबन्धों को लेकर चलनेवाले कवियों की कृतियों में नाट्यकला प्रकाम उच्च स्तर नहीं प्राप्त कर पाती—यह सत्य ही है। कवि ने धार्मिक प्रवृत्तियों को मनोरंजनात्मक परिधान में प्रस्तुत करने में सफलता पाई है।

अध्याय २१

प्रबुद्ध रौहिणेय

छः अङ्कों में 'प्रकरण प्रबुद्ध रौहिणेय' के रचयिता रामभद्र मुनि हैं।[1] रामभद्र के गुरु जयप्रभसूरी वादिदेव के शिष्य थे। इनका समय खीष्ट की बारहवीं शती का अन्तिम भाग है।[2] कवि स्वतन्त्रता का प्रेमी था।[3]

कथानायक रौहिणेय के पिता लोहखुर नामक डाकू ने मरते समय उसे शिक्षा दी कि महावीर स्वामी की वाणी कान में कहीं न पड़ जाय इसका प्रयत्न करना क्योंकि वह वाणी हमारे कुलाचार का विध्वंस कर देनेवाली है। रौहिणेय ने देखा कि वसन्तोत्सव के अवसर पर नागरिक प्रेयसियों के साथ मकरन्दोद्यान में क्रीडा कर रहे हैं। उसने निर्णय किया कि सर्वाधिक सुन्दरी का अपहरण करूँ, क्योंकि—

> वणिग् वेश्या कविर्भट्टस्तस्करः कितवो द्विजः।
> यत्रापूर्वोऽर्थलाभो न मन्यते तदहर्वृथा ॥ १.१३

उसने छिपकर किसी धनी घर की रमणीयतम सुन्दरी को अपने उपपति से बातें करते देखा। सुन्दरी मदनवती अपने निजी भाग्य से परम असन्तुष्ट थी। उसका उपपति उसके लिए निरवग्रह सौभाग्य की सृष्टि कर रहा था। नायिका ने नायक से कहा कि पहले पुष्पावचय कर लें और फिर शीतल कदलीगृह में क्रीडारस का आनन्द लें। उन दोनों में स्पर्धा हुई कि हम अलग-अलग दिशाओं में जाकर पुष्पावचय करते हुए देखें कि कौन अधिक फूल तोड़ लाता है। रौहिणेय ने नायिका को फूल तोड़ती हुई देखा—

---

१. इसका प्रकाशन आत्मानन्द सभा, भावनगर से हुआ है। इसकी प्रति चिरंजीव पुस्तकालय आगरा में है।

२. विण्टरनित्स कवि का आविर्भाव ११८५ ई० में मानते हैं। इस पुस्तक की भूमिका में पुण्यविजय ने लिखा है—सत्तासमयस्त्वैतेषां (रामभद्राणाम्) विक्रमीयस्त्रयोदशशताब्दीय एव श्रीमद्वादिदेवसूरिप्रशिष्यत्वात् ॥

३. उसने स्वयं कहा है—

> अन्यासक्ते जने स्नेहः पारवश्यमथार्थिता।
> अदातुश्च प्रियालापः कालकूटचतुष्टयी ॥ ५.२

पुष्पार्थं प्रहिते भुजेऽनिलचलन्नीलाङ्किकाविष्कृतः
सल्लावण्यलसत्प्रभापरिधिभिर्दोर्मूलकूलङ्कषः
ईषन्मेघविमुक्तविस्फुरदुरुज्योत्स्नाभरभ्राजित-
व्योमाभोगमृगाङ्कमण्डलकलां रोहत्यमुष्याः स्तनः ॥ १.२६

रौहिणेय ने उपपति के दूर चले जाने पर नायिका का अपहरण करने की योजना बनाई और अपने साथी शबर से कहा कि इसके उपपति को किसी बहाने रोककर फिर आना। नायिका ने डाकू रौहिणेय का उससे परिचय पाकर हल्ला करना चाहा। डाकू ने कहा कि यदि ऐसा किया तो तुम्हारा सिर काट डालूँगा—त्वरितमग्रतो भव। नो चेदनयासिधेनुकया शिरः कुष्माण्डपातं पातयिष्यामि। थोड़ा ही उसके बाहर निकलने पर उसे कन्धे पर उठाकर भाग निकला कि उसे यथाशीघ्र पर्वत के गह्वर में प्रवेश कराऊँ।

उपपति ने लौटकर ढूँढने पर भी जब नायिका को नहीं पाया तो उसे शबर से पूछने पर ज्ञात हुआ कि परिजनों से घिरा कोई क्रोधी पुरुष वृक्ष की ओट में निकट ही कुछ मन्त्रणा कर रहा है। उपपति ने समझा कि वह नायिका का पति है और मुझे मार डालने की योजना बना रहा है। वह डरकर भाग गया। उसे डाकू ने अपनी पत्नी बना लिया।

दूसरे दिन राजगृह में किसी का अपहरण करना था। रौहिणेय के चर शबर ने पहले से ही सब पता लगा लिया था कि कहाँ, क्या और कौन है। रौहिणेय भी दिन में ही एकबार घटनास्थली देख चुका था। सुभद्र सेठ, मनोरमा सेठानी और मनोरथ वर हैं।

रात्रि के समय रौहिणेय शबर के साथ सेठ के घर के समीप पहुँचा। वर-वधू गृहप्रवेश के मुहूर्त की प्रतीक्षा में थे। गन्धर्व-वर्धापनक उत्सव में सोत्साह लगे हुए थे। पहले शबर उनके बीच जाकर नाचने लगा। सेठानी घर के भीतर सब सज्जा करने चली गई। फिर वामनिका का सतूर्य नृत्त हुआ। अन्त में रौहिणेय आया स्त्री बनकर—

कुसुममुकुटोपशोभितापट्टांशुककृतनीरङ्गिकानना कुंकुमस्तवकाञ्चितललाटा
युवतिः कक्षान्तरेऽलक्ष्यचीरिकासर्पश्च।

वह वेषभूषा से सेठानी के समान था। उसने वर से कहा कि मेरे कन्धे पर बैठो। तुम्हें लेकर नाचूँगी। उसका नृत्य होने लगा। एक अन्य अनुचरी वधू को कन्धे पर रखकर नाचने लगी। वामनिका भी शबर के कन्धे पर आ बैठी और वह नाचने लगा। उसने गन्धर्वों से कहा कि तारस्वर से वाद्य बजाओ।

ऐसी तुमुल के बीच रौहिणेय ने (मनोरमा के वेश में) अपनी काँख से एक चीरिकासर्प गिरा दिया। उसे वास्तविक सर्प समझ कर लोग भाग चले। रौहिणेय

भी वर को लेकर भागा। थोड़ी दूर पर उसने अपना स्त्रीवेश उतार फेंका। वर उसे देखकर रोने लगा। रौहिणेय ने कहा कि यदि रोते हो तो इस छुरी से तुम्हारे कान काट लूँगा। वह अपने गिरिगह्वर की ओर चलता बना।

सेठ ने समझा कि यह साँप ही है। उसकी परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि यह कृत्रिम है। उस समय उसे अपने लड़के की चिन्ता हुई। उसे मां कन्धे पर ले गई होगी। मां ने कहा मैं तो घर से निकली ही नहीं। तब तो ज्ञात हुआ कि सेठ के लड़के का अपहरण हुआ है।

उस समय मगध का राजा श्रेणिक राजगृह में विराजमान था। नगर के सभी महाजन उपायन लेकर राजा से मिलने आये। उन्होंने बहुत पूछने पर बताया कि—

दग्धश्चौरहिलेन पौरमलयो निन्द्यां दशां लम्भितः ॥ ३.२३

चोर सुन्दर पुरुष, स्त्री, पशु और धन-दौलत का अपहरण करता है। राजा ने आरक्षक को बुलवाया। उसने कहा कि चोर को पकड़ने में मेरे सारे प्रयास-व्यर्थ गये। फिर अभयकुमार मन्त्री आये। राजा ने मन्त्री को भी डांट लगाई और कहा कि मैं स्वयं उस चोर को दण्ड दूँगा। मन्त्री ने कहा कि मैं ही पांच-छः दिनों में चोर को पकड़ लूँगा।

उसी समय राजा को समाचार मिला कि महावीर स्वामी उद्यान में आये हुए हैं। राजा ने उनकी अग्रपूजा की उपचार-सामग्री ली और महावीर का व्याख्यानामृत सुना।

रौहिणेय ने निर्णय किया कि राजा उग्रदण्ड–प्रचण्ड है। इससे क्या? मुझे तो आज उसी के घर से स्वर्णराशि चुरानी है—

नाद्यास्माद्यदि भूपतेर्भवनतः प्राज्यं हिरण्यं हरे
तन्मे लोहखुरः पिता परमतः स्वर्गस्थितो लज्जते ॥ ४.७

सन्ध्या होनेवाली थी। रौहिणेय ने देखा कि महावीर स्वामी कहीं परिषद् में आये हुए हैं। वह पिता की आज्ञानुसार दोनों हाथों से दोनों कान बन्द कर चलने लगा। तभी पैर में बड़ा कांटा चुभ गया। उसे वह हाथ से निकाल नहीं सकता था, क्योंकि तब उसके कानों में महावीर की वाणी घुस जाती। उसने कांटे को दांत से खींचकर निकालना चाहा, पर सफल न हुआ। फिर तो उसे कान से हाथ हटाकर कांटा निकालना पड़ा। उसके कानों में महावीर की देवलक्षण-विषयक वाणी घुसी—

निःस्वेदाङ्गा श्रमविरहिता नीरुजोऽम्लानमाल्या
अस्पृष्टोर्वीवलयचलना निर्निमेषाक्षिरम्या।
शश्वद्भोगेऽप्यमलवसना विस्रगन्धप्रमुक्ता-
श्चिन्तामात्रोपजनितमनोवाञ्छितार्थाः सुराः स्युः ॥ ४.९

रात के समय राजदण्ड उस व्यक्ति के लिए घोषित हुआ, जो एक पहर रात के पश्चात् बाहर निकले।[1] आधी रात का समय होने को आया। यही समय रौहिणेय के चोरी करने का था। वह आया भी। वह राजा के प्रासाद के निकट पहुँच गया। वहां प्रहरी के बुलाने पर वह चण्डिकायतन में घुस गया। नगरारक्षकों ने चण्डी के मन्दिर को घेर लिया। रौहिणेय कोने में जा छिपा। घिरे होने पर उसने हाथ में छुरी ली और इन आरक्षकों के बीच से भाग निकला। उसके पीछे लोग दौड़े। उसने प्राकार का लंघन किया, पर वहीं जाल में फंस गया और पकड़ लिया गया।

दूसरे दिन रौहिणेय राजा के समक्ष लाया गया। अमात्य अभयकुमार भी बुलाया गया। राजा ने उसे शूली चढ़ाने का दण्ड दिया। फिर तो—

चूर्णेनाम्रवदीनभूपिततनुः कृष्णाम्बुलिप्ताननः
प्रेंखत्केशभरः कुकाहलरवाहूतप्रजावेष्टितः।
आरूढः खरमेपरक्तकुसुमस्रक्छोभितोरःस्थिति-
र्जातस्तत्खलु कालरात्रिवनिताभिष्वङ्गरंगोत्सुकः॥ ५.१५

अभयकुमार ने कहा कि इसे शूली पर ठीक दण्ड नहीं। इसके पास चोरी का सामान नहीं पकड़ा गया। वह गधे से उतारा गया। उससे पूछताछ आरम्भ हुई। उसने बताया कि मैं शालिग्राम का रहनेवाला दुर्गचण्ड किसान हूँ। काम से यहाँ आया था। रात में किसीसम्बन्धी के नगर में न होने से चण्डिकायतन में सोया था। तभी आरक्षकों ने घेर लिया और मुझे प्राकार लाँघना पड़ा। वहीं पकड़ लिया गया। एक दूत शालिग्राम भेजा गया। वहाँ रौहिणेय ने पहले से ही सहेज रखा था। वहाँ के ग्रामवासियों ने कहा कि दुर्गचण्ड यहाँ रहता है। आज काम से बाहर गया है। उस दिन रौहिणेय का न्याय टल गया।

अभयकुमार ने एक नाटक का आयोजन कराया। पहले तो रौहिणेय को सुरापान कराकर प्रमत्त कर दिया गया और उसके चारों ओर ऐसी व्यवस्था की गई कि वह स्वर्गलोक में है। नाट्याचार्य भरत के तत्वावधान में वेश्याङ्गनायें अप्सराओं की भूमिका में थीं। चन्द्रलेखा और वसन्तलेखा रौहिणेय के दाहिने बैठीं, ज्योतिप्रभा और विद्युत्प्रभा उसके बायें बैठीं। शृङ्गारवती नृत्य करने लगी। गन्धर्वों ने सङ्गीत प्रस्तुत किया। तब तक रौहिणेय पुनः चैतन्य प्राप्त कर चुका था। सभी अभिनेता उसे चेतनापूर्ण देखकर चिल्ला उठे—आज देवलोक धन्य है कि स्वामी-रहित हम लोगों को आप स्वामी प्राप्त हुए—

अस्मिन् महाविमाने त्वमुत्पन्नस्त्रिदशोऽधुना।
अस्माकं स्वामिभूतोऽसि त्वदीयाः किङ्करा वयम्॥ ६.५

---

१. यह नियम आधुनिक कर्फ्यू के समान है।

चन्द्रलेखा ने कहा—

यज्जातस्त्वं मञ्जुमञ्जुलमहो अस्माकं प्राणप्रियः । ६.१२

विद्युत्प्रभा ने कहा—

जाता ते दर्शनात् सुभग समधिकं कामदुःस्थावस्था ॥ ६.१६

तभी प्रतीहार ने आकर कहा कि तुम लोगों ने स्वर्लोकाचार किये विना ही अपना कलाकौशल दिखाना आरम्भ कर दिया। पूछने पर उसने बताया कि जो कोई यहाँ नया देवता बनता है, वह अपने पूर्वजन्म के सुकृत-दुष्कृत को पहले बताता है। उसके पश्चात् वह स्वर्गोचित भोगों का अधिकारी होता है। उसने रौहिणेय से आकर कहा—मुझे इन्द्र ने भेजा है कि आप अपने मानव जन्म के उपार्जित शुभाशुभ का विवरण दें।

रौहिणेय ने सारी परिस्थिति भाँप ली कि मेरे चारों ओर के लोग देव नहीं हैं क्योंकि उन्हें पसीना हो रहा है, वे भूतल का स्पर्श कर रहे हैं, उनकी मालायें मुरझा रही हैं—यह सारा कैतव है। उसने मिथ्या उत्तर दिया—

दत्तं पात्रेषु दानं नयनिचितधनैश्चक्रिरे शैलकल्पा-
न्युच्चैश्चैत्यानि चित्राः शिवसुखफलदाः कल्पितास्तीर्थयात्राः।
चक्रे सेवा गुरूणामनुपमविधिना ताः सपर्या जिनानां
विम्वानि स्थापितानि प्रतिकलममलं ध्यातमर्हद्वचश्च ॥ ६.१६

प्रतीहार ने कहा कि ये तो शुभकर्म हैं। अशुभ बतायें।

रौहिणेय ने उत्तर दिया—

दुश्चरित्रं मया क्वापि कदाचिदपि नो कृतम् ॥ ६.२०

प्रतीहारी ने कहा कि स्वभावतः मनुष्य परस्त्रीसंग, परधनहरण, जुआ आदि दुष्प्रवृत्तियों से ग्रस्त होता है। आपने इनमें से क्या किया?

रौहिणेय ने उत्तर दिया—यह तो मेरी स्वर्गगति से ही स्पष्ट है कि मैं इन दुष्प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर रहा हूँ।

तभी राजा श्रेणिक और अमात्य अभय प्रकट हुए। प्रतीहारी की बात सुनकर अभयकुमार ने कहा—

प्रपञ्चचतुरोऽप्युच्चैरहमेतेन वञ्चितः।
वञ्च्यन्ते वञ्चनादक्षैर्दक्षा अपि कदाचन ॥ ६.२४

उन्होंने राजा से कहा कि इसको दण्ड नहीं दिया जा सकता। यह डाकू है, पर प्रमाणाभाव के कारण इसे दण्ड देना राजनीति के विरुद्ध है। उसे अभय प्रदान करके वास्तविकता पूछकर छोड़ दिया जाय। राजाज्ञा से सभी लोग वहाँ से खिसके। केवल राजा, अभयकुमार और उनकी उपस्थिति में रौहिणेय लाया गया।

राजा ने कहा कि रौहिणेय, तुम्हारे सब अपराध मैंने क्षमा किये, पर तुम निःशङ्क होकर बताओ कि यह सब कैसे तुमने किया। डाकू ने कहा—

निःशेषमेतन्मुषितं पत्तनं भवता मया।
नान्वेषणीयः कोऽप्यन्यस्तस्करः पृथिवीपते॥ ६.२८

जो कुछ किया, उसमें हेतु महावीर स्वामी हैं—

वन्द्यो वीरजिनः कृपैकवसतिस्तत्तत्र हेतुः परः। ६.३०

उभयकुमार ने कहा—यह ठीक नहीं। क्या महावीर भी चौर्यनिष्ठा का प्रवर्तन करते हैं?

डाकू ने अपनी बात बताई कि कैसे महावीर की वाणी को कान में न पड़ने देने के लिए हाथ से कान बन्द किये, पर कांटा निकालने के लिए हाथ कान से हटाना पड़ा तो हमें देवलक्षण सुनाई पड़ा, जिसके आधार पर मैंने जान लिया कि मेरे चारों ओर जो देवलोक बना था, वह वास्तविक नहीं था, कूट था। मैंने इतने समय तक पिता की बात मानकर जो महावीर की वाणी नहीं सुनी। वस्तुतः—

हहापास्याम्राणि प्रवररसपूर्णानि तदहो
कृता काकेनेव प्रकटकटुनिम्बे रसिकता॥ ६.३४

अब मैं महावीर के चरण-कमलों की सेवा में रहूँगा। उसने मन्त्री से कहा कि वैभारगिरिगह्वर से मेरे द्वारा चुराकर रखी हुई वस्तुयें सबको दे दी जायँ। राजा चकित होकर स्वयं गिरिगह्वर देखने के लिए गया। रौहिणेय उन सबको चण्डिकायतन में ले गया। वहां उसने उस कपाट को खोला, जिस पर कात्यायनी का रूप उत्कीर्ण था। वहीं मदनवती और मनोरथकुमार तथा अतुलित स्वर्णराशि मिली। सबको उनकी चोरित वस्तुयें मिल गईं। राजा ने अनुमति मांगने पर रौहिणेय का अभिनन्दन किया—

त्वं धन्यः सुकृती त्वमद्भुतगुणस्त्वं विश्वविश्वोत्तम-
स्त्वं श्लाघ्योऽखिलकल्मषं च भवता प्रक्षालितं चौर्यजम्।
पुण्यैः सर्वजनीनतापरिगतौ यौ भूर्भुवःस्वोऽर्चितौ
यस्तौ वीरजिनेश्वरस्य चरणौ लीनः शरण्यौ भवात्॥ ६.४०

समीक्षा

प्रबुद्ध रौहिणेय का कथानक संस्कृत नाट्यसाहित्य में अनूठा ही है। इस डाकू को प्रकरण का नायक बनाकर उसके चारों ओर की नृत्य-संगीत की दुनियां में संस्कृत का कोई रूपक इतना मनोरंजन नहीं करा सका है।

नाटक में कूट घटनाओं का संभार है। इस युग में अन्य कई नाटकों में कूट

घटना और कूट पुरुषों की प्रचुरता मिलती है। सेठ ने डाकू को पकड़ने के लिए ऐसे कापटिक कर्म या कूट घटनाओं की योजना की है—

तैस्तैर्दुर्घटकूटकोटिघटनैस्तं बन्धयिष्ये तथा[1]। ३.२९

इस नाटक में रौहिणेय के द्वारा मदनवती के अपहरण की घटना यदि न होती तो नाटकीयता में कोई त्रुटि न आती।

लेखक जैन है, किन्तु उसने पूरे कथानक में कहीं भी जैनधर्म का प्रचार करने का बोझिल कार्यक्रम नहीं अपनाया है। गौण रूप से जैनधर्म की उत्तमता प्रतिपादित करने से इस नाटक की कलात्मकता अक्षुण्ण रह सकी है।

इस नाटक में देवभूमि से लेकर गिरिगुफा (डाकुओं का आवास) तक का दृश्य तथा न्यायालय, वसन्तोत्सव, समवसरण आदि की प्रवृत्तियों का दृश्य वैचित्र्यपूर्ण है।

राजा का मन्त्री अमात्य के प्रति व्यवहार अस्वाभाविक प्रतीत होता है। प्राचीन काल की मर्यादाओं के अनुसार मन्त्री का आदर राजा करते थे, उसे डांट-फटकार नहीं लगाते थे।

शैली

रामभद्र की प्रसादगुणोपन्न शैली सानुप्रास-संगीत-निर्भर है। यथा,

क्वचिन्मल्लीवल्लीतरलमुकुलोद्भासितवना
　　क्वचित् पुष्पामोदभ्रमदलिकुलाबद्धवलया।
क्वचिन्मत्तक्रीडत् परभृतवधूध्वानसुभगा
　　क्वचित् कूजत्पारापतविततलीलासुललिता ॥ १.६

कवि की गद्य शैली भी थिरकती हुई नर्तनमयी प्रतीत होती है। यथा,

ध्वस्तसमस्तशोकाः सततविहितबिब्बोकाः सफलीकृतजीवलोकाः क्रीडन्त्यमी लोकाः।

इनमें स्वरों का अनुप्रास उल्लेखनीय है।

अप्रस्तुतप्रशंसा के कतिपय वाक्य भावप्रवणता की दृष्टि से अतिशय सटीक हैं। यथा,

१. मरुमण्डलीतृष्णावत्पथिकस्य वक्त्रविस्तारितमेवाञ्जलिपेयं पुनरन्तरा पिशाचेन पीतम्।
२. अहो खलकुट्ट्या गुडेन सार्धं प्रतिस्पर्धा।

---

१. रौहिणेय के पकड़ लिये जाने पर पुनः कूट घटना का उल्लेख है—

तैस्तैर्दुर्घटकूटकोटिघटनैरेषोऽद्य बद्धा धृतः ॥ ५.३

३. पिचुमन्दकन्दल्या रसालरसस्य च कीदृशस्त्वया संयोगः। श्लेष्म विकारा अपि यद्यस्मदारस्माणां भङ्गमाधास्यन्ति।

क्वचित् व्यञ्जना का प्रयोग हास्यरसोचित है। यथा,

यत्रैतादृशाः सुरूपा नृत्यकलाकुशलास्तत्र किमस्मादृशां नर्तितुं योग्यम्।

हास्य रस के अन्य प्रयोग द्वितीय अङ्क में यद्यपि ग्राम्य स्तर पर हैं, किन्तु हैं मनोरंजक। इस अङ्क में हास्य का परम प्रकर्ष है। कवि की प्रतिभा नीचे लिखे परम्परित रूप में स्पष्ट है—

स्थाले स्मेरसरोरुहे हिमकणान् शुभ्रान्निधायाक्षतां-
स्तद्रेणुं मलयोद्भवं मधुकरान् दूर्वाप्रवालावलीः।
हंसीं सद्दधिकेसरोत्करमपि प्रेङ्खच्छिखा दीपिकाः
सज्जाभून्नलिनी रवे रचयितुं प्रातस्त्यमारात्रिकम्॥ ३.२

पात्रानुशीलन

चरितनायक के चरित्र का विकास नाट्यकला की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। महावीर की वाणी सुनने के पश्चात् उसका चरित्र सद्वृत्तियों से आपूरित होता है।[1] डाकू होने पर भी नायक का व्यक्तित्व कुछ-कुछ कवियों जैसा है। वासन्तिक सौरभ को देखकर उसका हृदय नाच उठता है। वह गा उठता है—

केचिद् वेल्लितवल्लभाभुजलताश्लेषोल्लसन्मन्मथाः
केचित् प्रीतिरसप्ररूढपुलका कुर्वन्ति गीतध्वनिम्।
केचित् कामितनायिकाधरदलं प्रेम्णा पिवन्त्यादरात्
किंचित् कूपितलोललोचनपुराः पद्मं द्विरेफा इव॥ १.१०

शिल्प

प्रबुद्ध रौहिणेय में एक कूटघटनात्मक का प्ररूपण छठें अङ्क में किया गया है। इस युग में नाटक के किसी एक अङ्क में छोटा-सा उपरूपक सन्निविष्ट करने की रीति कतिपय कवियों ने अपनाई है।

किसी पात्र का छिपकर या अकेले ही रहकर रङ्गमंच पर दूसरों के विषय में अपनी भावनायें प्रकट करना नाटकीय दृष्टि से रुचिकर होता है, क्योंकि ऐसी स्थिति में किसी अन्य पात्र की उपस्थिति के कारण गोपनीयता की सीमा नहीं रह जाती है। इस प्रकार पात्रों की संख्या भी कुछ कम हो जाती है। रौहिणेय ऐसी स्थिति में प्रच्छन्न रहकर मदनवती को देखकर कहता है—

---

१. इसके पहले भी वह समझता है कि वासन्तिक क्रीडा का रस लेना नागरिकों की सुकृतिराशि का विलसित है। १.१२

किं शृङ्गारमयी किमु स्मरमयी किं हर्षलक्ष्मीमयी ? इत्यादि १.२०

रामभद्र ने इस नाटक में नृत्य, गीत और वाद्य का लोकोचित लम्बा कार्यक्रम प्रासंगिक रूप से द्वितीय अङ्क में प्रस्तुत कराया है।

प्रबुद्ध रौहिणेय में नाट्यालङ्कारों का विशद सन्निवेश सफल है। तृतीय अङ्क का उद्देश्य ही नाट्यालंकार-प्रस्तुति है। इस नाटक के आद्यन्त अङ्कों में दृश्य सामग्री है, सूच्य अपवाद रूप से अङ्क में गर्भित है।

सन्देश

डाकू-क्षेत्र में सद्वृत्तपरायण सन्तों के आने-जाने से बहुत-से डाकुओं की मनोवृत्ति में परिवर्तन हो सकता है। १९७२ ई० में जयप्रकाशनारायण के प्रयास से डाकुओं का हृदय-परिवर्तन हुआ है। उसका प्रबुद्ध रौहिणेय पूर्वरूप प्रस्तुत करता है।

अध्याय २२

धर्माभ्युदय (छायानाट्य)

मेघप्रभाचार्य ने धर्माभ्युदय नामक एकाङ्की की रचना की है, जिसका नाम पुस्तकान्त में छायानाट्य प्रबन्ध दिया है।[1] छायानाट्य-प्रबन्ध नाम के लिए कारण-भूत है इसकी नीचे लिखी रङ्गनिर्देशिका—

यमन्तिकाराद् यतिवेशधारी पुत्रकस्तत्र स्थापनीयः[2]।

पात्र के स्थान पर मूर्ति रखने का उल्लेख पहले भी मिलता है। अभिनवगुप्त के अनुसार 'मायापुष्पक' में ततः प्रविशति ब्रह्मशापः का अभिनय मूर्ति को रङ्गमंच पर रखकर किया गया है।[3]

मेघप्रभाचार्य कब हुए, कहाँ हुए—इन सब प्रश्नों का उत्तर अभी तक समीचीन विधि से नहीं दिया जा सका है। कवि के नाट्यनिर्देश की सुदीर्घता तथा नाटकीय भाषा का रूप बारहवीं और तेरहवीं शती के रूपकों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं।[4] ऐसी स्थिति में मेघप्रभाचार्य को बारहवीं या तेरहवीं शती में रखा जा सकता है। जैननाटक परम्परा का समारम्भ बारहवीं शती से हुआ है। ऐसी स्थिति में मेघप्रभाचार्य को बारहवीं शती से पहले नहीं रखा जा सकता। रूपकों को छाया-योजना के आधार पर उस युग में छायानाटक नाम देने का प्रचलन तेरहवीं शती से पंद्रहवीं शती तक ही दिखाई देता है। इसका प्रथम अभिनय पार्श्वनाथ जिनेन्द्र-मन्दिर में यात्रा-उत्सव के उपलक्ष्य में संघ के सभ्यों की इच्छानुसार हुआ था। इसका नायक दान, रण और तपः तीनों क्षेत्रों में अग्रणी दशार्णभद्र राजा था। एक दिन वारविलासिनियों से सेवित राजा सिंहासन पर बैठा था। सारा परिवार भी साथ ही विराजमान था। उसने अपने अमात्य से कहा—

---

१. इसका प्रकाशन भावनगर से हुआ है। इसकी प्रति चिरंजीव पुस्तकालय, आगरा में है।

२. अभिनवभारती ना० शा० १३.७५ पर।

३. छायानाटक की विवृति सागरिका १०.४ में संस्कृत भाषा में की गई है।

४. मदन की पारिजात मञ्जरी में ऐसे ही लम्बे निर्देश मिलते हैं।

कदा मुदाश्रुभिः प्लाव्यो मिथ्यादर्शनकश्मलः।
देवदेवं नमस्कृत्य वीरं मम शुभोदये ॥ १.७

तभी उद्यानपाल से उसे समाचार मिला कि श्री वर्धमान स्वामी आये हुए हैं और वे दशार्णकूट पर उद्यान में ठहरे हैं। तभी नायक को देवताओं और मनुष्यों की जयजयकार सुनाई पड़ी। राजा ने सिंहासन से उठकर पांच-सात पद चलकर हाथ जोड़कर तीन वार सिर से पृथ्वी का स्पर्श किया और स्तुति की—

जय जय वीर जिनेश्वर दिनकरकरनिकर मोहतिमिरस्य।
भक्त्या त्वदंघ्रिकमलं वन्देऽहमिह स्थितस्तावत् ॥ ११

सिंहासन पर पुनः बैठकर राजा ने सोचा—मैं शक्ति और भक्ति में सभी राजाओं से उत्कृष्ट हूँ। उसने अमात्य को आज्ञा दी कि अतिशय धूमधाम से ऐश्वर्य-सम्पन्न विधि से महावीर की वन्दना करने के लिये प्रस्थान का आयोजन करें। तभी पौरमण्डलेश्वर भी आ गये। राजा पट्टकरीन्द्र पर बैठा। सहस्र घोड़े, हाथी, रथ के साथ सेना पीछे चली। अपने साथ ही बैठे अमात्य से राजा ने पूछा—क्या सौधर्मेन्द्र भी दर्शन करने आया होगा? अमात्य ने कहा—सम्भावना है।

उसी समय ऐरावत हाथी पर बृहस्पति और शची के साथ असंख्य विमान, सिंहासन, हाथी, घोड़े आदि पर बैठे हुए देववृन्द से अनुचरित इन्द्र सौधर्म स्वर्ग से उतरा। इन्द्र की इच्छानुसार ऐरावत अतिशय ऐश्वर्यशाली बन गया था—

ऐरावणे कुरु रदाष्टकमत्र धेहि
वापीसरोजदलमष्टकमष्टकं च ।
प्रत्येकमेषु च दलेषु विधेहि नाट्यं
द्वात्रिंशतासितमिहास्ति किमेतदद्य ॥ २४

बात यह थी कि इन्द्र ने जब ध्यान करके देखा कि जिनेन्द्र दशार्ण में हैं, तभी उन्होंने दशार्ण भद्रराजा को यह कहते सुना—

प्राज्यं राज्यमिदं मदीयमभितो निःशेषभूमीभुजां
मध्ये कोऽस्ति समो मम क्षितितले शक्त्या च भक्त्या प्रभौ।
नो केनाप्यभिवन्दितोऽद्भुततरस्फीत्या न वन्दिष्यते
यद्वा कोऽपि तथा तथाद्य मयका वन्द्यः स तीर्थाधिपः ॥ १२

इन्द्र ने दशार्णराज का गर्व खर्व करने के लिए ऐरावत का ऐश्वर्यशाली रूप बनाया।

इधर दशार्णराज ने देखा कि इन्द्र के ऐश्वर्य के सामने मेरा सब कुछ फीका है।

उन्होंने मन्त्री से कहा कि मेरा मानमर्दन करने के लिए इन्द्र ने यह सब किया है। मैं कैसा लग रहा हूँ—

ग्रामेशः सपरिवारो यथा कोऽपि न मत्पुरः।
अहं सराज्यराष्ट्रोऽपि पुरन्दरपुरस्तथा ॥ २५

तो मैं मनस्थिति में इन्द्र से कैसे मिलूँ? उसने निर्णय किया—

न यावदायाति पुरन्दरोऽयं वेगेन तावज्जिनवीरपार्श्वे।
गृह्णामि दीक्षां कृतसाधुशिक्षां पश्चात्तथा दर्शनमस्तु तेन ॥ ३०

उन्होंने तत्क्षण दीक्षा ले ली। इसके पश्चात् रङ्गमंच पर यतिवेषधारी पुतला रख दिया गया।[1]

इसके पश्चात् वहां मदन रति और प्रीति नामक सहचरियों के साथ आ पहुँचा। उसने सगर्व कहा—

हृदि धत्ते हरिर्लक्ष्मीमर्धनारीश्वरो हरः।
देवा मदाज्ञां कुर्वन्ति मनुष्याणां तु का कथा ॥ ३२

प्रीति ने मदन को समझाया कि इसकी तेजस्विता की अग्नि में जलो मत। उसने किसी की न मानकर कुसुमशर सन्धान किया ही था कि राजा की ध्यानाग्नि से तप्त होकर मूर्च्छित हो गया। इन्द्र को यह समाचार दिया गया। इन्द्र ने अमृत धारा से उसे स्वस्थ किया। इन्द्र ने उसे आज्ञा दी—

सात्त्विकव्रतधारिणां चारित्रिणामन्यदापि मास्म संरब्धो भूः।

इन्द्र को इन सब कामों में जिनेन्द्रवन्दन के काम के लिए देर हो चुकी थी। इन्द्र ने वन्दना करते हुए उनके धर्माभ्युदय की प्रशंसा की।[2] इसके पश्चात् उन्होंने दशार्णभद्र को नमस्कार करते हुए कहा—

अहो मूर्तिरहो मूर्तिरहो स्फूर्तिः शमश्रियः।
वीतरागप्रभोर्मन्ये शिष्योऽभूदेष तादृशः ॥ ३६

---

१. यमन्किान्तराद् यतिवेषधारी पुत्रकस्तत्र स्थानीयः। राजा के स्थान पर उसकी छाया। (पुतले) के रङ्गमंच पर अभिनय अधिक सफलता से करने के उद्देश्य से ऐसा किया गया है। ध्यान की चरम परिणति पुतले में स्वाभाविक है। वैसा ध्यान पात्र नहीं अभिनीत कर सकता था।

इसी छाया के प्रयोग के कारण लेखक ने इसे छायानाट्य प्रबन्ध कहा है। इस पुस्तक में छायानाटक का विशेष विवरण सुभट के दूताङ्गद नामक रूपक के प्रकरण में देखें।

२. धर्माभ्युदयस्स ते जयति ॥ ३५

सुतमां त्वां नमस्यामि कामिनं संयमश्रियः ।
दशार्णभद्र राजर्षे हर्षेणोत्कर्षवर्षिणा ॥ ३७

सत्यप्रतिज्ञस्त्वं जातो निर्जितोऽहं पुरन्दरः ।
ग्रहीतुमपि चारित्रं यन्नाहं त्वमिव क्षमः ॥ ३८

दशार्ण की मूर्ति ही रङ्गमंच पर थी। वह कैसे उत्तर देती ? इन्द्र ने बृहस्पति से पूछा कि दशार्णराज उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं। बृहस्पति ने उत्तर दिया—

स्वामिन्, एष महात्मा गृहीतव्रत एव समशत्रुमित्रः परिणामप्रणयिप्रशमपवित्रः सकलजीवलोकवात्सल्यमधुरचरित्रः। ···मदनोऽपि नामास्य यशस्वितपस्वितपस्तेजसैव दुस्थावस्थामापादितो न पुनः प्रकोपतेजसा। केवलं दीक्षाक्षणादारभ्य केनापि साकमनाभाषमाणः समुज्ज्वलगुणकाग्रतामास्थितः प्रतिपन्नमौनध्यान इवोपलक्ष्यते।

इन्द्र की आज्ञानुसार राजा के पुत्र का अभिषेक कर दिया गया।

श्रीगदित

धर्माभ्युदय संस्कृत के गिने-चुने श्रीगदित कोटि के उपरूपकों में से है, जिसकी परिभाषा है—

प्रख्यातवृत्तमेकाङ्कं प्रख्यातोदात्तनायकम् ।
प्रसिद्धनायिकं गर्भविमर्शाभ्यां विवर्जितम् ।
भारतीवृत्तिवहुलं श्रीतिशब्देन संकुलम् ।
मतं श्रीगदितं नाम विद्वद्भिरुपरूपकम् ॥ सा० द० ६ २६३-४

इस एकाङ्की का वृत्त प्रख्यात है, नायक उदात्त है और इसमें श्री शब्द कम से कम २५ बार प्रयुक्त है।

कवि की शैली गीतात्मक है। एक गीत है—

सच्चं लायन्नमयं तुहरूवं देव अन्नहा कहणु ।
सविसेसं तिसिय मणो नयणेहि तियंतओ लोओ ॥ १४

कवि ने इसमें धर्मप्रचार का काम सौष्ठवपूर्वक व्यञ्जना से किया है। यथा,

जिनराज किंवदन्ती वन्दितुमुत्कण्ठिता नतिरुपास्तिः ।
सद्धर्मवचःश्रवणं पुण्यैर्गुरुतरैर्भवति ॥ १८

मेघप्रभाचार्य की भाषा की प्रभविष्णुता कतिपय स्थलों पर लोकोक्तियों के प्रयोग से द्विगुणित है। यथा,

एकमुत्साहिताः अपरं मयूरेण लपितम् ।
एकमिष्टं द्वितीयं वैद्येनोपदिष्टम् ।

धर्माभ्युदय में पांच दृश्य हैं। प्रस्तावना के पश्चात् प्रथम दृश्य में राजा और मन्त्री बातें करते हैं। इनके चले जाने पर द्वितीय दृश्य में इन्द्र, शची और बृहस्पति, तृतीय में नन्दन और चन्दन, चतुर्थ में फिर मन्त्री और राजा, पञ्चम में मदन, रति और प्रीति तथा आगे चलकर पुरन्दर और कुतूहल आदि पात्र हैं। ऐसा लगता है कि रङ्गमंच का इन दृश्यों के लिए अनेक भागों में विभाजन कर दिया गया था।

अध्याय २३

वत्सराज

वत्सराज ने बारहवीं शती के उत्तरार्ध और तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में संस्कृत साहित्य को छः रूपक दिये हैं—किरातार्जुनीय व्यायोग, कर्पूरचरित भाण, रुक्मिणीपरिणय ईहामृग, त्रिपुरदाह डिम, हास्यचूडामणि प्रहसन तथा समुद्रमथन समवकार।[1] वत्सराज कालिञ्जर के महाराज परमर्दिदेव और त्रैलोक्यमल्ल के अमात्य थे, जैसा उन्होंने हास्यचूडामणि की प्रस्तावना में लिखा है—राजा परमर्दिदेव आत्मनोऽमात्येन कविना वत्सराजेन विरचितं हास्यचूडामणिनाम प्रहसनमादिशति भवन्तम्।

किरातार्जुनीय व्यायोग का प्रथम अभिनय इसकी प्रस्तावनानुसार परमर्दिदेव के पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव (१२०५-१२४१ ई०) के आदेशानुसार हुआ। परमर्दिदेव या परमाल ११६५ ई० से १२०२ ई० तक शासक रहा।[2]

कालञ्जर मध्यदेश में नवीं शती से तेरहवीं शती तक वीरभूमि रहा है। कला और काव्य का अप्रतिम साहचर्य उस युग की विशेषता रही है। इस प्रदेश का नाम चन्देलों के राज्य के प्रथम श्रेष्ठ राजा जयशक्ति के नाम पर जेजाक भुक्ति पड़ा।[3] इस वंश के अन्य महान् राजा दसवीं शती में यशोवर्मा हुआ, जिसने भारत के विविध भागों पर विजय कर खजुराहों में विष्णु का मन्दिर बनवाया और वहीं एक जलाशय बनवाया। यशोवर्मा का पुत्र धङ्ग अपने पिता से भी बढ कर प्रतापी हुआ। ९८९ ई० में हिन्दू राज्य-संघ में सम्मिलित होकर धंग ने सबुक्तगीन से लड़ाई की थी।[4] उसने खजुराहो में अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। धङ्ग के पुत्र

---

१. इन सबका प्रकाशन कविवत्सराज प्रणीत रूपकषट्कम् नाम से गायकवाड ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा से हो चुका है। पुस्तक की प्रति काशी संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन में प्राप्तव्य है।

२. हास्यचूडामणि में सूत्रधार कहता है—ममापि जरापराधीनस्य, आदि से प्रकट होता है कि उस समय वत्सराज वृद्ध था।

३. जयशक्ति को जेजा कहा जाता था।

४. इस साङ्घिक प्रयास की छाया वत्सराज के त्रिपुरदाह में अभिप्रेत है। इसमें कालिंजर, अजमेर और दिल्ली के राजाओं ने पंजाब के साहीनरेश जयपाल का साथ

गण्ड ने प्रतीहार-नरेश राज्यपाल को दण्ड देने के लिए १०१८ ई० में अपने पुत्र विद्याधर को सेना सहित भेजा। विद्याधर १०१९ ई० में राजा हुआ। इसके शासन काल में महमूद गजनवी ने दो बार कालिंजर पर आक्रमण किया। विद्याधर के पश्चात् इस वंश में प्रसिद्ध राजा हुआ कीर्तिवर्मा, जिसके आश्रय में प्रबोधचन्द्रोदय का प्रथम अभिनय हुआ था। लगभग ११२९ ई० में इस वंश में प्रसिद्ध राजा मदनवर्मा हुआ। इसकी विजयों की परम्परा उल्लेखनीय है। उसने महोबे में मदनसागर नामक विशाल सरोवर का निर्माण किया। इन्हीं महान् राजाओं की परम्परा में ११६५ ई० में परमर्दिदेव शासक हुआ। परमर्दि को पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण का सामना करना पड़ा। फिर १२०२ ई० में दिल्ली के सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालञ्जर पर आक्रमण किया और महोबा को जीत लिया। १२०५ ई० से कालञ्जर में त्रैलोक्यमल्ल उच्चकोटि का विजेता हुआ।

उपर्युक्त विवरण से प्रतीत होता है कि वत्सराज के समय भारत युद्ध-जर्जर था। राजाओं के पारस्परिक युद्ध की परम्परा अनन्त ही रही और साथ ही मुसलमान राजाओं का आक्रमण भारतीय संस्कृति और उच्चाकांक्षाओं का दमन करने के लिए निरन्तर होता ही रहा। ऐसी परिस्थिति में कवियों का कर्तव्य था कि वे राष्ट्र जागरण का सन्देश दें। वत्सराज स्वयं अमात्य होने के नाते राजकाज से सम्बद्ध था। वह समझता था कि प्रजा को सत्पथ पर प्रोत्साहित करना सम्प्रति कवि का महत्त्वपूर्ण कार्य है। उसने कहा कि अब धर्म आत्मरक्षा के लिए सत्क्षत्रिय की शरण में आया है—

एकः करः कलयति स्फटिकाक्षमालां
घोरं धनुस्तदितरश्च बिभर्ति हस्तः।
धर्मः कठोरकलिकालकदर्थ्यमानः
सत्क्षत्रियस्य शरणं किमिवानुयातः॥ ३६

समुद्रमथन नामक रूपक में वत्सराज ने भरतवाक्य में सभी भारतीय राजाओं को शौर्यपरायण होने का सन्देश दिया है—

औदार्यशौर्यरसिकाः सुखयन्तु भूपाः। ३-१४

सभी राजाओं के शौर्य की आवश्यकता थी भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए, जब देश पर यवन आक्रमणकारियों की संस्कृति-विनाशक प्रवृत्तियाँ बढ़ी-चढ़ी थीं।

दिया था। १००८ ई० में हिन्दू राजाओं के एक संघ ने शाहीवंशज आनन्दपाल के साथ मिलकर महमूद गजनवी से युद्ध किया था और आरम्भ में ५००० आक्रमणकारियों को धराशायी किया था। इस संघ में धारा का राजा भोज भी सहायक था।

वह सभी राजाओं की एकमुखता चाहता था, जैसा इसी रूपक की प्रस्तावना के नीचे लिखे वाक्यों से स्पष्ट है—

सूत्रधारः—तद्विमृश्यतां द्वादशापि भ्रातरः कथमिव वयं युगपत्कृतकृत्या भवामः।

स्थापकः—युष्मासियौंगपद्येन सर्वकामार्थसिद्धये।
परमर्दिनरेन्द्रो वा समुद्रो वा निषेव्यताम् ॥ ४

ऐसा लगता है कि परमर्दि की संरक्षता में भारतीय नरेशों में संघ बनाने की व्यञ्जना अभिप्रेत है।

वत्सराज ने अपने किरातार्जुनीय व्यायोग में राष्ट्ररक्षण-कर्तव्य का निर्वाह किया है। अनेक कवियों ने अर्जुन का आदर्श भारतीय वीरों के समक्ष इस युग में रखा[1]।

वत्सराज स्वयं शैव था शङ्कराचार्य के अद्वैत तत्त्व का परमानुयायी। उसने इस रूपक के अन्त में कहा है—

मोहध्वान्तप्रणाशं मनसि च महतां शङ्कराद्वैतमास्ताम्। ६१

किरार्जुनीय व्यायोग

वत्सराज स्वयं परम वीर था। उसने शिव के शूल को ही समाज की रक्षा के लिए आवश्यक मानकर इस व्यायोग के आरम्भ में कहा है—

चन्द्रार्धाभरणस्य तद्भगवतः शूलं शिवायास्तु वः ॥ २

वीर रस से ओतप्रोत यह व्यायोग चार वीररसात्मक नान्दी पद्यों से समायुक्त है। इसके आश्रयदाता त्रैलोक्य मल को—

प्रमोदमाविष्करोति करवाललता न कान्ता ॥ ३

इस चरित्र से ऐहिक और आमुष्मिक सौख्य की जो कल्पना कवि ने की है, वह राष्ट्र को वीर बनाकर स्वातन्त्र्य-रक्षा का सन्देश देती है।

व्यायोग का नायक अर्जुन हिमालय पर शिव के प्रीत्यर्थ तपस्या कर रहा था। वहीं उसके साथ व्यास का दिया सिद्ध था। वत्सराज ने अर्जुन को व्यायोगोचित धीरोद्धत व्यक्तित्व आरम्भ में ही प्रदान किया है। वह क्रोध और अहङ्कारपूर्वक अपने विषय में कहता है—

---

१. वत्सराज का समकालिक कवि था प्रह्लादनदेव, जिसने पार्थपराक्रम नामक व्यायोग में अर्जुन का आदर्श प्रस्तुत किया है। इसी युग के रामचन्द्र का निर्भयभीम व्यायोग भीम का आदर्श प्रस्तुत करता है।

अपार्थः पार्थोऽहं धनुरधिगुणं निर्गुणमिदं
विसारा एतेऽपि प्रसरणपराः सम्प्रति शराः
न यावन्नो राजा समरभुवि कौरव्यबलवत्
कबन्धानां नृत्यैरनुभवति नेत्रोत्सवसुखम् ॥ ६

अर्जुन तपस्या कर रहा है। इन्द्रलोक से अप्सराओं की विमानमाला उसके समीप उतरी। अर्जुन ने समझ लिया कि इन्हें काम ने बाधा डालने के लिए भेजा है—

तदेताः प्रत्यग्रस्मररसमहानाटकनटी-
र्निराकर्तुं शक्तो भवति क उपायः सुरवधूः।

अर्जुन ने उनसे बचने के लिए अपने चारों ओर बाणों का वितान फैला दिया। अप्सराओं के रथ इन्द्रलोक लौट गये। फिर कोई महामुनि दो अन्य मुनियों के साथ आया। अर्जुन को लगा कि पिता ही हैं। उस महामुनि ने कहा कि धनुष और तप का सामञ्जस्य मैंने नहीं देखा। अर्जुन ने अपने उद्देश्य को विशद किया। मुनि ने तब अपने को वास्तविक इन्द्र रूप में प्रकट करके कहा—

शिवप्रसादेन शिवानुभावः पृथासुतोऽयं भविता सुशक्तिः।

अर्जुन इन्द्र के जाने के पश्चात् शिवोपासना में लग गया। तभी एक महावराह मुनि की दिशा में आक्रमण करते आया। अर्जुन तो निर्भीक था। उसने शिव से प्रार्थना की कि आप सूअर से सब की रक्षा करें। तभी नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि किरात ही शिव का काम करने जा रहा है। अर्जुन लज्जित हुआ कि किरात मेरी रक्षा करें। अर्जुन ने बाण चलाया पर उससे पहले ही किरात ने बाण से उस सूअर को धराशायी कर दिया। यह जानकर अर्जुन अपना बाण उठा लेने के लिए सूअर के पास गया। वहां एक ही बाण था और सूअर को दो घाव लगे थे। किसका बाण वहाँ था—इस प्रश्न को लेकर किरात और अर्जुन में विवाद हुआ। किरात सेना ने अर्जुन पर बाण बरसाना आरम्भ किया तो अर्जुन ने भी वीरतापूर्वक उनके छक्के छुड़ाये। अर्जुन की आत्मश्लाघा का उत्तर देते हुए किरात ने कहा कि क्षात्रबल होता तो तपस्या क्यों करते? अर्जुन ने क्रोधित होकर कहा—जाओ, किरात छोड़ देता हूँ। किरात ने देखा कि इसे इस वेश में क्रोध दिलाना असम्भव है। उसने झट दुर्योधन का रूप धारण किया। अर्जुन ने उससे कहा—

दुर्योधन भवानेव जानात्युचितमात्मनः।
यत्पातकमयं रूपं कैरातमुररीकृतम् ॥ ४७

कृत्रिम दुर्योधन (शिव) ने कहा—अर्जुन, तपस्या से राज्य चाहते हो। अर्जुन ने कहा कि लड़ लो। दुर्योधन ने कहा कि तपस्वी से क्या लड़ना। अर्जुन ने कहा

कि लड़कर देखो। तुम तो गदायुद्ध में निष्णात हो। कोदण्ड ही गदा होगा। फिर तो शिव और अर्जुन कोदण्डगदायुद्ध में व्यापृत हो गये। लड़ते-लड़ते दुर्योधन से फिर अपने वास्तविक रूप में आकर शिव ने नमस्कार करते हुए अर्जुन को पाशुपतास्त्र दिया।

कवि ने महाभारत और किरातार्जुनीय की कथा में पर्याप्त परिवर्तन करके इसे नाट्योचित संक्षिप्त और कलात्मक रूप प्रदान किया है। शिव का दुर्योधन रूप धारण करके अर्जुन से लड़ना कवि की निजी कल्पना है, जो पर्याप्त रुचिकर है।

शैली

कवि को वाक्पाटव सिद्ध है। सिद्धादेश इन्द्र से कहता है कि अल्पबलवाले दुर्योधनादि से सहस्रनेत्र सहित पाण्डवों को क्या भय—

> कथमल्पबलात्तेषां पाण्डवानां भवेद्भयम्।
> सहस्रनयनः पक्षे येषामुज्जागरः सदा॥ २४

कहीं-कहीं अनुप्रास-सरणि मन मोह लेती है। यथा,

> क्रोडोऽयं कलितः क्रुधा कलिरिव क्रूराशयो धावति॥ १७
> रे रे द्रौपदीदयित, दूरीकुरु दुराशामिमां नयिकापुरुष।

सूअर के लिए कवि ने क्रोड, किटि भूदार, पोत्री, वराह, कोल आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

कतिपय स्थलों पर व्यञ्जना का मनोभिराम निदर्शन है। यथा,

> सम्प्रति तेषां कलकलः कृतान्तनगरे वर्तते।

अर्थात् वे मारे गये।

अन्यत्र अर्जुन के उपोषित बाणों की पारणा की चर्चा है—

> तपःप्रसङ्गाद्गतसंगराणामुपोषितानां मम मार्गणानाम्॥ ४.३

महाकवि वत्सराज की शैली में रसनिर्भरता है, जैसा उन्होंने आत्मपरिचय देते हुए कहा है—

> रसपरवशवाणी-वत्सलो वत्सराजः। [हास्यचूडामणि] १.५

सन्देश

यदि मुक्ति चाहते हो तो मन को शुद्ध करके सौहार्द रस से उसे आपूरित कर लो। तपस्या व्यर्थ है—

> मुक्तौ सक्तिरयास्ति ते परिहर क्रूरामिमां प्रक्रियां
> सर्वत्रैव विनिद्रसौहृदरसं सन्धेहि शुद्धं मनः॥ १८

अर्जुन के मुख से कवि ने क्षत्रोचित मुक्ति का सन्दर्शन किया है। यही राष्ट्र-जागरण के लिए कवि का सन्देश है—

उत्कृत्यायससायके न समरे दर्पोद्धतान् विद्विप-
स्तद्बिम्बं दिवसेश्वरस्य सहसा भित्त्वात्मना पत्रिणा।
मुक्तिर्या समवाप्यते भवतु नः सैव प्रमोदास्पदं
कर्मज्ञानसमुच्चयोपजनितां दूरे नमस्यामि ताम्॥ ९०

महामुनि ने अपने वास्तविक इन्द्र के रूप में प्रकट होकर बताया कि शंकर के प्रसाद से सब सिद्ध होगा।

कर्पूरचरित

वत्सराज की दूसरी कृति कर्पूरचरित भाण है। इसका प्रथम अभिनय नीलकण्ठ-यात्रा-महोत्सव के अवसर पर आये हुए विदग्ध सामाजिकों के आदेशानुसार हुआ था। इसके प्रथम अभिनय के लिए प्रभातकाल का समय चुना गया था।[1]

कर्पूरचरित में विदेश से आये हुए कर्पूरक नामक धूर्त की आत्मकथा प्रायशः चन्दनक नामक दूसरे विट के साथ 'आकाशे' रीति से संवाद के माध्यम से प्रस्तुत है। कर्पूरक के अनुसार माया-व्यापार से बड़े-बड़े काम, राम, विष्णु आदि देवताओं तक ने पूरे किये हैं। वह द्यूतशाला की ओर चला जा रहा था कि उसे जुआरी चन्दनक दिखाई पड़ा, जिसने कर्पूरक द्वारा बुलाये जाने पर कहा कि तुम्हारा मुँह भी नहीं देखूँगा, क्योंकि सात-आठ दिन से द्यूतशाला में तुम्हारी अनुपस्थिति रही है। कर्पूरक ने कहा कि दरिद्र हो गया हूँ, फिर वहां कैसे आता? चन्दनक ने कहा कि जब विलासवती ने अपना हृदय तुमको दे रखा है तो फिर तुमको क्या कमी रही? अपनी गोद में रखी वीणा के विषय में कर्पूरक ने बताया कि इस पर मेरी प्रेयसी गाती है—

रतिरमणप्रियसुहृदा शशाङ्कसुभगेन निर्वृतिकरेण।
कर्पूरेण वियोगो भगवति रुद्राणि मा भवतु॥ ९०

उसने द्यूत में विलासवती को पुनः पुनः हराकर समालिङ्गन पण जीता था। वह बताता है कि किस प्रकार विलासवती ने चन्द्रमा के व्याज से मुझे उपालम्भ दिया है। इसके पश्चात् कर्पूरक की धूर्तता का आख्यान है कि कैसे मैंने मञ्जीरक नामक नागरक को उल्लू बनाया है। एक दिन वह विलासवती की ओर से भेंट लेकर मंजीरक के पास पहुँचा। मंजीरक का नाम लेते ही हँसी से उसका पेट फूल जाता है।

---

१. सूत्रधार के शब्दों में—अये, प्राप्त एवायमभिनयोचितः स्वभावसुभगो विभातसमयः।

चन्दनक के पूछने पर वह बताता है कि उसकी वेष-चेष्टादि का ध्यान आते ही हँसी आती है—

> वक्रो जूटः खल इव सदा कर्णदेशावलग्नः
> क्षीणः कूर्चो भट इव मुहुर्लब्धलोहप्रसङ्गः ।
> हस्ते शङ्खी भ्रमिशतकरी लासिकेव प्रगल्भा
> वाक्संरोधी गद इव मुखे किञ्च ताम्बूलगोलः ॥ १५

उसने सारा झूठ-मूठ ढोंग रचा कि मुझे विलासवती की माता कलावती ने आप के पास भेजा है कि अपने वियोग में विलासवती मरी जा रही है। उसे आकर बचाइये। मंजीरक ने कहा कि यह कैसे ? वह तो कर्पूरक पर लट्टू है। उसने अपने केलिगृह में कर्पूरक के चित्र के नीचे लिखवाया है—

> वाचालत्वं पदालग्नो मञ्जीरः कुरुतां चिरात् ।
> कर्पूर एव सर्वाङ्गसङ्गसौभाग्यभाजनम् ॥ २०

कर्पूरक ने कहा कि यह सब आप उससे कलह करके कहते हैं। वह आप से मेल चाहती है। फिर तो प्रसन्न होकर मंजीरक ने कर्पूरक को ताम्बूल-चन्दनांशुक की विलासवती के द्वारा भेजी भेंट मानकर स्वीकार की और अपनी अंगूठी कर्पूरक को देकर कहा कि इसे दिखाकर आप १००० स्वर्णमुद्रायें प्राप्त कर लें।

जो अंशुक कर्पूरक ने मंजीरक को दिया, वह उसे गणिका चन्द्रसेना के घर चोरी करने से प्राप्त हुआ था। वह कैसे ? चन्द्रसेना से चन्दनक को प्रेम था, किन्तु वह हारदत्त के चक्कर में थी। एक दिन कर्पूरक ने हारदत्त का हार चन्द्रसेना को उपहार रूप में यह कहकर दिया कि आज हारदत्त की विजय हुई है द्यूतशाला में। मुझे आपको उपहार सहित बधाई देने के लिए भेजा है। तब तो उसके घर महोत्सव मनाया गया। चन्द्रसेना की माता मायावती ने कर्पूरक से कहा कि हमारे आज घर में सबने छक कर मदिरा पी है। वे अचेत पड़े हैं। आप सावधानी से हमारे घर की रक्षा करें। कर्पूरक ने इसे अच्छा अवसर समझा और वहाँ से बहुमूल्य वस्तुयें चुराकर भाग चला। इन्हीं वस्तुओं में उसे वह अंशुक मिला, जिसे उसने मंजीरक को उपहार रूप में दे डाला था।

चन्दनक ने कहा कि तुमने तो मेरे प्रतिपक्षी हारदत्त का काम किया है। कर्पूरक ने कहा कि ऐसा नहीं। सुनो, मैं दरिद्र हो चला था। मैं एक दिन मणिभद्र यक्ष के मन्दिर में पहुँचा और उन्हें उलाहना दी—

> पूजोपहारविनियोगपरम्पराभि-
> रायासयन्ति च धनानि च संहरन्ति ।
> आशामयं दृढमपि द्रढयन्ति पाशं
> विश्वप्रलम्भनपरा हि सदैव देवाः २४

कर्पूरक ने मणिभद्र से कहा कि सीधे से उन सभी वस्तुओं को लौटा दो जो पहले कभी मैंने तुमको अर्पित की। मेरी विह्वलता के उन्हीं क्षणों में चतुरक नामक किसी व्यक्ति ने आकर मणिभद्र से कहा कि हे देव, मेरे बिछुड़े हुए भाई को मुझसे मिला दो। मैंने छिपकर यह सब सुना और उसके पीछे-पीछे हो लिया। जब वह मदिरालय में घुसा तो उसके आंगन में बैठकर मैं रोने लगा कि चतुरक नामक भाई के न मिलने पर भी मैं जी रहा हूँ। पूछने पर मैंने बताया कि मैं वही निपुणक तुम्हारा छोटा भाई हूँ, जिसे तुम ढूढ़ रहे हो। फिर तो मेरा आदर बढ़ा। चतुरक ने वहीं मधूत्सव कराया। उसने हारदत्त के प्रेषित उस हार को शौण्डिक को देने का प्रस्ताव किया जो उसे चन्द्रसेना के घर से मिला था।

कर्पूरक ने कहा कि मैंने चतुरक को अपने चीथड़े की पोटली खोलकर नकली सोना उपहार रूप में दे दिया। मैंने चतुरक के मदिरा के प्रभाव से अचेत हो जाने पर उसकी गोद से हारदत्त का हार ले लिया और चलता बना।

तभी उधर से विरोधक के निकलने की कल्पना करके कर्पूरक ने उससे पूछा कि घबड़ाए हुए क्यों भाग रहे हो? उसने कहा कि मैं चन्दनक को बधाई देने जा रहा हूँ। उसके प्रतिपक्षी हारदत्त को राजपुरुष पकड़कर निर्वासित करने ले जा रहे हैं। उसके नौकर चतुरक ने शौण्डिक को नकली सोना दिया है। निपुणक नामक किसी दूसरे व्यक्ति ने हार देने के बहाने से चन्द्रसेना का सब कुछ चुरा लिया है। तुम्हारे प्रणयपथ में बाधा डालने वाली कलावती का विलासवती से कोई सम्बन्ध न रहा।

कर्पूरक के पूछने पर विरोधक ने बताया कि मैंने विलासवती से कहा कि कलावती तुम्हारा सर्वस्व चुराकर रात में भाग जाना चाहती है। सावधान रहना। उधर कलावती से कहा कि विलासवती तुम्हारी सारी सम्पत्ति खोदकर कर्पूरक नामक जुआरी को देना चाहती है। उससे सावधान रहो। तब तो रात्रि के समय द्रविणस्थान को खोदती हुई कलावती का केश पकड़कर विलासवती ने निर्वासित कर दिया।

शैली

वत्सराज की कल्पना का उत्कर्ष इस भाण में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। चन्द्रमा में अग्नि होने का तथ्य नीचे लिखे पद्य में अनुमान द्वारा प्रमाणित है—

> इहास्ति नूनं तुहिनांशुबिम्बे
> कलङ्कधूमानुमितो हुताशः।
> अस्यांशुपूरः कथमन्यथासौ
> ज्वालावलीडम्बरमातनोति ॥ १२

कवि ने यमकालङ्कार का उत्कर्ष कर्पूरक और मञ्जीरक आदि को कपूर और मंजीर से सप्रसङ्ग उपमित करके प्रमाणित किया है।

वत्सराज पहले के कवियों की उक्तियों को यथावत् संकलित कर लेने में कोई बुराई नहीं मानते । एक पद्य है—

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ २६

यह पद्य जातक में सुप्रसिद्ध है ।

पूर्ववर्ती चतुर्भाणी में शृङ्गारित वृत्तियों और प्रवृत्तियों का आधिक्य है, किन्तु इस भाण में माया-व्यापार का कौशल बताकर चमत्कार-निदर्शन वत्सराज का प्रधान उद्देश्य है ।

सन्देश

अनेक पूर्ववर्ती भाणों की भाँति इसमें भी सज्जनों को धूर्तों से बचने की सीख व्यञ्जना से दी गई है । यथा—

उत्सङ्गे सिन्धुभर्तुर्वसति मधुरिपुर्गाढमाश्लिष्य लक्ष्मी-
मध्यास्ते वित्तनाथो निधिनिवहमुपादाय कैलासशैलम् ।
शक्रः कल्पद्रुमादीन् कनकशिखरिणोऽधित्यकासु न्यधासीद्
धूर्तेभ्यस्त्रासमित्थं दधति दिविषदो मानवाः के वराकाः ॥

अर्थात् विष्णु, कुबेर, इन्द्रादि देवता भी धूर्तों से डरकर छिपे रहते हैं ।

कला-विशेष

इस भाण में रङ्गमञ्च पर अकेला पात्र कर्पूरक अपने गायन से भी प्रेक्षकों का अनुरञ्जन करता है ।[1] वह मञ्जीरक की चेष्टाओं का हास्यार्थ अभिनय भी करता है । यथा,

उच्चैर्गाथापठनमशुभं श्रोत्रयोरात्मगीतं
हस्ताघातैरुरसि तरलैर्मौरजी वाद्यविद्या ।
भूयो भूयः कररुहपदोत्सङ्गिने दृष्टिरङ्गे ॥ २६
(इति तथा तथा अभिनयं दर्शयित्वा)

भाण पर एक ही पात्र रङ्गमञ्च पर होता है । उससे कई घण्टों तक अभिनय कराना असमीचीन है । चतुर्भाणी में यह एक दोष है कि एक ही पात्र कई घण्टों तक रङ्गमञ्च पर बना रहता है । कर्पूरचरित इस दोष से सर्वथा मुक्त है । इसमें गिने-चुने व्यक्तियों की ही चर्चा है ।

---

१. इति वीणया बहुविधं गायति ।

रुक्मिणीहरण

वत्सराज का तीसरा रूपक चार अङ्कों का 'रुक्मिणीहरण' ईहामृग कोटि का है। यह अपनी कोटि की प्राप्त रचनाओं में से सर्वप्रथम है।[1] इसका सर्वप्रथम अभिनय कालञ्जर में चक्रस्वामी यात्रा में पधारे हुए विदग्ध सामाजिकों के आदेश से चन्द्रोदय के समय हुआ था।

कथानक

विदर्भेश्वर भीष्मक की कन्या रुक्मिणी की ओर से उसकी गुरु भगवती सुबुद्धि और धाई सुवत्सला ने आकर द्वारका में कृष्ण से रुक्मिणी का सारा वृत्तान्त बताया कि शिशुपाल उससे विवाह करने के लिए उत्सुक है और रुक्मिणी स्वयं आपको पति रूप में वरण कर चुकी है। रुक्मिणी का भाई रुक्मी शिशुपाल के पक्ष में कृष्ण से शात्रव रखता था। रुक्मी और शिशुपाल दोनों के कई पत्र प्रियंवदक नामक दूत ले आया और बलराम के साथ कृष्ण को दिखाया। पत्र की धृष्टतापूर्ण बातों से बलराम का क्रोध प्रज्वलित हुआ। वे स्वयं शिशुपाल और रुक्मी से युद्ध करके उनका अन्त कर देना चाहते थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक इन दुष्टों को विनीत न कर लूँगा तब तक—

हालां हालाहलमिव हली मन्यतां तावदेषः। १.२७

कृष्ण ने कहा कि तब तो कल सवेरे ही प्रयाण किया जाय।

कृष्ण, बलराम आदि के मन्त्रणा करते समय शिशुपाल का दूत सन्धानक आया। उसने शिशुपाल की ओर से एक मणिमाला कृष्ण को भेंट दी। उसने बताया कि वैशाख में शिशुपाल और रुक्मिणी का विवाह है। कृष्ण ने सन्धानक से शिशुपाल को समाचार भिजवाया कि विवाह के समय हमलोग भी कुण्डिनपुर विवाह-स्थली में आयेंगे।

रुक्मिणी शिशुपाल से अपने विवाह का सुनकर व्याकुल थी। उसको आश्वस्त करने के लिए कृष्ण का चित्र उसे दिया गया था। इधर कृष्ण भी कुण्डिनपुर आकर शिविर में ठहरे थे। सुवत्सला और सुबुद्धि रुक्मिणी का चित्र लेकर कृष्ण-शिविर में पहुँचीं।

---

१. कतिपय विद्वानों ने भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण को ईहामृग माना है। डा० बनर्जी शास्त्री JBORS. ९, पृष्ठ ६३। साहित्यदर्पणकर्ता विश्वनाथ को अपने युग की कुसुमशेखर आदि ईहामृग-रचनाओं का ज्ञान था। सा० द० ६. २४५–२५० की व्याख्या। विश्वनाथ की परिभाषा से यह स्पष्ट झलकता है कि रूपक की यह कोटि सुप्रचलित नहीं थी।

सुवत्सला ने रुक्मिणी से बताया कि कृष्ण ने चित्रगत आपका पाणिग्रहण कर लिया है। वे अब इसका निर्वाह करेंगे। इधर रुक्मिणी ने भी अपने हाथ में कृष्ण का चित्र लेकर पाणिग्रहण किया। मकरन्दिका नामक चेटी ने कृष्ण के चित्र पर रुक्मिणी का भी चित्र बना दिया और उसे रुक्मिणी के हाथ में दे दिया।

उधर स्वयंवरार्थी राजाओं की यात्रा चली। रुक्मिणी आदि उसे देखने के लिए प्रासाद के उपरितल पर पहुँचीं। एक ही गवाक्ष से मकरन्दिका और रुक्मिणी कृष्ण को देख रही थीं। सुवत्सला ने मकरन्दिका से कहा कि तुम किसी दूसरे स्थान से देखो। जब वह अन्यत्र जा रही थी तो हड़बड़ी में उसके हाथ से चित्रफलक गिर पड़ा और उड़ते हुए कृष्ण के पास पहुँचा। कृष्ण ने देखा कि उसमें भावी कृष्ण-रुक्मिणी दम्पती का चित्र है।[1] कृष्ण ने ऊपर देखा तो उन्हें चित्राकृति सदृश रुक्मिणी गवाक्ष से सिर बाहर निकाले दिखाई पड़ी। उसे देखते ही कृष्ण के मुँह से कविता निकली—

> उपरचितकलङ्कं कुन्तलैर्लम्बमानैः
> कनकरुचिकपोलं कौङ्कुमीभिः प्रभाभिः।
> उदयगिरिदरीतः प्रोल्लसद्बिम्बमिन्दो-
> स्तुहरति सुदत्याः पीनलावण्यमास्यम् ॥ ३.८

उधर से भीष्म निकले। वे कृष्ण को विशेष सड़क से शिविर-सन्निवेश में ले गये।

फिर तो रुक्मी के साथ शिशुपाल का रथ निकला। स्त्रियों की चर्चा हुई कि कृष्ण इसके हन्ता हैं। शिशुपाल रुक्मिणी को देख भी न सका। इसी बीच इन्द्राणी की पूजा के लिए रुक्मिणी चली गई। उस के साथ भगवती सुबुद्धि थी।

कृष्ण ने इन्द्राणी-पूजा के अवसर पर रुक्मिणी की इच्छानुसार उसका अपहरण कर लिया। रुक्मी और शिशुपाल के पक्ष के लोगों ने कृष्ण-पक्ष के लोगों से युद्ध किया। कृष्ण तो रुक्मिणी को लेकर कुछ हट गये थे। बलराम स्वयं रुक्मी और शिशुपाल को रोक कर डटे हुए थे। उधर से भाग कर वे कृष्ण के पीछे पड़े। उन्हें बलदेव और सात्यकि ने ललकारा। वे बलराम की ओर लौट पड़े उनकी दुन्दुभि-ध्वनि को सुनकर कृष्ण भी लौट पड़े। कृष्ण और शिशुपाल की अपवादपूर्ण डाग-डाट की बातें हुईं। बलराम और सात्यकि ने भी इस झगड़े में भाग लिया। लड़ने का समय आया तो शिशुपाल और रुक्मी आकाश में जा पहुँचे और मायायुद्ध करने लगे। आकाश से बाण वृष्टि होने लगी। कृष्ण ने कहा कि गरुड पर चढ़ कर हम आकाश में जाते हैं और वहाँ से उनको गिराते हैं। कृष्ण के ध्यान करते ही गरुड आ पहुँचा। गरुड ने कृष्ण से कहा—

---

१. यह दृश्य छायानाट्योचित है।

पक्षानिलैः प्रसभमम्बुनिधीन् धुनोमि
त्वं चेदधोभुवनजिष्णुतयोत्सुकोऽसि ।
उत्कण्ठितोऽसि यदि तेषु तदानयामि
तानिन्दुशेखरविरञ्चिपुरन्दरादीन् ॥ ४.२१

उस पर बैठ कर कृष्ण आकाश में उड़ पड़े। कृष्ण ने उन दोनों को पकड़वा कर गरुड को आदेश दिया—

मा मुञ्च मा पीडय गाढभङ्ग्या
त्वं तार्क्ष्य दाक्ष्यात् सुतवद्गृहीत्वा ।
अभङ्गमेवाङ्गमिमौ वहन्तौ
स्ववर्गवीरेषु समर्प्य गच्छ ॥ ४.२३

झगड़ा मिटा। बलराम और कृष्ण द्वारका की ओर रथ पर चल पड़े।

कथानक में अनेक घटनायें नाट्यकला की दृष्टि से व्यर्थ हैं। चरित्रचित्रण के लिए भी उनका उपयोग नहीं हुआ है। द्वितीय अङ्क में सन्धानक का शिशुपाल का दूत बन कर आना ऐसी ही बात है।

अर्थोपक्षेपक में आने योग्य सूचनीय बातों को एकोक्तियों के द्वारा अङ्कों के आरम्भ में अनेक स्थलों पर बताया गया है। चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में सात्यकि बताता है कि कैसे रुक्मिणी अनायास ही अपहृत होने के उद्देश्य से कृष्ण के रथ में आ गई। फिर कैसे लड़ाई हुई।

कथास्रोत

रुक्मिणीहरण की कथा का मूल स्रोत हरिवंश और भागवत है। मूलकथा में अनेक परिवर्तन करके लेखक ने इसे नाटकीय स्वरूप प्रदान किया है। पूर्वकथा में सुबुद्धि, सुवत्सला, गरुड आदि के कार्य-कलाप नहीं हैं। चित्र का प्रकरण भी वत्सराज की निजी योजना है। स्वयंवरार्थी राजाओं की यात्रा का प्रकरण भी युगानुरूप है। पहले के नाटकों में ऐसी यात्रा का समावेश भी नहीं दिखाई देता। इस युग में ऐसी यात्रा का दूसरे रूपकों में भी वर्णन मिलता है।

पात्रोन्मीलन

पात्रों की अपनी निजी उक्तियों के द्वारा उनका चरित्र-चित्रण करने में कवि निपुण है। बलराम की उक्ति है—

सर्वे ग्रहाः प्रसन्ना नन्दकमुष्टिग्रहानुकूल्येन ।
आयासो गणकानां मिथ्या ग्रहगणितविस्तारैः ॥ २.१०

अपि च

व्योम्नि प्रहृत्य मुसलं ग्रहमण्डलीं ता-
मावर्त्य साधु घटयामि तथा यथात्थ।
उच्चावचस्थितिविपर्ययतोऽनुकूला
सम्पादयिष्यति समीहितसिद्धिमेव ॥ २.११

चरित्र-चित्रण करने में कवि की ऐतिहासिक प्रवृत्ति है। यथा, कृष्ण के विषय में—

यशोदायाः स्तन्यैस्तव तनुरयासीदुपचयं
वनान्तेषु भ्रान्तस्त्वमसि सह गोतर्णकशतैः।
यदि त्वादृक्कश्चिद् बत नृपतिपुत्रीं वरयते
तदानीं कः क्रोधः किमु न शशिनं वाञ्छति शिशुः ॥ १.१६

रुक्मिणीहरण में तार्क्ष्य का पात्र वन कर रङ्गमञ्च पर आना प्रेक्षकों के लिए विशेष अनुरञ्जक है। उसके पंख लगे होंगे और सारे शरीर से चमचमाहट आविर्भूत होती होगी। वह पक्षिराट् होते हुए भी मानवोचित बातें करता होगा।

विवाह-सम्बन्ध को सम्पन्न कराने के लिए संन्यासिनियों की योजनायें कालिदास के युग से ही प्रवर्तित हैं। इसमें सुबुद्धि भगवती ऐसी ही है। नायक का चरित्र सहृदय कवि के आदर्श पर चित्रित है। कृष्ण स्थान-स्थान पर रसाभिभूत होकर कविता करते हैं।

वर्णन

वत्सराज के वर्णनों में कतिपय स्थलों पर कालिदास की लोकोपकार निदर्शिनी दृष्टि मिलती है। यथा,

यामानिमान् कतिपयानपराम्बुराशि-
सौधस्थितो गमय मीलितरश्मिनेत्रः।
सूर्य प्रसीद पुनरभ्युदयाधिरूढः
प्रह्लादयिष्यसि जगन्नवकान्तिकान्तः ॥ १.२८

शैली

वत्सराज की अनुप्रासमयी भाषा प्रसादगुण और वैदर्भी से मण्डित है। तथा,

दावाग्निमालिङ्गति कः प्रमत्तः कृष्णाहिना क्रीडति हेलया कः।
प्राणाः प्रियाः कस्य न जीवलोके को रुक्मिणं रोपयते रणाय ॥ १.१२

कहीं-कहीं अन्योक्तियों के द्वारा कवि ने अपनी विचारसरणि को स्पष्टता प्रदान की है। यथा,

छागो मुहुर्वल्गति गाढगर्वश्छागेन सार्धं प्रसरत्प्रमोदः ।
कण्ठीरवं वीक्ष्य सशब्दकण्ठं को वेत्ति वैक्लव्यमुपैति कीदृक् ॥ १.१४

कहीं-कहीं वीररसोचित पदावली रङ्गमञ्च के लिए समीचीन है । यथा,

नहि नहि वरयात्रा केवलं कोसलेयम् ।

अप्रस्तुतप्रशंसा के द्वारा प्रभविष्णुता का वैशिष्ट्य लक्षित होता है । यथा,

अइ हिअअ पसिअ विरमसु दुल्लहपेम्मेण किं नु विनडेसि ।
वणहरिणीव हसिज्जइ मअंक हरिणम्मि अणुराओ ॥ ३.५

ऐसी ही अनूठी अन्योक्तियाँ हैं—

उपोषितः शारदचन्द्रविम्वे चक्षुश्चकोरः प्रजिघाय तूर्णम् ।
कष्टं विधिर्निष्करुणस्वभावः पिधानमुद्घाटयते घनेन ॥ ३.६
वालः कुमारोऽयमहो मरालीं पारावतायार्पयति प्रसह्य ।
एषा पुनर्मन्मथमन्थराङ्गी मरालमेवाश्रयते जवेन ॥ ३.११

संवाद

कहीं-कहीं एक पद्य में प्रश्नावली है और वीच-वीच में प्राकृत गद्य में उत्तर गुम्फित है । यथा,

अक्रूरः — श्रुतो भूतावेशः किमु न भवता तस्य विषमः ।
प्रियंवदः — (विहस्य) ता कधं इअरकज्जे कुसलो ?
अक्रूरः — प्रदत्तोऽयं लेखः किमु न मदिरापानसमये ।
प्रियंवदः — ण हु ण हु । इत्यादि ।

संवादों में प्रायशः मनोरञ्जक समुत्तेजना और उत्साह मिलते हैं । यथा,

पक्षानिलैः प्रसभमम्वुनिधीन् धुनोमि
त्वं चेदधेभुवनजिष्णुतयोत्सुकोऽसि ।
उत्कण्ठितोऽसि यदि तेषु तदानयामि
तानिन्दुशेखरविरञ्चिपुरन्दरादीन् ॥ ४.२१

कृष्ण से यह तार्क्ष्य की उक्ति है ।

कला

कथा की भूमिका तथा पात्रों का परिचय प्रथम अङ्क के आरम्भ में अक्रूर की एकोक्ति द्वारा प्रस्तुत है । साधारणतः यह सामग्री विष्कम्भ के द्वारा प्रस्तुत होनी चाहिए थी । वहुत प्राचीन काल से ही अर्थोपक्षेपकोचित वातें अङ्क में दी जाने लगी थीं ।

कोरे समुदाचार और शुभाशंसा की अभिव्यक्ति के लिए अनेक स्थलों पर ऐसी बातें कहीं गई हैं, जिनका नाटकीय दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है। यथा, द्वितीय अङ्क में अक्रूर कहता है कि सन्धानक को पारितोषिक देकर भेजा जाय। वसुदेव भी कहते हैं कि हमलोग सन्धानक को पारितोविषक देकर विसर्जित करेंगे। इसी अंक के अन्त में हाथी का सद्भाव-वर्णन प्रयाण के अवसर शुभाशंसा के लिए है। निमित्तों का अनेक स्थलों पर वर्णन भावी कथाप्रवृत्ति की सूचना देने के लिए है।

कथानक में आलेख्य का अतिशय महत्त्व है। इस युग में चित्रों की चर्चा द्वारा नाटकों को लोकप्रिय बनाया जाता था। कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह के पहले ही चित्र के माध्यम से साहचर्य दिखा देना छायानाट्य कोटि की विशेषता इस ईहामृग में समापन्न है।

नाट्यशास्त्र के अनुसार विष्कम्भक का सन्निवेश ईहामृग कोटि के रूपक में नहीं होना चाहिए था, किन्तु इसके द्वितीय और तृतीय अङ्क के आरम्भ में विष्कम्भक रखे गये हैं।[1]

संवाद

संवाद की भाषा असाधारण रूप से स्वाभाविक है। संवाद व्याख्यान सरीखे नहीं हैं और बहुत लम्बे हैं। कहीं-कहीं रङ्गमञ्च पर किसी अकेले पात्र की एकोक्ति (soliloquy) विशेष प्रभविष्णु है।[2]

सूक्तियाँ

रुक्मिणीहरण की—'ग्रन्थौ बध्नन्तु भवन्तो देव्या देवक्या निदेशम्।'

इस उक्ति से हिन्दी की 'बात को गाँठ बाधना' उक्ति प्रवर्तित हुई है। कुछ अन्य सूक्तिया हैं—

> हृदयं मदनायत्तं वपुरायत्तं च गुरुजनस्यैव।
> मरणं दैवायत्तं कथं न सीदन्तु कुलकन्याः॥ ३.१
> नहि नहि केसरी कुञ्जरारावमाकर्ण्य विलम्बते॥
> को मम तथा विज्ञते द्वितीयां जिह्वां दास्यति॥

कहीं-कहीं वाक्पद्धति का विशिष्ट स्वरूप व्यंग्यलावण्य से परिपूरित है। यथा,

'न चाद्यापि कषति कर्णौ कृष्णस्य रुक्मिणीवरान्तरपरिग्रहवार्तादुर्वार्तावर्तः।'

इसमें 'कर्णौ कषति' ललित प्रयोग है।

---

१. ऐसा लगता है विष्कम्भक-विषयक इस नियम की मान्यता इस युग में शिथिल थी। वत्सराज के त्रिपुरदाह नामक डिम में भी विष्कम्भक इस नियम का अपवाद है।

२. तीसरे अङ्क के आरम्भ में सुबुद्धि की एकोक्ति कलात्मक दृष्टि से उत्तम कोटि की है। इसमें आत्मविमर्श भावुकतापूर्ण है।

त्रिपुरदाह

वत्सराज का चतुर्थ रूपक त्रिपुरदाह चार अङ्कों का डिम है। इस कोटि की कोई भी पूर्वकालीन रचना अप्राप्य होने से इसका विशेष महत्त्व है।

कथानक

नारद ने देखा कि ब्रह्मा से वर प्राप्त करके महिमान्वित दानव देवों को महाविपत्ति में डालकर अभिमान में चूर हैं। उन्होंने निर्णय किया कि देवताओं को चुप न बैठे रहने दूँगा। उन्हें दानवों के प्रति भड़काऊँगा। वे महेश के आश्रम पर जा पहुँचे, जहां देवगण उनकी उपासना कर रहे थे। महेश ने देखा कि वे सभी उदास हैं। नारद ने उन्हें बताया—

शम्भो तापस एव जीवतु भवान् घोरा रणे दानवाः ॥ १.१६

तब तो इन्द्र ने अपने मन की कह डाली कि आपके रुचि लेने का प्रश्न है। महेश ने कहा—

समेन्द्रसन्देशवशंवदस्य कं वा न कुर्यात् परशुः परासुम्। १.२०

तब तो यम, हुताश, वायु, वरुण, कुबेर, नारद, नैर्ऋत्य आदि ने दानवों पर क्रुद्ध होकर उनका स्वयं संहार करने की घोषणा की। नन्दी के पूछने पर बृहस्पति ने कहा कि आकाश में विचरण करनेवाला त्रिपुर नामक दानव त्रैलोक्य का मानो धूमकेतु है। वह अन्तरिक्ष को क्षीण करता है, पृथ्वी को सन्तप्त करता है और रसातलनायक शेषनाग को तोड़ ही डाले है। पृथ्वी और शेष ने महेश से अपना दुखड़ा रोया। हिमवान् सहायता करने के लिए प्रस्तुत था।

सुनाई पड़ा कि राहु ने सूर्य को ग्रास बना डाला। महेश ने नन्दी से कहा कि इधर चाप लाओ सूर्यलोक को निश्शोक करूँ। नन्दी ने कहा कि धड़ रहित राहु को मारना छोटी बात है। आप त्रिपुरदाह करें, जिससे देवयान और पितृयान का मार्ग खुले।

सेनानायक कौन हो—इस प्रश्न को लेकर कार्तिकेय ने बखेड़ा किया मेरे रहते कृष्ण (मेरे चाचा) और महेश (पिता) युद्ध का कष्ट क्यों उठायें ? महेश ने नारद को भेजा कि ब्रह्मा और कृष्ण को बुला लाइये। त्रिपुर विध्वंश होना ही है। इन्द्रादि सभी देवता युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जायँ।

चरों से देवताओं का युद्ध-सन्नाह सुनकर त्रिपुरनाथ ने योजनायें बनाईं। अलीक ब्रह्मा को और विपरीत महेश को मायाजाल से धोखा के लिए नियुक्त हुए।

नारद नारायण के पास पहुँचे कि आपने जिस त्रिपुर को वर दिया है, उसका नाश महेश आपकी अनुमति से करना चाहते हैं। विष्णु ने कहा कि युद्ध में मैं

महेश-पक्ष में आगे-आगे चलूँगा। तभी नन्दी आ पहुँचा और उसने नारद को ललकारा कि आप विष्णु और महेश में झगड़ा न लगायें, कलहप्रिय तो आप हैं ही। नारद ने कहा कि मैंने कब यह सब किया है? नन्दी ने कहा कि आप ही तो महेश के पास गये थे और आपने उनसे कहा कि विष्णु का कहना है—'किमहं स्थाणोस्तस्य निदेशकरः। स्वैरमहं दानवानुन्नमयामि नमयामि वा।'

नारद ने कहा कि मैं तो विष्णु के पास लौटकर गया ही नहीं। तभी विष्णु ने ध्यान लगाकर देखा कि किसी मायावी दानव ने नारद का रूप बनाकर महेश को ठगा है। उन्होंने नन्दी को शीघ्र ही महेश को यह बताने के लिए कहा, जिससे कोई और गड़बड़ी न हो। विष्णु ने कहा कि मैं शीघ्र ही ब्रह्मा को लेकर शिव के पास पहुँच रहा हूँ। तभी कपटनारद के साथ वहां ब्रह्मा आये। ब्रह्मा उस कपट-नारद को डांट रहे थे कि तुम मेरे पुत्र नहीं हो कि तुमने विष्णु से मेरी निन्दा सुनी। मैं तो अब विष्णुलोक में पहुँच ही गया। विष्णु से युद्ध क्या करना, उन्हें शाप से ही समाप्त कर देता हूँ। विष्णु यह सुनकर कहा कि बात क्या है? वास्तविक नारद ने उनसे कहा कि पिता जी यह आप क्या अनुचित कर रहे हैं? विष्णु तो आपका सत्कार कर रहे हैं। तभी कपटनारद तिरोहित हो गया। ब्रह्मा को ज्ञात हो गया कि मैं कपटनारद के चक्कर में पड़ गया था।

नन्दी के बताने पर कि कपटनारद ने आपसे विष्णु के द्वारा अवमानना की बात कही थी, महेश भी विष्णु के समीप आये। तीनों देवताओं का परस्पर श्रद्धाभाव देखते ही बनता था। ब्रह्मा ने कपटनारद के द्वारा ठगे जाने की बात बताई कि मेरे पास कपटनारद आया और बोला कि विष्णु ने कहा है कि तेरे बाप ने वर देकर दानवों का मन बढ़ा दिया है और वे त्रिलोक का पराभव कर रहे हैं। मैं अब विष्णु के साथ दानवों का अन्त करता हूँ। तब तो मैं विष्णु को दण्ड देने के लिये यहां आया। तब विष्णु ने मुझे वास्तविकता का ज्ञान कराया। महेश ने भी कपटनारद के द्वारा अपने ठगे जाने की बात बताई। ब्रह्मा और नारद ने दानवों पर क्रोध करके ब्रह्मा के वर की चर्चा की तो ब्रह्मा ने कहा कि मेरा वर तो सोपधि है—

त्रयोऽपि वयमेकशरविद्धा एव वध्याः।

नारद ने कहा कि तभी तो वे परस्पर सौ योजन की दूरी पर उड़ते हैं। फिर कैसे वे एक ही बाण से मारे जा सकते हैं?

दानवों ने स्वर्गलोक पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया तो विष्णु ने इन्द्रजाल के द्वारा उनके मार्ग पर घोरान्धकार कर दिया। उस अन्धकार में पड़ी दानवसेना परस्पर मारकाट से संत्रस्त हो गई।

मोहेनैव निहन्ति दानवकुलं घोरोऽन्धकारोऽद्भुतः। २.१६

अन्धकार को दानवों ने कौमुदी माया से दूर किया। देवों ने त्रिपुर पर आक्रमण आरम्भ कर दिया। दानवों की सेना उनसे लड़ने के लिए आगे बढ़ी। दानवाधिपति सर्वताप के पुरोहित विशदाशय ने सर्वताप के अभ्युदय के लिए बहुत कुछ किया। इधर सूर्य ने अग्नि की सहायता से सूर्यतापपुर को जलाना आरम्भ कर दिया। सर्वताप ने घोषणा की कि अब सूर्य को ही मिटा देता हूँ। दानवों का लौहनगर जलकर विगलित होने लगा। दानववीर उसमें गिरने लगे। अपने भाई सूर्यताप के लौहनगर जलने से सर्वताप को घोर आवेश हुआ। वह भाई की सहायता करने के लिए नहीं जा सकता था, क्योंकि निकटस्थ होने पर मृत्यु का भय था। वह लौहनगर जलते हुए आकाशगङ्गा में निमज्जित होकर बचा। दानवों का इस प्रकार परित्राण हुआ।

सूर्यताप नामक भाई के इस प्रकार बचने पर भी सर्वताप को अपने भाई चन्द्रताप की चिन्ता आ पड़ी कि उसका क्या हुआ? चन्द्रतापपुर पर चन्द्रमा और हिमालय ने आक्रमण कर दिया। तुषार की घनघोर वर्षा उन्होंने कर दी। सर्वताप ने अपने आग्नेयास्त्र से उसे बचाने का प्रयत्न किया। उसकी आग से वह पुर विगलित होने लगा। सर्वताप ने आग्नेयास्त्र को रोक लिया और चन्द्रताप को आदेश दिया कि पुर से बाहर निकल कर रहे और वहीं से युद्ध करे।

सर्वताप पर भी विपत्ति आई। नन्दी के साथ कुमार कार्तिकेय ने उस पर धावा बोल दिया। सर्वताप और कुमार में पहले वाग्युद्ध हुआ और फिर उसकी सेना पर कुमार ने बाणवर्षा की। दानव मरते थे, किन्तु अमृतकुण्ड में फेंक देने पर नहा कर पुनः दूने बल से लड़ने के लिए आ जाते थे। फिर तो आग्नेय बाण से सर्वतापपुर के स्वर्णप्राकारों को तोड़कर अमृतकुण्ड को कुमार ने भर दिया। फिर तो दानव मरने लगे। तब तो भार्गव बुलाये गये। उन्होंने देखा कि यह तो मेरा भाई कुमार है क्योंकि मुझे भी महेश ने पुत्र माना है। तभी महेश का आदेश लेकर नारद आये कि कुमार और सर्वताप का युद्ध नहीं होना चाहिए। उन्होंने आकर कुमार से कहा कि महेश ने कहा है कि भार्गव मेरा पुत्र माना गया है। इसके द्वारा परिगृहीत सर्वताप को दुःख पहुँचाना मेरा अभीष्ट नहीं है।

देवताओं की ओर से युद्ध की सज्जा हुई। ब्रह्मा स्वयं सारथि बने, शिव रथी, पृथ्वी रथ, हिमवान् धनुर्दण्ड, शेषनाग धनुर्गुण और विष्णु ही बाण बने। महेन्द्र प्रभृति आदित्यगण रथ के पीछे-पीछे चले। ब्रह्मा और शिव की बातचीत इस प्रकार हुई—

ब्रह्मा — भगवन् भर्ग! एष त्वां तव सारथिः प्रणमति।
महेशः — शान्तं पापम्। प्रणमामि पितामहम्। कुरु सारथ्यम्।

महेश रथ पर चले ही थे कि स्वर्णपुर, राजतपुर और लौहपुर तीनों साथ ही सामने

दृष्टिगोचर हुए। ऐसी स्थिति में वे एकशरव्य थे। विष्णु ने पहचाना कि यह कोई अन्य ही त्रिपुरी है। वास्तविक त्रिपुरी नहीं है। इस कपट-त्रिपुरी का निर्माण शुक्राचार्य ने किया था और सर्वताप को भी नहीं बताया था कि कपट-त्रिपुरी देवताओं को ठगने के लिए बना रहा हूँ। जब चर से सर्वताप को विदित हुआ कि शुक्राचार्य ने यह कपट-त्रिपुरी मेरी वास्तविक त्रिपुरी की रक्षा के लिए बनाई है तो वह बिगड़ा कि देवगण इस कपट-त्रिपुरी को जला देंगे, तब मेरा अपमान होगा—

पुरत्रयं दाहयिता शिवेन निर्माय मायामयि चेत् स शुक्रः।
कृतो हरेण त्रिपुरस्य दाहस्तदेष रूढः परमोपवादः॥ ४.१२

तभी वास्तविक त्रिपुरी भी महेश के समक्ष आई। उनके लिए यह प्रश्न था कि किस त्रिपुरी पर आक्रमण करूँ। इधर कपट-त्रिपुरी को सर्वताप ने देवनिर्मित मानकर उसे नष्ट करने के लिए अपने भाइयों को आदेश दे दिया। माया-त्रिपुरी दूर चली गई।

एक बार जब त्रिपुरी साथ थी तो उस पर शिव ने वार नहीं किया क्योंकि नीति है कि दुर्धर्ष शत्रु को ही मारने से यश मिलता है। जब पुनः त्रिपुरियाँ आत्मरक्षा के लिए दूर-दूर होने लगीं तो रथ दौड़ा कर तीन पुरियों को अपनी वाणवर्षा से जलाना आरम्भ किया। कार्य सम्पन्न कर लेने पर महेश ने अपना रथ कैलाश पर्वत पर रुकवाया। महेश ने देवताओं से कहा कि यह मेरी ही विजय नहीं है, आप सबकी विजय है।

समीक्षा

त्रिपुरदाह की कथा पौराणिक है। उसका जो रूप वत्सराज ने दिया है, वह सुप्रसिद्ध है।[1] देवताओं के जिस सात्त्विक प्रयास का इसमें निदर्शन किया गया है, वह ऊँचाई और गरिमा में संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठ निधि के रूप में सदा प्रतिष्ठित रहेगी।[2] इसके कथानक के द्वारा अलौकिक ऐश्वर्य और सात्त्विकता का अनुत्तम आदर्श प्रस्तुत किया गया है।

---

१. रथः क्षोणीयन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधिः॥

२. कालिञ्जर के राजा धङ्ग ने ९८९ ई० में हिन्दूराज्यसङ्घ का निर्माण करके सुबुक्तगीन से युद्ध किया था। ११९२ ई० में मुइज्जुद्दीन मुहम्मद ने पृथ्वीराज के पास दूत भेजा कि मुसलमान बनकर हमारी अधीनता स्वीकार कर लें। पृथ्वीराज ने इसके उत्तर में ३ लाख घोड़े, तीन सहस्र हाथी और असंख्य पैदल सैनिकों से उस पर आक्रमण किया। भारत के अनेक राजाओं ने उसकी सहायता की। १५० सामन्त प्राणपण से उनकी सेना में जुट गये। पृथ्वीराज का मन्त्री सोमेश्वर दण्डित होने पर

त्रिपुरदाह में कपट-नारद की कल्पना का आधार भवभूति के द्वारा महावीरचरित में प्रारब्ध कपट-दशरथ आदि की परम्परा है। दसवीं शताब्दी के पश्चात् कपट-पात्रों की ओर प्रेक्षकों की बढ़ती हुई अभिरुचि देखकर नाट्यकारों ने अपने रूपकों में उनको प्रायशः स्थान दिया है। त्रिपुरदाह में पात्र ही नहीं, पूरी त्रिपुरी ही के समान दूसरी कपट-त्रिपुरी का समायोजन कवि-कल्पना के अभिनव आयाम को इङ्गित करता है।

शिल्प

ऐसा लगता है कि परवर्ती युग में विष्कम्भक और प्रवेशक का अन्तर मिट रहा था। त्रिपुरदाह के दूसरे अङ्क के आरम्भ में अलीक और विपरीत का प्राकृत भाषा में निष्पन्न संवाद प्रवेशक कहा जाना चाहिए था न कि विष्कम्भक। संवाद में भाग लेनेवाले दोनों पात्र अधम कोटि के हैं।

वत्सराज प्रायः अपनी सभी कृतियों में किसी पात्र को रङ्गमञ्च पर लाने के कुछ क्षण पूर्व उसका नाम दूरतः प्रसंगवशात् भी ला ही देते हैं। उनकी यह विधि पहले के नाट्यकारों ने कहीं-कहीं अवश्य अपनाई है, पर इसका सर्वथा प्रयोग वत्सराज की विशेषता है।

कवि ने परिहास का उच्चतम स्तर प्रस्तुत किया है। कपट-नारद महेश और विष्णु में लड़ाई लगा रहा था। यह भेद खुलने पर महेश विष्णु के पास गये तो वहाँ ब्रह्मा पहले से ही विराजमान थे। उन्हें देखते ही महेश बोले—

> कृष्ण कृष्ण आवयोः समरद्रष्टा स्रष्टाप्ययमुपेत एव। तदेहि युध्यते (इति समालिंगति)

वत्सराज के रूपकों में चूलिका (नेपथ्य सूचना) का समधिक प्रयोग हुआ है। कवि ने चूलिका के द्वारा अदृष्ट घटनाक्रम का विन्यास सफलतापूर्वक किया है।

रङ्गमञ्च पर युद्ध का अभिनय नहीं होना चाहिए। इस नियम का अपवाद त्रिपुरदाह में मिलता है। इसमें रङ्गमञ्च से सर्वताप आग्नेयास्त्र का प्रयोग और उपसंहार तीसरे अङ्क में करता है। इसी अंक में कुमार कार्तिकेय उस पर बाणवर्षा करते हैं।

कथा की भावी प्रवृत्ति का ज्ञान चूलिका के द्वारा प्रायशः कराया गया है। स्वप्न और शकुन का भी उपयोग भावी घटनाओं की पूर्व सूचना के लिए किया गया है।

शत्रु से जा मिला। शत्रु से जब सन्धिवार्ता चल रही थी तो रात में आक्रमण कर दिया। वीर पृथ्वीराज इस युद्ध में हारे। एक लाख हिन्दू योद्धा मारे गये। अजमेर को जीतकर सुलतान ने मन्दिरों को गिराया, मसजिद और मक्तब उनके ईंट-पत्थरों से बनाये। The Struggle for Empire, Pages 111–112.

नेतृपरिशीलन

त्रिपुरदाह के सभी पात्र देव या दानव कोटि के हैं। उनके मानवोचित कार्य पर्याप्त मनोरञ्जक हैं। उसका शेषनाग अपने सहस्र मुखों से अपनी वीरता का गुणगान करता है—

सहस्रेणास्यानां प्रसरदुरुनिःश्वासमरुता
पृथुज्वालाजालं किमु वियति वर्षामि न जलम् ॥ १.३४

नारद ने उसके विषय में ठीक ही कहा है—

न खलु क्ष्माभारोद्वहने एव समरभारोद्वहनेऽपि धुरीण एव भुजङ्गराजः।

हिमवान् भी एक पात्र है। श्लोक बोलता है—

अहह, किमिह कुर्मो नायकस्यामराणां
कुलिशदलितपक्षाः पङ्गवो यत्कृताः स्मः।
असमचयभराढ्याः स्वैरमुड्डीयमानाः
किमुत दनुजसार्थं खेचरं चूर्णयामः ॥ १.३५

चरित्र-चित्रण के लिए पात्र-सम्बन्धी पुरावृत्त की चर्चा कहीं-कहीं मनोरञ्जक विधि से की गई है। विष्णु का चरित्र-चित्रण है—

सोऽन्यः सिन्धुपतिर्युगान्तविलसद्वेलासमुल्लंघने
यस्मिन् कृष्ण भवान् वटद्रुमशिखाशाखाश्रयेणोद्धृतः ॥ २.७

ऐसे पुरावृत्त द्वारा प्रायः पात्र की हीनता बताई जाती है।

छायानाटक

त्रिपुरदाह में त्रिपुरी की छाया का प्रयोग होने के कारण इसे छायानाटक कह सकते हैं।[1]

शैली

वत्सराज को शाब्दी क्रीडा का चाव था। इसके असंख्य उदाहरणों में से कतिपय अधोलिखित हैं—

सखे कुबेर, धनदोऽसि तदिदानीं निधनदो भव विद्विषाम्।
किं न पश्यति भवानुग्रतपोभिरुग्रमाराध्य दानवा उग्रा भवन्ति।
शापेनैव केशवं शवी करोमि।
नारद पारदोऽसि विपत्पारावारस्य।

---

1. छायानाटक का विवेचन लेखक के द्वारा सागरिका पत्रिका १०. ४ में किया गया है।

कवि किसी पात्र की हास्यास्पद कद्रूपता-निरूपण करके वीर रस के वातावरण में हास्य रस का सर्जन कर सकता है। कार्तिकेय विष्णु का ऐसा परिचय देते हैं—

> हित्वा पौरुषवासनां न महिलाभाव गमिष्याम्यहं
> याच्ञात्सारितगौरवो न हि मुने ह्रस्वो भविष्यामि वा।
> कूर्मक्रोडझषादिरूपविगतिर्नैवानुभाव्या मया
> सेनानीः पुरुषोत्तमो दिविषदां येग्यो न मादृग् जनः॥ १.४०

अनुप्रास के लिए सस्वर व्यञ्जन की पुनरावृत्ति रोचक है। यथा,

> गदा सदा दानवदारयित्री सौदर्शनं दर्शनमेव घोरम्।
> न मन्दशक्तिर्मम नन्दकोऽयं निदेशमेवैशमहं समीहे॥ २.४

कवि की विचारधारा और व्याहार व्यञ्जनापूर्ण हैं। यथा,

> जम्भस्तम्भितविक्रमः सुरपतिर्मन्दोऽद्य दूनो रविः
> सोप्यास्ते गजकृत्तिगुप्तजघनो देवस्त्रिशूलायुधः।
> कृष्णः सोऽपि कदर्थितो मधुमुरप्रायैर्मुहुर्दानवैः
> शौर्याशौर्यपरिस्थितिं सहृदयो जानाति राहुर्भवान्॥ १.१०

इसमें अन्तिम पंक्ति में यह व्यंग्य है कि राहु सहृदय नहीं है क्योंकि राहु का केवल शिर है धड़ नहीं।

कवि की गद्यात्मक वाणी से भी रस का सञ्चार होता है। यथा,

> कियन्मात्राणि तव दम्भोलिदावानलस्य दानवकुलतृणानि॥

इसमें वीर रसोचित पदावली है।

वत्सराज के उपमान अतिशय सटीक हैं। यथा,

> अन्तरिक्षचरस्त्रिपुराभिधानो धूमकेतुरिव त्रैलोक्यस्य।

इसमें धूमकेतु जैसे आकाश में रहकर विनाश का सूचक है, वैसे ही त्रिपुर भी आकाशस्थ है।

कवि की दृष्टि लोकोपकारदर्शिनी है, जैसी कालिदास की। पृथ्वी का महेश के शब्दों में वर्णन है—

> कादम्बिनी काचिदपूर्वरूपा त्वमुर्वरे भूरिरसोपगूढा।
> उर्ध्वस्थलोकानपि हव्यकव्यप्रवर्षणैः प्रीणयसे तलस्था॥ १.३२

सूक्तियां

वत्सराज ने सूक्तियों के प्रयोग से अपनी शैली में प्रभविष्णुता सम्पादित की है। यथा,

दिग्गजदूषणार्थं शशकानां मेलकः।
ननु परिमाणमात्रेऽपि वैरिणि अप्रमत्तेन भवितव्यम्।
क्रोधनो दूरत एव नमस्यः।

एकोक्ति (Soliloquy)

वत्सराज एकोक्तियों का प्रयोग करने में भी निपुण हैं। तृतीय अङ्क के अन्त में नारद अपनी मानसिक स्थिति का मनोरञ्जक वर्णन एकोक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

राजनीतिक अभिप्राय

वत्सराज के नाटकों का राजनीतिक अभिप्राय इस बात से स्पष्ट प्रमाणित होता होता है कि उस युग में दानव मुसलमान का पर्यायवाची था। वत्सराज के प्रायः समकालीन हम्मीरमदमर्दन में मीलच्छीकार को उसके सेनापति ने दनुतनुज कहा है।[1] त्रिपुरदहन और समुद्रमथन में देवसंघ का दानवों से मोर्चा लेने का इतिवृत्त इस दृष्टि से व्याख्येय है।

त्रिपुरदाह, रुक्मिणीहरण और किरातार्जुनीय व्यायोग में कुछ ऐसे पात्रों का कार्यकलाप दिखाया गया है, जो सत्पक्ष के विनाश के लिये हैं और किसी सत्पात्र को झूठ-सच बोलकर उसके शत्रुओं को भड़काकर युद्ध करवा देते हैं। किरातार्जुनीय का दुर्योधन, रुक्मिणीहरण के रुक्मी और शिशुपाल और त्रिपुरदाह का विपरीत झगड़ा लगानेवाले हैं। इनमें से विपरीत देववर्ग में झगड़ा लगाने वाला है। वह देवताओं को परस्पर लड़ाकर दानवों का काम करता है। इसके इस कार्यकलाप से प्रतीत होता है कि उस युग में भारतीय राजाओं को परस्पर लड़ाकर उन्हें यवनों के आक्रमण से देश को बचाने के लिए एकमुख होने की सम्भावना को अपसारित करनेवाले दुर्मुख नियुक्त थे। वत्सराज का उद्देश्य इस बात की

---

१. मुसलमान आक्रमणकारियों के नाम यवन, राक्षस, दैत्य और दानव मिलते हैं। टाड का कहना है—हिन्दू ग्रन्थों में इन आक्रमणकारी म्लेच्छों को कहीं यवन, कहीं पर राक्षस, कहीं पर दैत्य और कहीं पर दूसरे नामों से लिखा गया है। ··· जिन-जिन शत्रुओं ने उन पर आक्रमण किये थे, भट्ट लोगों ने अपने ग्रन्थों में उन्हें दानव लिखा है। राजस्थान का इतिहास पृष्ठ १३८। परवर्ती युग में राठौड़-वीर राजसिंह ने मेड़ते में मन्दिर की रक्षा करते अपने प्राणों की बलि दी। उसके यशोगान में मुसलमानों को असुर कहा गया है—

आया दल असुर देवरां ऊपर कूरम कमधज एम कहै।
ढहियां सीस ज देवल ढहसी ढ्हां देवालो सीस ढहै॥

विश्वम्भरा ७.३, पृष्ठ ३७

विशद चर्चा करने में स्पष्ट है कि इन कपटी दुर्मुखों के वाग्जाल में राजाओं को न फंसना चाहिए और उन्हें एकमुख होकर यवन आक्रमणकारियों से मातृभूमि की रक्षा करनी चाहिए। सभी राजाओं की एकता का सन्देश नीचे लिखे पद्य में स्पष्ट है-

वैकुण्ठः पद्मजन्मा त्रिदशपरिवृढः पावकः प्रेतनाथो
रक्षो वारामधीशः पवनधनपती सूर्यचन्द्रौ कुमारः।
धर्मः शेषाद् विराजावहमपि तरलः षोडशः कौतुकार्थी
मामेवैकं किमित्थं त्रिपुरवधविधौ श्लाघसे नारद त्वम् ॥ ४.२२

यही बात चतुर्थ अङ्क में शुक्र के नीचे लिखे वक्तव्य से प्रमाणित होती है—

विवेचितं मया महेशप्रमुखा दिगीशा हरिविरञ्चिक्रौञ्चारिनगेन्द्रनागेन्द्र-चन्द्रसूर्यधर्माः षोडशापि त्रिपुरासुरवधाय बद्धकक्षाः संवृत्ता ऐक्यं गताः।

हास्यचूडामणि

वत्सराज का पञ्चम रूपक दो अङ्कों का हास्यचूडामणि नामक प्रहसन है। इसका प्रथम अभिनय नीलकण्ठयात्रा-महोत्सव के अवसर पर आये हुए सामाजिकों के अनुरञ्जन के लिए राजा परमर्दिदेव ने कराया था। प्रभात वेला में यह अभिनय हुआ था।

कथानक

कपटकेलि नामक वेश्या-माता प्रातःकाल उठी तो उसकी चेटी ने बताया कि आज रात में आपकी चिरकाल से सञ्चित आभरणराशि को चोर ले गये। कपटकेलि ने जाना कि न तो द्वार खुला, न सेंध लगी तो चोरी किसने की? उसकी समझ में आया कि मेरी कन्या उस दरिद्र जुआरी कलाकरण्ड में अनुरक्त है। उसी ने यह चोरी की है। यह रहस्योद्घाटन जीर्णोद्यान मठ में रहनेवाले केवलीज्ञाननिपुण ज्ञानराशि के मुँह से कराना है। वह अपने अनुचर मुद्गरक के साथ ज्ञानराशि से मिलने चली। मुद्गरक ने चोरी का वृत्तान्त सुना तो कहा—

जानतां समक्षं नागरलोकानां मुष्णाति सर्वस्वम्।
हेलयास्माकमम्बा कथय चौरोऽम्बा-सदृशः॥ १.८

मुद्गरक ने कपटकेलि की आज्ञा से मठ में झाँक कर देखा कि वहाँ दो व्यक्ति वाद-विवाद कर रहे हैं। उसने समझ लिया कि ज्ञानराशि अभी पढ़ा रहे हैं। वे बाहर रह कर ही अध्ययन समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगे। तत्कालीन अध्ययनाध्यापन की एक झलक प्रस्तुत है—

ज्ञानराशि—क्या दो श्लोक कण्ठाग्र हो गये?
शिष्य—ज्ञानराशे, कण्ठ ही नहीं, उदर तक पहुँच गये।
ज्ञानराशि—क्या मेरा नाम ले रहा है।

शिष्य—क्या आपका नाम लेना भी पाप है ?

ज्ञानराशि—अरे मूर्ख, गुरु का नाम नहीं लिया जाता।

शिष्य—तो पर्वतों का नाम कैसे लेते हैं। वे तो गुरु हैं।

शिष्य ने श्लोक सुनाया—

> आलोक्य सर्वगात्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
> इदमेकं तु निष्पन्नं ध्येयो नारीजनः सदा॥ १.११
> नमस्ते पाण्डुरैकाक्ष नमस्ते विश्वतापन।
> नमस्तेऽस्तु मृषाकोश महापुरुषकूर्चक॥ १.१२

गुरु ने समझा कि मैं ही पुष्पपाण्डुराक्ष हूँ और शिष्य मेरा परिहास कर रहा है। वे उसे मारने के लिए उद्यत हुए तो शिष्य ने कहा कि अभागे अध्यापक अपने से बढ़ कर मेधावी शिष्य को नहीं सह पाते। मैं तो यहाँ से चला। गुरु के मनाने पर शिष्य रुक गया। शिष्य ने कहा कि कठिन अक्षरों वाले इन श्लोकों को मुझे नहीं रटना है। मुझे तो केवली विद्या पढ़ाइये, जिससे दूसरों का धन मैं हड़प लूँ। ज्ञानराशि ने कहा कि केवली विद्या अशुभ है। सुनो,

> दिव्ये शुद्धिकृता व्यलीककथनाच्चौरेण तातो हतो
> भ्राता मे विननाश कालफणिना दष्टो निधानं खनन्।
> युद्धज्ञानविपर्ययान्नृपतिना हन्तुं समाकांक्षितो
> जातोऽहं भगवानियं कुलरिपुर्विद्या हि नः केवली॥ १.१७

ज्ञानराशि ने शिष्य को केवली विद्या के रहस्य बताये—

> किं वाग्भिर्निकषो हि नः फलमिति स्याद् गूढगर्वग्रहः
> प्रश्ने त्वाविलमुत्तरं विरचयेन्न व्याहरेन्निर्णयम्।
> सिद्धं कार्यमवेत्य निश्चितमिदं पूर्वं मयासीदिति
> स्फारं स्फारमुदीरयेदुपचरेत् कञ्चिन् मृषा साक्षिणम्॥ १.१८

तभी कपटकेलि मुद्गरक को लिए ज्ञानराशि के पास आ गई। मुद्गर को वह स्थान पानगोष्ठी-योग्य लगा। ज्ञानराशि ने आडम्बर किया—

> ब्रह्मेवाहं मरणमथवा जीवितं वेद्मि जन्तोः
> स्वामीवाहं परहृतधनं क्ष्मातलादुद्धरामि।
> लोकस्याहं सकलचरितान्यन्तरात्मेव जाने
> चौरैर्लुप्तं स्वयमिव धृतं वस्त्वहं प्रापयामि॥ १.२०

कपटकेलि ने कहा कि आज रात मेरे घर चोरी हो गई। शिष्य ने घबड़ाये हुए कहा कि आज रात तो मठ छोड़कर हमारे गुरु कहीं गये ही नहीं। कपटकेलि ने कहा

कि मैं चोरी गये धन का पता लगाने आई हूँ। मिलने पर सब गुरु को दूँगी। गुरु ने मन में सोचा—

न जानामि न गृह्णासि मम किं चिन्तयानया।
अनङ्गीकार एवायं दाम्भिकानां महाफलम् ॥ १.२१

चोरी गये धन पर विचार करने के लिए केवली पुस्तक लाई गई। शिष्य के आज्ञानुसार कपटकेलि को अपनी स्वर्णमुद्रा से पुस्तक की पूजा करनी पड़ी। गुरु ने उसे भिक्षुओं को बाँट देने के लिए शिष्य को दिया। शिष्य ने मन ही मन कहा कि गुरु यह अधर मात्र से कहता है, हृदय से नहीं। गुरु ने ग्रहकुण्डली का विचार करके कहा कि धन मिलेगा।

ज्ञानराशि के कहने पर कपटकेलि ने अपने घर के लोगों के नाम बताये—कपटकेलि, मदनसुन्दरी, कोकिल, पारावत, कुसुमिका। ज्ञानराशि ने सोचा कि जिस पर चोरी का सन्देह है, उसका नाम पहले बताया है। उन्होंने कहा कि कपटकेलि की यह करनी है। कपटकेलि की मुखमुद्रा से प्रतीत हुआ कि ऐसा नहीं है। तब तो झट उन्होंने कहा कि चोर का नाम तो ज्ञात हो गया है। तुम्हारा नाम इसलिए लिया कि अभी उसका नाम छिपा रहे। आप घर जायँ और कोकिल तथा पारावत से चुपचाप धन माँगें। इसके पश्चात् कपटकेलि की अंगूठी पहनकर गुरु कलाकरण्डक की जुए में विजय के लिए मान्त्रिक जप करने चले गये।

जप समाप्त होने पर गुरु फिर उपवन में आ गये। उस समय चेटी और मदनसुन्दरी देवता की पूजा के लिए वहां आ पहुँचीं। उसे देखते ही गुरु का कामभाव जागा—

लावण्यवीचिनिचयैस्तरलायताक्षी
प्रक्षाल्य निष्ठुरविवेकदुरक्षराणि।
कन्दर्पदैवतमियं सहसोपदेश-
माविष्करोति हृदि संयमिनो ममापि ॥ २.२

मदनसुन्दरी की वाणी से जो माधुर्य-सञ्चार होता था, उससे गुरु की कर्कश वाणी से पीडित उसके कान शीतल हो रहे थे। मदनसुन्दरी की कलाकरण्डक-विषयक ध्यान-चिन्ता देखकर उसकी चेटी ने बताया कि आज सभी जुआरियों का धन जीतकर मदनोद्यान में तुम्हारे साथ पानगोष्ठी महोत्सव मनायेगा। तुमने उसके पास कपटकेलि की आभरण की पेटी भेजी थी, वह भी कपटकेलि को उसने लौटा दी है। फिर वे दोनों कलाकरण्डक से मिलने के लिए जाने लगीं। उसे जाते देख ज्ञानराशि ने अपने हृदय की जलन उड़ेली—

उन्मुच्य दूरमपयाति यथायथेयं
छायेव मन्मथतरोस्तरलायताक्षी।
अङ्गानि मे प्रसभमेप तथा तथैव
क्रोडीकरोत्यहह दुर्विपहः प्रतापः॥ २.४

वे उसी वेदिका पर जा बैठे, जो मदनसुन्दरी के परिरम्भ से पवित्र हो चुकी थी। उन्हें मदनसुन्दरी के वियोग में कामज्वर चढ़ आया। शिष्य ने कहा कि आप तो ज्वर उतारने का मन्त्र जानते हैं, तो फिर क्यों स्वयं ज्वरपीड़ित है। ज्ञानराशि ने वशीकरण का मन्त्र लिखकर उसका गण्डा बनाने के लिए शिष्य को दिया। शिष्य ने उसे पढ़ा तो बीजमन्त्र पर मदनसुन्दरी के स्थान पर कपटकेलि नाम लिखकर गण्डा बनाकर ज्ञानराशि को दे दिया और स्वयं मदनसुन्दरी वाले बीजमन्त्र का गण्डा बना कर स्वयं पहन लिया। शिष्य ने ज्ञानराशि से कहा कि आप तो अब युवा लगने लगे। उसे गुरु ने भगवान् की पूजा करने के लिए फूल लाने को भेजा। शिष्य पेड़ पर चढ़ कर गुरु के खेल देखने लगा।

उस समय कपटकेलि और मदनसुन्दरी पूजा सामग्री लेकर वहाँ आ पहुँचीं। कपटकेलि ने कहा कि मेरी वस्तु आपकी कृपा से मिल गई। मेरा हृदय आपने हर लिया। अब आप ही मेरी शरण हैं। उसके नखरे देखकर ज्ञानराशि ने कहा—

वातोत्फुल्लतया नयन्ति समतां निम्नौ कपोलौ मुहु-
स्तुङ्गत्वाभिनयं वहन्ति कुचयोर्वक्षःस्थलोल्लासनैः।
पुत्रीभ्योऽपि कनिष्ठतां प्रकटयन्त्याच्छाद्य केशान् सितान्
तारुण्याभिनयग्रहः परिणतौ कोऽप्येप दुर्योषिताम्॥ २.६

उसने ज्ञानराशि से कहा—कषाय उतार डालो। तुम्हारे अङ्गों को हरिचन्दन—चर्चित करूँगी। ज्ञानराशि उसकी धृष्टता देखकर उसे डण्डे से मार भगाने को उद्यत हुए। वहीं कोकिल और पारावत आ गये। उन्होंने कहा कि ज्ञानराशि कहां है, जो हम लोगों पर चोरी लगाता है। तब तो ज्ञानराशि कपटकेलि की शरण में आत्म-रक्षा के लिए पहुँचे और कहा कि सुन्दरि रक्षा करो। मैं तुम्हारे वश में हूँ। कपटकेलि ने कहा—अच्छा, झूठीमूठी समाधि लगा लो। कोकिल और पारावत ने उसे समाधि लगाये देखकर कहा कि इसे उठाकर उबरे में फेंक दिया जाय। कपटकेलि ने कहा कि आग में मत कूदो। कोकिल ने कहा कि इस आग को प्रतिदिन गोद में लेती हो तो तुम जलती ही नहीं। पारावत ने हाथ पकड़े और कोकिल ने पैर पकड़े। उसकी बाहु से बीजमन्त्र फेंक दिया। उसके हाथ की अंगूठी देखकर पहचाना कि कपटकेलि ने मदनशास्त्र की शिक्षा लेकर ज्ञानराशि को यह दक्षिणा दी है। कोकिल ने परिहास करते हुए कहा कि कपटकेलि, आप कुछ तो ज्ञानराशि को देती हैं और चोरी हमारे मत्थे मढ़ती हैं।

ज्ञानराशि ने इस विपत्ति के समय कौण्डिन्य को पुकारा और कहा कि तुम्हें छोड़कर मैं विष्णुलोक चला। कोकिल ने कहा कि पाताल जा रहे हो—ऐसा क्यों नहीं कहते। अरे पारावत, तब तक इसे इस पीपल के पेड़ पर लटका दिया जाय। इसे खेचर सिद्धि मिले। कोकिल ने किसी ऊँची डाल पर ताका। इधर उसी पीपल के सिरे पर लटके शिष्य ने देखा कि ज्ञानराशि मुझे भी साथ लेकर मरना चाहता है। उसने ऊपर से ही चिल्लाकर कहा कि इस दम्भी को छोड़ो मत। अभी मैं उतरा। यह नित्य ही मेरी वाटिका से सभी फूल चुरा लेता है। पारावत ने उससे पूछा कि तुम ज्ञानराशि के शिष्य नहीं उद्यानपाल हो। शिष्य ने कहा—और क्या? कोकिल ने कहा कि यह मिथ्यावादी शिष्य ही है। दोनों को साथ ही सिद्धि की प्राप्ति हम लोग करा देंगे। उन दोनों का गला वे योगपट्टा से बाँधने लगे।

शिष्य ने कहा कि भूगर्भित सारी धनराशि अब जहां की तहाँ धरी रह जायेगी। लोग धन बिना मरें। ज्ञानराशि तो अब चले। कोकिल ने कहा, भगवन् ज्ञानराशि! हम लोगों को भी भूगर्भित धन दिखा कर अनुगृहीत करें। ज्ञानराशि के आदेशानुसार शिष्य उनको भूगर्भित धन दिखाने की प्रक्रिया करने लगा। वह लाङ्गलीरस ले आया। उसे गुरु ने बताया—

> रसेन लाङ्गलीयेन समन्त्रेणाक्तिनेक्षणः।
> निधनं वा निधानं वा धीरः समधिगच्छति॥ २.११

कोकिल और पारावत की आँखों में लाङ्गलीरस का अंजन पहिले ज्ञानराशि ने लगाया। कपटकेलि ने भी अपनी आँखें अँजवाई। ज्ञानराशि के कथानुसार जब उन्होंने धन देखने के लिए वृक्षमूल में दृष्टि गडाई तो उन्हें कुछ नहीं दिखाई दिया। कपटकेलि ने स्पष्ट कह दिया कि मेरी तो आँखें ही फूट रही हैं। कोकिल और पारावत ने ज्ञानराशि और उनके शिष्य की आँखों से अपनी आँखों को मल दिया। फिर तो गुरु-शिष्य भी आँख की पीड़ा से रोने लगे। ज्ञानराशि ने सबको बताया कि निकट के जलाशय में आँखें धो लेने पर सब ठीक हो जायेगा। वे सभी गिरते-पड़ते रेंगते हुए निकट के कलाकरण्डक मदनोद्यान के जलाशय पर पहुँचे। वहीं निकट ही कलाकरण्डक मदनसुन्दरी के साथ पानगोष्ठी का आनन्द ले रहा था।

कलाकरण्डक ने सबकी आँखें धो दीं। सभी ठीक हो गये। कलाकरण्डक के आदेशानुसार कोकिल और पारावत ज्ञानराशि के चरण पर गिर पड़े।

संस्कृत के गिने-चुने प्रहसनों में हास्यचूडामणि वास्तव में अपना नाम सार्थक करता है। इसमें शृङ्गार ऊपर नहीं छलकता है। समाज की विषम और घातक प्रवृत्तियों के भण्डाफोड करने के उद्देश्य में कवि सफल है।

एकोक्ति

वत्सराज ने हास्यचूडामणि में मदनसुन्दरी के माध्यम से नीचे लिखी गीतिरूप में एकोक्ति प्रस्तुत की है—

> भुञ्जानाः सहकारकोरकविषं प्राणन्ति पुष्पन्धयाः
> कण्ठः कोकिलयोपितां नवकुहूशब्दाग्निना दह्यते ।
> श्रीखण्डानिलकालकूटपवनैर्मूर्च्छन्ति नैता लता
> धिङ्मृत्योरसमर्थतां स्मरशरैर्विद्धापि जीवाम्यहम् ॥ २.३

समुद्रमथन

वत्सराज का छठा रूपक तीन अङ्कों का समुद्रमथन नामक समवकार है। यह अपनी कोटि का प्रथम प्राप्त सर्वलक्षणोपपन्न रूपक है।[1] इसका प्रथम अभिनय परमर्दिदेव के परितोष के लिए प्रत्यूष वेला में हुआ था।

कथानक

देवों और असुरों ने समुद्रमथन से अनेक उपलब्धियों की सम्भावना करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ परामर्श करके मन्दर को मन्थन बनाकर योजना को कार्यान्वित करना आरम्भ किया। इस योजना के अन्तर्गत समुद्र-कन्या लक्ष्मी के निकलने पर विष्णु से उसका प्रणय-समागम अभिप्रेत था। विष्णुपदी ने लक्ष्मी का चित्र विष्णु को दिखाकर उन्हें मोह लिया था। समुद्रपत्नी गङ्गा ने विष्णु की प्रशंसा करके लक्ष्मी को उनके प्रति सर्वथा आकृष्ट कर लिया था। गङ्गा विष्णु का एक चित्र पार्वती के लिए लाई थी।

लक्ष्मी जलकुंजर पर बैठी हुई लज्जा और धृति नामक सखियों के साथ भगवती रुद्राणी की पूजा करने के लिए समुद्रजल के ऊपर निकलीं। पूजा के लिए वे सभी पुष्पावचय करने लगीं। फिर उन्होंने पार्वती की पूजा करके प्रार्थना की—

> तथा अर्चितासि पार्वति लक्ष्म्या विविधकुसुममालाभिः ।
> अर्चयतु तव प्रसादाद् यथा कृष्णं नयनकमलैः ॥ १.१२

इस अवसर पर गङ्गा के द्वारा दिये हुए कृष्ण के चित्र को लक्ष्मी के विश्वासपात्र परिचर ने दिया। लक्ष्मी ने चित्रगत कृष्ण की पूजा की। तभी घनघोर अन्धड़

---

1. वत्सराज के समुद्रमथन के पूर्व भास का पंचरात्र समवकार कोटि का रूपक माना गया है। यद्यपि इसमें समवकार के कतिपय महत्त्वपूर्ण लक्षण नहीं घटते। विश्वनाथ ने समवकार का उदाहरण समुद्रमथन को बताया है।

आया। वृक्ष उखड़कर आकाश में नाचने लगे। डर कर लक्ष्मी जलकुञ्जर पर आसीन होकर समुद्रोत्संग में चली गई। उसी समय नेपथ्य से गीत सुनाई पड़ा—

मधुरिपुरेष स्फुरदुरुकामः सह सुरदैत्यैर्जलधिमुपेतः।

समुद्रतट पर कृष्णादि देवगण आ पहुँचे। वे ब्रह्म-महेशादि की प्रतीक्षा कर रहे थे। असुर और मन्दर को भी आना था। वे समुद्र-वर्णन और अपनी योजना की चर्चा कर रहे थे। बृहस्पति ने कहा—

चक्रवाक इव वीचिविलोलो मन्दरोऽत्र भवतु भ्रमनिष्ठः।
पार्श्वतोऽस्य परिवर्तनभङ्ग्या कीटका इव भवन्तु भवन्तः॥ १.२४

ब्रह्मा ने आकर कहा—

उद्यमं कुरु गोविन्द पूर्णकामो भवाचिरात्।
फलितोद्यमखेदानां विश्रामो मण्डनायते॥ १.३०

महेश का ऐश्वर्य देखते ही बनता था। उनके आज्ञानुसार शेषनाग उनके गले से उतर कर मन्दर पर जा लिपटे। कृष्णादि देव और असुर भी मन्दर का आवर्तन करने लगे। मथन करने पर क्रमशः वेद, ऐरावत, उच्चैःश्रवा, चन्द्र, महौषधियां, रत्न, लक्ष्मी, अमृतघट, अङ्कुश, सुरा, विष आदि निकले। शिव ने इनका बटवारा किया। लक्ष्मी विष्णु को मिली, अमृत असुरों को मिला और विष तो स्वयं शिव ने लिया।

विष्णु कपट-कामिनी वेष धारण करके मोहनिका नाम से असुरों को ठगकर अमृत लेने चले। गरुड उनकी सखी का वेष बनाकर निपुणिका नाम से साथ था। तभी वहां वलि अपने परिचर कुजम्भ के साथ आ पहुँचा। कपट-कामिनी के सौन्दर्य से वलि उत्कण्ठित हो चला। निपुणिका ने वलि से कहा कि यह लक्ष्मी की भगिनी है। उसने स्वप्न में कोई रमणीय युवा देखा और तब से—

अर्धादि करुणकं (?) का झम्पति का मलयगन्धवाहं।
का जीविते सतृष्णा कलकण्ठकुहूध्वनिं शृणुते॥ २.५

ऐसा लगता है कि स्वप्न में तुम्हीं को देखा है। वलि तो उस पर लट्टू था ही। वह वहां अमृत का प्राशन करने के लिए आया था और वहाँ शुक्राचार्य बुलाये गये थे। उन्होंने आकर उस मोहनिका को देखा और वलि से उसका परिचय पाया। वलि ने कहा कि यह मुझसे प्रेम करती है। शुक्राचार्य ने कहा कि बस, आगे बढ़ें। तभी नेपथ्य से सुनाई पड़ा कि समुद्र से प्राप्त सारी सम्पत्ति देवों ने छीन ली और युद्ध में दानवों को भगा दिया। वलि स्वपक्ष रक्षा के लिए जाना चाहता था। शुक्र ने कहा कि अमृत पीकर जाओ। वलि ने कहा कि अभी अन्य साथियों को आना है। तब तक मोहनिका अमृतकलश की रक्षा करे।

बलि ने मोहनिका से कहा—

पीयूषमेतद् दयिते गृहाण त्वमेव पीयूषमिदं वृथा मे।
सम्पूर्णकामा कतिचिन्मुहूर्तैर्भव प्रिये यामि रणोत्सवाय॥ २.१२

यह कहकर पीयूष-कलश उसे दे दिया। मोहनिका ने कहा कि युद्ध के आपके प्रस्थान करने पर मैं दो-तीन मुहूर्त प्रतीक्षा करूँगी। फिर इस निरुपयुक्त शरीर को अग्नि में छोड़ दूँगी। बलि चलता बना। मोहनिका ने निपुणिका (गरुड) को वह कलश रखने के लिए दिया और वहां से निर्विघ्न होकर वे दोनों चलते बने। इसके पहले मोहनिका ने अग्नि को स्मरण करके बुलाया। अग्नि में प्रवेश करने को उत्सुक मोहनिका से शुक्राचार्य ने निवेदन किया कि अभी रुकें, बलि आते ही हैं। मोहनिका ने कहा कि अधर्माचरण के लिए मुझे बाध्य करते हैं? शुक्राचार्य ने अग्नि का स्तम्भन करना चाहा। मोहनिका ने कहा कि आप जो चाहें करें। शुक्र का स्तम्भन व्यर्थ गया। उन्हें सन्देह हुआ कि कहीं विष्णु की माया तो नहीं है, जो बाधक बन रही है? उन्होंने ध्यान लगाकर सत्य का अनुसंधान किया और मोहनिका से बोले—

धिग् धिक् सुधां वार्धिविलोडनोत्थां
धिग् धिक् च तद् दुर्लभवस्तुजातम्।
किन्नाम नाप्तं दनुजप्रवीरै-
र्वैकुण्ठ यत् त्वं महिलीकृतोऽसि॥ २.१६

लक्ष्मी ने विष्णु से कहा कि पिता के दर्शन के बिना दुःखी हूँ। विष्णु ने कहा कि मैंने समुद्र को बुलाने के लिए वरुण को भेजा है। समुद्र से प्राप्त वस्तुओं में से वे जिसे जो देंगे, वह उसका होगा। तभी घोरान्धकार छा गया। अन्धड़ से चञ्चल होकर समुद्र से प्राप्त चन्द्रादि फिर समुद्र की ओर जाने लगे। उनकी रक्षा करनेवाले गरुड विषपायी शिव की स्थिति जानने गये थे। विष्णु स्वयं लक्ष्मी और पीयूष की रक्षा कर रहे थे। दिक्पाल रक्षक बने। इस बीच शिव का रूप बनाकर शुक्राचार्य आ पहुँचे। उन्होंने पीडा व्यक्त करते हुए कहा—

कृष्ण कृष्ण विलीयन्ते ममाङ्गानि विषोष्मणा।
देहि देहि तदेतन्मे पीयूषं किं विलम्बसे॥ ३.७

विष्णु को शंका हुई कि यह शिव नहीं है। शिव पर कालकूट का ऐसा प्रभाव नहीं होगा। उन्होंने ध्यान लगाकर जाना कि शिवरूपधारी यह शुक्र है। उन्होंने डांट लगाकर उन्हें भगाया। शिव तभी गरुड के साथ आ गये। शिव को सब कुछ ज्ञात हुआ। गरुड समुद्र को बुला लाये। ब्रह्मादि देवता आ गये। समुद्र आ पहुँचा। कपटी शिव से उनकी मुठभेड़ समुद्रतट पर हो चुकी थी। शिव ने समुद्र से कहा अपनी सभी वस्तुओं को ले लें। समुद्र ने कहा कि यह उचित नहीं। शंकर की

आज्ञानुसार उन सभी वस्तुओं को समुद्र ने देवताओं को बाँट दिया। विष्णु को लक्ष्मी मिली, साथ ही दक्षिणा-रूप में कौस्तुभ-मणि मिली। वरुण को वारुणी मिली। सांपों को विष मिला। पीयूष का आश्रय अग्नि हुआ।

समीक्षा

प्रथम अङ्क के आरम्भ में पद्मक की एकोक्ति अर्थोपक्षेपक कोटि में आती है। इसकी सामग्री अङ्क के भीतर न रखकर विष्कम्भक या प्रवेशक के माध्यम से प्रस्तुत की जानी चाहिए थी। ऐसा लगता है कि दृश्य और सूच्य का अन्तर अन्य नाट्यकारों की भांति वत्सराज की दृष्टि में भी क्षीण ही था।

अध्याय २४

वीणावासवदत्त

वीणावासवदत्त के रचयिता और रचनाकाल अभी तक प्रतिभात नहीं है । पन्द्रहवीं शती के वल्लभदेव ने सुभाषितावली में वीणावासवदत्त की नान्दी को उद्धृत किया है । इससे यह तो निश्चित हो जाता है कि इसकी रचना पंद्रहवीं शती के पहले हुई । भामह के काव्यालङ्कार में उदयन के महासेन के द्वारा वन्दी बनाने के प्रकरण में जो कथात्मक असम्भवनायें बताई गई हैं, उनसे इस नाटक की कथावस्तु को सर्वथा अछूता रखा गया है । भामह पाँचवीं-छठीं शती में थे । इससे कल्पना मात्र की जा सकती है कि इसकी रचना छठीं शती से चौदहवीं शती के बीच कभी हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी रचना तापसवत्सराज के पश्चात् हुई । तापसवत्सराज का प्रभाव इस नाटक पर स्पष्ट दिखाई देता है । समता का एक प्रकरण है दोनों नाटकों में सांकृत्यायनी का यह कहना है कि वत्सराज के द्वारा मैं उपकृत हूँ । उसने मेरी रक्षा की है । वीणावासवदत्त में यह भी कहा गया है कि मुझे यमुना में डूबते हुए वत्सराज ने बचाया था । तापसवत्सराज की रचना ८०० ई० के लगभग हुई । ऐसी स्थित में इसे ८०० ई० के पश्चात् रखना समीचीन है ।

वीणावासवदत्त में नायिका की प्राप्ति के लिए नायक जिस प्रकार का नाटक रचता है, उसका आदर्श बारहवीं शती के रामचन्द्र के नलविलास में मिलता है । इसके चतुर्थ अंक में कलहंस ने कहा है—नाटकस्येव प्रमदाङ्कुलरसशरणं सम्भावयामि निर्वहणम् । तीसरे अङ्क में नल ने कहा है—

> अङ्कं विधानमिव सन्धिषु रूपकाणां
> तुल्यं स्वयंवरविधिः सुखदुःखहेतुः ॥ ३.४

इन प्रसंगों को तत्सम्बन्धी वीणावासवदत्त के प्रसंगों से तुलना करने पर प्रतीत होता है कि वीणावासवदत्त परवर्ती रचना है और इसे तेरहवीं शती में रख सकते हैं ।

नाटकों में नित्य नयी-नयी युक्तियों को सन्निविष्ट करके कथानक को अधिक कौतूहलपूर्ण बनाया जाता था । इसमें नाटक के भीतर एक नाटक की योजना की गई है जिसमें वीणावासवदत्त के अनुसार नायक वत्सराज है, नायिका है वासवदत्ता और यौगन्धरायण, वसन्तक आदि क्रमशः सूत्रधार और विदूषक होंगे । नई बात यह है कि इस नाटक में सर्वथा आगे का कार्यक्रम पात्रों के द्विविध व्यक्तित्व के आधार पर प्रपञ्चित होता है । पहले के नाटकों में गर्भाङ्क या इस प्रकार का नाटक जहाँ-कहीं

प्रयोजित हुआ, वहाँ उस नाटक के नायक-नायिका आदि प्रमुख पात्रों से सम्बद्ध किसी पहले से ही घटी हुई घटना को रंगमञ्च पर दिखाया गया। प्रियदर्शिका, उत्तररामचरित और बालरामायण में इस प्रकार का नाटक के भीतर नाटक हुआ है किन्तु अगला कार्यक्रम इषन्मात्र अन्त में आ जाता है। इसमें तो सारी कथा ही नये अङ्क में एक नई घटना है, जिसका पहले के वृत्त से सम्बन्ध ही नहीं। वीणावासवदत्त की योजना पहले के सभी इस प्रकार की योजनाओं को अपनानेवाले से बढ़ कर उत्कृष्ट है। इसमें भी अन्य गर्भाङ्कवाले नाटकों की भाँति दर्शक पात्र नहीं बनते। दर्शक तो कोई है नहीं और न कोई समझ रहा है कि नाटक हो रहा है। पर नाटक तो हो ही रहा है। इसमें प्रत्येक नाटकीय पात्र के दो व्यक्तित्व हो जाते हैं, कुछ लोगों के लिए एक व्यक्तित्व और दूसरों के लिए दूसरा व्यक्तित्व। अन्त में उन दोनों व्यक्तित्वों का सामञ्जस्य कराकर नाटक की लीला को समाप्त किया जाना था। यह अभिनव योजना एक अनूठे कलाकार की है, जिसने संस्कृत के नाट्यसागर के इस अनुपम रत्न को अपूर्व निखार दिया है। *मुद्राराक्षस में पात्रों का द्विविध व्यक्तित्व भास के नाटकों की अपेक्षा* अधिक स्पष्ट मिलता है किन्तु वीणावासवदत्त के छठें से आठवें अंक तक जो व्यक्तित्व का वैविध्य है उसके सामने मुद्राराक्षस की यह योजना फीकी पड़ जाती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि वीणावासवदत्त की उपर्युक्त नाटक-योजना रामचन्द्र के नलविलास के नीचे लिखे प्रकरण पर आधारित है—

कपिंजला — एष पुनः कुसुमावचयप्रत्यूहकारी दुर्विपद्याधि-व्याधि-नाटक-प्रस्तावना-सूत्रधारः स्वजनः।

नलविलास नाटक में नल से कहलाया गया है—

कलहंस त्वमेवास्मान् नटकपटधारी ज्ञातवान्। किमपरं त्वमेवास्य दमयन्तीसंघटननाटकस्य सूत्रधारः।[1]

कथानक

उज्जयिनी के राजा प्रद्योत के मन्त्री शालङ्कायन (सूर्यदत्त) और वसुवर्मा अपने राजा तथा उसके प्रधान मन्त्री भरतरोहतक से चित्रमण्डप में मिलते हैं। राजा उनसे अपना स्वप्न बताता है कि सर्वगुणभूषण राजा से मेरी कन्या वासवदत्ता का विवाह होना स्वप्न में शिव ने स्वयं बताया। वसुवर्मा ने कहा कि ऐसा तो वत्सेश्वर उदयन ही है। राजा ने कहा कि उसे मैं अपनी कन्या न दूँगा। वह घोर अभिमानी है। किसी राजा को कुछ गिनता ही नहीं है। भरतरोहतक ने कहा कि उसके अभिमान की चिकित्सा करनी चाहिए। उसे यहां पकड़कर लाया जाय और उसके

१. वीणावासवदत्त के छठें अङ्क में नायक कहता है कि मैं जो नाटक कर रहा हूँ, उसमें यौगन्धरायण सूत्रधार है, सांकृत्यायनी नटी है, वासवदत्ता नायिका है। ऐसी ही योजना छठें अङ्क में वीणावासवदत्त में प्रतिरूपित है।

यहां रहते हुए परीक्षा भी कर ली जाय कि उसमें गुणावगुण क्या हैं? मन्त्रियों ने नीतिपथ का निर्माण किया कि उसके पकड़कर लाए जाने के अनेक लाभ हैं। चर से प्रधान मन्त्री को विदित हो चुका था कि वत्सराज हाथी पकड़ने के लिए चल पड़ा है। शालङ्कायन उसे पकड़ने के लिए नियुक्त किया जाता है।

वत्सराज यमुनातट पर शिलीन्ध्रक वन में हाथियों को पकड़ने के लिए २००० पदाति, १०० घोड़े और २० हाथियों को लेकर आया। उसका मन्त्री यौगान्धरायण राजधानी में ही रह गया और रुमण्वान् पुलिन्दों का विद्रोह शान्त करने के लिए व्याघ्रवन में गया था। वत्सराज को पकड़ने के लिए शालङ्कायन चतुरंगिणी सेना लेकर एक यान्त्रिक नील हस्ती को वन में आगे बढ़ाते हुए वहीं आ पहुँचा। राजा प्रद्योत का एक चर शिलीन्ध्रक षण्ड में वत्सराज से मिला और बोला कि मैंने नखदन्तवर्जित नीला हाथी देखा है। वह यमुना के किनारे सालवन में यहाँ से दो योजन पर है। राजा ने विष्णुत्रात मन्त्री से परामर्श किया कि यह नीलकुवलय नामक चक्रवर्ती हाथी है। उसे मुझे छोड़कर कोई नहीं पकड़ सकता। मन्त्री को राजा ने वहीं छोड़ दिया, यद्यपि उसने उस प्रत्यन्त प्रदेश में साथ रहने का आग्रह किया। राजा वीणा लेकर घोड़े पर नीलगज के चक्कर में चल पड़ा। एक पहर दिन रहते राजा जब साल में पहुँचा तो शत्रु के चर ने उसे नीलगज दिखाया। राजा ने वीणा बजाई। जिसे सुनकर चोर, सेनापति और उसका चेट आ पहुँचे। तभी राजा ने सुना भेरी-शंख-पटहादि का निनाद और समझ लिया कि यह हाथी वास्तविक हाथी का प्रतिनिधि मात्र कृत्रिम है और मैं फँसाया गया हूँ। उसने देखा कि सैनिक उज्जयिनी के हैं और प्रद्योत ने यह सब रचा है। राजा ने वीणा औपगायक को दी और स्वयं घोड़े पर चढ़कर शत्रु सेना से लड़ने के लिए उद्यत हुआ। प्रद्योत के मन्त्री शालङ्कायन ने कहा कि आप लड़ने का साहस न करें। आप को बिना कोई क्षति पहुँचाये हमारे राजा आपसे मिलना चाहते हैं। वत्सराज ने कहा कि इन शत्रु-सेनापति से साम से काम लूँ। उसने कृत्रिम मैत्रीभाव से कहा कि आप से मिलने का अच्छा सौभाग्य मिला। पास आइये। मैं आपको अपना सारा राज्यभार सौंप देना चाहता हूँ। शालङ्कायन ने कहा कि अपने राजा को छोड़ना मेरे लिए नरक का कारण होगा। राजा ने कहा कि आपको प्रधान मन्त्री गिराना चाहता है। शालंकायन ने कहा कि मैं तो राजा का भृत्य हूँ, मन्त्री का नहीं। वत्सराज के बहकाने में शालंकायन नहीं आया। फिर तो युद्ध प्रारम्भ हुआ केशाकेशी से। वत्सराज के सभी सैनिक मारे गये। उसने स्वयं भी शत्रु सेना के असंख्य वीरों को मारा। राजा को गहरी चोट आई। वह घायल होकर गिर पड़ा। शत्रु उसे पकड़कर चलते बने।

चार बनकर आई हुई सांकृत्यायनी नामक संन्यासिनी का भेजा हुआ पत्र यौगन्धरायण को मिला कि किस प्रकार बन्दी बनाकर वत्सराज को उज्जयिनी लाया गया है। कुछ समय के पश्चात् हंसक नामक घुड़सवार यौगन्धरायण से आकर

मिला। वह वत्सराज के साथ रहकर शालंकायनादि से लड़कर घायल हो चुका था। उसने वत्सराज के घायल होने का पूरा समाचार दिया। यौगन्धरायण ने उसे आदेश दिया कि आप नगर से बाहर जाकर घोषित कर दें कि वत्सराज मारा गया।

यौगन्धरायण ने कूटाक्षर में एक पत्र लिखा और उसे पत्रवाहक को देकर कहा कि आज रुमण्वान् आनेवाला है, उसे यह पत्र दे देना। यौगन्धरायण की चाल के अनुसार हंसक नगराध्यक्ष के साथ लौट आकर उसे सूचना देता है कि वत्सराज मार डाला गया। योजनानुसार यौगन्धरायण राजा की मृत्यु के शोक में चिता में जल मरने का कार्यक्रम कार्यान्वित करता है। उसने चक्षुर्मोहिनी विद्या से लोगों की आँख बाँधी और चिता में प्रवेश की घोषणा करके चलता बना और उज्जयिनी जा पहुँचा।[1]

उज्जयिनी में वत्सराज के विदूषक और हंसक डिण्डिक वेश में देवकुल में मिलते हैं। विदूषक महाराज प्रद्योत के संग लग गया था। उसे हंसक ने बताया कि वत्सराज की राजधानी कौशाम्बी पर पाञ्चालराज का अधिकार हो गया है। वत्सराज के सब भाई युद्ध में मारे गये हैं। रुमण्वान् युद्ध में भगा हुआ-सा बनकर उज्जयिनी से कौशाम्बी तक अपने लोगों के कृषि, वाणिज्यादि कामों में लगे हुए के बहाने से स्थापित कर चुका है। नलागिरि नामक प्रद्योत के हाथी को औषधिप्रयोग से मत्त बना दिया गया है। विशाख की अध्यक्षता में वेश बदलकर उज्जयिनी में पड़े ५०० सैनिक अवसर की प्रतीक्षा में थे।

इधर यौगन्धरायण की योजना के अनुसार नलगिरि हाथी छूटकर सड़क पर आ गया। उसे पकड़ने के लिए एकमात्र उदयन ही समर्थ था। राजा के सामने प्रश्न था कि यदि उदयन को हाथी पकड़ने के लिए छोड़ा गया और वह उसी पर बैठकर भाग जाय तो सारा प्रयास व्यर्थ जायेगा। उसे भागने की स्थिति में पकड़ने के लिए १०,००० सैनिक नियुक्त किये गये।

प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता वीणा सीखना चाहती थी, पर उसे योग्य वीणा नहीं मिल रही थी, उसकी माता उसे लेकर राजा के पास गई और कहा कि आश्चर्य है कि मेरी कन्या के लिए वीणा नहीं है। राजा ने कहा कि इसे वीणा सिखाने की चिन्ता इसका पति ही करे। उसी समय कंचुकी वह वीणा लेकर आ पहुँचा जिसे सैनिकों ने उदयन को पकड़ते समय पाया था। उसे देखते ही वासवदत्ता ने पिता के पूछने पर कहा कि इसे देखते ही मुझे स्नेह हो रहा है। राजा ने कहा कि यह तुम्हारे ही लिए यहां लाई गई है। तभी उस वीणा को हाथी पकड़ने के लिए आवश्यकता पड़ने पर उदयन के पास कंचुकी लेकर चला गया। महारानी ने पूछा यह वत्सराज उदयन कौन है? राजा ने कहा कि इस वीणा का पति है। वासवदत्ता उसका नाम सुनकर नाममाधुर्य से उसके प्रति स्नेहपरायण हो गई। इन सबने देखा

1. नाटकीय शब्दावली में यह कूटनाटक बटना है।

कि उदयन वीणावादक बनकर हाथी को वस में कर रहा है। उसके अनुभाव को देखकर सभी चकित थे। राजा ने रानी के पूछने पर बताया कि इसको मृगया के अति व्यसन से मुक्त करने के लिए मैं इसे पकड़कर लाया। उधर उदयन हाथी को पकड़ने के लिए वीणा बजाने लगा। वासवदत्ता ने मन ही मन कहा कि मेरी सखी वीणा कहीं अनाथ न हो जाय। हाथी ने अन्त में उदयन को प्रणाम किया। राजा उसकी पीठ पर जा बैठा। वीणा पुनः वासवदत्ता के पास आ गई। वत्सराज उसी वातायन से होकर गुजरा, जहां राजा, रानी और वासवदत्तादि बैठकर उसे देख रहे थे। उसे निकट देखकर वासवदत्ता का प्रेम उमड़ पड़ा। उसे उदयन ने भी देखा तो प्रतिक्रिया हुई—

> सस्नेहं सविलासं सव्रीडं सेङ्गितं सविभ्रान्तम्।
> दृष्टिं निपातयन्ती मयि स्थिताग्रे मणिस्रग्धा ॥ ४.२२

राजा ने उसकी माता को उसे वासवदत्ता कह कर पुकारते सुना तो कहा—वासवेन विना कोऽन्यो दद्यादेनाम्। इयं हि—

> अमृतरसमयीव हृद्यभावादतिमदनीयतया सुरामयीव।
> शशिकिरणमयीव कान्तिलक्ष्म्या कुवलयरेणुमयीव सौकुमार्यात् ॥ ४.२३

राजा ने उसका पराक्रम देख कर उसे अपना पुत्र मान लिया। उदयन ने निर्णय किया आज तो नहीं, पर भविष्य में वासवदत्ता के साथ इसी हाथी पर बैठकर भागना है। तभी यौगन्धरायण पागल के वेश में आकर राजा से बोला कि मेरे साथ ५०० अन्य सहायक हैं। आप भाग चलें। राजा ने मन में सोचा कि वासवदत्ता के साथ मेरी प्रणयगाथा को यह नहीं जानता। उसने कहा कि मैं थका हूँ। आज नहीं जाऊँगा।

प्रेमप्रवाह के प्रथम झञ्झा में वासवदत्ता अस्वस्थ हो गई। उसे देखने के लिए भगवती सांकृत्यायनी बुलाये जाने पर बोली कि रात के समय देवगृह में एक मन्त्र पढ़ती हुई देख कर मेरे शरीर में आविष्ट देवता से पूछा जाय कि क्या कारण है वासवदत्ता की अस्वस्थता का और क्या उपाय किया जाय? यह योजना कार्यान्वित की गई। सांकृत्यायनी ने वासवदत्ता के पास आने पर कहा कि तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा। तुम अपने प्रियतम उदयन को देखोगी। वासवदत्ता के चले जाने पर राजा, रानी आदि आये। सांकृत्यायनी ने उनसे बताया कि एक दिन जब वह वातायन से चन्द्रोदय देख रही थी तो उसे आकाश में विचरण करते हुए किसी गन्धर्व ने देख लिया। उसने इसके हृदय को मोहित कर दिया। तभी से यह सम्मूढ है। राजा ने गन्धर्व के प्रभाव को दूर करने का उपाय पूछा तो उसने कहा कि जहाँ उदयन रहता है, वहाँ गन्धर्व नहीं रहते। वह सभी गन्धर्वों का आचार्य है और तुम्बरु के शाप से मनुष्य रूप में उत्पन्न हुआ है। राजा ने तदनुसार कार्य किया।

उदयन मुक्त कर दिया गया। प्रद्योत के यहाँ उसका सम्मान बढ़ा। उसके साथ प्रेमपूर्वक बातचीत होने लगी। एक दिन विदूषक से बातचीत करते हुए उसने बताया कि अब तो एक नाटक का प्रयोग करना है, जिसमें यौगन्धरायण सूत्रधार, सांकृत्यायनी नटी, उदयन नायक, वासवदत्ता नायिका होंगी। विदूषक ने कहा कि मैं तो नायिका के साथ नाचूँगा। विदूषक ने कहा कि यौगन्धरायण इस नाटक के पक्ष में है। उदयन को विदूषक से ज्ञात होता है कि पाञ्चालराज आरुणि ने कौशाम्बी जीत ली है। उस समय उसे भरतरोहतक ने आकर बताया कि वासवदत्ता को गान्धर्व-विद्या सिखाने के लिए प्रद्योत आपको उसका आचार्य बनाना चाहते हैं। उदयन उद्यत हो गया। वह उसी समय राजा प्रद्योत के पास जाने के लिए विदूषक के साथ रथ पर चल पड़ा। सभी कन्यान्तःपुर द्वार पर पहुँचे। उदयन वासवदत्ता के अन्तःपुर में जा पहुँचा। सांकृत्यायनी की उपस्थिति में वासवदत्ता का वीणा-विद्यारम्भ हुआ। राजा ने अपने आशीर्गान की संगति में वीणा बजाई। तब तो सभी मुग्ध हो गये। राजा ने भारतमाता की स्तुति की—

> चतुरुदधिजलाम्बरां वरां
> फलभरपिञ्जरशालिमालिनीम्।
> चिरमवतु नृपो हताहितां
> हिमगिरिविन्ध्यपयोधरां धराम्॥ ७.६

वीणा की शिक्षा के साथ ही नायक-नायिका का परस्पर प्रेमोन्माद बढ़ा। विदूषक ने नायक से कह दिया कि आज तो तुम आचार्य हो, कुछ ही दिनों में वासवदत्ता ही तुम्हारी आचार्या बन जायेगी। राजा की दृष्टि ही नायिका के प्रत्येक अङ्ग में बँध गई। विदूषक ने नृत्य किया। वासवदत्ता ने उसे पारिश्रमिक दिया—अंगुलीयक। उसे वह लड्डुओं के विनिमय में देना चाहता था। राजा ने उसे स्वयं ले लिया। उसने अंगूठी के स्पर्श को नायिका संस्पर्श माना।

उदयन समझता था कि वासवदत्ता के प्रति उसका प्रेम-व्यापार प्रद्योत के अनजाने हो रहा है। उसने अपनी मदनग्लानि को छिपाने के लिए एक मिथ्या प्रपञ्च का सहारा लिया कि नर्मदा नामक बन्धकी से उसका प्रेम चल रहा है। उसके पास उदयन की ओर से उपहार भेजा गया और विदूषक ने इसका प्रचार उदयन की इच्छा से किया।

वासवदत्ता का उदयन के प्रति प्रेम प्रकृष्टतम कोटि पर पहुँच चुका है। रात्रि के समय वह नायिका के साथ रहता था। ऐसी स्थिति में चेटी ने उसे बताया कि वह तो नर्मदा के चक्कर में है। वासवदत्ता की सखी काञ्चनमाला को विश्वास नहीं पड़ रहा था कि उदयन जैसा महानुभाव इस प्रकार नीचे गिरेगा। इस सम्बन्ध में सांकृत्यायनी से पूछकर ही तथ्य जाना जा सकता है—यह वासवदत्ता की मण्डली

का निर्णय हुआ। उधर से सांकृत्यायनी आ निकली। उसे वासवदत्ता को उदयन का पत्र देना था। बातचीत के बीच वासवदत्ता ने सांकृत्यायनी से स्पष्ट कह दिया कि मैं उदयन को नहीं चाहती। बात बढ़ने पर सांकृत्यायनी ने बताया कि किसी विशेष प्रयोजन से उदयन ने नर्मदा से प्रेम का ढोंग किया है। उसने उदयन से अपने सद्भाव का कारण बताया कि जब मैं यमुना ह्रद में डूब रही थी तो उसने मुझे बचाया था।

वासवदत्ता ने अन्त में सांकृत्यायनी से पूछा कि मुझसे उदयन वस्तुतः प्रेम करते हैं—यह मैं कैसे प्रतीत करूँ? सांकृत्यायनी ने प्रेमपत्र दिया। पत्र गीत रूप में दो पद्यों में था—

> दृष्टा यदा त्वनुडुराजसमानवक्त्रे
> नष्टा तदाप्रभृति मे क्षणदा सुनिद्रा।
> सर्वेष्वभूदरतिरेव मनोहरेषु
> जातं निदाघदिवसैः श्वसितं समानम् ॥ ८.९
>
> दहति मदनवह्निः स्नेहहव्यो मनो मे
> अनिवचनजलैस्तं साधु निर्वापय त्वम्।
> वरतनु तव शय्यावेश्मदाहेऽप्युपेक्षा
> भवति हि सुदति त्वां तेन विज्ञापयामि ॥ ८.१०

यहीं तक कथा आठवें अङ्क के अन्त तक प्रकाशित पुस्तक में मिलती है।

समीक्षा

नायिका की ओर से नायक को पाने का प्रयास संस्कृत साहित्य में कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होते हैं। भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में उदयन और वासवदत्ता की इस प्रकार की कथा को काव्यात्मक रूप दिया था। इसकी अपूर्व लोकप्रियता देखकर वीणावासवदत्त का प्रयास परवर्ती युग में किया गया।

वीणावासवदत्त में रंगमंच पर कोरे संवाद के द्वारा कार्य वृत्ति का उद्घाटन नहीं होता, अपितु प्रायशः घटनाओं का अभिनय भी होता है। संस्कृत नाटकों में यह विशेषता असाधारण है।

वीणावासवदत्त में कूटनाटक घटनाओं की परम्परा है। महासेन का उदयन को पकड़ना, यौगन्धरायण का चिता में जल मरना, सांकृत्यायनी के द्वारा उदयन को गन्धर्वाचार्य घोषित करना और उदयन का वन्धकी नर्मदा से प्रणय-व्यापार—ये सभी कूटनाटक घटनायें हैं। भास के स्वप्नवासवदत्त में कूटनाटक घटना है। वासवदत्ता सम्बन्धी वृत्त जलने के समय से उसके पुनः उदयन द्वारा स्वीकृत होने तक। भास के अन्य नाटकों में भी कूटनाटक घटनायें हैं।

नेतृपरिशीलन

कवि ने वीणावासवदत्त में आदर्श नायक की कल्पना की है। यथा,

> अतीव दीर्घायुरतीव शूरः शस्त्रैरवध्यो मतिमान् कृतास्त्रः।
> श्रियः परं धाम च सार्वभौमः स्वस्थं विजित्यैष्यति शत्रुसंघान्॥

अनेक पुरुषों को इस नाटक में अपने चरित्र के ठीक विपरीत काम करना पड़ रहा है। महाराज प्रद्योत को उदाहरणरूप में लें। वे प्रत्यक्ष रूप से वत्सराज को पीड़ा पहुँचा रहे हैं, किन्तु वास्तव में उसे अपना दामाद बनाना चाहते हैं। उक्ति है—

> यद्यप्यहं त्रिनयानुमतं प्रविश्य
> तं पीडयाम्युदयनं गुणभावनार्थम्।
> चेतस्तथापि मम वेपत एव नित्यं
> स्नेहः क साम्प्रतममर्पविपं क च प्राक्॥ ४.२

वीणावासवदत्त की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी विशेषता है कतिपय पुरुषों का चारित्रिक विकास। इसका उदाहरण स्वयं नायक है—

> आकुमारमभिहन्तुममर्षाद् बद्धवान् सुदृढनिश्चितकल्याम्।
> संप्रविश्य हृदयं मम साक्षात् साममोचयत वासवदत्ता॥ ६.४

इसमें धीरोद्धत की रौद्र प्रवृत्ति को शृङ्गारित कर देने की चर्चा है।

शब्दशैली

अनेक शब्दों के प्रयोग अपने अर्थ का बहुव्रीहि समास द्वारा साक्षाद्दर्शन कराते हुए कवि के विशेष अनुसन्धान प्रतीत होते हैं। यथा, पत्रवाहक के लिए पत्रहस्त, रेकर्डरूम के लिए लेखावास, पत्र का दूसरे के हाथ पहुँच जाने के लिए लेखविसंवाद, गोधूलिवेला के लिए निशामुख।

कहीं-कहीं नाटक में चित्रशैली का प्रयोग है। कांचुकी निद्रा का वर्णन है—

> एष खलु मीनमध्यगतो बक इवैको निद्रायते।

कवि ने अपनी शैली का परिचय देते हुए कहा है—अल्पैरक्षरैरनल्पमुक्तम्। अर्थात् थोड़े अक्षरों में बहुत कह दिया। इस नाटक में आद्यन्त दिखाई पड़ता है कि छोटे-छोटे वाक्यों द्वारा प्रत्येकशः नन्हें-नन्हें संवाद प्रस्तुत हैं। यथा,

> यौगन्धरायणः — नाहं तेषां भृत्यः।
> ब्राह्मणः — भोः दुःखं ननु चिताप्रवेशः।
> यौग० — तस्मादपि दुःखतरं स्वामिनो वियोगः।
> ब्राह्मणः — रक्षितव्या ननु प्राणाः।

यौग० — ततोऽपि प्रतिज्ञा ।

ब्राह्मणः — वन्ध्यो ननु निष्कारणो जीवितत्यागः ।

यौग० — भर्तृदर्शनहेतुत्वादवन्ध्यः ।

ब्राह्मणः — अनियतं हि तत् ।

यौग० — अनिश्चितानामेतत् ।

ब्राह्मणः — सन्दिग्धा ननु परलोकाः ।

यौग० — निस्सन्दिग्धा मम ।

ब्राह्मणः — न शक्यमन्यस्मात् परं वक्तुम् ।

ऐसे चटुल और स्वाभाविक संवाद संस्कृत साहित्य में विरल हैं ।

वीणावासवदत्ता के पद्यों के चरण भी नन्हें-नन्हें होने के कारण संवादोचित हैं । यथा,

> समिवद्दिजपौरयोषितां वदनैः सन्ततबाष्पवर्षिभिः ।
> नलिनीव विराजते पुरी प्रचुरासारजलार्द्रपंकजा ॥ ३.१४

कहीं-कहीं अनुप्रास का अनुरणन मनोरम है—

> किमियं घोषवती सा बध्यन्ते वारणा यया हृदये ।
> मदमधुकलिनालिकुलप्रलापकलिलायतकपोलाः ॥

इसमें म, क, ल आदि का अनुप्रास स्पष्ट है । स्वरों का अनुप्रास कहीं-कहीं सुनियोजित है । यथा,

> विलसदसिलहस्ते दन्तिदन्ताग्रशुभ्रे
> प्रचुररुचिरधारे व्याप्तनाराचजाले ।
> रणशिरसि करिष्ये वैरसाराधनारं
> सरुचिवसन्निवन्धोरायुषा तस्य सार्धम् ॥ ६.७

प्रकृति से रमणीयतम वस्तुओं को उपमान रूप में संजोया गया है । यथा,

> रुचिराङ्गुलिपल्लवाः स्पृशन्ति
> मधुधाराः कपिलाः क्रमेण तन्त्रीः ।
> भ्रमतां निवहन्ति तुण्डलीलां
> बकुलापिञ्जरपञ्जरे शुकानाम् ॥ ७.१

इसमें उपमान हैं पल्लव, मधुधारा, तुण्ड आदि ।

संस्कृत में विरल ही नाटक हैं, जो संवाद के चोखेपन की दृष्टि से वीणावासवदत्त की तुलना कर सकते हैं । चटे-चुने पदोंवाले छोटे वाक्यों से संवाद स्वाभाविक लगते हैं । दो चार वाक्यों से अधिक कोई वक्ता एक साथ बोलता भी नहीं ।

कला

युद्ध का दृश्य रङ्गमंच पर अभिनीत नहीं होना चाहिए। अन्य कई नाटककारों ने जहाँ युद्ध का वर्णन युद्ध के पश्चात् अन्यत्र कराया है, वहाँ इस नाटक में युद्धभूमि में खड़े युद्ध के दर्शक आँखों देखा जैसा युद्ध का वर्णन प्रस्तुत करते हैं। यथा,

चोरः — अरे पश्य, पश्य। एष खलु राजा त्वरिततरमश्वादवरुह्य हरिणप्लुतकेनोप्लुत्य कैशिकमार्गेण प्रहारेण—

निकृत्तवान् द्विरदपतेर्महाभुजं
महासिना सदशनमश्मकर्कशम्।
पतन्नसौ व्यपगतजीवितोऽवधीत्
स्वशास्त्रिणः स्वयमचलाभविग्रहः ॥ २.२७

इस नाटक में अर्थशास्त्र और मुद्राराक्षस के अनुरूप कुटिल नीतिपथ का अनुसरण कार्यरूप में सुपरिणत है। यौगन्धरायण झूठे ही घोषणा कराता है कि वत्सराज मारा गया। वह कूटाक्षर में पत्र लिखता है, जिसे केवल रुमण्वान् और राजा समझ सकते हैं। वह चक्षुर्मोहिनी विद्या के द्वारा स्वयं आग में कूदकर दूसरों के लिए मरा हुआ भी बचकर उज्जयिनी जा पहुँचता है। विदूषक उभयवेतन बन चुका था।

कथा की भावी प्रगति का स्पष्ट संकेत करते हुए कथानक बढ़ाया गया है। यथा यौगन्धरायण चिता से बचकर निकल भागते समय कहता है—

उन्मत्तवेषः सुखमुज्जयिन्यां भ्रान्त्वा यथार्हं प्रतिपद्य कार्यम्।
इहागमिष्यामि सहैव भर्त्रा विकासयन् पौरजनाननानि ॥ ३.१७

इसी प्रकार नलागिरि को पागल बनाकर उसे वश में करके वत्सराज को भगाने की योजना पहले से ही चतुर्थ अंक के प्रवेशक में बता दी गई है। पूर्वसूचना से कथानक सुबोध भले हो जाय, किन्तु उसमें दर्शक की रुचि क्षीण हो जाती है।

घटनाओं का विन्यास सर्वथा सक्रम बनाने की कला में कवि दक्ष है। प्रद्योत ज्यों ही कहता है कि बहुत समय तक उदयन को कष्ट दिया जा चुका है। अब उसे छोड़ने का उपाय क्या है? तभी वसुवर्मा आकर कहता है कि नलागिरि हाथी छूट कर सड़क पर उत्पात मचा रहा है। उसे पकड़ने के लिए उदयन को स्वतन्त्र करना आवश्यक ही था।

एक नवीनता है कवि के सौन्दर्यदर्शन में—

द्विरदललितयानो यात्यसौ राजमार्गे
प्रमुदितनरनारीदृष्टिभिः कीर्यमाणा।
कुवलयदलदृष्ट्या सर्वतः पूज्यमानः
प्रतिनव इव रम्यो जंगमो हेमयूपः ॥ ४.१७

कहीं-कहीं प्रकृति का मानवीकरण संकलित है—

गवाक्षजालान्तरतः प्रभास्वराः प्रविष्टवन्तः सवितुर्मरीचयः।
स्थितं तमोऽन्वेषयितुं गृहोदरे प्रवेशिताङ्गुल्य इवांशुमालिना॥

भावोत्थानपतन

वीणावासवदत्त में भावों का उच्चावच उत्थान-पतन कलात्मक विधि से दिखाया गया है। द्वितीय अङ्क में राजा नीलगज को वीणा बजाकर पकड़ने के लिए समुत्सुक है। उसी समय उसे पकड़ने के लिए शत्रुसेना सन्नद्ध दिखाई पड़ी। भाग्य का परावर्त नायक के शब्दों में है—

वद्धः पुरा चरणयोः परिगृह्य नील-
नागच्छलेन विपुलायसशृंखलाभिः।
बद्धोऽस्मि साम्प्रतमहं हृदि राजपुत्र्या
स्नेहप्रकर्षनिगडैः सुदृढैस्ततोऽपि॥ ६.१

यह तो लोहे की बेड़ी के स्थान पर स्नेहप्रकर्ष की बेड़ी की परिवृत्ति है। भाग्य का वैचित्र्य है—

मम प्रसादाभिमुखाः सदाभवन् नरेश्वरा भृत्यवदेव भूयशः।
परप्रसादार्थितयाऽहमन्वितः किमन्यदस्मादधरोत्तरं भवेत्॥ ६.२

इसी प्रकार अष्टम अङ्क में जब वासवदत्ता उदयन के प्रेम-प्रकर्ष की अनुभूति में चरम प्रहर्ष में पगी है, तभी चेटी आकर उससे कहती है—वत्सराजेन नर्मदा काम्यते। उसने यह भी बताया कि राजा प्रद्योत ने नर्मदा को उसे दे दिया है।

व्यंग्योक्ति

कवि की शैली व्यंग्योक्तियों से प्रभविष्णु बनी है। कुछ उक्तियाँ इस प्रकार हैं—

लकुटस्थानीयस्त्वं तस्य संवृत्तः।

कवि की व्यञ्जना-प्रवण पदावली का आदर्श है—

गात्रेषु देव्या निपतत्यतुल्यं
श्रीमत्सु दृष्टिर्मम यत्र यत्र।
ततस्ततोऽसौ महता श्रमेण
श्लेषाववद्धेव पुनर्व्यपैति॥ ७.१०

लोकोक्तियाँ

वीणावासवदत्त लोकोक्तियों की अतुलनीय निधि है। इसमें असंख्य उक्तियों यथास्थान सन्निविष्ट हैं। सूक्तियाँ प्रायः सूत्ररूप में छोटी-छोटी हैं—

१. अवन्ध्यफला हि दैवस्याभिप्रायाः ।
२. अग्नय इव नात्यासन्ने नातिदूरे स्थित्वा ननु सुखसेव्या राजानः ।
३. प्रेम्णा सहैव सततं भ्रमतीव दुःखम् । ३.२
४. स्वामिमूलं हि सर्वम् ।
५. अनियतं हि निमित्तं नाम ।
६. न विद्यते किंचन जीवलोके प्रत्यर्थिभूतं भवितव्यतायाः । ३.५
७. दैवं मुख्यतमं नयादि सकलं खेदावहं केवलम् । ३.६
८. शौर्यं नयश्च महति व्यसने प्रथेते । ३.६
९. सिंहा यथा परपराक्रमसाधितानि
खादन्ति नैव पिशितानि बुभुक्षयार्ताः ।।
दुःखे महत्यपि तथैव परेण लब्धान्
वाञ्छन्त्यसूनपि न मानधना महान्तः ।। ३.१२
१०. युद्धं नामानियतजयम् ।
११. समानवंश्या ननु राज्ञां रिपवः ।
१२. रक्षितव्या ननु प्राणाः ।
१३. सन्दिग्धा ननु परलोकाः ।
१४. बहुजनप्रत्यक्षं नामाविचारणीयं भवति ।
१५. हस्तिना वञ्चितस्य हस्तिनैव प्रतिवञ्चनम् ।
१६. निश्छिद्रं सर्वं कृतम् ।
१७. अपायशंकापुरस्सरा हि स्नेहपरता नाम ।
१८. रत्नमेव हि रत्नं भजते ।
१९. सर्वत्रातिप्रसङ्गो व्यसनम् ।
२०. दिवैव चन्द्र उदितः ।
२१. पुरुषः प्रियदर्शनः ।
२२. सुखपरितोष्यं गुरुहृदयं नाम ।
२३. न तपो वेषेण दूष्यते ।
२४. कोपो नामाऽनियतफल एव पुंसाम् ।
२५. अतीव कामो निष्करुणः ।
२६. इदं तत्पटान्तेनाग्निग्रहणं नाम ।
२७. दीर्घसूत्रता नाम दीर्घसूत्रमिव बहुविघ्नमुत्पादयति ।
२८. चक्षुर्नामान्यत् पश्यति, आत्मानं न पश्यति ।
२९. यत्र शशी प्रविशति तत्र ननु प्रविशन्त्येव रश्मयः ।
३०. निर्माक्षिकेदानीं मधुपिण्डिका संवृत्ता ।
३१. गुणेषु गुणो रज्यते ।

३२. किं राजहंसः काकीं कामयते ।

३३. पुरुषा नाम अतीव अनाचाराः ।

३४. सर्वास्ववस्थास्वतिमधुरतां प्रयास्यति सौभाग्यम् ।

गीततत्व

वीणावासवदत्त में वीणा के साथ संगीत होना स्वाभाविक है। स्वयं वत्सराज वीणा बजाते हुए गाता है—

निरुपमबलवीर्यशौर्यतेजः कुवलयनीलतनो मनोज्ञवंश ।
शृणु वचनमनेकवप्रवर्ह व्रज वशतां मम भद्र भद्रमस्तु ॥ २.११

वासवदत्ता को वीणा सिखाते हुए वह गाता है—

विष्णोर्जयत्यरुणताम्रतलः स पादो ।
यः प्रोज्झितः सललितं त्रिजगत् प्रमातुम् ॥ ७.४

पूर्वरागापन्न गीत है—

स्नेहार्द्रयोः सभयमर्धनिरीक्षितं यद्
यद् दृष्टनष्टहसितं दशनाग्रगौरम् ।
लज्जाप्रगल्भमसमाप्तपदं वचो यत्
तन्मन्मथप्रियतरं परमं प्रशस्तम् ॥ ५.४

अध्याय २५

पारिजातमञ्जरी

मालवा में धारा के मदन कवि की विजयश्री या पारिजातमञ्जरी चार अंकों की नाटिका है।[1] इसके केवल दो अङ्क अभी तक प्राप्त हुए हैं, जो धारा में भोजशाला-सरस्वती-मन्दिर की एक शिला पर उत्कीर्ण हैं। अन्य दो अंक, जो किसी दूसरी शिला पर उत्कीर्ण थे, अभी तक अप्राप्य हैं। इसकी रचना अर्जुनवर्मा की प्रशस्ति रूप में लगभग १२१३ ई० में की गई है। अर्जुन भोज के वंश में धारा का राजा था। भोज ग्यारहवीं शती के पूर्वार्ध में हुआ और अर्जुनवर्मा का उसके लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् १२१० ई० में अभिषेक हुआ। अर्जुन का पिता सुभट था।

मदन गौड (बंगाल) देश का कविराज था। कवि की उपाधि बालसरस्वती थी। वह अर्जुनवर्मा का गुरु था। उसके द्वारा विरचित अर्जुनवर्मा के द्वारा ताम्रपत्र १२११, १२१३ और १२१५ ई० के मिलते हैं। ताम्रपत्रों से प्रमाणित होता है कि पारिजातमंजरी और ताम्रपत्रों का रचयिता एक ही व्यक्ति है और वह मदन है।

पारिजातमंजरी का प्रथम अभिनय वसन्तोत्सव के अवसर पर धारा में हुआ था। इसकी रचना १२१३ ई० के लगभग हुई थी।

कथानक

अर्जुनवर्मा ने गुजरात के राजा जयसिंह को युद्ध में हरा दिया था। विजयी राजा हाथी पर बैठा था। तभी देवताओं के द्वारा की हुई पुष्पवृष्टि से एक पारिजात-मंजरी उसकी छाती पर गिरी, जो स्पर्श करते ही रमणीय कुमारी के रूप में परिणत हो गई।[2] उस समय आकाशवाणी हुई—

मनोज्ञां निर्विशन्नेतां कल्याणीं विजयश्रियम्।
सदृशो भोजदेवेन धाराधिप भविष्यसि॥ १.६

---

१. पारिजात-मंजरी का प्रथम प्रकाशन कीलहार्न ने किया, जिसकी प्रति संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी में है। संस्कृत-अंग्रेजी-टीकासहित द्वितीय प्रकाशन १९६३ में भोपाल से श्री सदानन्द-काशिनाथ दीक्षित ने किया है।

२. इससे प्रतीत होता है कि वह कन्या युद्ध में प्राप्त हुई थी। यथा—

सूत्रधार — अन्तःपुरवनिताश्च द्विरदघटाश्चाशु गुर्जरनरेन्द्रस्य।
श्रृंखलिता यदनीकैः स एष सुभटक्षितीन्द्रः॥ १.१०

नटी — अन्तःपुरिकेव काप्येषा।

राजा ने उसे कंकुची कुसुमाकर के हाथ में सौंप दिया। कुसुमाकर धारागिरि पर अपनी पत्नी वसन्तलीला के साथ प्रमदवन की देख-रेख करता था। अर्जुनवर्मा नायक का पारिजातमञ्जरी नायिका से प्रणय-व्यापार चला।

वासन्तिक रमणीयता को उत्सव रूप में धारानगरी अपना रही थी। नायक की पत्नी सर्वकला ने उसे वसन्त की प्रथम मंजरी दी। विदूषक ने उसे कुसुममंजरी नाम देकर नायक को पारिजातमञ्जरी का स्मरण करा दिया। उत्कण्ठित था वह राजा अपनी नायिका के समागम के लिए। तभी चैत्रोत्सव मनाते हुए नागरिकों का सिन्दूर, कस्तूरी, चन्दनचूर्ण आदि से परस्पर रागरंजन आरम्भ हुआ। रमणियों का नृत्य जनमनोमोहन था। हिन्दोलक राग से सारा वातावरण रस-निर्भर था। रानी ने राजा को सिन्दूर अर्पण किया।

रानी को स्मरण हो आया कि आज ही सहकार वृक्ष का माधवी लता से विवाह आयोजित है। उसके निमन्त्रण देने पर राजा को भी वहाँ जाना ही था। राजा का ध्यान अपनी नई प्रेयसी पारिजातमंजरी में लगा था। उसने विदूषक से स्पष्ट कहा कि इस मंजरी को मुरझाई हुई देखकर अब तो प्राणेश्वरी पारिजातमंजरी के लिए उत्कण्ठा है। वह विदूषक के साथ प्राणेश्वरी से मिलने के लिए लीलोद्यान में चला गया।

राजा को सहकार और माधवीलता का विवाह पहले देखना था। वहीं राजा का दर्शन करने के लिए पारिजातमंजरी छिपी हुई खड़ी थी। उसकी पालिका ने उसे व्यञ्जना का अर्थ बताया कि तुम माधवीलता हो। पालिका ने पारिजातमंजरी को इस प्रकार खड़ा कर दिया कि उसकी छाया रानी के किसी आभरण में राजा को दिखाई दे।[1] राजा उस छाया को एकटक देखता रहा। राजा तो उसे देखते ही मन ही मन गाने लगा—

> उच्छ्वासि स्तनयोर्द्वयं तदपि यत्सीमाविवादोल्बणं
> लीलोल्लेखि गतं तदप्यनुपमं श्रोणिश्रिया मन्थरम्।
> दीर्घं दृग्युगलं तदप्युपगतं लास्येन किंचिद्भ्रुवो-
> रेतस्यास्तनु मध्यमं विजयते सौभाग्यबीजं वयः॥ २.५१

रानी ने भाँप लिया कि राजा की दृष्टि कहीं और ही है। उसे राजा की धूर्तता का अनुमान हुआ। वह आवेशवश चलती बनी। पारिजातमञ्जरी भी यह सब देखकर

---

१. नायक या नायिका का छाया द्वारा परस्पर दर्शन कराना परवर्ती कवियों का भी अभीष्ट रहा। हस्तिमल्ल ने तेरहवीं शती के अन्तिम भाग में विक्रान्तकौरव लिखा, जिसमें नायिका को अपने दर्पण में नायक की छाया देखने को मिली।

चली गई। विदूषक ने राजा से कहा कि जो कुछ होना था, हुआ। आप तो अब नई प्रेयसी को सम्भावित करें। वे उससे मिलने के लिए मरकत मण्डप में चले गये। उससे वहाँ मिलने का कार्यक्रम पहले ही बन चुका था। नायिका आ गई। राजा ने फूल चुन कर एक-एक से नायिका पर प्रहार किया। इससे तो वह मूर्च्छित हो गई क्योंकि उसने समझा कि मुझे प्रत्यक्ष होकर कामदेव पुष्पवाण से मार रहा है। उसकी सखी ने बताया कि यह कामदेव नहीं अपितु तुम्हारे प्रेमी महाराज अर्जुनवर्मा हैं। नायिका ने कहा कि वे तो परवश हैं। उनसे प्रेम कैसा? यह कह कर वह जाने लगी तो राजा ने उसे पकड़ लिया। उसे मान छोड़ने के लिए कहकर प्रणाम किया। नायिका दूर हटती जा रही थी। विदूषक ने कहा कि विजयश्री को शीघ्र कण्ठग्रह से आश्वस्त करें, अन्यथा महारानी का कोई परिजन आकर विघ्न डाल सकता है। राजा ने ऐसा ही किया। तभी महारानी की चेटी कनकलेखा ताडंक लिये आ पहुँची। नायिका राजा के पीछे थी। राजा ने कनकलेखा से कहा कि तुम महारानी को प्रसन्न करो। रानी ने प्रतिबिम्बित करनेवाले ताडंक को राजा के पास भेजा था। राजा के सामने प्रश्न था कि देवी को प्रसन्न करने जाऊँ अथवा पारिजात-मञ्जरी को सनाथ करूँ। अन्त में राजा उसे प्रेम बता कर चलते बने।

द्वितीय अङ्क का नाम ताडंकदर्पण है। अङ्कों का नाम उनमें प्रस्तुत शिल्प-वैशिष्ट्य के नाम पर अन्यत्र भी रखा गया है। भवभूति ने छायाङ्क नाम उत्तरराम-चरित के तीसरे अङ्क के लिए दिया है। ताडंकदर्पण की अभिनव योजना मदन कवि की देन है।

पारिजातमञ्जरी का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इसमें धारा के राजा अर्जुनवर्मा का गुजरातविजय का ऐतिहासिक उल्लेख है। भोज के गाङ्गेयविजय की प्रासंगिक चर्चा है।

पारिजातमञ्जरी की कथा हर्ष की रत्नावली के अनुरूप पड़ती है। नाटिका के प्रायः सभी वैशिष्ट्य इस रूपक में पर्याप्त रूप से निखरे हैं। इसकी भाषा समलंकृत प्रसादपूर्ण और शृङ्गाररसोचित है। संवादों में कहीं-कहीं गौडी शैली के गद्यांश हैं। यह नाटिका ताडङ्कदर्पण की योजना के कारण रूपक साहित्य में सदैव प्रतिष्ठित रहेगी।

पारिजातमञ्जरी में कर्पूरमञ्जरी की भाँति गीततत्त्व की प्रचुरता है। नायक का पूर्वराग गीत द्वारा आलापित है—

> या शारदी शशिकलेव कलेवरं मे
> संग्रामडामरसमुल्लसितप्रतापम्।
> लावण्यकान्तिसुधया स्नपयांचकार
> सा मे हृदि स्खलति मन्मथविह्वलाङ्गी॥ १.१६

पारिजातमञ्जरी की प्रस्तावना में पूरे विष्कम्भ की सामग्री सन्निविष्ट है। इसमें अर्जुनवर्मा नायक की गुर्जरेश जयसिंह से युद्ध, विजयोपहार रूप में विजयश्री पारिजात-मञ्जरी की प्राप्ति, उससे विवाह करनेवाले का भोगपद प्राप्त करने की सम्भावना, उसका कंचुकी के द्वारा संवर्धन की योजना, चैत्रोत्सव का आगमन आदि बातें कही गई हैं।

नायक और नायिका का आलिंगन अभिनय द्वारा रंगमंच पर दिखाया गया है। यह भारतीय नाट्यविधान के विरुद्ध है।

अध्याय २६

करुणावज्रायुध

करुणावज्रायुध नामक रूपक के रचयिता बालचन्द्र सूरि गुजरात के सुप्रसिद्ध महामन्त्री और साहित्यकार वस्तुपाल या वसन्तपाल के समकालीन थे।[1] करुणावज्रायुध का प्रथम अभिनय वस्तुपाल के आदेश से हुआ था। ऐसी स्थिति में इसकी रचना तेरहवीं शती में १२४० ई० के पहले मानी जा सकती है।

करुणावज्रायुध का प्रथम अभिनय प्रातःकाल में हुआ था।[2] यह सभासदों के मनोविनोद के लिये था।

कथानक

वज्रायुध नामक राजा था। उसके पिता क्षेमङ्कर जिनाधिप थे। वह चतुर्दशी के पौषध व्रत को पूरा करके पौषधशाला में पुरुषोत्तम नामक मन्त्री के साथ धर्मगोष्ठी कर रहा था। राजा मानता था कि जो कुछ भावात्मक या आधिभौतिक ऐश्वर्य है, वह सारा धर्म के कारण ही है। राजा ने वैतालिकों से प्रातःवर्णन के प्रसंग में अपनी प्रशंसा सुनी तो उनको १० करोड़ स्वर्णमुद्रायें दीं।[3] धर्म का रहस्य क्या है—यह चर्चा मन्त्री से करते हुए राजा ने बताया कि हिंसात्मक यज्ञों से स्वर्ग पाना असम्भव है। उसने जैन धर्म को एकमात्र सद्धर्म बताया, जिससे स्वर्ग, अपवर्ग और समृद्धि प्राप्य है। और भी,

> एकं जैनं विना धर्ममन्ये धर्माः कुधीमताम्।
> संवृता एव शोभन्ते पटच्चरपटा इव ॥ ४०

धर्म का प्रधान अङ्ग तप है। विदूषक चार्वाक धर्म की श्रेष्ठता बताते हुए हास्य-सर्जन करता है। मन्त्री भी कुछ-कुछ वैसी ही बातें करता है—

> प्रत्यक्षमनवेक्ष्यापि किञ्चित् तत्फलमुज्ज्वलम्।
> हित्वा विषयजं शर्म तपः कर्म करोति कः ॥ ५४

तभी नेपथ्य की ओर से कोलाहल सुनाई पड़ा—बचाओ, बचाओ। राजा ने हाथ में तलवार ले ली। विदूषक सिंहासन के नीचे जा छिपा।

---

१. इसका प्रकाशन भावनगर से हो चुका है। पुस्तक की प्रति अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है।

२. अये विभातारम्भ इव विभासते।

३. परवर्ती युग के भोजप्रबन्ध में इस प्रकार के दान की बहुशः चर्चा है।

राजा की खटपट रहती थी पूर्वजन्म के वैरी विद्युद्दंष्ट्र नामक असुर से। उसने राजा की परीक्षा के लिए इस बीच एक कपट-घटना की योजना की—एक कबूतर श्येन से पीछा किया जाता हुआ राजा की गोद में आ गिरा। उसने कहा कि मैं शरणागत हूँ। श्येन ने कहा कि यह मेरा भोजन है। इसे मुझे दे दीजिये। राजा ने कहा कि मैं इसकी रक्षा करूँगा, दूँगा नहीं। श्येन ने कहा कि भूख से मैं मर रहा हूँ। यह कह थोड़ा आगे बढ़ा तो कबूतर सिंहासन के नीचे जा घुसा। वहाँ पहले से ही घुसे विदूषक ने कहा—म्याऊँ। फिर तो डर कर कबूतर पुनः सिंहासन पर आ गया। उसने अपने को राजा के कपड़े में छिपा लिया। श्येन ने कहा—

किमयं सोदरस्तेऽहं सापत्नेयः कथं नृप।
यदेनं त्रायसे मां तु म्रियमाणमुपेक्षसे॥ ७६

राजा ने श्येन के खाने के लिए लड्डू मँगाये। भूख से पीडित श्येन ने मूर्छित होने का स्वांग रचा तो राजा ने उसे जल से सींचा और आप अपने वास-पल्लव से वीजन किया। श्येन ने कहा, कि हम केवल मांस खाते हैं। राजा ने कहा कि—

तुभ्यं श्येन ददे पारापतेन तुलितं पलम्।
निजमेवाधुना तेन सुहितीभव मा वृथा॥ ८६

श्येन झट तैयार हो गया।

इस बीच वज्रायुध राजा की पत्नी लक्ष्मीवती को उपर्युक्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ। उनको समझाया गया कि यह देवताओं की परीक्षार्थ कूट घटना है। उन्होंने आकर राजा को मांसदान से विरत करना चाहा। राजा ने कहा—

यायावरेण किमनेन शरीरकेण
स्वेच्छान्नपानपरिपोषणपीवरेण।
सर्वाशुचिप्रणयिना कृतनाशनेन
कार्यं परोपकृतये न हि कल्प्यते यत्॥ ८८

राजा ने देखा कि मांस से कबूतर के बराबर भार नहीं हो रहा है तो वे स्वयं पलड़े पर जा बैठे। तभी आकाश से जय, जय ध्वनि हुई। वे पक्षी तिरोहित हो गये और देवरूप में प्रकट हुए। वे ही पक्षी बने थे। राजा का शरीर पूर्ण स्वस्थ हो गया। राजा की देवों ने अतिशय प्रशंसा की।

समीक्षा

करुणावज्रायुध अनेक दृश्यों में एकाङ्की श्रीगदित कोटि का उपरूपक है। इसमें विदूषक का होना नितरां व्यर्थ है।[1] इस प्रकार के उपरूपकों में विष्कम्भक नहीं होना चाहिए। इसमें विष्कम्भक पर्याप्त विस्तृत है।

---

1. विदूषक ने पर्याप्त हास्य की सामग्री दी है, पर विषय के गाम्भीर्य से ऐसे हास्य का सामञ्जस्य नहीं होना चाहिए। वह इतिवृत्त में कहीं उपयोगी नहीं है।

करुणावज्रायुध में धर्मप्रचार प्रधान उद्देश्य है, वह भी वैदिक धर्म की निन्दा-पूर्वक। यह सत्साहित्य की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। इसी धर्मप्रचार के चक्कर में नाटक का प्रथम आधा भाग तो केवल धार्मिक संवाद है, तब जाकर कबूतर की कथा आरम्भ होती है।

हास्य के लिए विदूषक की कुछ अभिनव योजनायें उल्लेखनीय हैं। वह प्रतिहार को यमदूत समझकर राजा के पैरों के बीच छिप जाता है।

करुणावज्रायुध में रङ्ग-निर्देश बहुत ही लम्बा है, जिसमें बताया गया है कि कैसे श्येन के द्वारा पीछा किया जाता हुआ कबूतर हाँफता हुआ राजा के पास उतरा।

पात्र-वैचित्र्य है कबूतर और श्येन का उड़ना भी और संस्कृत बोलना भी। इस युग में अन्य कवियों ने भी पशु-पक्षियों को पात्र बनाया है, जो अस्वाभाविक लगता है। इसे नाट्योचित तो कहा ही नहीं जा सकता है।

इस नाटक का अभिनय जिस मनोरञ्जक तथा कलात्मक विधि से प्रपन्न हुआ होगा, वह वस्तुतः अतिशय उदात्त और वैज्ञानिक संविधानों से सम्भव हुई होगी।

कवि की वैदर्भीमण्डित शैली अनुप्रासमयी है, जिसमें स्वर और व्यञ्जन की समञ्जसित अनुवृत्ति अनुरणन करती है। यथा,

> अनयदहननीर नयाम्रवनकीर गुणसहस्रकिर्मीर,
> गम्भीर परोपकारशरीर धीर

इत्यादि, करुणावज्रायुध अनेक नवीनताओं से निर्भर किन्तु असफल उपरूपक है।

इसमें कतिपय दृश्य नितान्त अस्वाभाविक हैं। जब राजा तुला मँगा कर तलवार से अपना मांस काट कर देने को उद्यत है तो विदूषक सबको अपनी असामयिक प्रवृत्ति से हँसाता है। कवि का कहना है—सर्वे स्मयन्ते! ऐसा कहीं नहीं होता। राजा का तलवार हाथ में लेकर नाचना भी ठीक नहीं लगता।

अध्याय २७

हम्मीरमदमर्दन

हम्मीरमदमर्दन पाँच अङ्कों का वीररसात्मक नाटक है। इसके रचयिता जयसिंह सूरि जैन कवि थे। उनके गुरु वीरसूरि थे। जयसिंह भड़ौच के मुनिसुव्रत-मन्दिर के आचार्य थे। उस समय गुजरात में धोल्का (धवलकपुर) का राजा वीरधवल था और उसके मन्त्री वस्तुपाल और तेजपाल थे। एक बार तेजपाल आचार्य सुव्रत के मन्दिर पर दर्शनार्थ गये। मुनिवर की इच्छानुसार उन्होंने बड़ा दान उस मन्दिर के लिए दिया। मुनिवर ने प्रसन्न होकर उस मन्त्रीद्वय की प्रशस्ति लिखी और हम्मीरमदमर्दन नामक नाटक उनके स्वामी राजा वीरधवल के साथ मन्त्री बन्धु की उदार कीर्ति को काव्यात्मक प्रतिष्ठा देने के लिए लिखा।[1] इस नाटक का प्रणयन १२२० से १२३० ई० के बीच कभी हुआ, जब वस्तुपाल मन्त्री था।

हम्मीरमदमर्दन नाटक अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। पहले तो इसका ऐतिहासिक कृति होना एक बड़ी बात है। दूसरे इसमें तत्कालीन समाज और राजनीतिक हलचलों की आँखों-देखी दशा वर्णित है। तीसरे उसी युग में लिखे हुए वत्सराज के नाटकों में गुप्तचर संस्था और राजपुरुषों के कापटिक चरित का जो निदर्शन मिलता है, उसका व्यावहारिक और ऐतिहासिक स्वरूप हम्मीरमदमर्दन में चित्रित है।

इसका प्रथम अभिनय वस्तुपाल के पुत्र जयन्त सिंह के आदेश से भीमेश्वर-यात्रा के समय खम्भात में हुआ था।

कथानक

धवलकपुर के राजा वीरधवल की मन्त्री तेजःपाल से राजनीतिक हलचलों के विषय में बातचीत हो रही है कि संग्रामसिंह के द्वारा प्रोत्साहित होकर सिंहण आक्रमण करने के लिए उद्यत है,[2] घुड़सवारों की बड़ी सेना के साथ तुर्क आक्रमण

---

१. प्रशस्ति का नाम वस्तुपालतेजःपाल प्रशस्ति है जो हम्मीरमदमर्दन के अन्त में छपी है। हम्मीरमदमर्दन का प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज में हो चुका है। पुस्तक की प्रति संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय में प्राप्तव्य है।

२. सिंहण देवगिरि का यादव राजा (११६९–१२४७ ई०) था। धवलक और सिंहण के राज्य पड़ोसी थे। देवगिरि के राजा गुजरात पर प्रायः आक्रमण करते रहे। कभी-कभी दोनों राज्यों में मैत्री भी रहती थी।

संग्रामसिंह गुजरात का एक मण्डलेश्वर था। उसका पिता सिन्धुराज और भाई

करना चाहते हैं और मालवा के राजा ने भी प्रयाण कर दिया है। तभी तेजःपाल का बड़ा भाई और वीरधवल का प्रधानामात्य वहाँ आ जाता है वह बताता है। कि तेजःपाल का पुत्र लावण्यसिंह ने कुछ चरों को नियुक्त किया है, जो सारे देश में भ्रमण कर रहे हैं और राजाओं की गति-विधियों को अपनी चाल से नियन्त्रित कर रहे हैं। कई राजा उनके हाथ में कठपुतली की भाँति वशीभूत हैं। वीरधवल बताता है कि मैं हम्मीर पर आक्रमण करना चाहता हूँ।[1] वस्तुपाल ने निवेदन किया कि पहले आप मरुभूमि के राजाओं को शीघ्र ही जाकर अपनी ओर कर लें उसके पश्चात् हम्मीर दुर्बल पड़ जायेगा। वस्तुपाल चरों को काम पर लगाने में तत्पर हो गया।

हम्मीर की सेना मरुदेश पर मंडरा रही थी कि वस्तुपाल ने झटपट अपनी सेना का प्रयाग कराकर उन मरुराजाओं में आशा और आशङ्का का संचार कर दिया। मरुदेश के राजा स्वयं ही वीरधवल से आ मिले। इस प्रकार चार राजाओं का संघ हम्मीर के विरुद्ध बन गया। वे थे सोमसिंह, उदयसिंह, धारावर्ष और वीरधवल (नेता)। वस्तुपाल के प्रयास से सुराष्ट्र का राजा भीमसिंह भी वीरधवल के पक्ष में मिल गया। महीतट का राजा विक्रमादित्य और लाट देश का राजा सहजपाल भी अब वीरधवल के साथ स्वेच्छा से मिल चुके हैं। छोटे-छोटे राजाओं ने भी वीरधवल से एकता कर ली है। यह सब वीरधवल का बुद्धिलाघव है कि इतनी बड़ी एकता बन पाई है।

संग्रामसिंह और सिंहण वीरधवल का विरोध कर रहे थे। इनमें भी फूट डाली जा चुकी थी, जिसके लिए निपुण नामक दूत को श्रेय मिला। निपुणक सिंहणदेव के स्कन्धावार में जा घुसा। निपुणक का छोटा भाई सुवेग मालवनरेश देवपाल का अश्वरक्षक नियुक्त हो चुका था। उसने मालवनरेश का सबसे अच्छा घोड़ा चुराकर सिंहण के सेनानायक संग्रामसिंह को दे दिया।

निपुणक ने सिंहण से बताया कि वीरधवल हम्मीर पर आक्रमण करनेवाला है। इसे सुनते ही वह वीरधवल पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हो गया। निपुणक ने सुझाया कि धवलक को हम्मीर से लड़कर दुर्बल हो लेने दें, फिर उस पर आक्रमण करें। इस बीच आप ताप्ती के वन में उस स्थान पर सेना-सन्निवेश करें,

---

सिंह थे। लाट देश पर इनका आधिपत्य था। सिंहण लाट पर आक्रमण करता था। संग्रामसिंह ने वीरधवलक के राज्य के खम्भात पर चढ़ाई की। वस्तुपाल ने उसे पराजित किया। इसका वर्णन हरिहर के शङ्खपराभव-व्यायोग में मिलता है। शङ्ख संग्रामसिंह का पूर्ववर्ती नाम है।

१. हम्मीर सिन्ध का सुलतान अमीर शिकार या समसुद्दुनिया नाम से विख्यात है।

जहाँ से मालवा और गुजरात के लिए सड़कें फूटती हैं। सिंहण के वहाँ पहुँचने पर ताम्रकर्णधारी सुवेग नामक चर की जबान से उसे एक पत्र मिलता है, जिसके अनुसार मालवराज देवपाल ने संग्रामसिंह को उपहार में एक घोड़ा भेजा था और उससे प्रार्थना की थी कि आप सिंहण से बदला लेने के लिए उसे उस समय मार डालें जब वह गुजरात पर आक्रमण करता है। मैं भी उस समय सिंहण पर चढ़ बैठूँगा। अनुसंधान करने पर सिंहण को ज्ञात हुआ कि संग्रामसिंह का घोड़ा देवपाल-प्रहित है। वह उस पर क्रुद्ध हुआ और निपुणक ने संग्रामसिंह को बताया कि अब आपका यहाँ रहना निरापद नहीं। वह भाग खड़ा हुआ।

संग्रामसिंह वहाँ से खम्भात की ओर बढ़ा। उसके मन्त्री भुवनक ने पूछने पर वस्तुपाल को बताया कि संग्रामसिंह आपकी सहायता करने के लिए इधर आ रहे हैं।

वीरधवल की आँखों का काँटा उसका परम शत्रु हम्मीर मेवाड़ पर आक्रमण करने आया। वहाँ का राजा जयतल था। उसने अपनी शक्ति के अभिमान में चूर होकर वीरधवलक से ऐसी आपत्तियों से बचने के लिए भी सन्धि न की थी। हम्मीर के आक्रमण को सुनते ही जयतल भाग खड़ा हुआ। सारे मेवाड़ को हम्मीर की सेना ने लूटा, वृद्धों और निरीह शिशुओं तक के शव सड़कों पर बिछा दिये। लोग स्वयं भी जल मरे या कुएँ में कूदकर प्राण त्याग किया। उस अवसर पर कमलक नामक वीरधवलक के चर ने तुरुष्क वेष धारण करके उस प्रदेश की रक्षा की। उसने झूठे ही हल्ला मचाया कि वीरधवलक सेना लेकर आ पहुँचा। तब तो हम्मीर की सारी सेना में भगदड़ मच गई। फिर तो वीरधवलक ने कहा—

> अहमपि मिलिताखिलक्षितिपालवर्गसंवर्मेण निराशीकरोमि रिपुनृपति-
> गृहरत्नकामान्।

अर्थात् राजाओं का संघ बनाता है, जिससे शत्रुओं का मर्दन हो।

तेजपाल ने शीघ्रक नामक चर को बगदाद के खलीफा के पास भेजा। वह खलीफा सभी यवनराजाओं का स्वामी था और बगदाद का राजा था। उसने वहाँ अपने को खर्परखान नामक पारसीक शासक का दूत बताया और कहा कि मीलच्छीकार आपके शासन को नहीं मानता। खलीफा ने मुझे आदेश दिया कि खर्परखान मीलच्छीकार को बेड़ी पहनाकर मेरे पास भेजे। यहाँ आकर खलीफा का दूत बनकर मैंने खर्परखान को यह आदेश दिया। उसने तत्काल मीलच्छीकार पर धावा बोल दिया। उधर मीलच्छीकार के दूत से कह दिया कि खर्पर आक्रमण कर रहा है। उसने शीघ्रक को ही मीलच्छीकार के पास युद्ध का समाचार देने के लिए भेजा। मुद्गलपट्टकेश्वरों को तुरुष्क नामक दूत ने बतलाया कि आप लोग हम्मीर के साथ युद्ध होने पर उसकी

ओर से न लड़ें। वीरधवल हम्मीर को हराकर उसका राज्य आप ही लोगों में बाँट देगा। इस प्रकार कुरपाल, प्रतापसिंह आदि गुर्जरमण्डलेश्वर हम्मीर से अलग हो गये। खर्परखान के प्रयाण करते ही मीलच्छीकार की सेना उत्साह खो बैठी।

खर्परखान के आक्रमण के पहले ही वीरधवल ने मीलच्छीकार की सेना पर धावा बोल दिया। वह भाग गया। वीरधवल के आक्रमण के पहले मीलच्छीकार ने कादी और रदी को खलीफा के पास भेज कर उसे प्रसन्न करके पुराने आदेश को निरस्त कराने का प्रयास किया था। हम्मीर भी वीरधवल के मन्त्रियों के प्रभाव को देखकर पहले तो भाग चला, फिर गुर्जरदेश की ओर आँख नहीं उठाता था।[1] मीलच्छीकार के दूत रदी और कादी जब खलीफा का प्रसादपत्र लेकर लौट रहे थे तो गुप्तचरों से उनकी गति-विधि जानकर उनको वस्तुपाल ने बन्दी बना लिया। झखमार कर मील-च्छीकार को आजन्म सन्धि करके उन रदी कादी को छुड़ाना पड़ा।

समीक्षा

संस्कृत के कतिपय ऐतिहासिक नाटकों में हम्मीरमदमर्दन का स्थान पर्याप्त ऊँचा है। यह केवल ऐतिहासिक ही नहीं, अपितु कूटनीतिक नाटक है। इसे मुद्राराक्षस की परम्परा में रखा जा सकता है। मुद्राराक्षस की भाँति इसमें झूठे संवाद, कपट वेश धारण, गुप्तचरों का जाल, परिस्थितियों के चक्र में बाधित करके किसी शत्रु को भी अपना अभीष्ट करने के लिए प्रेरित करना, मन्त्री और मन्त्रणा का सातिशय माहात्म्य, राजाओं का संघ बनाना, शत्रु राजा के पक्ष के राजाओं को झूठे समाचार देकर उससे अलग कर देना आदि बहुत से समान तत्त्व मिलते हैं।

मुसलमानों का मेवाड़ पर आक्रमण प्रायः वैसा ही दुर्दान्त और अमानुषिक है, जैसा साढ़े सात वर्षों के पश्चात् बङ्गलादेश में देखने को मिला है। जयसिंह के शब्दों में उसका आंशिक वर्णन है—

ततो मलिनजनहस्तमरणेन न भवति गतिरिति चिन्तयित्वा गलनिगडित-रुदद्बालानि कूपेषु पतितानि कान्यपि मिथुनानि।......न खलु प्रेक्षिष्ये मार्य-माणस्य निजजनस्य दुःखमिति केऽपि कंठसंस्थापितरज्जुग्रहाः कृतपरि-क्रन्देषु कुटुम्बेषु मरणं प्राप्ताः।......बहुबालब्राह्मणगोकुलमहिलामथनप्रवर्ति-तेषु—इत्यादि।

संस्कृत के कतिपय नाटकों में देश की रमणीय वस्तुओं का आँखों-देखा वर्णन प्रस्तुत करने की रीति संक्षेप में इस नाटक में भी अपनाई गई है। वीरधवल युद्ध

---

1. तथा त्रासितः हम्मीरवीरो यथा पुनरपि विक्रमेण नोपक्रमते। पलायितहम्मीर-प्रमोदपुलकितशरीरः श्रीवीरधवलदेवः।

भूमि से लौटते हुए आबू पर्वत, वसिष्ठाश्रम, परमारों की राजधानी चन्द्रावती, सरस्वती नदी पर भद्र महाकाल का मन्दिर, गुर्जर राजधानी अन्हिलवाड, साबरमती के तट पर कर्णावती आदि का दर्शन करते हुए अपनी राजधानी धवलपुर में पहुँचता है।

राजा युद्धभूमि में विनोदार्थ सहचरियाँ ले जाते थे।[1]

एकोक्ति

जयसिंह एकोक्ति-परायण हैं। उन्हें अकेले पात्र को रङ्गमंच पर वर्णन कराना भाता है। द्वितीय अङ्क के विष्कम्भक में लावण्यसिंह की और विष्कम्भक के पश्चात् अङ्कारम्भ में वस्तुपाल की एकोक्तियाँ वर्णनात्मक हैं। एकोक्ति में जो (Soliloquy) में जो मानसिक ऊहापोह होनी चाहिए, उसका इनमें सर्वथा अभाव है। वास्तव में इन एकोक्तियों की सामग्री नाट्योचित नहीं है।

वर्णन

जयसिंह वर्णनों के अतिशय प्रेमी है। अङ्कारम्भ में एकोक्ति रूप में लम्बे-चौड़े वर्णन प्रस्तुत करा देने में उन्हें कला की हानि नहीं प्रतीत होती थी। कवि मन्दिर का आचार्य था, फिर भी उसकी कविता में शृङ्गारित प्रवृत्तियां कहीं-कहीं छलकती हैं। यथा,

तिमिरमसितवासःकञ्चुकाभं विमोच्य
द्युमणिरनणुरागो गुप्तचर्याप्रवीणः।
उदयशिखरिमौलौ निर्ममे वासवाशा-
कुचसदृशि करोद्यत्कुङ्कुमैः पत्रवल्लीम्॥ ३.३

इन वर्णनों में प्रायशः गीतात्मकता है। एक गीत है—

अर्धोदितार्कमिषतो दिवसश्चकार
प्राच्या मुखे घुसृणपङ्कललाटिकां यन्।
तेनाधुनाभिनवदीधितिकैतवेन
क्रोधादिवापुरपराः ककुभोऽरुणत्वम्॥ ३.५

वर्णनों के द्वारा कहीं-कहीं सनातन सत्य का उद्घाटन किया गया है। यथा,

सुधादृष्टिर्व्यग्रे विलसति सुधाधामनि सुधा-
मवर्षन्नुत्कर्षान्निशि शशिदृषद्भिः क्षितिभृतः।
वितन्वाने तापव्यतिकरमिदानीं दिनकरे
कराला ज्वालालीस्तरणिमणिभिर्बिभ्रति पुनः॥ ३.६

यह 'गतानुगतिक एवायं लोकः' का उदाहरण है।

1. हम्मीरमदमर्दन २.१४

पात्रोन्मीलन

जयसिंह स्वयं ही कवि नहीं थे, उनके नायकादि पुरुष भी महाकवि-से लगते हैं। द्वितीय अङ्क में वस्तुपाल चन्द्रोदयादि का वर्णन लगातार १६ पद्यों में करता है। उसका भावुक हृदय कवि द्वारा प्रमाणित है। इसी अङ्क के आरम्भ में लावण्यसिंह ९ पद्यों में संध्यादि का वर्णन करता है।

शैली

जयसिंह को शब्द और अर्थ दोनों के अलङ्कारों के समन्वयन में निपुणता प्राप्त थी। यथा,

अये इहैवास्ति मतिलतालवालः शत्रुकवलनकालः श्रीवस्तुपालः।

इसमें रूपक और अनुप्रास की अनुपम छटा समुल्लसित है।

कवि के लम्बे-लम्बे वाक्य और विडम्बक समस्त पदावली नाट्योचित नहीं कही जाती। इस दृष्टि से इसके संवाद अस्वाभाविक प्रतीत होते हैं।

वास्तव में हम्मीरमदमर्दन को नाट्यकला की दृष्टि से एक सफल कृति कहने में समीक्षक को संकोच भले ही हो किन्तु अनेक अन्य दृष्टियों से इसका महत्त्व नगण्य नहीं है। इस नाटक में अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, सन्धि और सन्ध्यङ्गों का संश्लेषण चिन्त्य ही है। अन्तिम अङ्क में उस युग के अन्य कई नाटकों के आदर्श पर नाट्य-कथा से दूरतः सम्बद्ध सुखोचित वर्णना मात्र प्रस्तुत है। वर्णनाधिक्य से कथासूत्र अनेक स्थलों पर विच्छिन्न है।

कविसन्देश

राष्ट्र के युवकों को देशरक्षा का सन्देश कवि ने दिया है—

त्रस्तेषु तेषु सुभटेषु विभौ च भग्ने
मग्नासु कीर्तिषु निरीक्ष्य जनं भयार्तम्।
यो मित्रबान्धववधूजनवारितोऽपि
वल्गत्यरीन् प्रति रसेन स एव वीरः॥ ३.१५

अध्याय २८

द्रौपदी-स्वयंवर

द्रौपदी-स्वयंदर नामक रूपक के रचयिता महाकवि विजयपाल गुजराज के सुप्रसिद्ध कविकुल में थे। उनके पिता कविराज सिद्धपाल और पितामह श्रीपाल सोलंकी (चालुक्य) नरेशों के द्वारा सम्मानित थे। श्रीपाल जयसिंह सिद्धराज के बालमित्र थे। सिद्धराज की विद्वत्परिषद् के प्रमुख थे। श्रीपाल ने वैरोचनपराजय नामक महाप्रबन्ध लिखा था। विजयपाल का रचनाकाल तेरहवीं शती का उत्तरार्ध है। इनके रूपक का प्रथम अभिनय वसन्तोत्सव में भीम द्वितीय के आदेशानुसार अनहिलपाटन में हुआ था। भीम ने ११७९ ई० से लेकर १२४२ ई० तक शासन किया। विजयपाल ने नाटक के आरम्भ में शिव और विष्णु की स्तुति की है।

कथानक

स्वयंवर में जो राधावेध करेगा, उससे द्रौपदी का विवाह होने की घोषणा की गई थी। कृष्ण के बुलाने पर भीम उनसे मिलने आये। कृष्ण ने उनसे कहा कि कर्ण को उसके गुरु परशुराम ने पाँच बाण दिये हैं। उनमें से दो बाण माँग लाओ और सभी भाइयों के साथ स्वयंवर-मण्डप में उपस्थित रहो। हम वहाँ द्रुपद के पास रहेंगे। भीम कर्ण के दानस्थान-मण्डप पर जा पहुँचा और तारस्वर मे वेदध्वनि करने लगा। वह कर्ण के सम्मुख बुलाया गया और पूछने पर माँगा—

भगवद्भार्गवादत्तशरपञ्चकमध्यतः ।
राधावेधाय राधेय ममार्पय शरद्वयम् ॥ १.१२

भीम ने स्वयं अच्छे से अच्छे दो बाण चुन लिये।

द्रौपदी के स्वयंवर मण्डप में द्रुपद ने कृष्ण को काम दिया कि प्रत्येक वीर को बुलाकर राधावेध करायें। कृष्ण ने द्रुपद की प्रतिज्ञा सुनाई—

स्तम्भः सोऽयं गिरिरिव गुरुर्दक्षिणावर्तमेकं
वामावर्तं विकटमितरच्चक्रमावर्तनेऽत्र।
आस्ते लोलस्तदुपरि निमिस्तस्य वामाक्षितारा-
लक्ष्यं प्रेक्ष्यं तदपि निपुणं तैलपूर्णे कटाहे ॥ १.१८
चापं पुरो दुरधिरोपमिदं पुरारे-
रारोप्य यो भुजबलेन भिनत्ति राधाम्।
रूपान्तराभ्युपगता जगतां जयश्रीः
पञ्चालजा खलु भविष्यति तस्य पत्नी ॥ १.१६

यह कहकर उन्होंने सर्वप्रथम दुर्योधन का आमन्त्रण किया कि आप चापारोपण करें। दुर्योधन ने दुःशासन को भेजा। वह तो चापारोपण करते हुए भूमि पर गिर पड़ा। फिर शकुनि आगे बढ़ा। कृष्ण ने उसके धनुष चढ़ाते समय उसे डराने के लिए वेतालमण्डल पुरस्कृत कर दिया। उसने देखा—

शिरालवाचालजटालकाल-
करालजंघालफटालभालम् ।
उत्तालमुत्तालतमालकालं
वेतालजालं स्खलयत्यलं माम् ॥ १.२५

वह डर कर अलग हो गया। द्रोण के सम्मुख मायामय अन्धकार करके, कर्ण के समक्ष मायामय अर्जुन-द्रौपदी-विवाह दिखाकर और शिशुपाल के लिए उस धनुष में त्रिलोकी का भार आरोपित करके विफल किया। तब भी शिशुपाल ने धनुष हाथ में लिया तो कृष्ण ने सबकी आँखें बाँधकर स्वयं उठ कर शिशुपाल को चपेटाघात से गिरा कर फिर अपने स्थान पर आ गये। तब तीर्थयात्रीवेष में बैठे हुए अर्जुन को कृष्ण ने बुलाया। अर्जुन ने भीम के लाये बाणों में से एक से मार कर चक्र की गति बन्द कर दी और दूसरे से मत्स्य का नेत्र बींध दिया, जब वह निश्चल था।

अन्य राजाओं ने कहा—

स्त्रीवर्गरत्नस्य मृगीदृशोऽस्याः कार्प्येप किं कार्पटिकः पतिः स्यात् ।
राधापि न प्राग्विशिखेन भिन्ना स्वयंवरस्तत्क्रियतां नरेन्द्र ॥ १.४०

कृष्ण ने द्रुपद से कहा कि स्वयंवर भी करा दें।

स्वयंवर में सभी प्रतियोगी अपने-अपने मञ्च पर बैठ गये। द्रौपदी आई। उसे देख कर दुर्योधन के मुँह से निकला—

ब्रह्मास्त्रमेपा कुसुमायुधस्य स्त्रीवर्गसर्गे कलशं विधातुः ।
अहो वपुर्लोचनभङ्गसङ्गलीलामधच्छत्रमिदं बिभर्ति ॥ २.१

द्रौपदी सभी राजाओं की कुछ-कुछ त्रुटियाँ वैदर्भी को बताती हुई आगे बढ़ती गई। उसने अर्जुन को देखा तो प्रसन्नता से स्वयंवर मालिका से उसके कण्ठकन्दल को समलंकृत कर दिया। देवताओं ने कुसुमवृष्टि की कृष्ण ने कहा—

राधावेधगुणेनैव क्रीता कृष्णा किरीटिना ।

समीक्षा

दो अङ्कों का द्रौपदी-स्वयंवर श्रीगदित कोटि का उपरूपक माना जा सकता है, यद्यपि इसमें इस कोटि के सभी लक्षण नहीं मिलते। इस नाटक को भूल से जैन-साहित्य की कोटि में रखा गया है, यद्यपि न तो इसका लेखक जैन है और न इसके कथानक में कुछ भी जैन-तत्त्व है। इसमें वीर और अद्भुत रस प्रधान हैं।

इस युग में कपटघटनावाले नाटक और उनके अभिनेताओं का बोलवाला था। नाटक की भूमिका में विजयपाल ने लिखा है—

अपरैरपि कपटघटनानिपुणैर्नटैर्नर्तितुं प्रारब्धम्।

इससे प्रतीत होता है कि कपटघटना में नैपुण्य को अभिनेताओं की विशेषता मानी जाती है।[1]

कवि की भाषा आलङ्कारिक है। शृगालजागरः प्रारब्धः का प्रयोग प्रभविष्णु है। 'न खलु बहुभिरप्याखुचर्मभिः सिन्धुराधिराजबन्धननिबन्धनं दाम निगड्यते' यह लोकोक्ति अप्रस्तुतप्रशंसा का उदाहरण है। इसका एक अन्य उदाहरण है—

न च गगनाङ्गणावगाहसम्भृताभियोगैर्गणनातिगैरपि खद्योतैस्तिमिरमलिन-भुवननिर्मलीकरणकमठस्य कर्मसाक्षिणः कर्म निर्मीयते।

एक ही पद्य में दो अभिनेताओं की बातचीत के द्वारा अनेक प्रश्नोत्तर करा देना। यथा,

> किं वित्तप्रयुतस्पृहा, नहि, रुचिर्भुक्तासु किं ते, नहि,
> स्वर्णानीह किमीहसे, नहि, मणीन् किं कांक्षसि त्वं नहि।
> गोलक्षं किमु लिप्ससे, नहि, तवाश्वीये किमाशा, नहि,
> व्रातं वाञ्छसि दन्तिनां किमु, नहि, क्ष्मां याचसे किं, नहि॥

इसमें पुरोहित और द्विज का प्रश्नोत्तर प्रत्येक आठ बार हैं।

---

1. कल्याणवज्रायुध, सत्यहरिश्चन्द्र, प्रबुद्धरौहिणेय, हम्मीरमदमर्दन, त्रिपुरदाह, समुद्रमथन, किरातार्जुनीयव्यायोग, वीणावासवदत्त आदि सभी रूपकों में कूटघटनायें हैं।
कूटनाटक का संविधान में विशेष कौशल की आवश्यकता पड़ती थी।
रङ्गमंच पर आद्यन्त पात्र कार्यव्यापार (Action)-परायण हैं।

अध्याय २९

प्रसन्नराघव

प्रसन्नराघव नामक सात अङ्कों के नाटक के लेखक जयदेव अपने अलङ्कारग्रन्थ चन्द्रालोक के लिए भी सुप्रसिद्ध हैं। कौण्डिन्य गोत्रोद्भव कवि के पिता महादेव और माता सुमित्रा थीं। वह केवल काव्य की रसिकला को सूक्तिवद्ध करने में ही निपुण नहीं था, अपितु न्यायशास्त्र की पद्धति पर भी दूरङ्गम था। चन्द्रालोक में कवि ने अपनी उपाधि पीयूषवर्ष की चर्चा की है। प्रसन्नराघव में वह अपने को कवीन्द्र कहता है।

जयदेव तेरहवीं शती के मध्यान्तर में हुए, क्योंकि इनकी अलङ्कारपरिधि पर बारहवीं शती के पूर्वार्ध के रुय्यक का प्रभाव है और इनके काव्य प्रसन्नराघव से १३३० ई० के लगभग लिखे हुए सिंहभूपाल के रसार्णवसुधाकर में दो सन्दर्भ लिए गये हैं।

कथानक

बाणासुर के पूछने पर शिव ने बताया कि कैलास से भी बढ़कर भारी है मेरा जनकपुर में रखा धनुष, जिससे मैंने त्रिपुर का विध्वंस किया था। उस धनुष को देखने के लिए बाणासुर जनकपुर आया, जहाँ वेष बदलकर रावण भी सीता के स्वयंवर का समाचार सुनकर आ पहुँचा था। वहाँ शिव के धनुष की प्रत्यञ्चा को कान तक खींचनेवाले वीर से सीता का विवाह होने की प्रतिज्ञा थी। वीर राजाओं ने धनुष को हाथ जोड़े। उन्हें उसे झुकाने का साहस न हुआ। रावण ने वैतालिक को यह कहते सुना—

किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम्। १.३२

उसने स्वयं धनुष उठाने की इच्छा की। पर उससे धनुष हिला भी नहीं। उसे अन्त में कहना पड़ा—

धनुरिति वक्रः पन्थाः। तत् सरलेन करवालधारापथेन सीतामानयामि।

उसकी गर्वोक्ति का उत्तर मिला तो वह दशानन रूप में प्रकट हुआ। उसका सामना करने के लिए सामने बाणासुर आया। रावण की सीता के लिए उतावली देखकर बाणासुर ने कहा कि सीता को पाना है तो धनुष को प्रत्यञ्चित कीजिये।

धनुप को देखकर रावण ने समझ लिया कि इसे उठाना मेरे वश के बाहर की बात हो सकती है। उसने वाणासुर से कहा कि तुम्हीं पहले आजमा लो। इस प्रकार की बकवास करके दोनों चलते बने।

विश्वामित्र ने अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम-लक्ष्मण को माँगा था और दशरथ के प्रीत्यर्थ दिव्य ताटङ्क दिये, जो कौशल्या के योग्य मानकर उसे दिये गये। इस ताटंक को रावण की माता निकषा के योग्य मानकर रावण के महामन्त्री माल्यवान् ने ताटका को आदेश किया था कि जाकर उसे लाओ। ताटका इस प्रयास में मारी गई। रावण को अपने ऊपर राम के शरप्रहार का समाचार देते हुए मारीच राम के द्वारा सुदूर फेंक दिया गया।

विश्वामित्र के यज्ञ के पश्चात् राम-लक्ष्मण उनके साथ जनकपुर आये। वे विश्वामित्र की सन्ध्यापूजा के लिए पुष्पावचय कर रहे हैं। वहीं चण्डिका के मन्दिर में राम देवी की स्तुति करते हैं। वहाँ सीता देवीपूजा के लिए आती हैं। राम उसे देखते हैं तो कल्पना करते हैं—

कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति। २.७

सीता और सखियों ने राम और लक्ष्मण से चण्डिकायतन के परिसर में प्रणयात्मक परिचय प्राप्त किया। सीता आम और लता का मिलन देखने के व्याज से एक बार और राम के निकट आईं तो राम ने कहा—

मन्मनःकुमुदानन्दशरत्पार्वणशर्वरी ।
अहो इयमितो नूनं पुनरप्यभिवर्तते ॥ २.१५

जनक राम से बहुत प्रभावित हुए, किन्तु उनको सन्देह था कि धनुप पर राम चापारोपण कर सकेंगे कि नहीं। विश्वामित्र ने उनसे कहा कि धनुप मँगवाइये। राम ने कमर कसी। तभी परशुराम का सन्देश एक दूत लाया कि आप शिवधनुप को प्रत्यञ्चित करने की अपनी प्रतिज्ञा समाप्त करें अन्यथा हमें प्रतिकार करना पड़ेगा। जनक ने कहा कि अपनी प्रतिज्ञा तोड़ना सम्भव नहीं है। राम ने धनुप तोड़ा। सीता ने उन्हें कमलमाला पहनाई। धनुप के टूटने से त्रिलोकव्यापी घोप हुआ। चारों भाइयों का विवाह हो गया।

परशुराम आये। पहले तो उन्हें भ्रम हुआ कि रावण ने धनुप तोड़ा और वे उसे समाप्त करने को उद्यत हुए। फिर कुछ देर बीतने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि राम ने धनुप तोड़ा है। पहले तो राम के सौन्दर्य से वे बहुत प्रभावित हुए। प्रणाम करने पर उन्होंने राम को आशीर्वाद दिया—

समरविजयी भूयाः।

राम ने उनसे पूछा—आप क्रुद्ध क्यों हैं? उन्होंने स्पष्ट बताया कि तुमने शिवधनुप

भग्न किया है। अब मेरा कुठार तुम्हारी ग्रीवा भग्न करेगा। परशुराम और राम अति विस्तृत वाग्वितण्डा के पश्चात् अन्त में इस निर्णय पर पहुँचे कि राम विष्णु का धनुष ग्रहण करें। राम ने उसे भी अनायास प्रत्यञ्चित कर दिया। उसका बाण स्वर्ग में चला गया। तब परशुराम की आँखें खुलीं। वे राम को रावण का विजेता होने का आशीर्वाद देकर चलते बने।

राम को वनवास की आज्ञा पिता ने दी। वे अयोध्या से चलकर पहले गङ्गा और फिर यमुना पार करके फिर नर्मदा को पार करके गोदावरी तट पर पहुँचे। वहाँ शूर्पणखा की नाक लक्ष्मण ने काटी। फिर मारीच स्वर्णमृग बनकर आया और भिक्षुवेष में रावण ने सीता का हरण किया और आकाशमार्ग से उसे ले उड़ा। जटायु ने मार्ग में उससे युद्ध किया और मारा गया।

राम के सहयोग से सुग्रीव चक्रवर्ती बना। उसने सीता को खोजने के लिए अपनी सेना नियुक्त कर दी।

रत्नशेखर नामक विद्याधर लङ्का में सीताचरित को इन्द्रजाल द्वारा राम के समक्ष प्रस्तुत करता है।[1] इस दृश्य में सीता—

एकेनालम्बि नेयं शिथिलभुजलता शोभिना शाखिशाखा
हस्तेनान्येन चायं दिनकरकिरणक्लान्तकान्तिः कपोलः।
एष स्रस्तो नितम्बे लुलति कचभरस्त्यक्तकाञ्चीकलापे
नेत्रोत्संगे च बाष्पस्तबकनवकणैः पद्मला पद्मलेखा॥ ६.१५

राम ने इन्द्रजाल के द्वारा लंका में सीता की सारी परिस्थिति देखी और अन्त में देखा कि लङ्का में हनुमान् ने पहुँच कर क्या कार्य किये। उसी में रावण का शृङ्गाराभास भी सीता को प्रणययाचना द्वारा प्रस्तुत था। उसने अन्त में सीता को मार डालने की धमकी दी। वह अक्षकुमार के हनुमान् द्वारा मारे जाने का समाचार पाकर वहाँ से चलता बना। फिर वहाँ आकर अशोक वृक्ष से हनुमान् ने राम की अंगूठी सीता के सामने गिराई। हनुमान् ने राम का सन्देश सीता को दिया—

हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिःश्वासपवनः।
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम्॥ ६.४२

सीता ने प्रतिसन्देश दिया और चूडारत्न दिया।

मेघनाद ने हनुमान् से युद्ध किया। फिर हनुमान् की पूँछ में आग लगा दी गई। लङ्का में आग लगाकर उसे बुझाने के लिए वे समुद्र में कूद पड़े।

---

१. यह दृश्य गर्भाङ्क जैसा है।

राम ने राक्षसों से युद्ध किया। युद्ध में लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। राम ने विलाप किया—

हा वत्स लक्ष्मण विकासय नेत्रपद्मे मा गादिदं युगपदेव समस्तमस्तम्।
भाग्यं दिवाकरकुलस्य च जीवितं च रामस्य किंच नयनाञ्जनमूर्मिलायाः॥
७.३०

हनुमान् ने गन्धमादन पर्वत लाकर औषधि से लक्ष्मण की प्राण रक्षा की।

राम ने रावण को युद्ध में मारा। फिर पुष्पक से वे उड़ते हुए अयोध्या आये।

समीक्षा

कवि के नीचे लिखे पद्य से ज्ञात होता है कि एक अच्छे नाटक के लिए क्या आवश्यक बातें होती हैं—

प्रत्यङ्कमङ्कुरितसर्वरसावतारं
नव्योल्लसत्कुसुमराजिविराजिबन्धम्।
घर्मेतरांशुमिव वक्रतयातिरम्यं
नाट्यप्रबन्धमतिमञ्जुलसंविधानम्॥ १.७

किन्तु कवि इस तथ्य को वास्तविक रूप न दे सका। उसने संविधान की मञ्जुलता लाभ कराने में सफलता स्वल्प ही पाई है। शेष बातों में उसको पर्याप्त सफलता मिली है।

नाटक को कार्यव्यापार से समायुक्त करना कवि आवश्यक नहीं समझता है। यह उनकी त्रुटि है। बाणासुर ने शिवधनुष पर अपनी शक्ति आजमाई, पर यह कार्य रंगमंच पर दिखाया नहीं जाता, केवल इसका वर्णन मात्र मञ्जीरक करता है—

बाणस्य बाहुशिखरैः परिपीड्यमानं
नेदं धनुश्चलति किंचिदपीन्दुमौलेः।
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै-
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्॥ १.४६

कार्यव्यापार यदि कहीं है भी तो वह वर्णनों के बीच अदृश्य-सा प्रतीत होता है। वर्णनों के अतिरिक्त ऊपरी बातें शिष्टाचार आदि को अनावश्यक विस्तार दिया गया है।[1]

कवि की विचार-सरणि कहीं-कहीं परिहासात्मक होने के कारण विशेष रोचक है। तृतीय अङ्क में वामनक कहता है 'अहो अज्ञानां मे गुरुत्वम्' इत्यादि।

1. जयदेव की इस विस्तार-प्रवृत्ति को देखकर आलोचकों का यह वक्तव्य नितान्त सत्य प्रतीत होता है कि उनकी प्रतिभा महाकाव्य के योग्य थी और नाटक-रचना में उसका उपयोग सफल नहीं है।

और कुबड़ा कहता है—कथमयं मांसस्तबकोऽपि पुनः सौभाग्यलक्ष्म्या उपधान-गेन्दुकः।

वामनक ने कुब्जक से कहा—कथं तव गोमुखस्य भगवतश्चतुर्मुखस्यापि नास्त्यन्तरम्।

कवि ने नाटक के अभिनय में कतिपय स्थलों पर मनोरंजन विशिष्ट गीत का सन्निवेश किया है। यथा, चतुर्थ अङ्क के आरम्भ में ध्रुवा गीति है—

मणिमयमंगलदीपो जनकनरेन्द्रस्य मण्डपे ज्वलति।
चण्डानिलोऽपि प्राप्तो यस्मिन विफलागमो भवति ॥ ४.१

राम-रावण के युद्ध में मातलि ने इन्द्र का रथ रामचन्द्र को अर्पित किया।

कथाप्रवृत्ति की पूर्वसूचना

भावी कथावृत्त की सूचना कवि ने अनेक प्रकार से दी है। उसमें से एक है भावी घटना का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत करना। राम का सीता से विवाह होगा—इस भावी कथा का सूचक चित्र जनक की पुत्री धर्मचारिणी ने बनाया था, जिसमें—

कोऽपि नीलोत्पलदामश्यामलः कुसुमशरसदृशरूपः कुण्डलीकृतहरचाप-श्चक्रवर्तिकुमारः।

कहीं-कहीं भावी घटना हेतुरूप नकारात्मक उक्तियों से पूर्व सूचित है। यथा, रावण का कहना है—

अनाहृत्य हठात् सीतां नान्यतो गन्तुमुत्सहे।
न शृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनुजीविनः ॥ १.६०

और थोड़ी देर में मारीच का करुण क्रन्दन सुनकर वह चल देता है।

कभी-कभी किसी पात्र की आकस्मिक उक्ति से कथा की भावी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। अकारण ही राम सीता को देखकर अपनी प्रसन्नता के सर्वोच्च क्षण में बोल उठते हैं—

मधुरमधुरमिश्राः सृष्टयो हा विधातुः ॥ २.२८

इससे ज्ञात होता है कि उनका भावी जीवन संकटापन्न है।

कहीं आशीर्वाद से भावी वृत्त की पूर्व सूचना दी गई है। परशुराम राम को आशीर्वाद देते हैं—

इयं चास्तां युष्मच्छरशमितलङ्केश्वरशिरः-
श्रितोत्संगा नन्दत्सुरनरभुजंगा त्रिजगती ॥ ४.४८

अर्थात् तुम्हारे वाणों से रावण के शिर कटेंगे।

शकुननिरूपण के द्वारा भी भावी घटना की प्रवृत्ति का परिचय व्यंग्य है।[1]

शैली

जयदेव ने अपनी शैली का परिचय दिया है कि उनकी रचना में सरलता, कोमलता, वक्रता और कठिनता इन विरोधी लक्षणों का समाश्रय है। वह अपनी वक्रभङ्गिमा की उत्कृष्टता का स्वयं निर्वचन करता है—

धत्ते किं न हरः किरीटशिखरे वक्रां कलामैन्दवीम्। १.२०

उसने दृष्टान्त देकर अपनी मान्यता की पुष्टि की है—

सततममृतस्यन्दोद्गारा गिरः प्रतिभावताम्। १.२१

कवि को अपना वाक्पाटव दिखाने का चाव है। वह इसके लिए अवसर कथानक में मोड़ देकर भी निकाल लेता है। रावण ने आदेश दिया कि कन्या (सीता) और धनुष को सामने लाओ। वैतालिक ने कहा कि धनुष यह सामने है। कन्या तो अन्त में सामने आयेगी। तब तो रावण को कहना पड़ा—कथं रे, राशिनक्षत्र-पाठकानां गोष्ठीं न दृष्टवानसि। तेऽपि कन्यामेव प्रथमं प्रकटयन्ति चरमं धनुः।

वाक्पाटव का एक अन्य निदर्शन है एक ही श्लोक प्राकृत में ऐसा लिखना, जिसके संस्कृत छाया के द्वारा तीन अर्थ निकलें।[2]

कवि उपमाओं को उपमेय के निकटस्थ वातावरण से ग्रहण करके प्रासङ्गिकता की व्यञ्जना करने में बेजोड है। वसन्तमण्डित उद्यान में सीता का वर्णन उपमानों के द्वारा वासन्तिक सौरभ से प्रसाधित है। यथा,

बन्धूकबन्धुरधरः सितकेतकाभं
चक्षुर्मधूककलिकामधुरः कपोलः।
दन्तावली विजितदाडिमबीजराजि-
रास्यं पुनर्विकचपङ्कजदत्तदास्यम्॥ २.८

अन्यत्र भी वासन्तिक सौरभ के बीच सीता है—

अमलमृणालकाण्डकमनीयकपोलरुचे-
स्तरलसलीलनीलनलिनप्रतिफुल्लदृशः।
विकसदशोकशोणकरकान्तिभृतः सुतनो-
र्मदलुलितानि हन्त लसितानि हरन्ति मनः॥ २.२०

इसकी गेयता गीतगोविन्द के आदर्श पर ईषत् प्रस्फुटित है।

---

१. प्रसन्न० ७.१७

२. यह पद्य है—मां होहि णा अवइणो आदि ७.१७

कवि को शाब्दीक्रीडा का चाव है। सीता कहती है कि मेरा चित्त आराम में लगा है। तब उसकी सखी प्रत्युत्तर देती है—

अहो ते चातुर्यं यत आकारप्रकटनेनैवाकारगुप्तिं कृतवत्यसि।

जयदेव की वक्रता का उदाहरण है—जनक का कहना—

भगवन्! अयं ते सन्नीहितसपत्नतासमुद्गनारानः रामः।

इतने से केवल प्रणाम हुआ।

जयदेव शब्दालङ्कारों की झङ्कार भी प्रस्तुत करने में निपुण हैं। यथा,

मारीचमुख्यरजनीचरचक्रचूडाचंचन्मरीचिचयचुम्बितपादपीठः।
अत्राभवद् विफलबाहुबलावलेपो वीरः शशाङ्कमुकुटाचलचालनोऽपि॥ ३.३४

बातें सीधी न कहने का एक विशिष्ट उद्देश्य जयदेव का था। ताण्डायन कहना चाहता था कि राम ने धनुष तोड़ा कि उसके घुमा-फिराकर बातें कहने के कारण परशुराम ने श्लोक के बीच ही में समझ लिया कि रावण ने धनुष तोड़ा और वे उस पर आगबबूले हो गये।

कहीं-कहीं कवि ने अपनी शब्दावली से चित्र-सा खींचा है। रावण सीता को मारने की धमकी देकर जब चलता बना तो सीता ने अग्नि में कूद कर प्राण देने का उपक्रम किया। इस दृश्य को इन्द्रजाल द्वारा देखकर राम कहते हैं—

कथमपि शार्दूलमुखान्मुक्तायाः पुनरपि शबरवागुरामवतीर्णाया कुरंगबध्वा भङ्गीमङ्गीकृतवती जानकी।

एक ही पद्य में दो पात्रों के सात प्रश्न और उनके उत्तर का सन्निवेश संवादात्मक संक्षिप्ति का कलापूर्ण निदर्शन है। यथा,

मातस्तातः क्व यातः, सुरपतिभवनं, हा कुतः, पुत्रशोकात्,
कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां, त्वमवरजतया यस्य जातः, किमस्य।
प्राप्तोऽसौ काननान्तं, किमिति, नृपगिरा, किं तथासौ बभाषे,
मद्वाग्बद्धः, फलं ते किमिह, तव धराधीशता, हा हतोऽस्मि॥ ५.८१

नेतृपरिशीलन

कवि ने राम को अनेक रूपों में प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम उनका युवक रूप है, जिसमें वह कुमारी सीता के प्रशंसक हैं—

मत्वा चापं शशिमुखि निजं मुष्टिना पुष्पधन्वा
नन्वीमेनां तव तनुलतां मध्यदेशे बभार।
यस्मादत्र त्रिभुवनवशीकारमुद्रानुकारा-
स्तिस्रो भान्ति त्रिवलिकपटादङ्गुलीसन्धिरेखाः॥ २.१७

कवि कहीं-कहीं अपना पाण्डित्य दिखाने के चक्कर में राम तक की उदात्तता का ध्यान न रखकर उनसे कहलवाता है—

> प्राचीमालम्बमाने घनतिमिरचये बान्धवे बन्धकीनां
> सम्प्राप्ते च प्रतीचीं शशिकरनिकरे वैरिणि स्वैरिणीनाम् ।। २.३३

यहाँ राम से बन्धकी और स्वैरिणी की चर्चा कराना कवि की निजी विकृति का परिचायक है।[1]

कवि ने विश्वामित्र 'मुनि' को भी अपने काव्य की शृङ्गारित प्रवृत्ति के प्रदर्शन का साधन बनाया है। भला मुनि को इन्द्र का ऐसा शृङ्गारित परिचय देना चाहिए—

> पौलोमीकरजाङ्कुरव्यतिकरादाखण्डलीयं वपुः ।। ३.२४

अर्थात् निश्चिन्त इन्द्र अब शची के साथ कामक्रीडा में मग्न हैं।

और विदेह जनक भी देखते हैं—

> पौलोमीकुचकुम्भसीमनि रहः पश्यन्नखाङ्कं नयम् । ३.२७

जयदेव ने पात्रों का वैचित्र्य इस नाटक में संहृत किया है। राम, लक्ष्मण, रावण, बाणासुर आदि महत्तम शक्तियाँ पौराणिक युग की हैं। यमुना, गंगा, सरयू, गोदावरी आदि नदियाँ और सागर भी पात्र हैं। इनके साथ ही भिक्षु, तापस, वामनक, कुब्जक आदि छोटे-मोटे पात्र हैं। सबसे विचित्र पात्र है कलहंस पक्षी। वह चर बनकर रामवृत्तान्त सुनाता है।

नाट्यशिल्प और संविधान

जयदेव ने द्वितीय अङ्क में रंगमंच पर दो वर्गों में पात्रों को इस प्रकार अवस्थित कराया है कि वे दूसरे वर्ग के लोगों को देखते तो हैं, पर उनकी बातें कम ही सुनते हैं। प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग से कुछ छिपे रहने के भाव में है। एक वर्ग में राम-लक्ष्मण और दूसरे में सीता और उसकी सखी हैं।

पताका-स्थानक के प्रयोग सफल हैं। द्वितीय अङ्क में राम सीता के लिए कामना करते हैं कि वह प्रकट होती। तभी लक्ष्मण कहते हैं—

आर्य, इयमाविरस्ति ।

यहाँ लक्ष्मण का तात्पर्य था कि सन्ध्या का आविर्भाव हुआ।

---

१. कवि राम की शृङ्गारित वृत्ति को प्रेक्षक के समक्ष लाने में आदि से अन्त तक उत्सुक है। चौदह वर्ष के वनवास के पश्चात् लङ्का से लौटते हुए भी राम कहते हैं—

> शिथिलयति सरागो यावदर्को नलिन्याः कमलमुकुलनीवीग्रन्थिमुद्राकरेण ।
> प्रविकसदलिमाला गुंजितैर्मञ्जुशब्दा जनयति मुदमुच्चैः कामिनां कामिनीव ॥ ७.८६

संवादों में कहीं-कहीं वक्ता जो अर्थ व्यक्त करना चाहता है, उससे सर्वथा भिन्न और क्वचित् विपरीत अर्थ श्रोता ग्रहण करता है। इसी प्रकार कवि ऐसी नाटकीय स्थितियाँ उत्पन्न करता है कि कोई पात्र चाहता कुछ और है और उसे मिल जाता कुछ और ही है। रावण जब सीता का रक्तपान करने के हेतु कपाल पाने के लिए हथेलियाँ फैलाये था तो उस पर उसके पुत्र का शिर किसी ने रख दिया। इसी प्रकार षष्ठ अंक में सीता जब अशोक से अंगार का टुकड़ा गिराने की आशा करती है, तभी उसके हाथ में राम का भेजा पद्मराग का टुकड़ा हनुमान् द्वारा गिराया गया।[1]

जयदेव पर हनुमन्नाटक का प्रभाव पड़ा है। इसका प्रमाण है जयदेव के 'रे बाण मुञ्च मयि', 'रे रे चन्दनमिन्दुमण्डल' तथा 'रे रे भुजाः कुरुत' ये तीन पद्य हनुमन्नाटक के अगणित उन पद्यों के अनुरूप बने हैं जो 'रे रे' से आरम्भ होते हैं। हमें तो यही प्रतीत होता है कि प्रसन्नराघव का 'हारः कण्ठं विशतु' आदि पद्य हनुमन्नाटक से लिया गया है।

जयदेव सम्भवतः इस नाटकीय विधान को जानते ही नहीं थे कि दृश्य कथावस्तु को अङ्कों के द्वारा और सूच्य कथावस्तु को अर्थोपक्षेपकों के द्वारा प्रस्तुत करना चाहिए। पाँचवें अङ्क में गङ्गा, यमुना और सरयू नदियाँ आरम्भ में राम की वनवास-सम्बन्धी कथा कहती-सुनती हैं। फिर राम का वृत्तान्त जानने के लिए सरयू के द्वारा भेजा गया कलहंस आकर इन नदियों से रामादि के वनवास के लिए अयोध्या से निकलने के पश्चात् से लेकर गङ्गा, यमुना और नर्मदा नदियों को पार करके गोदावरी प्रदेश में पहुँचने और वहाँ शूर्पणखा की नाक काटने और मारीच की कथा के पश्चात् रावण के लिए सीता के द्वारा दी हुई भिक्षा का वृत्तान्त बताता है। आगे की कथा सागर बताता है। इस प्रकार के सूच्यांश को अङ्क में स्थान देना सर्वथा नाटकीय नियमों की अवहेलना है। इस अङ्क में आदि से अन्त तक रामादि पात्रों के विषय में सूचना मात्र है, उनके चरित का अभिनयात्मक दृश्य है ही नहीं।[2]

षष्ठ अङ्क जयदेव की अभिनव देन है। इसमें गर्भाङ्क के स्थान पर इन्द्रजालाङ्क सन्निविष्ट है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है रङ्गमंच पर इन्द्रजाल के द्वारा पात्रों का

---

१. ऐसी घटनाओं की स्थिति को ध्यान में रखते हुए कवि ने लक्ष्मण के मुख से छठें अंक में कहलाया है—

अहो सचमत्कारता संविधानस्य।

२. कवि के शब्दों में यह सब है 'किमपि वृत्तान्तशेषः प्रसरयते'।

प्रस्तुतीकरण। यह योजना छायानाटक की परिधि में आती है, जिसमें मायापात्र रङ्गमंच पर आते हैं।[1]

प्रसन्नराघव में छायानाटक का एक दूसरा तत्त्व भी सन्निविष्ट है। वह है सातवें अङ्क में चित्राभिनय का प्रयोग। इसमें रावण को प्रहस्त एक चित्रकथा देता है, जिसमें सागर, वानरसेना, कुश-आसन पर समुद्र का अनुनय करते हुए राम, राम के बाण से विह्वल समुद्र का परिवार, सागर और विभीषण का राम की शरण में जाना आदि दृश्य चित्रित है और अन्त में लक्ष्मण का समुद्र और विभीषण के लिए सन्देश लिखा है।

संवाद

जयदेव के संवाद हनुमान् की पूँछ की भांति अतिशय लम्बायमान होने के कारण कहीं-कहीं ऊबा देते हैं किन्तु अपने वाक्पाटव से कवि ने संवादों को यथा-सम्भव रुचिकर बनाया है। इसके लिए वह अनेक उपाय करता है।[2] पहले तो संवाद प्रस्तुत करने के लिए अभी तक अप्रयुक्त पात्रों को रङ्गमंच पर ला देता है। रावण और बाणासुर का संवाद सीता के स्वयंवर के अवसर पर करा देना यह जयदेव की सूझ है। दूसरे, इस संवाद को भरपूर चटपटा बनाया गया है। यथा बाण को जब धनुष उठाने में सफलता न मिली तो रावण और बाण का संवाद है—

रावणः — अये बाण, अपि नाम ते पलालभारनिःसारो भुजभारः।

बाणः — कथं भुजमण्डलमिदमालोकयन्नपि कटुभाषितां न मुञ्चसि।

रावणः — तत्किमनेन करिष्यसि।

बाणः — यत्कृतं हैहयराजेन।

रावणः — इदमसौ ते भुजवनं दिनप्रतापानले निर्दहामि।

बाणः — इदमहं त्वत्प्रतापानलमनेकरुचिरचापचुम्बितनिजबाहुबलाहकनिवह-निर्मुक्तधारासारैः शमयामि।

जयदेव के शब्दों में इस प्रकार सातिशय वचन को कवि ने स्वयं अभिनववचन-चातुरी नाम दिया है।[3]

---

१. जयदेव का समकालीन सुभट है, जिसका छायानाटक दूताङ्गद सुप्रसिद्ध है। छायानाटक के विवरण सागरिका १०.४ में प्रकाशित है।

२. जयदेव ने रामादि को रावण से वाग्डम्बरपण्डित की उपाधि दिलाई है। वास्तव में यह उपाधि जयदेव को ही दी जा सकती है।

३. कथानक की दृष्टि से संवाद प्रस्तुत करानेवाली यह घटना सर्वथा व्यर्थ है, यदि संवाद रोचक है।

संवाद की रोचकता के लिए कचित् गाली-गलौज का प्रयोग जयदेव ने अपने पूर्ववर्ती कवियों से सीखा है। परशुराम और शतानन्द एक-दूसरे को भद्दी गालियाँ चतुर्थ अङ्क में देते हैं। संरम्भ की सृष्टि करने के लिए ये राम को भी अविवेकी बनाकर उद्दण्ड रूप में प्रस्तुत करते हैं। जयदेव का राम परशुराम से कहता है—

तत्कोदण्डं कुलिशकठिनं भग्नमेतेन भग्नं
मग्नं शल्यं तव हृदि महन्मग्नमेतावता किम्।
त्रैयक्षं वा भवतु यदि वा नाम नारायणीयं
नैतत् किञ्चिद् गणयति स मे दुर्मदो दोर्विलासः॥ ४.३९

लोकोक्तियां

लोकोक्तियों से संवाद में प्राण आ जाता है। संवाद की लोकोक्तियों से प्रभविष्णुता बढती है और स्वाभाविकता प्रतीत होती है। जयदेव ने लोकोक्तियों का प्रायः प्रयोग किया है। यथा,

१. विषस्य विषमौषधम्।

२. वार्ता च कौतुकवती विमला च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरङ्गनाभेः।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार-
मेतत् त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ॥ २.२

३. सम्बन्धिजने परिहासवचनानि न खलु पापकारणानि।
४. देवताधिष्ठितानि हि मुग्धवचनानि भवन्ति।
५. एकामिषाभिलाषो हि बीजं वैरमहातरोः।
६. को जानाति विधेः संविधानवैदग्ध्यम्।
७. न खल्वप्रोषितसलिलसेकः कमलकेदारः परिशुष्यति।

८. न ज्ञातुं नाप्यनुज्ञातुं नेक्षितुं नाप्युपेक्षितुम्।
सुजनः स्वजने जातं विपत्पातं समीहते॥ ५.२

९. इदमेव नरेन्द्राणां स्वर्गद्वारमनर्गलम्।
यदात्मनः प्रतिज्ञा च प्रजा च परिपाल्यते॥ ५.३

१०. प्रकृतिभीरुः खल्वबलाजनः।

११. प्रायो दुरन्तपर्यन्ता सम्पदोऽपि दुरात्मनाम्।
भवन्ति हि सुखोदर्का विपदोऽपि महात्मनाम्॥ ५. ४९

१२. धूसरापि कला चान्द्री किं न बध्नाति लोचनम्। ७.९

लोकोक्तियों के अतिरिक्त इसी प्रभविष्णुता की दिशा में कवि के परिमार्जित प्रयोग हैं। यथा,

चिन्तास्वप्नोऽपि नैवमचुम्बितावगाही भवति।
तुलाधिरोहः खल्वयं वीरलक्ष्म्याः।

जयदेव की कविता की प्रतिच्छाया अनेक परवर्ती महाकवियों की रचनाओं पर प्रतिफलित हुई है। तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर जयदेव के पद्यों का प्रायः अनुवाद-सा रामायण में किया है। केशवदास की रामचन्द्रिका के कतिपय पद्यों में प्रसन्नराघव के पद्यों का अनुहरण मिलता है।

अध्याय ३०

दूताङ्गद : छायानाटक

कविपरिचय

दूताङ्गद के रचयिता सुभट का प्रादुर्भाव तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ था। इनकी प्रतिभा का आलोक मुख्यतः भीम द्वितीय (११७८ ई०—१२३९ ई०) के शासनकाल में हुआ था। भीम के पश्चात् त्रिभुवनपाल राजा हुआ। त्रिभुवनपाल के आश्रय में सुभट ने दूताङ्गद की रचना की, जिसकी परिषद् की आज्ञा से कुमारपाल के यात्रामहोत्सव के अवसर पर इसका अभिनय १२४३ ई० में हुआ था। सुभट की चर्चा सोमेश्वर ने अपने सुरथोत्सव नाम के महाकाव्य में की है, जिसकी रचना १२२७ ई० के लगभग हुई। इससे प्रमाणित होता है कि सुभट को बहुत दिनों तक गुजरात में राजाश्रय प्राप्त रहा।

महाकवि सुभट के विषय में इस नाटक की प्रस्तावना में कहा गया है कि वे पद-वाक्य-प्रमाण-पारंगत थे। सुभट को समकालिक महाकवि सोमेश्वर ने कविप्रवर कहा है।[1]

दूताङ्गद

रामायण में दो श्रेष्ठ वीर माने गये—हनुमान् और अंगद[2]। इनमें से हनुमान् को प्रमुख मानकर हनुमन्नाटक की रचना करके दामोदर ने यश पा लिया था। उसी प्रकार की ख्याति पाने के लिए सुभट ने दूताङ्गद की रचना की, जिसमें अङ्गद के पराक्रमों की गाथा सर्वोपरि है।

चार अङ्कों में विभक्त दूताङ्गद के रचयिता सुभट ने इसे छायानाटक कहा है। यह साधारण नाटक नहीं है, किन्तु छायानाटक है—इसका कोई लक्षण न तो इस

---

१. श्रीसोमेश्वरदेवककवेरवेत्य लोकम्पृणं गुणग्रामम्।
हरिहरसुभटप्रभृतिभिरभिहितमेवं कविप्रवरैः॥ सुरथोत्सव १५.४४

इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि सुभट की प्रतिष्ठा पहले से ही बढ़ी-चढ़ी थी, जब सोमेश्वर ने सुरथोत्सव की रचना की। सुभट सोमेश्वर से ज्येष्ठ थे।

अपने कीर्तिकौमुदी महाकाव्य १.२४-२५ में भी सोमेश्वर ने सुभट के काव्य की प्रशंसा की है।

१. हनुमान् और अंगद की सुप्रतिष्ठित श्रेष्ठता के लिए हनुमन्नाटक का तेरहवां अंक देखें।

कृति से मिलता है और न नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों से। छायानाटक की कोई चर्चा नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं मिलती। मेघप्रभाचार्य ने अपने धर्माभ्युदय नामक रूपक को छाया-नाट्य-प्रबन्ध कहा है। इसमें एक राजा संन्यास ले रहा है। उस समय का रंग निर्देश है—यमनिकान्तराद् यतिवेषधारी पुत्रकस्तत्र स्थापनीयः। अर्थात् यवनिका की दूसरी ओर से निकालकर यतिवेषधारी पुतला रख दिया जाय। इसमें पुतला आगे चलकर राजा का स्थानीय बनकर उसके लिए अभिनय करता है। दूताङ्गद में कोई निर्देश पुत्रक आदि का नहीं मिलता किन्तु इसमें एक मायामयी सीता वास्तविक सीता का अभिनय करती है।

कीथ के अनुसार इसका अभिनय १२४३ ई० में स्वर्गीय कुमारपाल के सम्मान में अण्हिलपाटन के तत्कालीन राजा त्रिभुवनपाल की सभा में हुआ था। यहाँ डॉ० डे का मत निम्नोक्त है—

The prologue tells us that it was produced at the court of Tribhuvanapāla, who appears to be the Caulukya prince of that name who reigned at Aṇhilvad at about 1942–43 A. D. and was presented at the spring–festival held in commemoration of the restoratin of the Śaiva temple of Davapattana (Somanath) in Kathiawad by the deceased king Kumarapāla.

छायानाटक

दूताङ्गद छायानाटक है। इस नाम से कुछ विद्वान् इसे चित्रपट पर छाया के द्वारा प्रदर्शनीय मानते हैं। ऐसे विद्वानों में पिशेल, लूडर्स, स्टेनकोनो, विण्टरनित्ज़ आदि हैं। किन्तु डॉ० डे का मत है—

While the connotation of the term Chāyā-nāṭaka itself is extremely dubeious, the shadowplay theory, however, appears to be entirely uncalled for and without foundation, and there is hardly any characteristic feature which is not otherwise intelligible by purely historical and literary considerations...There is nothing to show that it was meant for shadow—pictures, except its doubtful self-description as a Chāyā-nāṭaka which need not necessarily mean a shadow-play.[1]

डॉ० डे का मत है कि दामोदर मिश्र का महानाटक, मेघप्रभाचार्य का धर्माभ्युदय तथा अन्य रूपक जिन्हें Shadow play कहा जाता है, वास्तव में अन्य रूपकों से

१. History of Sanskit Literature. P. 502-3.

किसी बात में भिन्न नहीं हैं और इनमें छाया-तत्त्व की विशेषता कोई भी नहीं है।[1]

विलसन के मतानुसार—This piece is styled a Chhāyā-nāṭa, the shade or outline of a drama.[2]

डॉ० डे ने कोई अपना मत नहीं दिया कि इन्हें छायानाटक क्यों कहते हैं, यद्यपि उन्होंने यह स्पष्ट कहा है कि ये Shadow play नहीं हैं। डॉ० कीथ ने राजेन्द्रलाल मित्र का मत छायानाटक नाम की सार्थकता के विषय में उद्धृत किया है—'The drama was perhaps simply intended as an entr'acte, and this may be justified on the interpretation of the term of drama in the form of a shadow; ie. reduced to the minimum for representation in such a form.[3]

कीथ का यह भी कहना है कि दूताङ्गद में कोई ऐसी विशेषता नहीं है, जिससे इसके वास्तविक स्वरूप का निर्णय किया जा सके (कि यह छायानाटक क्यों कहा जाता है)[4]। उपर्युक्त विद्वानों ने छायानाटक के विषय में जो अभिप्राय व्यक्त किये हैं, वे समीचीन नहीं हैं।

मेरा मत है कि दूताङ्गद में इसके 'छायानाटक' उपनाम के संकेतक तत्त्व वर्त्तमान हैं। अभी तक विद्वानों ने छाया का वास्तविक रहस्य नहीं खोज पाया है।

छायानाटक नाम भास के प्रतिमानाटक के समान है। भास ने इस नाटक में 'दशरथ की प्रतिमा' का अभिनव आयोजन किया है। इसी लोकप्रिय अभिनव आयोजन की विशेषता से इसे प्रतिमानाटक कहते हैं। इसी प्रकार का नाम दिङ्नाग की कुन्दमाला है। दिङ्नाग ने इसमें कुन्दमाला का अभिनव आयोजन किया है। मेरी दृष्टि में अभिज्ञान नामक नये आयोजन की विशेषता का संकेत कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल नाम देकर किया है। भवभूति ने उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क का नाम छाया अङ्क इसीलिये रखा है कि उसमें सीता की छाया की विशेषता की ओर वे पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे। राजशेखर ने शालभंजिका के आयोजन से अपनी नाटिका का नाम विद्धशालभंजिका रखा है।

---

१. If we leave aside the self adopted title of Chāyā-nāṭaka, these plays do not differ in any respect from the ordinary play. History of Sanskrit Literature P. 504.

२. The Theatre of the Hindus P. 141.

३-४. कीथ : संस्कृत ड्रामा पृ० २६९।

परवर्ती युग में रसार्णवसुधाकर के रचयिता सिंहभूपाल ने अपनी नाटिका कुवलयावली का नाम रत्नपञ्चालिका रखा। इसमें भी भास की भाँति रत्नपञ्चालिका का अभिनव आयोजन है। इससे स्पष्ट है कि चमत्कारपूर्ण अभिनव आयोजन को प्रेक्षक की दृष्टि में लाने के लिए रूपकों के नाम तदनुसार रखे जाते थे।

दूताङ्गद में मायामैथिली प्रहस्त के साथ रंगमञ्च पर आती है। इस प्रसङ्ग का पाठ इस प्रकार है—

(ततः प्रविशति प्रहस्तेन सह मायामैथिली)

मैथिली—जयतु जयत्वार्यपुत्रः। (इत्यभिदधाना रावणोत्संगमारोहति)

अङ्गद ने इस मायामयी सीता के पण्याङ्गनावत् व्यवहार देखकर कहा—न खलु भवति जानकी।

मायामयी सीता पूर्ववर्ती रामकथा के रूपकों में विरल है। यह कथांश कवि का अभिनव आयोजन है। मायामयी सीता ही वास्तविक सीता की छाया है। छाया का अर्थ है प्रतिच्छन्द। छाया के इस अर्थ में तत्सम्बन्धी एक पौराणिक कथा है, जिसके अनुसार संज्ञा सूर्य की पत्नी थी। वह अपने स्थान पर अपना प्रतिच्छन्द= छाया को रखकर स्वयं पिता के घर चली गई, क्योंकि उसे सूर्य का ताप सहन नहीं होता था। उससे सूर्य की तीन सन्तान हुई। तब जाकर सूर्य को कहीं ज्ञात हुआ कि यह मेरी पत्नी संज्ञा नहीं है। यह छाया उसका प्रतिच्छन्दमात्र है।[1]

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार छाया है—सूर्यपत्नी। सा संज्ञाप्रतिकृतिः। यथा मत्स्यपुराणे ११.५

जिन-जिन रूपकों को छायानाटक कहते हैं, उनमें मायामयी प्रतिकृति का अभिनव आयोजन है। हनुमन्नाटक या महानाटक को छायानाटक कहा गया है, यद्यपि इसको डॉ० डे के अनुसार कवि ने छायानाटक जैसा कोई नाम नहीं दिया है। इस नाटक में रावण ने मायापूर्वक राम का रूप धारण किया है। वह इस रूपक में रावण के कृत्रिम शिरों को हाथ में लेकर राम सीता के समीप पहुँचे। तब तो—

---

१. The Practical Sanskrit English Dictionary में छाया। हरिवंश में छाया का अर्थ ऐसी ही मायात्मक प्रतिकृति नीचे लिखे पद्य में है—

माययास्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये।
देहार्धेन तु कौरव्यं सिषेवेऽसौ प्रभावतीम्॥ विष्णु० प० ९४-३०

इसमें प्रद्युम्न की छाया का वर्णन है।

जानकी रघुनन्दनवेषधारिण तमालोक्य सहर्ष
साक्षादालोक्य राम झटिति कुचतटीभारनम्रापि हर्षा-
दुत्थायोदस्तदोर्भ्यां दरदलितकुचाभोगचैलोन्नताङ्गी।
धन्याहं प्राणनाथ त्यज रजनिचराच्छिन्नशीर्षाणि गाढं
मामालिंगाद्य खेदं जहि विरहमहापावकः शान्तिमेतु ॥ १०.२०

इस नाटक में रावण का मायापूर्वक राम की प्रतिकृति (छाया) धारण करने से इसे छायानाटक कहा गया है।

एक बार और ऐसी ही सीता की छाया को इस नाटक में प्रस्तुत किया गया है। बारहवें अङ्क में राम और लक्ष्मण को मायामयी सीता दिखाई गई। यथा,

पापो विरच्य समरे जनकस्य पुत्रीं
हा राम राम रमणेति गिरं गिरन्तीम्।
खड्गेन पश्यत वदन्निति रे प्रवीरा
मायामयीं शिवशिखेन्द्रजिदाजघान ॥ १२.१३

इस मायामयी सीता को रावण ने दो टुकड़े में काट दिया, जिससे रामादि हतोत्साह हो जायँ।

तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में लिखे हुए उल्लाघराघव को इसके लेखक सोमेश्वरदेव ने छायानाटक कहा है। इसके चतुर्थ अङ्क की पुष्पिका है—

इति कुमारसूनोः श्रीसोमेश्वरदेवस्य कृतावुल्लाघराघवेच्छायानाटके चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः।

इस नाटक के अनुसार मायासीता को बनाकर रावण ने राम के समक्ष उसका कटा सिर रखा था। इसी प्रकार मायाराम का सिर काटकर सीता के समक्ष रखा गया था।[1] उल्लाघराघव में रावण के प्रीत्यर्थ राम और लक्ष्मण का चित्र बनाकर उसके नीचे एक श्लोक लिख कर दिया गया था। इसके विषय में कहा गया है—

छायानाट्यानुसारं मनोहरमिदमालिखितम्।

धर्माभ्युदय नाटक को छाया-नाट्य-प्रबन्ध कहा गया है। इसमें नायक की छाया पुत्रक (पुतले) के रूप में अभिनय करती है।[2] इसमें छाया (प्रतिकृति) मूर्त

---

१. रामः — (सवैलक्ष्यम्) प्रिये श्रूयताम्। इह हि—
मायाकृतामपि मृगाक्षि मूर्तिं त्वदीया
सत्यां विदन् न सहसैव मृतोऽस्मि यस्मात्।
सीता — अज्ज उत्त, एसो विजणो इत्थ समाणावराहो ज्जेव।
रामः — (विमृश्य) प्रिये कदाचिदस्मदीयमपि कृतविलूनं शिरस्तवाग्रे तैर्दुरात्म-भिर्दर्शितं भविष्यति।

२. प्रस्तुत पुस्तक में पृष्ठ २२३ पर धर्माभ्युदय का अनुशीलन द्रष्टव्य है।

है। प्राचीन काल में चित्रों के द्वारा भी अभिनय प्रस्तुत किया जाता था। इसका प्रमाण उल्लाघराघव में मिलता है। कभी-कभी छाया-नाट्य में पात्रों का अभिनयात्मक चित्र पत्रपट्ट पर बना दिया जाता था। उल्लाघराघव के सातवें अङ्क के अनुसार वृकमुख ने राम और लक्ष्मण का स्वरूप पत्रपट्ट पर अपनी प्रतिभा से बनाया था, जिसके विषय में कहा गया है—

वृकमुखः — सखे, कियदप्यन्तर्गतं मया रामलक्ष्मणयोः स्वरूपं स्वामिनो मनोविनोदाय पत्रपट्टे विन्यस्तमस्ति। तदवलोकयतु। (इति पट्टमर्पयति)

कार्पटिकः — (गृहीत्वा विलोक्य च) साधु महामते, साधु। छायानाट्यानुसारेण मनोहरमिदमालिखितं भवता। (इति वाचयति)

इससे स्पष्ट है कि इस अवतरण के अनुसार छाया-नाट्य में चित्र का प्रयोग होता था और यही कारण है कि ऐसे चित्राभिनयात्मक रूपक को छाय-नाट्य कहा जाता था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छाया-नाटक तीन प्रकार के होते थे—

(१) जिनमें किसी प्रमुख पात्र का प्रतिच्छन्द माया द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, जिसे प्रेक्षक अभिनय के समय मूलपात्र से अभिन्न समझता था। यह योजना हनुमन्नाटक, उल्लाघराघव और दूताङ्गद में मिलती है।

(२) जिसमें किसी प्रमुख पात्र का पुतला-मात्र अभिनय के लिए प्रयुक्त होता था। यह योजना धर्माभ्युदय में है।

(३) जिसमें प्रमुख पात्र का अभिनयात्मक चित्र प्रेक्षक के समक्ष रखा जाता था।

वास्तव में छाया नाटक होने के लिए पात्रों की परछाईं का अभिनय आवश्यक नहीं था, अपितु किसी नेता का प्रतिच्छन्द उसकी मायात्मक छायारूप में, मूर्तिरूप में या चित्ररूप में होना चाहिए था।

मायामय पात्रों का प्रयोग भवभूति के महावीरचरित में है। उसमें माया द्वारा कैकेयी और दशरथ बनते हैं। भवभूति के समकालीन यशोवर्मा के लिखे रामाभ्युदय नाटक में दूताङ्गद की योजना के निकट छाया व्यापार है। इसमें रावण मायासीता बनाकर उसे राम के सामने मार डालता है।

रामाभ्युदय के अनुसार—

प्रत्याख्यानरुषः कृतं समुचितं क्रूरेण ते रक्षसा
सोढं तच्च तथा त्वया कुलजनो धत्ते यथोच्चैः शिरः।
व्यर्थं सम्प्रति बिभ्रता धनुरिदं त्वद्व्यापदः साक्षिणा
रामेण प्रियजीवितेन तु कृतं प्रेम्णः प्रिये नोचितम्॥

इसे विमर्श-सन्धि का परिचायक बताते हुए रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में लिखा है—

अत्र रावणेन यन्मायारूपसीताव्यापादनं तद्रूपेण व्यसनेन सीताप्राप्तिविघ्नजो विमर्शः ।[1]

सीता की छाया (प्रतिकृतियन्त्र) का प्रयोग राजशेखर के बालरामायण (महानाटक) के पंचम अङ्क में मिलता है । इस सन्दर्भ में राजशेखर की छायासीता प्रतिकृतियन्त्र के मुख में रखी सारिका के माध्यम से रावण से प्रश्नोत्तर भी करती थी । वह देखने में सर्वथा सीता ही थी ।

दूताङ्गद में कथा का आरम्भ सीताहरण के पश्चात् राम की सेना के समुद्रपार करके सुवेल पर्वत पर पहुँचने के पश्चात् होता है । तब से लेकर युद्धकाण्ड तक की पूरी कथा का संक्षेप इसमें प्रस्तुत है । इसमें चार दृश्य कथानुसारी हैं ।

राम ने अङ्गद को रावण के पास भेजा कि सीता को लौटा दो, अन्यथा लक्ष्मण के बाण से सभी राक्षसों का संहार होगा ।

लंका में मन्दोदरी रावण को समझाती है । रावण ने उसे समझाया कि मर्कट-कोटों से डर रही हो । विभीषण ने भी मन्दोदरी की बात का समर्थन किया । रावण तलवार से उसे मार ही डाले होता, यदि वह भाग नहीं जाता । तभी अङ्गद पहुँचा । उसने रावण को सम्बोधित किया—

रे रे रावण रावणाः कति बहूनेतान् वयं शुश्रुम
प्रागेकं किल कार्तवीर्यनृपतेर्दोर्दण्डपिण्डीकृतम् ।
एकं नर्तनदापितान्नकवलं दैत्येन्द्रदासीजनै-
रेकं वक्तुमपत्रपामह इति त्वं तेषु कोऽन्योऽथवा ॥ २२

तभी मायामैथिली को रावण ने अङ्गद के समक्ष प्रस्तुत कर दिया । उसने कहा—आपकी जय हो और यह कहते-कहते अंगद के सामने ही रावण की गोद में चढ़ गई । अङ्गद से उसने कहा कि राम से कह देना—

एषामुपरि कस्मात् खिद्यसे राघव तद् व्रज निजं नगरम् ।
दत्ताहं निजहृदये साक्षीकृत्य मदनमेतस्मै ॥

और यह भी कहा कि मेरी चिन्ता छोड़ें । भरत को देखें जिन पर राक्षसों ने आक्रमण कर दिया है । अङ्गद ने विचार करके जान लिया कि सीता ऐसी निर्लज्ज नहीं है । तभी किसी राक्षसी ने आकर रावण से कहा कि सीता तो उधर फाँसी लगा रही है । रावण ने उसे बचाने के लिए आदेश दिया और अङ्गद से कहा कि राम की परीक्षा मेरी तलवार से होगी । अङ्गद ने पुनः पुनः कहा—सीता को लौटा दो ।

---

१. नाट्यदर्पण पृ० ५०

राम की ओर से छिटपुट आक्रमण होने लगे। तब तो रावण ने सेना सन्नाह कराया यह कहते हुए कि—अरावणमरामं वा जगदद्य भविष्यति। इसके पश्चात् दो गन्धर्व चित्राङ्गद और हेमाङ्गद युद्ध का वर्णन करते हैं कि राम ने रावण को स्वर्गातिथि बना दिया। यतो धर्मस्ततो जयः का नारा लगाते गन्धर्व चलते बने। राम पुष्पक विमान पर बैठकर सीता को युद्धभूमि दिखाते हुए अयोध्या की ओर चल पड़े। इस प्रसङ्ग में कवि का कहना है—

> इति नवरसगीर्भिर्जानकीं प्रीणयन् व-
> पुलकितललिताङ्गः पैतृकं प्राप्य धाम।
> सुखयतु कुलराज्यं पालयन्नुत्कपौरः
> प्रकटितबहुभद्रः सर्वदा रामभद्रः॥ ५५

कवि ने स्वीकार किया है कि इसमें मैंने अपनी निजी और पुराने कवीन्द्रों की सूक्तियों को पिरोया है, जिससे यह नाट्य रसपूर हो।

दूताङ्गद पुरुषार्थ को प्रोत्तेजित करने के उद्देश्य से लिखा गया है। इसकी मूल वाग्धारा है—

> दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
> यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः। ५

इसके कथानक में देवों से सम्बद्ध अनेक पौराणिक आख्यानों के उल्लेख हैं। यथा, ब्रह्मा के विषय में—

> प्राचीनं हि विरञ्चिपञ्चमशिरश्छेदापवादं स्मरन्
> देवोऽदत्त वरं तवापि कृपया कायव्रतं कुर्वतः॥ ४१

अनुप्रासप्रेमी सुभट ने वीर रस को गौडी रीति का आश्रय लेकर छलकाया है। यथा,

> नो चेल्लक्ष्मणमुक्तमार्गणगणच्छेदोच्छलच्छोणित-
> च्छत्रच्छन्नदिगन्तमन्तकपुरं पुत्रैर्वृतो यास्यसि॥ ६

कवि ने गद्य और पद्य का सामंजस्य करने में नीचे लिखे संवाद में सफलता पाई है।

> रामः किं कुरुते, न किंचिद्—अपि च प्रातः पयोधेस्तटं
> कस्मात् साम्प्रतम्—एवमेव हि—ननो बद्धः किमम्भोनिधिः।
> क्रीडाभिः—किमसौ न वेत्ति पुरतो लङ्केश्वरो वर्तते
> जानात्येव विभीषणोऽस्य निकटे लंकापदे स्थापितः॥

इसमें प्रश्नोत्तरमालिका गद्य में है किन्तु शार्दूलविक्रीडित छन्द में भी है।

अध्याय ३१

उल्लाघराघव

उल्लाघराघव के रचयिता महाकवि सोमेश्वर के विषय में उसके मित्र वस्तुपाल ने कहा है—

यस्यास्ते मुखपङ्कजे सुखमृचां वेदः स्मृतीर्वेद यः
त्रेता सद्मनि यस्य यस्य रसना सूते च सूक्तामृतम् ।
राजानः श्रियमर्जयन्ति महतीं यत्पूजया गूर्जराः
कर्तुं तस्य गुणस्तुतिं जगति कः सोमेश्वरस्येश्वरः ।। उल्लाघ० १.८

सोमेश्वर अहमदाबाद जिले में धवलक या धोलका में राज्य करनेवाले वाघेला राजाओं के मन्त्री वस्तुपाल के मित्र और आश्रित थे। वे अन्हिलपाटन के चालुक्य राजा भीमदेव की राजसभा को भी समलंकृत करते थे। सोमेश्वर आशुकवि थे, जैसा उन्होंने स्वयं अपने विषय में कहा है—

काव्येन नव्यपदपाकरसास्पदेन
यामार्धमात्रघटितेन च नाटकेन ।
श्रीभीमभूमिपतिसंसदि सभ्यलोक-
मस्तोकसम्मदवशंवदमादधे यः ।। सुरथोत्सव १५.४०

उल्लाघराघव का अभिनय द्वारका के मन्दिर में प्रबोधिनी एकादशी के दिन हुआ था। इसकी रचना कवि ने अपने पुत्र लल्लशर्मा की प्रार्थना पर की थी।

सोमेश्वर की अनेक रचनायें प्राप्त हुई हैं। उन्होंने १२२७ ई० के लगभग सुरथोत्सव नामक महाकाव्य की रचना की।[1] इनके कीर्तिकौमुदी महाकाव्य में वस्तुपाल के चरित और पराक्रमों की गाथा है। इसका विशेष महत्त्व समकालिक इतिहास और सामाजिक परिस्थितियों के परिचय के लिए है।[2] कर्णामृतप्रपा में कवि के २१७ उपदेशात्मक पद्यों का संग्रह है।[3] सोमेश्वर के रामशतक में यथानाम राम की स्तुतियाँ हैं।[4]

---

१. सुरथोत्सव का परिचय पहले भाग में दिया जा चुका है।

२. इसका प्रकाशन १८८३ ई० में बम्बई से हुआ है।

३. कर्णामृतप्रपा की हस्तलिखित प्रति भण्डारकर ओ० इं० पूना में है। इसका विस्तृत परिचय Sandesara : Literary Circle of Mahamatyā Vastupāla pp. 140-142 में प्रकाशित है।

४. उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ १३६-१३७ में रामशतक का परिचय है।

सोमेश्वर की आबू-मन्दिर-प्रशस्ति ७४ पद्यों में आबू-मन्दिर में उत्कीर्ण है और अब भी विराजमान है। इसकी रचना १२३१ ई० में हुई थी। गिरनार के वस्तुपाल-विषयक दो शिलालेख सोमेश्वर के रचे हुए हैं। सोमपाल ने १२५५ ई० में वैद्यनाथ-प्रशस्ति की रचना की। इसमें बड़ौदा के निकट दर्भावती (आधुनिक डभोई) में वैद्यनाथ-मन्दिर के नवीकरण की चर्चा है। मन्दिर का जीर्णोद्धार वीरधवल के पुत्र राजा विशालदेव ने किया था। सोमेश्वर ने धवलक में महाराज वीरधवल के बनवाये हुए वीरनारायण-प्रासाद के लिए १०८ पद्यों की एक प्रशस्ति लिखी थी। यह विष्णु का मन्दिर था।[1]

सोमेश्वर शैव और शाक्त थे, पर युगानुरूप धार्मिक सहिष्णुता उनमें विराजती थी। वैष्णव और जैन धर्म के प्रति उनका अनुराग विशेष था।

उल्लाघव राघव की कथा सीता के स्वयंवर से लेकर राम के रावण-विजय करके लंका में आकर राज्याभिषेक तक है। कथा प्रायशः पात्रों के कथोपकथन द्वारा प्रस्तुत की गई है। रंगमंच पर कार्य का अभाव-सा है।

इस नाटक में कवि ने राम की परम्परागत कथा से भिन्न तत्त्वों को जोड़कर कतिपय स्थलों पर रोचकता ला दी है। यथा, मन्थरा की बातें कैकेयी नहीं मान रही है तो वह मोहनमन्त्र से अभिमन्त्रित ताम्बूल को कैकेयी को खिलाकर उसका हृदय मोहित करके अपनी बात मनवा लेती है।

इस नाटक में ऊर्मिला भी लक्ष्मण के पीछे-पीछे वन में जाना चाहती हैं, किन्तु लक्ष्मण ने उन्हें रोक दिया। कवि की दृष्टि में यह शाप आकस्मिक नहीं था, अपितु पूर्वनियोजित था।[2]

मथुरा के राजा लवणासुर के द्वारा नियोजित चर भरत से कहता है कि रामादि मारे गये और अब रावण ससैन्य अयोध्या पर आक्रमण करनेवाला है। सीता तो जल मरी। यह सुनकर राम की माता जल मरनेवाली हैं। भरत ससैन्य लड़ने के लिए उद्यत हैं। विभीषण विमान से उतरकर भरत से मिलते हैं तो भरत उनसे भिड़ने के लिए उद्यत हैं। इसी बीच आकर वसिष्ठ ने कहा कि भरत राम आदि का स्वागत करें।[3]

राम को कवि ने कतिपय स्थलों पर शृङ्गारित कवि के रूप में चित्रित किया है। यथा, राम का सीता से कहना है—

---

१. काव्यादर्शसंकेत के लेखक कोई अन्य सोमेश्वर थे।

२. स च शापो रामभद्रस्य वनप्रवासदिवसावधि मदुपरोधाद् देवेन सुधाशनाधिपतिनाऽप्यनुमेने।

३. उल्लाघराघव का यह दृश्य वेणीसंहार के अन्तिम अंक पर आधारित है, जिसमें युधिष्ठिर को राक्षस झूठ बोलकर मरने-मारने के लिए उद्यत करा देता है।

देवः शिवो जयति वक्षसि दोर्युगेन
न्यञ्चत्कुचं गिरिजया परिरभ्यमाणः ॥ ८.३०

नेतृपरिशीलन

कवि ने कौशल्या के चरित को हीन किया है। वह राम के वनवास के समाचार से उद्विग्न होकर दशरथ से कहती है कि अब यही कहेंगे कि तुम भी वन में जाओ। सुमित्रा भी इस बात का समर्थन करती है कि राम बलात् राज्य ले लें।

कहीं-कहीं चरित्रचित्रण की उस पद्धति को अपनाया गया है, जिसमें किसी पुरुष के प्रति अन्यथाभाव की प्रतिपत्ति दृष्टिगोचर होती है। जटायु को देखकर लक्ष्मण कहते हैं—

नन्वेतमात्मकोपानले दुष्टविहंगममाहुतीकुर्मः।

इसी प्रकार विभीषण को देखकर—

व्योमाङ्गणप्रणयिनोऽथ गणः कपीनाम्।
सक्रोधमुद्धृतदृषद्द्रुमरौद्रहस्तः
संहर्तुमेतमुदतिष्ठदरेः कनिष्ठम् ॥ ६.७

राजा का आदर्श चरित्र कैसा हो—इस विषय में सारण के मुख से कवि ने राम का चरित्र-चित्रण कराया है—

न क्रोधेऽपि वदत्यसावमधुरं कृत्वापि लोकोत्तरं
न स्यादुद्धुरकन्धरो न विधुरोऽप्यालम्बते दीनताम्।
किं भूयः कथितेन लोचनपथं काकुत्स्थवीरः स चेत्
सम्प्राप्तः कुरुते रिपोरपि ततः श्लाघासु घूर्णं शिरः ॥ ६.१०

इसमें हनुमान हैं—अञ्जनाशक्तिमौक्तिक, संसारसागरोत्तरण-महायोगी, लंकेश-कुलक्लेश प्रवेशद्वार।

सीता की सच्चरित्रता अग्नि ने प्रमाणित की है—

इयं मूर्त्यन्तरेण श्रीरियं तीर्थं हि जंगमम्।
भूयोऽपि वत्स वैदेहीं देहार्थे तदिमां कुरु ॥ ३०

इस नाटक में ६० पात्र हैं, जो आवश्यकता से अधिकतम हैं।

वर्णन

उल्लाघराघव में वर्णन प्रशस्त हैं। दक्षिण भारत के विषय में कवि का कहना है—

रम्या दिशां चतसृणामपि दक्षिणासौ
यस्यामनन्यसदृशं द्वयमेतदस्ति।
श्रीखण्डमण्डिततनुर्मलयो महाद्रि-
रच्छिद्रमौक्तिककणापि च ताम्रपर्णी ॥ ४.५२

रस

रामकथा में प्रायः सभी रसों का समावेश होता ही है। इसके कथानक में कवि ने भावों का उत्थान-पतन कौशलपूर्वक सन्निविष्ट किया है। सीता से कौशल्या कह रही हैं कि तुम पटरानी बनोगी। दूसरे ही क्षण 'क्षुत्' शब्द का अपशकुन होता है और कौशल्या देखती हैं—

अन्यरससन्निविष्ट इवात्रार्यपुत्रो लक्ष्यते। तत् किं न्विदम्।

उनको सुनना पड़ता है कि भरत का अभिषेक और राम का वनवास होगा।

आत्मग्लानि का मूर्तस्वरूप अनुत्तम विधि से सोमेश्वर ने भरत के द्वारा लक्ष्मण के प्रति कहे हुए इस पद्य में प्रस्तुत किया है—

नेत्रे निमीलय निमीलय पापिनं मा-
मालोक्य मा त्वमपि लक्ष्मण पातकीभूः।
त्वां प्रेक्ष्य साम्प्रतमहं पुनरार्यपाद-
सेवाप्रवृद्धसुकृतं सुकृती भवामि॥ ४.३६

सोमेश्वर की अनुप्रास की अभिरुचि आद्यन्त प्रस्फुटित हुई है। नीचे के शिखरिणी छन्द में यमक और अनुप्रास की संगति में शरद् का संगीत अनुरणित है—

मयूरीणां रीणा श्रुतिविषयमायाति न रुतिः
गणोऽयं भृङ्गीणां रणति कृतसप्तच्छदपदः।
प्रसत्तिं पाथोऽपि प्रथयति यथा सम्प्रति तथा,
शरत्कालः केलीरुचिरिह वनान्ते विचरति॥ २.२६

कवि की संगीत-प्रवृत्ति इस नाटक में अन्यथा भी उच्छलित है। इसका एक आदर्श है—

सा गता न पुनरेति सा गता, सा गता क्व मृगयामि सा गता।
सा गता किमपरेण सा गता, सा गता धिगहमस्मि सा गता॥ ५.५२

कहीं-कहीं वार्णिक छन्दों में अन्त्यानुप्रास का अभ्यास अपभ्रंश काव्य की रीति पर प्रवर्तित है। यथा,

रक्षोराजस्यायमुत्पातकेतुः कीर्तिस्थानं शाश्वतं कीशनेतुः।
त्वद्वक्त्रेन्दुप्रोक्षणानन्दहेतुः सीते साक्षाद् दृश्यते सिन्धुसेतुः॥ ८.१६

सूक्तियाँ

१. सर्वोऽपि स्वहृदयानुसारेण परहृदयमपि वितर्कयत।
२. दुर्घटेऽपि वस्तुनि घटनापाटवं दुष्टदैवस्य।
३. पीयूषमपि बलात् पाट्यते।
४. एकोदराणामपि द्वैधविधायकानि प्रायेण वनितावाक्यानि भवन्ति।

५. सर्वं भवत्यपरथैव विधौ विरुद्धे।
६. न हि भवितव्यता कारणमपेक्षते।
७. वैरिणोऽपि कृताद्भुतकर्माणः स्तुतिभाजनं भवितुमर्हन्ति।
८. को नाम तृणसमूहदाहे दवदहनस्यायासः।
९. कारणविकृतोऽपि पुनः प्रकृतिं प्रतिपद्यते जनः स्निग्धः।
सलिलं वह्नेस्तापात् तप्तं पुनरेति शीतत्वम्॥ ८.११

राघवान्त नाटकों की परम्परा में सोमेश्वर का नाटक आता है। मुरारि का अनर्घराघव और मायुराज का उदात्तराघव, ९०० ई० तक लिखे जा चुके थे। इनमें से अनर्घराघव का गुजरात में उस युग में बहुमान था और सोमेश्वर के इस नाटक पर अनर्घराघव का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रभाव भी उल्लाघराघव पर अनेक स्थलों पर पड़ा है।

इस नाटक में अभिनयात्मक कार्य और संवादों की कमी खटकती है। वर्णनों की प्रचुरता है।

उल्लाघराघव को लेखक ने चतुर्थ अङ्क की पुष्पिका में छायानाटक कहा है। उस युग में छायानाटक की धूम थी। सोमेश्वर के समकालिक सुभट ने दूताङ्गद नामक छायानाटक लिखा था। इन दोनों में सीता की छाया का प्रयोग हुआ है। उल्लाघराघव को छायानाटक नाम देने का कारण है इसमें मायासीता को पात्र रूप में प्रयुक्त करना। इसके अतिरिक्त इस नाटक में राम और लक्ष्मण का स्वरूप पत्रपट्ट पर बनाकर रावण का मनोविनोद करने के लिए दिया गया था।[1]

भारत में धार्मिक उपदेश के लिए बोधिसत्त्व की कथाओं को चित्रद्वारा समझाने की रीति सुदूर प्राचीनकाल से प्रचलित थी।

इस काव्य की जो प्रतिलिपियाँ मिली हैं, वे खान हासील और खान बुरहान के अध्ययन के लिए लिखी गई थीं।[2]

---

१. इस प्रकार के चित्रात्मक छायानाटक की प्रथम भूमिका भास के स्वप्नवासवदत्त के षष्ठ अङ्क में 'अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिः चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता।···पद्मावती—चित्रगतं गुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि।' इत्यादि के द्वारा निर्मित है। परवर्ती युग में उत्तररामचरित में भित्तिचित्र प्रदर्शन भी छायानाटक की दिशा में प्रगति है।

२. उल्लाघराघव का प्रकाशन गा० ओ०सी० बड़ौदा से हो चुका है।

अध्याय ३२

शङ्खपराभव

वस्तुपाल के आश्रित महाकवियों में शङ्खपराभव के रचयिता गौडदेशवासी हरिहर सुप्रतिष्ठित हैं। प्रबन्धकोश के अनुसार हरिहर नैषधकार श्रीहर्ष के वंशज थे। उनके समकालीन वस्तुपाल के आश्रित महाकवि सोमेश्वर ने हरिहर की प्रशस्ति में कीर्तिकौमुदी में कहा है—

स्ववाक्पाकेन यो वाचां पाकं शास्त्यपरान् कवीन्।
कथं हरिहरः सोऽभूत् कवीनां पाकशासनः॥ १.२५

प्रबन्धकोश में हरिहर को सिद्ध सारस्वत कहा गया है। हरिहर की प्रतिभाविलास का युग तेरहवीं शती का पूर्वार्ध है।

हरिहर ने अपनी इस कृति में अपना प्रचुर परिचय दिया है, जिसके अनुसार उनकी काव्यशक्ति है—

एकेनैव दिनेन यः कवयितुं शक्तः प्रबन्धेषु य-
द्वाचः कर्कशतर्कशाणनिशिताश्छिन्दन्ति वैतण्डिकान्।
येनानेकनरेन्द्रवन्दितपदद्वन्द्वेन वन्दीकृता
विद्वांसः सुकृतैकभाजनमसावस्मिन् प्रबन्धे कविः॥ ६

व्यायोग की प्रस्तावना के अनुसार वे गौडदेश के भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे और सोमनाथ की तीर्थयात्रा के लिए आये हुए थे। उन्होंने वस्तुपाल की वीरता से गुणानुरागवशंवद होकर इस व्यायोग की रचना की थी।

शङ्खपराभव ऐतिहासिक रूपक व्यायोग-कोटि में आता है। लाट देश का राजा शङ्ख जब देवगिरि के राजा सिंहण से युद्ध कर रहा था, तभी वीरधवल ने स्तम्भतीर्थ (खम्भात) पर अधिकार कर लिया था। शङ्ख का कहना था कि खम्भात लाट देश के राजा के अधिकार में था। खम्भात के निकट कटकूप (वडवा) में खम्भात के शासक वस्तुपाल और शङ्ख में घोर युद्ध हुआ। अन्त में शङ्ख को आत्मरक्षा के लिए लाट की राजधानी भड़ौच की ओर पलायन करना पड़ा। इस व्यायोग का प्रथम अभिनय वस्तुपाल के निर्देशानुसार इस विजयमहोत्सव के उपलक्ष्य में हुआ था।

शङ्खपराभव के संवाद प्रायः वन्दियों और मागधों के माध्यम से प्रस्तुत हैं। इस प्रकार कथावस्तु प्रायशः सूच्य रह जाती है। कहीं-कहीं एक ही व्यक्ति का भाषण अनेक पृष्ठों तक चलता है, जिसमें संवाद-तत्त्व कम और व्याख्यान या वर्णना विशेष है।

पद्यों की प्रचुरता से सांवादिकता की दरिद्रता ही प्रकट होती है। शङ्ख और सेनापति भुवनपाल नेपथ्य से अपनी विकत्थनाओं को उत्तर-प्रत्युत्तर रूप में प्रस्तुत करते हैं।

हरिहर की भाषा में सांगीतिक अनुप्रासों की लहरियाँ गिनिये—

> भद्रे भारति भावनीयविभवे भव्ये भव प्रेयसि
> भ्रान्तिभ्रंशपरे भवार्तिशमनि भ्रूभङ्गभीमाहवे।
> भक्तिप्रह्वभयापहारिणि भव भ्रश्यद्धराविर्भवद्
> भारे भोगविभूतिदायिनि भुवे भासां भवत्यै नमः॥ ७८

कथावस्तु व्यायोग में युद्ध के पश्चात् ही समाप्त होना चाहिए था, किन्तु उस युग के अन्य रूपकों की भाँति युद्ध के पश्चात् विजयोत्सव, नागरिकों का प्रहर्ष, एकल्लवीरा देवी के मन्दिर के पास बधाई देने के लिए जनसम्मर्द, नगरश्रेष्ठियों के द्वारा नगर में नृत्य-सङ्गीत की चर्चा, ब्राह्मणों का आशीर्वाद, देवी की पूजा, देवी की वाणी आदि की वर्णना है।

अध्याय ३३

प्रतापरुद्रकल्याण

पाँच अङ्कों के ऐतिहासिक नाटक प्रतापरुद्रकल्याण के रचयिता विद्यानाथ आन्ध्रदेश में वारंगल (एक शिला) के काकतीयवंशी राजा प्रतापरुद्र के सभा-कवि थे।[1] प्रतापरुद्र १२९० ई० से अपनी नानी रुद्राम्बा नामक रानी को शासन कार्य में सहायता देने लगे। उनका अभिषेक १२९६ ई० में हुआ। वह कम से कम १३२६ ई० तक शासक रहे। इस नाटक की रचना प्रतापरुद्रदेव के अभिषेक के समय १२९६ ई० में हुई। इस नाटक का प्रथम अभिनय रुद्रदेव के अभिषेक के अवसर पर स्वयम्भू महोत्सव में हुआ था।

कथानक

काकतीयवंशी गणपति (११९८–१२६१ ई०) की मृत्यु हो जाने के पश्चात् उसकी कन्या रुद्राम्बा शासक बनी, क्योंकि गणपति का कोई पुत्र नहीं था।[2] रुद्राम्बा का विवाह चालुक्यवंशी वीरभद्रेश्वर से हुआ था। रुद्राम्बा की कन्या मुम्मडम्बा का विवाह महादेव से हुआ था। मुम्मडम्बा का पुत्र प्रतापरुद्रदेव इस नाटक का नायक है। रुद्राम्बा ने प्रतापरुद्र को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

रुद्राम्बा स्त्री होते हुए भी पुरुष से बढ़कर समर्थ थी। उसका पिता उसे रुद्रदेव कहा करता है। इसी रुद्रदेव नाम से वह इस नाटक में आती है। रुद्राम्बा ने स्वप्न में कुलदेवता स्वयंभू का आदेश सुना—

---

१. कहा जाता है कि विद्यानाथ का पहले का नाम अगस्त्य था, जो उनके नीचे लिखे पद्य से प्रमाणित है—

औन्नत्यं यदि वर्ण्यते शिखरिणः क्रुध्यन्ति नीचैः कृताः
गाम्भीर्यं यदि कीर्त्यते जलधयः क्षुभ्यन्ति गाधीकृताः।
तत्त्वां वर्णयितुं बिभेमि यदि वा जातोऽस्म्यगस्त्यः स्थित-
स्त्वत्पार्श्वे गुणरत्नरोहणगिरे श्रीवीररुद्रप्रभो॥ प्रतापरुद्रीय २.६०

अगस्त्य का परिचय संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास प्रथम भाग के पृष्ठ ३७७ में है।

२. सैवोमा चेति निर्दिष्टा सोमा चेति प्रथामगात्।
तव माता शिवा साक्षाद् देवो गणपतिः पिता॥ १.२३

स्वीकृते पुत्रभावेन दौहित्रे प्राङ् ममाज्ञया ।
अस्मिन्निधेहि धौरेय गुर्वीमुर्वी धुरामिव ॥ १२६

मन्त्रियों ने कहा—

दिग्विजययात्रावशीकृतानां सर्वपार्थिवानां वर्गेणानीतैः सकलतीर्थसलिलैः प्रकाशितं स्वयंभूदेवप्रसादं महाभिषेकमनुभवतु राजपुत्रः ।

प्रतापरुद्र तदनुसार दिग्विजय के लिए गन्धराज पर बैठकर चल पड़ा। त्रिलिङ्ग वीरों का उत्साह सविशेष था। हाथी, घोड़े, रथ की सेना पूर्व की ओर चली। युवराज के नीचे मन्त्री और उनके नीचे सेनापति आज्ञाकारी थे। तभी स्वयंभूदेव के महोत्सव के पश्चात् ब्राह्मणों के आशीर्वाद से वासित काकतीय महाराज के द्वारा भेजे हुए मंगल अक्षत लेकर एक ब्राह्मण आया। राजपुत्र प्रताप ने उन्हें अपने शिर और गजराज के शिर पर रखा। उस ब्राह्मण ने महाराज रुद्रनरेश्वर (रुद्राम्बा) की आज्ञा सुनाई कि शीघ्र ही दिग्विजययात्रावर्ताहारी पुरुषों को भेजा जाय। विनयपूर्वक उस ब्राह्मण की अनुमति लेकर प्रताप आगे बढ़े।

प्रताप ने दो पुरुषों को अपनी विजय का समाचार रुद्राम्बा को सुनाने के लिए भेजा। उन्होंने बताया कि पहले तो कलिङ्गराज से युद्ध हुआ। उसको जीतने के पश्चात् सेना दक्षिण ओर चली। वहाँ पाण्ड्यप्रमुख दक्षिण के राजा शरणागत हुए। उन्हीं के साथ प्रताप पश्चिम दिशा में गये। रेवा नदी के तट तक वे विजय करते हुए जा पहुँचे। हाथी का सेतु बनाकर रेवा को पारकर वे उत्तर दिशा में विजय के लिए गये। वहां अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मालव आदि सभी राजाओं ने मिलकर युद्ध करने की योजना कार्यान्वित की। उनकी आती हुई सेनाओं को देखकर हमारे सेनापतियों ने कहा—

रे रे गूर्जर जर्जरोऽसि समरे लम्पाक किं कम्पसे
वङ्ग त्वंगसि किं मुधा वलरजःकाणोऽसि किं कोङ्कण ।
प्राणत्राणपरायणो भव महाराष्ट्रापराष्ट्रोऽस्यमी
योद्धारो वयमित्यरीनभिभवन्त्यन्ध्रक्ष्माभृद्भटाः ॥ ३.१४

उनसे भागीरथी के तट पर युद्ध हुआ। प्रतिपक्षी राजा भागकर छिप गये। उनको ढूँढने के लिए त्रिलिङ्ग सैनिकों ने उन-उन देशों की भाषाओं का आविष्कार करते हुए पर्यटन किया। जीवित ही उनको पकड़कर प्रतापरुद्र के समक्ष लाया गया। वे सभी शरणागत हुए। राजा कातर थे—

अङ्गाः संगरभीरवः समभवंश्चोलाः पलायाकुलाः
काश्मीराः स्मरणीयविक्रमकथा हूणा निरीणश्रियः ।
लम्पाका भयकम्पमानतनवो वङ्गा निरंगीकृता
नेपालाः परिपालनव्यसनिनः सुह्माश्च नीरंहसः ॥ ३.१६

इसी प्रकार की दुःस्थितिथी काम्भोज, सेवण, गौड, कोंकण, लाट, सिंहल, कर्णाट, मालवा, भोज, केरल, पाण्ड्य, घूर्जर, पाञ्चाल, कीकट, काम्पिल्ल और कलिङ्गों की भी। रुद्राम्बा ने यह सब सुनकर कहा—

महतीं प्रतिष्ठामारोपितं खलु काकतीयकुलं विश्वैकविजयिना वत्सेन।

दिग्विजय करके प्रतापरुद्र लौटकर गोदावरी तट तक आ पहुँचे और वहां मृगया-विहार कर रहे थे। फिर तो वे लौटकर अपनी राजधानी एकशिला नगरी में आ पहुँचे।

राज्याभिषेक का समारम्भ हुआ। पहले प्रतापरुद्र के कुलदेवता स्वयंभूदेव को नमस्कार किया। अभिषेक की सब विधियां सम्पन्न हुईं। फिर वे प्रजा और राजाओं को दर्शन देने के लिए महास्थानी में गये। कलिङ्ग, कोङ्कण, अङ्ग, मालव, पाण्ड्य सेवण आदि के राजाओं ने प्रतापरुद्र से भेंट की। प्रजावृद्धों ने कहा—

वरः प्रतापरुद्रोऽयं वधूरेषा वसुन्धरा।
तयोर्घटयिता देवः स्वयम्भूः सदृशः क्रमः ॥ ५.१६

समीक्षा

प्रतापरुद्रकल्याण ऐतिहासिक नाटक की कोटि में आता है। इसमें प्रतापरुद्र की वंशावली का वर्णन विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक है। इतिहास के अनुसार गणपति १२५८–५९ ई० से रुद्राम्बा को शासकीय कामों में अपना सहयोगी बनाया। गणपति का अन्त १२६१ ई० के लगभग हुआ, जब से शासन सूत्र १२९० ई० तक पूर्णरूप से रुद्राम्बा के हाथ में रहा। १२९० ई० में उसने अपने दौहित्र प्रतापरुद्र को शासन कार्य में सहयोगी बनाया। तभी से वह उसका उत्तराधिकारी बना।

प्रतापरुद्र ने शासनकार्य हाथ में लेते ही शत्रुराज्यों पर विजय करना आरम्भ किया। सबसे पहले उसने वल्लुरीपट्टन के सुपने सामन्त अम्बदेव महाराज को पदच्युत किया। वह रुद्राम्बा के शासनकाल में स्वतन्त्र होकर शत्रुराज्यों से सम्बन्ध स्थापित कर चुका था। प्रतापरुद्र के सेनापति अडिदम्म ने नेल्लोर पर आक्रमण किया और शासक को मार डाला। काञ्ची जीतकर उसने रविवर्मा के स्थान पर मानवीर को शासक नियुक्त किया। उसने त्रिचनापल्ली तक सभी देशों को जीत लिया और पाण्ड्य राजा को भी हराया। उसकी विजय के शिलालेख त्रिचनापल्ली, चिंगलपुट, कुद्दपह, कुर्नूल, नेल्लोर, गुन्तू, कृष्णा और गोदावरी जिलों में मिले हैं। हैदराबाद प्रदेश के वारंगल, रायचूर, मेदक और नलगोण्ड में भी विजयलेख प्राप्त हुए हैं।

प्रतापरुद्रकल्याण का प्रभाव समसामयिक और परवर्ती नाटकों पर पड़ा है। सम्भवतः इसके समकालीन हस्तिमल्ल ने मैथिलीकल्याण इसी के आदर्श पर लिखा।

हस्तिमल्ल के पौत्र के पौत्र ब्रह्मसूरि ने ज्योतिप्रभाकल्याण नाटक लिखा। इस नाटक में ब्रह्मसूरि ने नाटक के पारिभाषिक शब्दों के लक्षणों के उदाहरण वैसे ही सन्निविष्ट किया है, जैसे प्रतापरुद्रकल्याण में मिलते हैं। चौदहवीं शती में नयचन्द्र सूरि ने रम्भामञ्जरी नामक रूपक में नाटकीय पारिभाषिक शब्दों के उदाहरण उनके उदाहरणों सहित प्रस्तुत किया है। विद्यानाथ इस प्रकार की रचना के प्रवर्तक प्रतीत होते हैं।

शिल्प

प्रतापरुद्रकल्याण में कतिपय अर्थोपक्षेपकों को अङ्क में गर्भित न करके उनके प्रारम्भ होने के पहले ही रखा गया है। इस नाट्यशास्त्रीय नियम का प्रतिपालन इसी युग में लिखे दूसरे नाटक ब्रह्मसूरि के ज्योतिप्रभाकल्याण में भी किया गया है। अन्य नाटकों में विष्कम्भक और प्रवेशक को अङ्क के भीतर सन्निविष्ट किया गया है, जो भ्रान्ति है। धनञ्जय ने दशरूपक में स्पष्ट कहा है कि 'प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः' अर्थात् प्रवेशक को दो अङ्कों के बीच में होना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि प्रवेशक को किसी अङ्क के भीतर नहीं रखा जाना चाहिए। भरत के नाट्यशास्त्र में कहा गया है—

> अङ्कान्तरानुसारी संक्षेपार्थमधिकृत्य बिन्दूनाम्।
> प्रकरणनाटकविषये प्रवेशकः संविधातव्यः॥ १८.३३

इससे भी स्पष्ट है कि प्रवेशक दो अङ्कों के बीच में होना चाहिए।

कादम्बरी-कल्याण

कादम्बरीकल्याण के रचयिता नरसिंह के भाई विश्वनाथ ने सौगन्धिका-हरण की रचना की। विश्वनाथ वारंगल के काकतीय महाराज प्रतापरुद्र के सभाकवि थे। ये दोनों नाटककार १३०० ई० के लगभग हुए।

कादम्बरीकल्याण में बाणभट्ट की सुप्रसिद्ध कादम्बरी की नाटकित कथा है।[1] इसमें आठ अङ्क हैं। मूल कादम्बरी के अनुरूप ही इसमें प्रकृति का वर्णन रमणीय है। कारुणिक प्रसङ्गों की प्रभविष्णुता उल्लेखनीय है। इसके पाँचवें अङ्क में अन्तर्नाटिका द्वारा कादम्बरी को चन्द्रापीड से मिलाया जाता है।

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास की ओरियण्टल लाइब्रेरी में भाग ३ संख्या ३४८९ है।

अध्याय ३४

सौगन्धिकाहरण

सौगन्धिकाहरण व्यायोग के रचयिता विश्वनाथ हैं।[1] ये साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ के पूर्ववर्ती हैं। विश्वनाथ ने इस ग्रन्थ का उल्लेख साहित्यदर्पण में किया है। लेखक ने इस रूपक की भूमिका में अपना संक्षिप्त परिचय सूत्रधार की उक्ति में दिया है—

राज्ञा प्रतापरुद्रेण सम्भावितैरशेषविद्याविशेषसारसार्वज्ञधौरेयमतिभिः सभासद्भिराहूय सबहुमानमादिष्टोऽस्मिः।......

विश्वनाथ इति ख्यातः कविरस्ति यदुक्तयः।
अकाञ्चनमरत्नं च विदुषां कर्णभूषणम्॥ ३

इसी प्रसङ्ग में चर्चा की गई है कि कवि के मामा अगस्त्य उच्च कोटि के विद्वान् हो चुके हैं। अगस्त्य और विश्वनाथ का इन प्रसङ्गों से कालनिर्णय होता है। प्रतापरुद्र सुप्रसिद्ध रुद्राम्बा की कन्या मुम्मडाम्बा का पुत्र था। वह वारंगल के काकतीय वंश का राजा १२९० ई० में हुआ। इनके शासनकाल में विद्यानाथ सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्र के आचार्य हुए। विद्यानाथ को ही अगस्त्य कहते हैं। प्रस्तुत रूपक की रचना साहित्यदर्पण के रचयिता विश्वनाथ के लगभग १०० वर्ष पहले हुई। सम्भवतः यही विश्वनाथ सुप्रसिद्ध कवयित्री गंगादेवी के गुरु[2] थे। गंगादेवी ने अपने मधुराविजय में विश्वनाथ की प्रशस्ति में कहा है—

चिरं स विजयी भूयाद्विश्वनाथकवीश्वरः।
यस्य प्रसादात् सार्वज्ञं समिन्धे मादृशीष्वपि॥ १.१६

सौगन्धिकाहरण की रचना १३०० ई० के लगभग हुई।

कभी द्रौपदी को सौगन्धिक पुष्पवायु से उड़ता हुआ मिला, जब पाण्डव वनवास में रहते थे। द्रौपदी को वैसा ही अन्य पुष्प चाहिए था, जिसे लाने के लिए उसके प्रियतम बिना किसी से पूछे ही चल पड़े। जिधर से वायु आ रही थी, उधर ही भीम गये। चलते-चलते वे गन्धमादन पर्वत के पास पहुँचे। उन्हें स्मरण हो आया कि इस पर्वत पर महावीर हनुमान् रहते हैं। हनुमान् ने भीम का सिंहनाद

---

१. इसको निर्णयसागर संस्करण में प्रेक्षणक कहा गया है।

२. गंगादेवी विजयनगर के राजा कम्पराय की पत्नी थी। कम्पराय की मृत्यु १३७७ ई० में हुई थी।

और घोषणा सुनी कि मैं सौगन्धिक पुष्प लेने आया हूँ। हनुमान् ने मन ही मन सोचा कि "यहाँ आज अपने छोटे भाई से भेंट तो हुई।[1] पहले अपने को प्रकट किये विना ही कुछ देर इसके साथ मनोविनोद करूँगा।" उन्होंने अपना रूप साधारण वन्दर जैसा कर लिया और भीम से वोले कि वन में यह सब क्या उत्पात मचा रखा है। तुम कौन हो? भीम ने पहले अपने भाई युधिष्ठिर का नाम लिया तो हनुमान् ने कहा कि वही न, जो शत्रुओं से पराजित होकर जंगल में रहता है। भीम ने अपना परिचय दिया—

प्रमाथविद्याधिगमाय रक्षसामधत्त यस्याक्षरशिक्षणं करः।
हिडिम्बवक्षःफलके महाबलः स एष भीमोऽस्मि युधिष्ठिरानुजः॥

भीम ने कहा कि मैं अधिक वातों के पचड़े में नहीं पड़ना चाहता। मुझे तो जाना है। पूँछ हटाओ, नहीं तो उसे लांघकर वैसे ही चला जाऊँगा, जैसे हनुमान् समुद्र पार कर लंका गये थे। हनुमान् ने कहा कि तुम क्या हनुमान् का नाम लेते हो? वानर को सम्मान देते हो? भीम ने कहा—

निशाचरगृहोत्थितैर्हुतभुजः शिखामण्डलै-
र्यदीयबलसम्पदामजनि जैत्रमारात्रिकम्।
असावपि निरुध्यते त्रिभुवनैकवीरस्त्वया
ततस्तव महात्मनः पुनरमी कियन्तो वयम्॥ ५२

फिर भी हनुमान् ने कहा कि वह तो वन्दर है। उसे क्यों उतना ऊँचा उठा रहे हो। भीम ने कहा कि वानर होकर भी तुम वानर का उपहास करते हो? तुम में जाति-प्रियता नहीं? तुम्हें धिक्कार है। अन्त में भीम ने हनुमान् का माहात्म्य प्रकट करते हुए कहा—

स्नेहं विरोधमथवा सुभटेन तेन
के वा वयं रचयितुं परिमेयसत्त्वाः।
आद्यं पुनः प्रथयितुं रघुसूनुरेव
तत्रेतरं तु दशकन्धर एव योग्यः॥ ७४

हनुमान् ने कहा कि तुम और हनुमान् भाई-भाई हैं। इसीलिए तुम्हारा उनके प्रति समादर है। भीम को प्रतिभास होने लगा कि कहीं ये ही तो हनुमान् नहीं हैं। हनुमान् ने अपना तेजस्वी रूप दिखाकर उसका सन्देह दूर किया। भीम ने उनका अभिनन्दन किया। हनुमान् ने आशीर्वाद दिया—

वीर त्वत्के भुजेऽस्मिन् वसतु च सुचिरं निर्विशङ्का जयश्रीः।

हनुमान् ने उसका गाढ आलिंगन किया। अन्त में भीम ने वताया कि द्रौपदी के लिए सौगन्धिक पुष्प लेने मैं यहां आया हूँ। हनुमान् ने वताया कि मायावी

---

१. वायु के पुत्र हनुमान् और भीम दोनों ही थे।

यक्षों के देश में वह पुष्प है। उनसे निपटने के लिए तुम्हें विशेष विद्या देना चाहता हूँ। पहले तो ऐंठू भीम विद्या नहीं लेना चाहता, पर अन्त में उसे ग्रहण किया। फिर वह आगे बढ़ा। सरोवर के पास पहुँचकर ज्योंही उसमें प्रवेश करना चाहा कि दूर से किसी ने रोका—

अरे दुरात्मन् विरम विरम सरोतहरणसाहसिक्यात्।

भीम ने कहा कि सौगन्धिकहरण के बहाने आप लोगों का भुजबल जानने आया हूँ। रोषकारिणी वार्तों के पश्चात् भीम की यक्षों से लड़ाई हुई। उधर से यक्षाधिपति कुबेर भीम का आना सुनकर उनका स्वागत करने आ पहुँचे। कंचुकी और कुबेर भीम के युद्ध-कौशल की प्रशंसा करते हैं। भीम ने यक्षों को परास्त कर दिया। कुबेर ने अपना कंचुकी भेजकर भीम को बुलवाया कुबेर ने उनसे कहा—

आयुष्मन्, अनुभूतविजयमंगले त्वयि पुनरुक्ता इव मादृशां विजयाशिषः।

उसी समय युधिष्ठिर, द्रौपदी आदि के वहां आने का समाचार मिला। स्वयं कुबेर ने युधिष्ठिर का प्रत्युद्गमन करके स्वागत किया। कुबेर ने कहा कि हमारा पुण्योदय हुआ कि आप सब यहां आये। भीम ने द्रौपदी को सौगन्धिक दिया। देवताओं ने पारिजात पुष्प की वर्षा की।

सौगन्धिकहरण की कथा सर्वप्रथम महाभारत में मिलती है।[1] विश्वनाथ ने प्रयोजनवशात् महाभारतीय कथा को रसमय और समुदार-प्रपन्न करने के लिए पर्याप्त परिवर्तित किया है।

सौगन्धिकाहरण में रङ्गमंच पर अधिकांश संवाद ही संवाद मिलता है—कार्यों (Action) का अभिनय स्वल्प है।

सौगन्धिकाहरण में हास्यव्यापार भीम और हनुमान् के उस संवाद में स्फुटित होता है, जिसमें भीम हनुमान् की प्रशंसा किये जा रहा है और हनुमान् स्वयं अपनी निन्दा।[2] यथा,

को विद्याद् गिरिकन्दरोदरदिवाभीतं भवन्तं पुनः
प्रख्यातः स तु लोकरक्षणविधौ संवर्मितैः कर्मभिः।
किं नाम्नोऽसि पितुः सतः स मरुतो देवात् प्रसूतः सुतो
जात्या केवलयापि तस्य न समस्त्वं किं पुनश्चेष्टितैः॥ १.५७

यह प्रकरण बहुत कुछ भास के मध्यमव्यायोग में भीम और घटोत्कच के संवाद के

१. महाभारत (गीता प्रेस) वनपर्व अध्याय १४६ से १५५ तक।

२. इस प्रकरण को हनुमान् ने अपने विनोद के लिए कन्दलित किया है। हनुमान् ने इसके पूर्व कहा है—अचिरादप्रकाशितस्वरूप एवाहं कंचित्कालममुना सह विनोदसम्पादनार्थमागमनमार्गमधितिष्ठामि।

समकक्ष पड़ता है, जिसमें घटोत्कच भीम को नहीं पहचानता। इसमें भीम हनुमान् को नहीं पहचानता।

परिभाषानुसार इस व्यायोग में वीररस परिणति है।

कवि की शैली का परिचायक नीचे का पद्य है—

> उत्सर्पद्बलदर्पक्लृप्तसमरप्रक्षोभरक्षोभट-
> क्षोदोपक्रमघोरविक्रमहताहङ्कारलङ्काधिपः ।
> वायोर्नन्दन एव धीरमहिमा लोकत्रये तं विना
> कश्चक्रे कुरुते करिष्यति इति प्रौढाद्भुतं चेष्टितम् ॥ ५.४

इसकी प्रथम दो पंक्तियों में गौडी रीति एक ही समस्त पद में संयुक्त परुषाक्षरों से वीररसोचित सुव्यक्त है, किन्तु आगे की दो पंक्तियों में प्रशंसा-वचन सरल-सुबोध वैदर्भी में प्रयोजनवशात् है।

सौगन्धिकाहरण में रङ्गमञ्च पर एक ही पात्र एकोक्ति (Soliloquy) के रूप में लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दे जाता है, जिसमें वह इधर-उधर की सूचनाओं के अतिरिक्त अनेक वर्णन भी सन्निविष्ट करता है। संवाद कला की दृष्टि से यह समीचीन नहीं है।

अभिनय के भीतर अभिनय का प्रवर्तन नाट्यकला का एक श्रेष्ठ अङ्ग है। इस व्यायोग में हनुमान् ने यही किया है—

> निह्नुत्य विश्रुतगुणं निवसामि रूपं।
> कांचिद्दशामभिनयन्नलसैरिवाङ्गैः ॥

विश्वनाथ प्रत्यक्ष रूप से एक अर्थ देनेवाले और परोक्ष रूप से भिन्न अर्थ देनेवाले वाक्यों के प्रयोग में निपुण हैं, जैसा उन्होंने ने कहा है—

> ललाटबद्धभ्रुकुटीकमाननं वचश्च धीरोद्धतनिष्ठुरं तव।
> विलोकितुं श्रोतुमपि स्पृहावता मयैव भुक्तोऽसि परोक्षमार्दवम् ॥ ८४

लोकोक्तियों से संवादों में प्रभविष्णुता आई है भारवि के ही समान। यथा,

> ननु मानरुचेरयं गुणः सहतेऽसौ परगर्जितं न यत्।
> निशमय्य घनाघनध्वनिं निभृतस्तिष्ठति किं नु केसरी ॥ १.३१

अर्थात् सिंह घनगर्जन सुनकर चुप नहीं बैठता।

कवि का सन्देश है—अहो सौभ्रात्रं नाम सर्वातिशायिनश्चित्तनिर्वृतिनिधेः प्रणयप्रसरस्य परा काष्ठा ननु सौभ्रात्रकथने वः प्रत्युदाहरणमन्ये जगति भ्रातरः।

हनुमान् ने कहा है—

अनुजमधिकश्लाघ्यं शौर्येण दुर्लभदर्शन-
व्यतिकरममुं भाग्यादक्ष्णोर्विलोक्य यदृच्छया ।
प्रतिमुहुरहं गाढाश्लेषे स्वयं प्रसृतौ भुजौ
यदि निभृतयान्येतैर्विङ् मे दृढां हृदयस्थितिम् ॥

कुबेर ने कहा है—अये, प्रकामरमणीयोऽयं सहोदराणां व्यतिरेकः ।
भरतवाक्य का अनूठा सन्देश है—

राजानः परिपालयन्तु सततं न्याय्येन गां वर्त्मना
मर्यादाऽनतिलंघिनश्च सुचिरं दीव्यन्तु वर्णाश्रमाः ।
किं चान्यत्प्रतिभाप्रकाशसुलभा सानन्तसंविन्मयी
स्वैरं वक्त्रसरोरुहेषु विदुषां वाग्देवता वर्तताम् ॥ १४५

कवि ने कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्‌घाटन किया है । यथा,

स्वल्पमपि गुरूकृत्य लालयन्ति गुरवः शिशुचेष्टितम् ।

अर्थात् बड़ों का स्वभाव है कि छोटों की स्वल्प अच्छाई का भी बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करें ।

इस रूपक में अनेक स्थलों पर समुदाचार का भास के समान उपरीकरण विद्यमान है । युधिष्ठिर को कुबेर के पास भीम लायें—यह कुबेर की दृष्टि में उचित नहीं है । वे कहते हैं—वयमेव महाराजाजातशत्रुं प्रत्युद्गम्य पश्यामः । इधर युधिष्ठिर कुबेर को आया हुआ देखकर कहते हैं—

प्रत्युद्गमस्तदिह ते मयि किं नु योग्यः । १३७

युधिष्ठिर ने कहा है—अद्य खलु वयममी सुकृतिनो यदित्थं त्वादृशा अपि समुदाचरन्ति ।

कुबेर ने कहा—अस्मादृशां सुकृतविशेषादिति (भवतामागमनम्)

विश्वनाथ के भाई नरसिंह ने कादम्बरीकल्याण नामक नाटक की रचना की । इसमें आठ अङ्क हैं और बाण की कादम्बरीकथा उपजीव्य है । नरसिंह ने इसकी प्रस्तावना में लिखा है कि मैं १० प्रकार के रूपकों की रचना में निष्णात हूँ ।

अध्याय ३५

हस्तिमल्ल का नाट्यसाहित्य

तेरहवीं शती में जैन कवियों ने संस्कृत नाट्यसाहित्य का पर्याप्त संवर्धन किया है। इनमें से महाकवि हस्तिमल्ल का नाम अग्रणी है। इनके लिखे चार रूपक विक्रान्तकौरव,[1] मैथिलीकल्याण, अञ्जनापवनञ्जय और सुभद्रा हैं।

कविपरिचय

हस्तिमल्ल को नाम अपने उस अनन्य महापराक्रम से मिला, जिसमें उन्होंने अपने बाहुबल से एक हाथी को मल्लयुद्ध में पछाड़ दिया था।[2] इस का उल्लेख कवि ने इस नाटक में अपना परिचय देते हुए स्वयं किया है—

श्रीवत्सगोत्रजनभूपणगोपभट्टप्रेमैकधामतनुजो भुवि हस्तियुद्धात्।
नानाकलाम्बुनिधिपाण्ड्यमहेश्वरेण श्लोकैः शतैः सदसि सत्कृतवान् बभूव

उन्हें पाण्ड्यनरेश का समाश्रय प्राप्त था, जैसा उन्होंने अञ्जनापवनञ्जय में लिखा है—

श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरे निजभुजादण्डावलम्बीकृतं
कर्णाटावनिमण्डलं पदनतानेकावनीशेऽवति।
तत्प्रीत्यानुसरन् स्वबन्धुनिवहैर्विद्वद्भिराप्तैः समं
जैनागारसमेतसंततगमैः श्रीहस्तिमल्लोऽवसत्॥

कवि का प्रमुख स्थान सन्ततगम, सरण्यापुर गुडिपत्तन या दीपगुण्डि था। कवि को अपने जीवनकाल में पर्याप्त सम्मान मिला, जैसा उनकी सरस्वतीस्वयंवरवल्लभ, महाकवितल्लज, सूक्तिरत्नाकर, कवितासाम्राज्य-लक्ष्मीपति और उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि उपाधियों से व्यक्त होता है। कवि की रचनाओं का काल तेरहवीं शती का अन्तिम भाग है। सम्भव है, उसने कुछ ग्रन्थ चौदहवीं शती में भी लिखे हों।

कवि ने सम्भवतः चार और नाटक लिखे थे—उदयनराज, भरतराज, अर्जुनराज और मेघेश्वर। हस्तिमल्ल के लिखे आदिपुराण और श्रीपुराण कनड़ी भाषा में विरचित हैं। कवि ने अपनी प्रशंसा की है—

---

१. विक्रान्तकौरव का अपर नाम सुलोचना है।

२. सुभद्रा के अनुसार यह घटना सरण्यापुर की है—

सम्यक्त्वस्य परीक्षार्थं मुक्तं मत्तमतंगजम्।
यः सरण्यापुरे जित्वा हस्तिमल्लेइति कीर्तितः॥

'कवीन्द्रोऽयं वाचा विजितनव-मोचाफलरसः
सभासारज्ञाढ्या' इत्यादि ॥ १.६

विक्रान्तकौरव

कवि ने इस नाटक का संक्षिप्त परिचय सूत्रधार के मुख से कराया है—

शृङ्गारवीरसारस्य गम्भीरचरिताद्भुतम् ।
महाकविसमाबद्धं रूपकं रूप्यतामिति ॥ १.४

अर्थात् इसमें शृङ्गार और वीर प्रधान रस है, कथावस्तु गम्भीर और अद्भुत है[1]।
कथा की आगे चर्चा करते हुए कवि ने कहा है—

कथाप्येषा लोकोत्तरनवचमत्कारमधुरा । १.६

काशी के राजा अकम्पन की कन्या सुलोचना के स्वयंवर में अनेक राजा सज-धजकर आये हुए थे, जिनमें प्रमुख था कुरुराज जयकुमार। स्वयंवर के एक दिन पहले ही स्वयंवरयात्रा-महोत्सव में सुलोचना ने जयकुमार को देखा और जयकुमार ने सुलोचना को। उन दोनों का प्रथम दर्शन में प्रेम उत्पन्न हो गया। जयकुमार के मित्र नन्द्यावर्त ने अपने मित्र विशारद को वाराणसी-दर्शनवाली इस यात्रा का विस्तृत वर्णन सुनाया। इस यात्रा में सुलोचना और जयकुमार ने कैसे एक दूसरे को देखा—इसका वर्णन राजा विदूषक से करते हुए बताता है कि सुलोचना ने अपने दर्पण में मेरी प्रतिच्छाया को अपनी प्रतिच्छाया से मिला दिया। स्वयंवर के एक दिन पहले सुलोचना को गङ्गा में सौभाग्य-स्नान करना था। वहाँ विदूषक के साथ जयकुमार आ पहुँचते हैं। अपनी सखी नवमालिका के साथ आई हुई सुलोचना को उपवन में जयकुमार का दर्शन होता है। कुछ क्षणों के लिए दोनों मिलते हैं। तभी सुलोचना को उसकी सखी सरलिका के बुलाने पर अन्यत्र चला जाना पड़ा। राजा को निराश होना पड़ा।

स्वयंवर-यात्रा हुई। उसमें बहुत-से राजा आ पहुँचे। सुलोचना नवमालिका और प्रतीहार के साथ सभा में आई। उसने सभी राजाओं का वर्णन सुनकर और उन्हें देख-देखकर आगे बढ़ते हुए जयकुमार का वरण किया। अन्य राजाओं ने युद्ध की घोषणा कर दी।

युद्ध का वृत्तान्त-वर्णन प्रतीहार ने सरलिका से बताया कि अर्ककीर्ति नामक राजा ने विपक्ष का नेतृत्व किया है। 'वह युद्ध में जयकुमार के द्वारा परास्त होकर वन्दी बनाया गया' यह वृत्तान्त रत्नमाली मन्दर, रत्नमाला और मन्थरक नामक आकाशचारी की परस्पर बातचीत से प्रकट किया गया है। इसका विस्तृत वर्णन

---

१. शृङ्गार की प्रधानता होने पर भी कवि ने कहीं भी अपने को इस रस में डुबाकर लेखनी पर असंयम का परिचय नहीं दिया है।

उनका युद्धदूतमन्दर उनको सुनाता है। वे आकाश से ही आँखों-देखा हाल सुनाते हैं।

कञ्चुकी और प्रतीहारी की वातचीत से ज्ञात होता है कि अकम्पन ने अर्ककीर्ति जयकुमार को समझाया-बुझाया। उसने अपनी छोटी कन्या रत्नमाला का विवाह अर्ककीर्ति से करने का निश्चय घोषित किया।

जयकुमार युद्ध से विरत होकर एक वार और सुलोचना की स्मृति में व्यथित हुआ। विदूषक ने एकवार उसे कौमुदीगृह में सुलोचना से मिला दिया, पर थोड़ी ही देर बाद सुलोचना को रत्नमाला के कौतुकबन्ध-संस्कार में सम्मिलित होने के लिए जाना पड़ा। दूसरे दिन सुलोचना और जयकुमार का विवाह धूमधाम से हो गया।

ऐसा लगता है कि हस्तिमल्ल को नाटक के नाट्योचित तत्त्वों की चिन्ता नहीं थी। इस नाटक को पढ़ते हुए ऐसा लगाता है कि अच्छा रहा होता कि कवि इस विषय पर चम्पूकाव्य या महाकाव्य लिखता तो अधिक सफल रहा होता। इसमें वर्णनों की भरमार है और उनके सम्भार में आख्यानतत्त्व तिरोहित-सा है।[1] आख्यानतत्त्व का रङ्गमञ्च पर अभिनय स्वल्प है। प्रायः कोई पात्र दृष्ट घटनाओं को सुनाता है। नाटक में ऐसा नहीं होना चाहिए।

तीसरे अङ्क के आरम्भ में शुद्ध विष्कम्भक में काशी की वारवाट का वर्णन विट ने किया है। वह एक ही पात्र रङ्गमञ्च पर है। यह वर्णन अपने आप में उच्चकोटि का भाण है और चतुर्भाणी की पद्धति पर अनुकृत है। इसमें २९ पद्य हैं और गद्यांश अलग से हैं। अञ्जनापवनञ्जय का कथाप्रवाह इससे पूर्व रुक्मिणीहरण से कई स्थलों पर मेल खाता है।

हस्तिमल्ल की काव्य-प्रतिभा असाधारण है। उनकी व्यञ्जना का उदाहरण है—

> शृङ्गारस्य गरीयसी परिणतिर्विश्वस्य सम्मोहिनी
> विद्या काप्यपरा परा च पदवी सौन्दर्यसारश्रियाम्।
> उद्दामो मदनस्य यौवनमदः कुल्या रतिस्रोतसां
> केलिर्विभ्रमसम्पदामविकलो लावण्य-पुण्यापणः॥ १.२४

इसमें सुलोचना की कोमलता की व्यञ्जना की गई है कि उसके निर्माण के लिए केवल भावों का उपयोग किया गया है, पञ्चतत्त्वों का नहीं। पञ्चतत्त्व कठोर होते हैं। इस श्लोक में रूपकश्री और ध्वनियों का अनुप्रासात्मक सङ्गीत रमणीय हैं।

हस्तिमल्ल को हाथी वहुत प्रिय हैं। पञ्चम अङ्क में हाथियों का युद्ध रुचिपूर्वक वर्णन किया गया। अन्यत्र भी हाथियों की बहुशः चर्चा है। हाथी के शरीर के

---

१. गङ्गा और उसके घाट, वाराणसी, स्वयंवर, युद्ध, उद्यान, यात्रा आदि के वर्णन उच्चकोटि के हैं।

समान ही भारीभरकम समस्त पदावली में यह नाटक बोझिल-सा है। एक ही पात्र पचास पंक्तियों का लम्बा-चौड़ा बड़े-बड़े समासों से युक्त वाक्यों को रङ्गमञ्च ही पर बोले तो क्या उसे नाटक कहेंगे-? इस नाटक को पढ़ते हुए कहीं-कहीं श्रीहर्ष, बाण और माघ का स्मरण हो आता है। उनकी पद्धति पर चलते हुए कवि ने पाण्डित्यप्रदर्शन किया है।

हस्तिमल्ल की सूक्तियाँ प्रभविष्णु हैं। यथा,

> न खल्वन्तर एवावस्थानं निपततः प्रस्तरस्य।
> यद्वा यद् स्पृहणीयमस्ति सुलभास्तस्मा अन्तराया अपि।
> कुमुदाकरमेव हि कौमुदी सम्भावयति।

मैथिलीकल्याण

पाँच अङ्क के मैथिलीकल्याण नाटक में सीता और राम के विवाह की कथा है। वसन्तोत्सव में कामदेव मन्दिर में उपवन-दोलागृह में झूला झूलने के लिए गई हुई सीता से राम की प्रथम दृष्टि में प्रणयानुभूति होती है। सखियों के बुलाने पर उसे शीघ्र राम को छोड़कर जाना पड़ता है। राम सीता को फिर देखना चाहते हैं। राजप्रासाद के निकट माधवीवन में राम विदूषक के साथ पहुँचते हैं। वहीं सीता अपनी सखी विनीता के साथ आती है। राम की कुछ बातों से सीता को ऐसा लगा कि राम का उनके प्रति झुकाव नहीं है। वह मूर्च्छित होती है। सचेत होने पर भी वह राम से दूर हो जाना चाहती है। राम मनाते हैं। सन्ध्या के समय सीता घर चली जाती है। सीता की प्रेमपीड़ा इतनी बढ़ी कि उसकी दूती कलावती ने उसका केतकीपत्र पर सन्देश राम को दिया। उसने राम से कहा कि आप माधवीवन के दक्षिण भाग में चन्द्रकान्तधारागृह में आज सन्ध्या को सीता से मिलें। वहाँ सीता का शीतोपचार हो रहा था। राम के आने में देर होती जानकर विनीता ने राम की और सीता ने अपनी निजी भूमिका में अभिनय करते हुए माधवीवन की पूर्वकथा का नाटक कर रही थीं। बीच में ही राम आ टपके। सीता का उन्होंने पाणिग्रहण किया। तभी सीता को अपनी माता के बुलाने पर जाना पड़ा। सीता का स्वयंवर हुआ, जिसमें धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ानेवाले से ही सीता का विवाह होनेवाला था। सभी राजा स्वयंवरमण्डप में आ पहुँचे। अनेक राजाओं ने प्रयास किया, पर धनुष की प्रत्यञ्चा लगाने में विफल हुए। राम ने ऐसा कर दिया। राम का सीता से विवाह धूम-धाम से हुआ।

इस नाटक में कवि ने कतिपय मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन किया है। यथा, कामियों की शैली बनाई गई है—

श्रुतं यद्वा तद्वा नयति मदनोद्दीपनपदे
प्रकृत्या यच्चित्तं गणयति च तत्तापजननम्।
यदेवादौ वांछेत्तदनु तदपि द्वेष्टि सहसा
कथं पार्श्वग्राहो न हसति जनः कामुकजनम् ॥ १.६

राम को कवि ने एक साधारण नागरिक की भाँति गणिका-दारिका-वेशवनितादि का निरूपक बताया है। यथा,

प्रत्यंगोद्भिद्यमानस्तनमुकुलकृतप्राभृतार्घ्यैरुरोभि-
र्दन्तोन्मेषापहारैः प्रहसितवदनैर्लालनीयैर्वचोभिः।
विभ्रान्तोत्फुल्लनेत्रा ललितभुजलतामन्दविक्षेपलीलाः
कन्दर्पं दर्पयन्त्यो भृशमिह गणिका दारिकाः संचरन्ति ॥

साधारणतः स्त्रियों को मदनताप होता है किन्तु मैथिलीकल्याण में राम स्मरपीडित हैं। यथा राम कहते हैं—

रचय कुसुमैः शय्यां स्वैरं विवेष्टनदायिनीं
सरसकदलीपत्रप्रान्तानिलैरुपवीजय।
सबिसवलयान्मुक्ताहारान् मुहुर्मुहुरर्पयन्
गुरुतरममुं सन्तापं मे वयस्य लघूकुरु ॥ २.२२

अञ्जनापवनञ्जय

सात अङ्क के इस विशाल नाटक में दिव्य पात्रों के कार्यकलाप हैं। महेन्द्रपुर में अञ्जना कुमारी के स्वयंवर की तैयारी हो रही है। पवनंजय नामक विद्याधर कुमार उसे पहले से ही देख चुका है और उसके प्रति प्रणयासक्त है। अञ्जना, उसकी सखी वसन्तमाला और चेटियाँ मधुकरिका और मालती के स्वयंवर का एक स्वांग रचती हैं। जिसमें अञ्जना बनी हुई वसन्तमाला पवनंजय बने हुई अञ्जना के गले में जयमाल डाल देती है। निकट छिपा हुआ पवनंजय यह सब देख रहा था। वह झपट कर आया और अञ्जना को हाथ से पकड़ लिया। माँ के द्वारा बुलाये जाने पर अञ्जना को जाना पड़ा। स्वयंवर में अञ्जना पवनंजय की हो गई। वे दोनों आदित्य पुर चले गये। वहाँ प्रमदवन में नायक और नायिका प्रणयक्रीडा में निमग्न हैं। पवनंजय का बाप प्रह्लाद वरुण की नगरी पातालपुरी पर आक्रमण करके उसके द्वारा बन्दीकृत रावण के दो सेनापतियों को छुड़ाना चाहता था। प्रह्लाद के मित्र रावण ने इसके लिए प्रह्लाद से निवेदन किया था। पवनंजय ने कहा कि इस प्रयाण पर मुझे ही जाने की अनुमति दें। चार मास तक युद्ध चला। पवनंजय ने युद्ध इस लिए धीरे-धीरे चलाया कि कहीं रावण के सेनापतियों को वरुण न मरवा दे। सैन्य

निरीक्षण के पश्चात् एक दिन वह कुमुद्वती-तीर पर विश्राम कर रहा था। उसे चक्रवाकी को पति से वियुक्त होने पर उद्विग्न देखकर अपने प्रिया की स्मृति हो आई। वह तत्काल विमान पर बैठ कर अपनी पत्नी से मिलने के लिए उड़ पड़ा। पत्नी से मिलकर दूसरे दिन पुनः प्रातःकाल लौट आया।

अञ्जना गर्भवती थी। चार मास बीत गये। सखियों को छोड़ कर किसी और को पवनंजय का युद्धभूमि से आकर अपनी पत्नी से मिलने का वृत्त ज्ञात नहीं था। उन्हें भय था कि कहीं सास अपनी वधू के चरित्र पर सन्देह करके उसके प्रति दुर्व्यवहार न करे। कुछ दिनों के पश्चात् सास की आज्ञा से अञ्जना पिता के घर पहुँचा दी गई।

इधर पवनंजय जीता। रावण को उसके सेनापति खर और दूषण लौटा दिये गये। पवनंजय लौट आया। वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि गर्भवती अञ्जना अपने पिता के घर चली गई है। कालमेघ हाथी पर उड़कर पवनंजय सीधे अञ्जना से मिलने चला। बीच में नाभिगिरि पर्वत पर सरोवणसरसी के तट पर उसे किसी वनचर से विदित हुआ कि अञ्जना घर न जाकर यहीं वनप्रदेश में प्रवेश कर गई है। पवनंजय ने अपने साथ आये हुए विदूषक को लौटा दिया कि साथ जाकर विद्याधरों को ला और मैं तबतक अञ्जना को वन में ढूँढ़ता हूँ।

गन्धर्वराज मणिचूड ने अञ्जना का प्राण संकट से बचाया था और वह उसी की छत्रच्छाया में पतिवियोग से विपन्न होकर रहती थी। उसे पुत्र उत्पन्न हुआ था। पवनंजय अनंगमालिनीवन में विक्षिप्त होकर रहता था। एक दिन सब प्रकार से हार कर वह चन्दन पेड़ के सहारे टिका था। वहाँ उसे ढूँढते हुए उसका मामा प्रतिसूर्य आ पहुँचा। उसने अञ्जना को पवनंजय से मिला दिया। सभी आदित्यपुर लौट आये।

आदित्यपुर में पवनञ्जय का राज्याभिषेक हुआ। प्रतिसूर्य ने अञ्जना के पुत्र हनूमान को लाकर पवनञ्जय को दे दिया। प्रतिसूर्य ने वह सारी कथा बताई कि अञ्जना को कैसे कष्ट भोगने पड़े। रत्नकूट पर्वत पर अमितगति ने उसे आश्वस्त किया कि तुम्हारी विपत्ति का अब अन्त हो चला है। वहीं रहते हुए एक सिंह ने उन पर आक्रमण किया और मणिचूड गन्धर्व ने उसका आर्तनाद सुनकर बचाया। फिर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ। यह सब जब प्रतिसूर्य को ज्ञात हुआ तो वह उन्हें अपने घर ले गया। फिर कैसे उसने पति-पत्नी को मिला दिया। इस नाटक की कथावस्तु पउमचरिउ नामक विमलसूरि के पुराण से ली गई है।

हस्तिमल्ल ने ग्राम्यदोष से अपने को विरहित करना आवश्यक नहीं माना है। सम्भवतः उनका प्रमुख उद्देश्य था अभिधा से बातों को सुबोध बनाना। नीचे के श्लोक में अभिधा खटकती है—

आलिङ्गनाय न ददासि कुतस्त्वमङ्गा-
न्यापातुमर्पयसि नैव किमाननेन्दुम् ।
दृष्टिं मदीक्षणपथे न करोषि कस्मा-
न्नाभाषसे किमिति देवि निरुद्धकण्ठा ॥ २.१५

संस्कृत में कम ही ऐसे नाटक हैं, जिनमें नायक-नायिका के माता-पिता को इतना महत्त्व दिया गया है- जितना इस नाटक में। अञ्जना के गर्भवती होने पर उसकी सास केतुमती ने उसे घर से बाहर निकलवा दिया। इस नाटक में कौटुम्बिकता सविशेष है, अर्थात् इसका कार्यक्षेत्र घर के भीतर पर्याप्त मात्रा में है। साथ ही, वनेचरों को भी पात्र बनाया गया है।

कतिपय स्थलों पर पात्रों के स्वगत भाषण कई पृष्ठों तक चलते हैं। षष्ठ अंक में प्रतिसूर्य का ऐसा ही लम्बा भाषण है। वह रंगमंच पर अपना भाषण देकर चलता बना। रंगमंच पर कोई उसकी बात सुननेवाला भी नहीं था। उसके पहले पवनञ्जय का 'आत्मगत' तीन पृष्ठों का है।

सुभद्रा

हस्तिमल्ल की सुभद्रा नाटिका है। इसके चार अङ्कों में विद्याधर राजा नमि की भगिनी और कच्छराज की कन्या सुभद्रा का तीर्थङ्कर वृषभ के पुत्र भरत से विवाह की कथा है। रजताचल पर विहार करते हुए भरत ने सुभद्रा को देखा। दोनों ने परस्पर प्रेमाञ्चल में अपने को बाँध लिया। इधर रानी ने उन दोनों को बात करते देख लिया था। उसे सन्देह हुआ कि यह सब क्या गान्धर्व रीति है?

राजा भरत सुभद्रा को भूल न सके। उसका चित्र बनाया और उसी का ध्यान करने लगे। एकबार और सुभद्रा की नगरी में आये। सुभद्रा वहीं आ गई, जहाँ राजा अपने विदूषक के साथ था। रानी भी छिपकर आ गई और वह नायक की बातें सुनने लगी। उसकी बातें सुनकर रानी का धैर्य जाता रहा। वह उनके बीच झपट पड़ी और सुभद्रा का चित्र देखकर और बौखलाई। उसके चले जाने पर सुभद्रा राजा के पास आई। उसने रानी का व्यवहार देख लिया था। भरत ने सुभद्रा का हाथ पकड़ लिया। उसी समय उसकी सखी ने बुला लिया और उसे अन्यत्र जाना पड़ा।

सुभद्रा ने विरह-व्यथा से सन्तप्त होकर एक पत्र राजा के पास भेजा जो अशोक वृक्ष पर लटका दिया गया। राजा विदूषक के साथ उस उपवन में आ गया, जहाँ सुभद्रा पड़ी थी। सुभद्रा ने अपनी सखी के साथ अशोक और मालती लता का विवाह सम्पन्न किया। वहीं आकर राजा ने पुनः उसका हाथ पकड़ लिया। उस

समय रानी भी वहीं आ गई। वह राजा को प्रसन्न कर लेना चाहती थी, पर जब उसने देखा कि भरत ने सुभद्रा का हाथ पकड़ा है तो वह पुनः क्रोधावेश में उनके सामने झपटी। सुभद्रा भाग खड़ी हुई। रानी राजा के क्षमायाचना करने पर भी मानी नहीं। तभी राजा को वह अशोक वृक्ष पर लटका पत्र मिला जिसे पढ़कर राजा ने सुभद्रा के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया। सुभद्रा कुञ्ज में छिपे-छिपे यह सब देख रही थी। इधर नमि ने सुभद्रा का विवाह भरत से करने की घोषणा कर दी, पर यह भरत को ज्ञात नहीं हुआ।

भरत के पास नमि का दूत आया कि महाराज अपनी बहिन सुभद्रा के साथ यहाँ आपसे उसका विवाह करने के लिए आ रहे हैं। उन्होंने अपनी पत्नी से भी कह दिया कि आदेशिक ने कहा है कि सुभद्रा का पति चक्रवर्ती होगा। रानी ने भी यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। नमि ने आकर सुभद्रा का भरत से विवाह कर दिया।

कवि मनोरंजन के लिए शृङ्गारित वृत्ति को अपनाये हुए है। वह गंगातट पर भी रमणीयता के प्रमाणस्वरूप देवताओं की कामक्रीडा का निदर्शन करता है। यथा,

> मन्दाकिनीतीरलतागृहेषु मन्दारपुष्पास्तरणाञ्चितेषु।
> सुराः सदैव त्रिदिवं विहाय समं रमन्ते सुरसुन्दरीभिः॥ १.१८

हस्तिमल्ल अनुप्रास के प्रेमी हैं। यथा,

> अङ्कुरान् किसलयानि कोरकान्
> कुड्मलानि कुसुमानि च क्रमात्। १.२४

अन्य रूपकों की भाँति सुभद्रानाटिका में भी पात्रों की लम्बे-लम्बे भाषण नाट्योचित नहीं लगते। ऐसा लगता है कि ये भाषण संवाद से कोसों दूर हैं।

हस्तिमल्ल के सभी रूपकों में स्वयंवर-विवाह की प्रधान चर्चा है। ऐसा लगता है कि कवि स्वयंवर का पक्षपाती था। विवाह के पहले नायिका का नायक से मिलना पूर्वानुराग की निष्पत्ति के लिए है। नायिका और नायक का प्रथम दृष्टि में प्रणयसूत्र में आबद्ध होना सभी रूपकों में निदर्शित है। हस्तिमल्ल की रचनाओं में धार्मिकता का अनुबन्ध तनिक भी नहीं है।

हस्तिमल्ल के चारों रूपकों में ९१२ पद्य हैं। उनका सर्वाधिक प्रिय छन्द शार्दूल-विक्रीडित है, जिसमें उन्होंने १३९ पद्यों की रचना की है। प्रयोग की दृष्टि से कवि के छन्दों का अनुबन्ध इस प्रकार है—उपजाति में १११ पद्य, आर्या में १००, वसन्ततिलका में ८४, शिखरिणी में ८४, अनुष्टुभ् में ८३, मालिनी में ६४, वंशस्थ में ४८, स्रग्धरा में ३१, हरिणी में २५, इन्द्रवज्रा में २२, मन्दाक्रान्ता में १८, उपेन्द्र-वज्रा में १६, रथोद्धता में १२, औपच्छन्दसिक में ११, वियोगिनी में १०, पृथ्वी

में ९, द्रुतविलम्बित में ६, पुष्पिताग्रा में ६, अपरवक्त्र और स्वागत में ५, शालीनी में ४, मंजुभाषिणी में ३ और वैतालीय में ३ पद्य हैं। शेष १२ छंदों में एक-एक पद्य हैं।

गुणावगुणिका

हस्तिमल्ल के रूपकों के सम्पादक श्रीपटवर्धन ने उनके गुण-दोषों का विवेचन करते हुए कहा है—

The chief merits of Hastimalla are therefore his beautiful versification, the simplicity directness and facilegrace of his style, his descriptive art, his apigrammatic wisdom and his skill for composing lyrical scenes.

The plays do not contain any really gripping dramatic situations worth mentioning, not do we come across situations wherein we can see the characters growing and developing, as they pass through those situations.

अर्थात् नाव्यकला की दृष्टि से इन कृतियों का महत्त्व विशेष नहीं है, किन्तु इनसे हस्तिमल्ल की उच्चकोटिक काव्यप्रतिभा प्रमाणित होती है।



अध्याय ३६

रम्भामञ्जरी

रम्भामञ्जरी की रचना हम्मीर महाकाव्य के लेखक नयचन्द्र ने की। यह एक विचित्र प्रकार का रूपक है, जो कर्पूरमञ्जरी के आदर्श पर लिखे जाने के कारण सट्टक होना चाहिए था, किन्तु सट्टक आदि से अन्त तक प्राकृत में होता है और इसमें मनमाना संस्कृत का सम्मिश्रण है। कवि ने जहाँ चाहा, प्राकृत में गद्य-पद्य लिखे और अन्यत्र संस्कृत में। इस प्रकार रम्भामञ्जरी न तो सट्टक है और न नाटिका और यदि एक है तो दूसरी भी।[1]

नयचन्द्र की रचना तेरहवीं और चौदहवीं शती के सन्धिकाल में हुई। वे पहले हम्मीर (१२८३–१३०१ ई०) की राजसभा में थे। जयसिंह ही जैत्रसिंह हैं। रम्भामञ्जरी उन्हीं की प्रणय-कथा का नाटिका रूप में प्रस्तुतीकरण है। जयसिंह काशी और कन्नौज के राजा ११७० से ११९३ ई० तक था। इसका प्रथम अभिनय काशी में विश्वनाथ की यात्रा के अवसर पर हुआ था।

कवि आत्मप्रशंसा में निष्णात है। उसका आत्मपरिचय है—

> षड्भाषासुकवित्वयुक्तिकुशलो यः शारदादेव्याः
> दत्ते प्रौढवरप्रसादवशतो राज्ञां यो रञ्जकः।
> यः पूर्वेषां कवीनां पथि पथिक एतस्य स कारकः
> विख्यातो नयचन्द्रनामसुकविः निःशेषविद्यानिधिः॥

नयचन्द्र ने राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी के आदर्श पर इसका प्रणयन किया है। सूत्रधार के शब्दों में इसके कथानक का सार है—

> इक्ष्वाकूणां नरेशवंशतिलकः स जैत्रचन्द्रप्रभुः
> युक्त्या परिणीय सप्तगृहिणीरूपेण याप्सरा।
> एतस्मिन् भवितुं यथोक्तविधिना भूमण्डलाखण्डलो
> रम्भां तां परिणयत्यष्टमास्त्रियमेतस्मिन् सट्टके वरे॥

कथानक

वसन्त ऋतु में राजा जयचन्द्र अपनी सात रानियों, विदूषक और पूरे

---

१. कवि ने इसका नाम सट्टक दिया है। पुस्तक की प्रति काशी में पार्श्वनाथ अनुसन्धान केन्द्र में लभ्य है।

परिजनों के साथ आम्रवण में आया। वसन्त-वर्णन के पश्चात् शशाङ्क-वर्णन विदूषकादि परिजन करते हैं। कर्पूरमञ्जरी जैसी स्पर्धा से काव्य रचना की जाती है।

राजा ने नारायणदास को नायिका रम्भा से विवाह सम्बन्धी समाचार जानने के लिए भेजा था। वह रम्भा को लेकर आ पहुँचा। उसका परिचय है—

जाता किर्मीरवंशे जगज्जनमहिते पौत्रिका देवराजस्य
रूपेण शैलजाया नृपमदनसुता कंकणोद्भासिहस्ता।
राज्ञा हंसेन दत्ताप्यपहृता मातुलेन शिवेन
रम्भा रंभेव प्राप्ता त्वमप्यभिमुखमेहीन्द्र इव किमपि॥

वह लाट देश के राजा मदनवर्मा की कन्या थी। सभी नायिका का नखशिख सौन्दर्य वर्णन करते हैं। पुरोहित ने वेदमन्त्र से दोनों का विवाह करा दिया। स्त्रियों ने उलूलु-गान किया। नाच हुआ। बाजे बजे। रात बीत गई। नायिका अन्तःपुर में ले जाई गई।

नायक रात्रि के आने पर नायिका के लिए समुत्सुक है। वह उन्मी के विषय में सोच-सोच कर व्याकुल है। उसे आश्चर्य हो रहा है कि वह सुन्दरी जला कैसे रही है। उसमें तो सर्वाङ्गीण शीतलता है।

विदूषक और चेटी ने राजा की कामना पूरी करने के लिए नायिका को उससे मिलाने का उपाय किया। नायिका की खिड़की के पास एक अशोक वृक्ष की डाल थी। उस पर चढ़ कर चेटी ने नायिका को उतारा। नायक और नायिका की प्रणय क्रीडा अनूठी रही। कुछ देर में देवी के भय से वे वहाँ से चलते बने।

देवी आई और राजा भी आ गये। उनकी प्रणयमुद्रा देख कर विदूषक और चेटी चलते बने। रानी के प्रेमापूरण के क्षणों में राजा ने रम्भा का नाम लिया तो उसने कहा कि इस वसन्त में उस अनाथ को सनाथ करें। वह आपको आनन्द प्रदान करे।[1] रानी गई और राजा के मदनविनोद-क्रीडा के लिए रम्भा आ गई। उनमें प्रणयालाप के साथ ही क्रीडासरम्भ भी चला। प्रातःकाल होने पर वैतालिकों ने संध्यागम की सूचना दी। नायक और नायिका ने प्रणयलीला समाप्त की और सट्टक भी विगलित हुआ।

विधान

नायिका को खिड़की के पास अशोक की डाल से उतारने का विधान रूपक साहित्य में एक नवीन-सी रीति है। कवि ने रङ्गमञ्चीय निर्देशों को अनेक स्थलों पर छन्दोवद्ध किया है। यथा,

१. सुरहिसमारम्भेणं महमहिया मञ्जरी व चूयस्स।
जणयदु तुह आणन्दं नोहलिया सा कुरंगच्छी॥ ३.९

नाभेरधो ददती स्वं पाणिं प्रियतमस्य प्रथमसुरते ।
सुरतरसादपमुदमधिकमुपजनयति तस्मै सैषा ॥

श्रृङ्गारित कार्यकलाप पर अपनी ओर से (किसी पात्र के द्वारा नहीं) टिप्पणी प्रस्तुत करना भी एक विरल विधान कवि ने अपनाया है ।[1] यथा,

त्वरय त्वरय ततोऽपि छेकसुरतादप्यतीवरम्यस्य स्वभावरसितस्य खलु एषोऽवसरः । यतः

नापि तथा छेकरतानि हरन्ति पुनरुक्तरागरसितानि ।
यथा यत्रापि तत्रापि यथापि तथापि सद्भावरमितानि ॥ २.१५

कवि मानों स्वयं पात्र बन गया है, जब वह कहता है—

मयणुद्दीवणमन्तं जव इव वेवन्ततणुलया एसा ।
पढम सुरयसंगमे ह ह न न मम मुञ्च मुञ्च वयणमिसा ॥

इत्थन्तरम्मि मणियं विणिसम्मि तिस्सा
पाराव एहि चलियं घणपत्तमग्गे ।
देवी समागयवदित्ति निवो वि सावि
भीया जहागइ गई पडिवज्जगंए ॥ २.१६–२०

रूपक में वर्जित है रङ्गमञ्च पर आलिङ्गन और सुरतव्यापार के दृश्य । इसको कवि एकबार और अपनी ओर से शब्दचित्र द्वारा प्रस्तुत करते हुए श्रृङ्गार-वृत्ति को अक्षुण्ण बनाता है । यथा, रङ्गमञ्च पर नायक और नायिका की क्रीडा दृश्य वर्णित है—

वक्त्रं वक्त्रेण वक्षःस्थलमपि सुचिरं वक्षसा बाहुमूले
बाहुभ्यां पीडयित्वा तनु तनुलतया निर्विभेदं तनुं च ।
देव्या क्रीडंस्तथासावभजत सुरते सर्वनारीश्वरत्वं
शम्भुः सोप्यर्धनारीश्वरतनुघटना प्रेमगर्वं यथोज्झन् ॥ ३.७

यह हनुमन्नाटक की सरणि पर कोई गायक रङ्गमञ्च या नेपथ्य से सुनाता होगा, जिसका कोई निर्देश नहीं है ।

साथ ही रङ्गमञ्च पर मदनविनोदक्रीडा का दृश्य भी प्रस्तुत है । देवी रङ्ग में नीचे लिखी स्थिति में कामशय्या पर दिखाई गई है—

सम-रत-रस-प्रसरमुदितसर्वाङ्गलतां देवीं···इत्यादि

---

१. यह विधान हनुमन्नाटक में अविरल है । मराठी नाटक में जो व्यक्ति (पात्र नहीं) रङ्गमञ्च पर इस प्रकार की बातें कहता है, उसे निवेदक कहते हैं । यह अर्थोपक्षेपक से भिन्न है क्योंकि इसमें वर्त्तमान का प्रसङ्ग वर्ण्य है ।

ऐसा लगता है कि इस युग में रङ्गमञ्चीय सारी मर्यादायें भग्न हो चली थीं।[1] रङ्गमञ्च पर ही नायक नायिका को उत्सङ्ग में बैठाता है। नायक उसका चुम्बन करता है, नखदान करता है, कटिस्पर्श करता है और नायिका उसके कण्ठ में अवसक्त हो जाती है। वे रङ्गमञ्च पर अनङ्गलीला का अभिनय करते हैं।[2] इस अनङ्गलीला के दृश्य का वर्णन कवि ने स्वयं किया है—

> अंगाणि अंगे विहिनिम्मियाणि ओणाति रित्ताइ हवंति जाणि।
> अंगेहि सव्वंगसुहावहेहिं पियेण किज्जन्ति समाणि ताणि॥ ३.२०

शैली

रम्भामञ्जरी में छन्दोबन्ध की एक ऐसी छटा मिलती है, जिसका विलास जगद्विजयछन्द में सैकड़ों वर्षों के पश्चात् मिलता है।[3] नयचन्द्र की उक्ति है—

> शशिवदनस्य प्रतिमदनस्य प्रवरपदस्य प्रहतमदस्य।
> स्फुरदुदयस्य प्रथितदयस्य स्फुटनयनस्य प्रकटनयस्य॥

इसमें वैतालिक अपभ्रंश भाषा में गाते हैं। यथा,

> जय भरहरायकुलजणियसोह।
> जय दूरविवज्जियदोहलोह।
> जय माणिणिमाणपभङ्ग दक्ख।
> जय भग्गणवंच्छियकप्परुक्ख। इत्यादि

गीतात्मकता से परिपूर है यह सट्टक। नायक का कहना है—

> लावण्यममृतरसः नयने नीलोत्पले मुखं चन्द्रः।
> रम्भातरू ऊरुयुगलं तदा देवि दहयसि किं हृदयम्॥ २.८

नायिका ने सन्देशसट्टक भेजा, जिसे पाकर राजा ने कहा कि प्रेमपत्रिका क्यों न लिख भेजी? चेटी ने उत्तर दिया—

> गलत्येका मूर्च्छा भवति पुनरन्या यदनयोः
> किमप्यासीन्मध्यं सुभग निखलायामपि निशि।
> लिखन्त्यास्तत्रास्याः कुसुमशरलेखं तव कृते
> समाप्तिं स्वस्तीति प्रथमपदभागोऽपि न गतः॥ २.१४

---

१. एक जैन मुनि के हाथों इस प्रकार की शृङ्गारित रूपक की रचना और शृङ्गार सम्बन्धी अभिनयात्मक मर्यादाओं को तोड़ना विचित्र ही सा लगता है।

२. इत्यर्धसमस्यया प्रेमरसं पुष्णन्तौ अनङ्गलीलां नाटयतः।

३. तुलना के लिए सागरिका वर्ष ७, अङ्क २ में 'जगद्विजयच्छन्दस्याधिकरणम्'

संस्कृत-प्राकृत का सामञ्जस्य देखते ही बनता है। राजा संस्कृत में बोलता है और रम्भा प्राकृत में उत्तर देती है। यथा,

मदनमदमत्तकुञ्जरकुम्भौ तव सरसिजाक्षि कुचकुम्भौ।
उवजणइ पुलअदुहिए लग्गो वि नहंकुसो तुहच्चरियं ॥ ३.१७

यद्यपि सट्टक में प्राकृत का प्रयोग होना चाहिए, किन्तु इसमें भी राजा को संस्कृत बोलने का विशेषाधिकार था।[1]

सट्टक में शृङ्गार अङ्गी होता है और अन्य रसों में हास्य विशेष निखरता है। रम्भामञ्जरी में शृङ्गार का बाहुल्य है अथवा यों कहिए कि शृङ्गार मर्यादातीत है। जैत्रसिंह की महारानी विभावों की गणना करती है—

गेहं कामचरित्रचित्ररचनाकामाग्निसन्दीपकं
चन्द्रोद्योतसुखावहा च रजनी रम्यो वसन्तोत्सवः।
शय्या सज्जरतोपचाररुचिरा हाला हले निर्मला
सर्वं तत्त्वसुखं भवेद् यदि गले मुक्तावलीवल्लभः ॥ ३१

हास्य के लिए विदूषक के साथ कर्पूरमञ्जरी के अनुपद गाली का प्रसङ्ग सन्निविष्ट है। यथा,

कर्पूरिका — णिगच्छउ एवमलियाववायं भणन्तस्स तुह जीहाए काल-फोडिया।

कला का अपकर्ष

परवर्ती बहुत-से रूपकों में कला के अपकर्ष की पूर्ति शृङ्गारात्मक नग्न दृश्यों को प्रस्तुत करके की गई है। इस दृष्टि से रम्भामञ्जरी सर्वोपरि उदाहरण है।

कर्पूरमञ्जरी की कथा में जो कुछ अलौकिकता है, उससे इस सट्टक को विरहित रखा गया है, साथ ही इसमें नायिका की प्राप्ति के लिए प्रयास और महारानी के विरोध का अध्याय समाप्त कर दिया गया है। इस प्रकार यह केवल तीन जवनिकाओं में समाप्त कर दिया गया है। सट्टक में साधारणतः चार जवनिकायें होती हैं।

---

१. यद्यपि बादरायणप्रभृतिभिरुक्तं राज्ञः संस्कृतपाठः कार्यात् प्राकृतपाठः। न वदेत् प्राकृतीं भाषां राजेति कतिचित् जगुः। भरतकोश पृ० ६९७

अध्याय ३७

संकल्प-सूर्योदय

संकल्पसूर्योदय के रचयिता वेङ्कटनाथ का रचनाकाल तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी हैं। उन्होंने सौ से अधिक ग्रन्थों की रचना विविध विषयों पर की है, जिनमें से कुछ का परिचय प्रथम भाग में दिया जा चुका है।[1]

इनका जन्म काञ्ची में वेङ्कटेश तीर्थोत्सव के दिन वेङ्कटेश के प्रसाद से हुआ। इनके मामा रामानुजाचार्य थे। जिनके साथ छः वर्ष की अवस्था में वे उनके गुरु वरदाचार्य के विद्यालय में श्रीभाष्य प्रवचन-गोष्ठी सुनने के लिए गये। वहाँ उन्होंने एक विस्मृत प्रकरण का स्मरण कराया, जिसे सुनकर वरदाचार्य ने उन्हें अशीर्वाद दिया—

प्रतिष्ठापितवेदान्तः प्रतिक्षिप्तबहिर्मतः।
भूयास्त्रैविद्यमान्यस्त्वं भूरिकल्याणभाजनम्॥

अहीन्द्रनगर में उन्हें श्री हयवदन का प्रसाद प्राप्त हुआ, जिससे वे विरोधी मतों के निरसन में कुशल हुए और सभी तन्त्रों में निपुण हो गये। उहोंने वहाँ पर देवनायकपंचाशत, गोपालविंशति आदि ग्रन्थों की रचना की। वहाँ से कांची लौटते हुए उन्होंने गोपपुर में देहलीश-स्तुति और सच्चरित्ररक्षा की रचना की। कांची से एकबार वेङ्कटाद्रि में जाकर उन्होंने श्रीनिवास भगवान् की अर्चना दयाशतक के द्वारा स्तुति करके की। वहाँ से वे पुरुषोत्तम से लेकर बदरिकाश्रम तक दिव्य देशों में भगवान् की मूर्तियों का दर्शन करते हुए विचरण करते रहे। फिर काञ्ची में लौटकर ग्रन्थों के प्रवचन में लग गये। वहाँ ब्रह्मोत्सव में विविध मतानुयायियों को शास्त्रार्थ में परास्त कर उन्होंने अपने मत की सर्वोच्च प्रतिष्ठा की। श्रीरङ्ग में श्रीरङ्गनाथ के प्राङ्गण में वेदान्तदेशिक ने अन्य मतावलम्बियों को हराया। इस अवसर पर उन्हें वेदान्ताचार्य की उपाधि दी गई। इस शास्त्रार्थ को शतदूषणी नाम से ग्रन्थ रूप दिया गया। वहाँ से कुछ समय पश्चात् वे अहीन्द्रनगर में भगवान् की मूर्ति का दर्शन करने चले गये। वहाँ भी शास्त्रार्थ में उन्होंने अन्य मतावलम्बियों को परास्त किया। इस शास्त्रार्थ को परमतभङ्ग नाम से ग्रन्थ रूप दिया गया। वहाँ के राजा देवनाथ ने उन्हें कवितार्किकसिंह की उपाधि दी। उनका बनवाया हुआ कूप अब भी

---

१. वेदान्तदेशिक के जीवन-विन्यास का परिचय प्रथम भाग के पृष्ठ ३७९ पर है।

वहाँ विराजमान है। वहाँ से वेङ्कट पुनः काञ्ची आ गये। वहाँ उन्हें विजयनगर के राजा का पत्र मिला कि यहाँ आकर राजसम्मान प्राप्त करें। सम्मानादि से विमुख वेङ्कट ने इस आमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया और पाँच श्लोकों में जो उत्तर दिया, वह वैराग्यपंचक नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण के तीर्थों का दर्शन करने के लिए वेङ्कट फिर काञ्ची से कुरुकापुरी पहुँचे और वहाँ से यादवाचल आ गये, जो रामानुज की विजय का स्मारक था। वहाँ उन्होंने यतिराजसप्तति की रचना की। श्रीरङ्ग में उन्हें आकर एक बार और विवादकों को शास्त्रार्थ द्वारा परास्त करना पड़ा। इसी अवसर पर संकल्पसूर्योदय की रचना हुई।

डिण्डिम सार्वभौम ने सुना कि श्रीरङ्ग में वेङ्कट को कवितार्किकसिंह की उपाधि मिली है। पहले तो वे विवाद की मुद्रा में थे, किन्तु वेङ्कट का उत्तर सुनकर वे विनयपूर्वक उनके शिष्य बन गये और विष्णुघण्टावतार की उपाधि दी। १३२९ ई० तक रामानुजाचार्य के सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए वेङ्कट श्रीरङ्ग में रहे। मलिक काफूर ने १३२६ ई० में उधर आक्रमण किया। उसके सैनिकों ने श्रीरङ्गमन्दिर को भी लूटा। मन्दिर का प्रधान अधिकारी था सुदर्शन सूरि। उसने श्रीभाष्य व्याख्या और श्रुतप्रकाशिका नामक दो ग्रन्थों को वेङ्कट को सौंप दिया। इनकी रक्षा करने के लिए वेङ्कट यादवाचल आ गये।

विजयनगर की राजसभा में दो महान् पण्डित थे—विद्यारण्य और अक्षोभ्य। इन दोनों का विवाद हुआ, जिसका निर्णय प्रत्यक्षतः न होने पर वेङ्कट को निर्णायक बनाया गया। वेङ्कट ने अपना निर्णय लिख कर भेज दिया—

> असिना तत्त्वमसिना परजीवप्रभेदिना।
> विद्यारण्यमहारण्यमक्षोभ्यमुनिरच्छिनत् ॥

वेङ्कट की मृत्यु १३६९ ई० में हुई। उनके व्यक्तित्व का परिचायक नीचे लिखा उन्हीं का रहस्यत्रयसार का अन्तिम पद्य है—

> निर्विष्टं यतिसार्वभौमवचसामावृत्तिभिर्यौवनं
> निर्धूतेतरपारतन्त्र्यविभवा नीताः सुखं वासराः।
> अङ्गीकृत्य सतां प्रसत्तिमसतां गर्वोऽपि निर्वापितः
> शेषायुष्यपि शेषिदम्पतिदयादीक्षामुदीक्षामहे ॥

संकल्पसूर्योदय के प्रथम अङ्क में ब्रह्मसूत्र के समन्वय अध्याय का और द्वितीय अङ्क में ब्रह्मसूत्र के विरोधाध्याय और तीन से नव तक अङ्कों में वैराग्य, तपफल आदि ब्रह्मसूत्र के चतुर्थ अध्याय की चर्चा है।

संकल्पसूर्योदय दश अङ्कों का विशाल नाटक है। इसमें विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त-परक अन्य अगणित विषयों की संवादात्मक रोचक शैली में सरल रीति से विवेचन किया गया है।

कथानक

संकल्पसूर्योदय का बीज है—

दुर्जन्तं प्रतिपक्षं च दूरदृष्टिरयं जनः ।
विवेकश्च महामोहं विजेतुं प्रभविष्यतः ।। १.२६

महाराज विवेक और उसकी पत्नी सुमति पुरुष को संसार से मुक्त करने के लिए उपाय का अनुसन्धान करते हैं। पुरुष को मोह में डालने के लिए प्रतिनायक महामोह ने बौद्ध, जैनादि मत का प्रवर्तन किया है। विवेक और सुमति के पास गुरु और शिष्य आते हैं और शिष्य विपक्षियों का पराजय करता है। रागद्वेष का पराजय होता है विवेक और सुमति पुरुष के मोक्षका उपाय प्रवर्तित करते हैं। इसी समय महामोह का दूत उसका सन्देश सुनाता है।

कामोऽसौ समवर्तताग्र इति हि ब्रूते समीची श्रुतिः
कामादेव जगज्जनिस्थितिलयैराद्यः पुमान् क्रीडति ।
निष्कामोऽपि सकाम एव लभते निःश्रेयसं दुर्लभं
कामः कस्य वशे क एष भुवने कामस्य न स्या वशे ।। ३.४०

काम, क्रोध, वसन्त, लोभ, तृष्णा का व्यूह बनाकर महामोह पुरुष को जीतना चाहता है। विवेक उस व्यूह को तोड़-फोड़ देता है और वे सभी भाग खड़े होते हैं। दम्भ, कुहना, दर्प, असूया आदि महामोह के सैनिक महामोह के द्वारा प्रशंसित और प्रोत्साहित किये जाते हैं। इधर विवेक ने तर्क नामक सारथि को आदेश दिया है कि पुरुष की समाधि के लिए योग्य स्थान ढूँढ़ निकालो। समाधि-स्थान का निर्णय हुआ। विवेक के शिल्पी संस्कार ने हृदयमण्डप में विश्व का चित्र बनाया है। विवेक का सेनापति व्यवसाय सुमति और विवेक के चित्र का प्रदर्शन करता है। विवेक के दूत ने महामोह से सन्धिविषयक सन्देश कहा। युद्ध रोका न जा सका और महामोह का नाश हो गया। व्यवसाय के सहित विवेक ने पुरुष की समाधि सम्पन्न की। पुरुष को मोक्षलाभ हुआ।

यह कथानक प्रबोधचन्द्रोदय के आदर्श पर विरचित है।

कथानक का निरूपण नीचे के पद्य में कवि ने स्वयं किया है—

मूलच्छेदभयोज्झितेन महता मोहेन दुर्मेधसा
कंसेन प्रभुरुग्रसेन इव नः कारागृहे स्थापितः ।
विख्यातेन विवेकभूमिपतिना विश्वोपकारार्थिना
कृष्णेनेव बलोत्तरेण घृणिनामुक्तश्रियं प्राप्स्यसि ।। १.६६

नेतृपरिशीलन

संकल्पसूर्योदय में संकल्प एक प्रतीक पुरुष है, जो भगवद्दास है। भगवान् का संकल्प होना चाहिए कि इस व्यक्ति को मुक्त करूँगा—इससे मोक्ष की प्राप्ति होती

है। संकल्प को इस नाटक में सूर्य माना गया है, जिसके उदय होने पर मोहान्धकार का नाश हो जाता है।

इस नाटक में प्रतीक पुरुषों की संख्या ६० से भी अधिक है, जो दो पक्षों में विभक्त हैं। एक ओर विवेक है, जिसके पक्ष में प्रधान पात्र हैं महारानी सुमति, सेनापति व्यवसाद, शिल्पी संस्कार, दास संकल्प, मोक्षाधिकारी पुरुष आदि। दूसरी ओर महामोह है, उसकी पत्नी दुर्मति, सेनापति काम-क्रोध, काम की पत्नी रति और साथी वसन्त आदि। ये सभी कथापुरुष भावात्मक भले कहे जायँ, किन्तु ये मूर्तिमान् विवेक आदि हैं अर्थात् विवेक का अभिप्राय है विवेकी। विवेकी को ही विवेक कहा गया है। दम्भी को दम्भ कहा गया है। इसी प्रकार प्रतीकों को उनके कार्यकलाप से समझा जा सकता है।

नाटक में भावात्मक प्रतीकों के अतिरिक्त गुरु-शिष्य, नारद, तुम्बरु आदि अन्य पुरुष हैं। इसके द्वितीय अङ्क में श्री वैष्णव सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य हैं और वेदान्तदेशिक स्वयं उनका शिष्य बनकर उपस्थित है। आचार्य की आज्ञा के अनुसार शिष्य विरोधी सिद्धान्तों की त्रुटियों का निर्देश करते हुए उन पर प्रत्याक्रमण करता है। यथा, सांख्य २५ से अधिक गिनती नहीं जानता।

वस्तुतः इस नाटक को वैदेशिक शब्दावली में ट्रेजेडी या दुःखान्त कह सकते हैं।[1] इसके नायक महामोह को प्रतिनायक विवेक जीत लेता है।

रस

संकल्पसूर्योदय में अङ्गी रस शान्त है। शान्त के विषय में नाट्यशास्त्र का मत है कि यह रूपकोचित रस नहीं है। वेदान्तदेशिक ने तर्क देते हुए सिद्ध किया है कि नाट्यशास्त्रियों का यह अभिनिवेश मात्र है कि शान्त रस अभिनय के लिए ग्राह्य नहीं हो सकता।

प्रश्न है—कथं निष्पन्दनिखिलकरणनिष्पादनीययोगप्रधान एष सर्वजन-प्रेक्षणीयेन नाटकवृत्तान्तेन सम्पाद्यते ॥

उत्तर है—सन्ति खलु भगवता गीताचार्येण सहस्रशः प्रतिपादिताः सात्त्विकेन त्यागेन परिकर्मिता निवृत्तिधर्मपद्धतिनियता विविधा व्यापाराः, यदभिनयेन रङ्गोपजीविनामा जीवावकाशः।[2]

---

१. इसको सुखान्त मानना भ्रान्ति है। प्रथम अङ्क में नायिका रति ने 'विपक्षः किं नाम कदा करिष्यति' आदि में स्पष्ट किया है कि विवेक नायक नहीं, प्रतिनायक है। किसी रूपक के आरम्भ में नायकपक्ष की गाथा होती है। इसके आरम्भ में कामादि की गाथा है और उसी का पक्ष नायक का पक्ष है।

२. प्रस्तावना से।

इस नाटक में शान्त रस की सर्वोच्च प्रतिष्ठा इन शब्दों में की गई है—

> असभ्यपरिपाटिकामधिकरोति शृङ्गारिता
> परस्परतिरस्कृतिं परिचिनोति वीरायितम्।
> विरुद्धगतिरद्भुतस्तदलमल्पसारैः परैः
> शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रसः ॥ १.१६

कवि ने कहीं-कहीं श्रृङ्गार की विचेष्टा की है। यथा,

> स्मेरेण स्तनकुड्मलेन भुजयोर्मध्यं तिरोधित्सितं
> नेत्रेण श्रवणं लिलंघयिषितं नीलोत्पलश्रीमुषा।
> अङ्गं सर्वमलं चिकीर्षितमहो भावैः स्मराचार्यकै-
> स्तन्वीनां विजिगीषितं च वयसा धन्येन मन्ये जगत् ॥ ३.५

तथापि श्रृङ्गार बीभत्स-मिश्रित है—यह कवि का समीहित है। यथा,

> मधुभरितहेमकुम्भीमधुरिमधुर्यौ पयोधरौ सुदृशाम्।
> पिशितमिति भावयन्तः पिशाचकल्पाः प्रलोभयन्ति जडान् ॥ ३.७

सूक्तियाँ

सङ्कल्पसूर्योदय की रचना वित्रादपरायण कवि के द्वारा की गई है। इसमें स्वभावतः सूक्तियों का सम्भार समधिक है। यथा,

१. न हि जगति भवति मशको मातङ्गस्य प्रतिस्पर्धी।
२. विरूपाः खलु जना निजमुखदोषं निर्मलेष्वपि दर्पणेषु समर्पयन्ति।
३. पिशाचविवाहे गर्दभगानं संवृत्तम्।
४. मुक्ताशुक्तिविशुद्धसिद्धतटिनीचूडालचूडापदः
   किं कुल्यां कलयेत खण्डपरशुर्मण्डूकमंजूषिकाम् ॥
५. लवणवणिजः कर्पूरार्घं किमभिमन्वते।
६. निमीलयतु लोचने नहि तिरस्कृतो भास्करः
   श्रवः स्थगयतु स्थिरं परभृतः किमु ध्वाङ्क्षति।
   स्वयं भ्रमतु वालिशो न खलु वम्भ्रमीति क्षितिः
   कदर्थयतु मुष्टिभिः कथय किं नभः क्षुभ्यति ॥ २.२३
७. न खल्वखिलमपि निघृष्यते सुवर्णखण्डो वर्णनिष्कर्षाय।
८. गर्दभगाने शृगालविस्मयमनुस्मारयन्ति॥
९. न खलु वधिराणां कुतूहलमातनोति कोकिलालापः।
१०. कथमन्धानामभिलप्स्यते पयसो नैर्मल्यम्।

अपनी सूक्तियों की प्रशंसा में कवि ने कहा है—

क्रीडाकुण्डलमौलिरत्नघृणिभिः सारात्रिकाः सूक्तयः ॥ २.८५

इस कोटि की सूक्तियाँ लोकप्रचलित थीं।

शैली

संकल्पसूर्योदय की तार्किक शैली प्रभविष्णु है। यथा,

वहति महिलामाद्यो वेधास्त्रयीमुखरैर्मुखै-
र्वरतनुतया वामो भागः शिवस्य विवर्तते।
तदपि परमं तत्त्वं गोपीजनस्य वशंवदं
मदनकदनैर्न क्लिश्यन्ते कथं न्वितरे जनाः[1] ॥ १.३६

इतना अधिक प्रामाणिक वृत्त अन्यत्र कदाचित् ही प्रस्तुत हो कि कामराज ही सर्वत्र है।

वेदान्तदेशिक की शैली आद्यन्त सानुप्रास है। यथा,

प्रव्रज्यादियुता परत्रपुरुषे पातिव्रतीं बिभ्रती
भक्तिः सा प्रतिरुद्धसर्वकरणं घोरं तपस्तप्यते।
तुष्टा तेन जनार्दनस्य करुणा कुर्वीत तत् किंकरं
कश्चित् कैटभकोटिकल्पमसुरं मेषं पुनर्दुर्वचम् ॥ १.५३

कहीं-कहीं स्वरों का अनुप्रास जटिल है। यथा नीचे के पद्य में 'ए' का—

मुधारम्भे दम्भे मयि च मदने मुक्तकदने।
मितोत्साहे मोहे वृजिनगहने व्याप्तदहने ॥ ४.२५

वेदान्तदेशिक ने अपनी शैली का परिचय देते हुए कहा है—

निर्धूतनिखिलदोषा निरवधिपुरुषार्थलम्भनप्रवणा।
सत्कविभणितिरिव त्वं सगुणालंकारभावरसजुष्टा ॥ १.६४

रूपकनिष्ठ तो सारा रूपक ही है। इसका निदर्शन है—

परः पद्माकान्तः प्रणिपतनमस्मिन् हिततमं
शुभस्तत्संकल्पश्चुलकयति संसारजलधिम्।
झटित्येवं प्रज्ञामुपजनयता केनचिदसा-
. वविद्यावेतालीमतिपतति मन्त्रेण पुरुषः ॥ १.६३

इसमें चुलुकयति, संसारजलधि और अविद्यावेताली में रूपकच्छटा है।

कवि की वैदर्भी शैली साधारणतः विशद है किन्तु विषय की गरिमा और गाम्भीर्य के अनुरूप प्रायः गद्य भाग में बड़े समासों का समासादन प्रत्यक्ष है। यथा,

निरूपितं हि सात्वतप्रामाण्यं निखिलनिगमव्यसनव्यवसनिना मतिमन्थान-

---

१. यह श्लोक प्रबोधचन्द्रोदय के 'अहल्यायै जारः' आदि १.१४ से सन्तुलित है।

निर्मथितनिगमसिन्धुसमुदितमहाभारतचन्द्रचन्द्रिकानिरवशेषमुषितभुवनभुवनोदरतिमिरेण बादरायणेन भगवता नारायणेन ।[१]

वस्तुतः यह शैली अभिनवोचित नहीं है ।

कहीं-कहीं पद्यों में साङ्गीतिक उत्प्लुति है । यथा,

> कामं कामं काममपि सिद्धिं करणैः स्वैः
> कारं कारं कर्मनिषिद्धं विहितं वा ।
> न्यस्यन्ति त्वय्यद्भुतसीम्नि प्रतिबुद्धाः
> कामोऽकार्षीन्मन्युरकार्षीदिति नाम ॥ ४.३

नीचे के पद्य में नर्दटक छन्द का संगीत स्वाभाविक है—

> तिमिमुखपीतमुक्तसितसागरपूरनिभा
> रजनिविलासहासललिता हरिणाङ्ककराः ।
> शुभघनसारमिश्रहरिचन्दनपङ्करुचः
> स्फुटमनुलेपयन्ति पुरुहूतदिशा सुदृशम् ॥ ४.२७

स्त्रीनिन्दा

प्रतीक नाटकों में स्त्री-निन्दा तो परम व्रत है । यथा,

> शैलीं विलोपयाति शान्तिमधः करोति ।
> व्रीडामुदस्यति विरक्तिमपह्नुते च ॥ १.३९
> तिष्ठतु गुणावमर्शः स्त्रीणामालोकनादिभिः सार्धम् ।
> दोषानुचिन्तनार्था स्मृतिरपि दूरीकरोति वैराग्यम् ॥ १.४०

मनोवैज्ञानिक विचारणा

तृष्णा का मनोवैज्ञानियक विश्लेषण है—

> अशेषसुरनारीणामाभिरूप्य-समुच्चयैः ।
> अजहद् यौवनां तृष्णे विदधे त्वां विधिः स्वयम् ॥ ४.४८
>
> कनककलधौतशैलप्रभृतिभिरपि हन्त पूरणैः क्षिप्तैः ।
> तृष्णे भजति समृद्धिं भूयो भूयस्तवोदरे कार्श्यम् ॥ ४.४९

फिर तृष्णाग्रस्त है—

> अटन्ति हरितो दश स्थपुटयन्ति विश्वंभरां
> पठन्ति धनिनां चटून् परपरिच्छदं बिभ्रति ।
> तरन्ति जलधिं प्लवैः समरमारभन्ते मुधा
> दुरन्तधनदोहलग्रहिलचेतसो देहिनः ॥ ४.५२

---

१. द्वितीयाङ्क में ८५वें पद्य के आगे ।

वर्णन

रस के उद्दीपन विभावों का वर्णन के द्वारा पुरस्करण किया गया है। यथा, मन्दाकिनी का—

> कच्छोत्तंसितकल्पवृक्षशिखरोद्भासमानवासन्तिका-
> गन्धोद्गारस्फुरत् सौम्यलहरीशोभमानरोधोन्तरा।
> अम्हो दुःसहजन्मसंचरश्रयासिद्धानि शुद्धाकृति-
> र्दुखानि कदानुकरिष्यति स्वयं मन्दानि मन्दाकिनी॥ २.२

वर्षा का वर्णन रमणीय है—

> अक्ष्णोरञ्जनवर्तिका यवनिका विद्युन्नटीनामियं
> स्वर्गङ्गायमुना वियज्जलनिधेर्वेलातमालाटवी।
> वर्षाणां कबरी पुरन्दरदिशालङ्कारकस्तूरिका
> कन्दर्पद्विपदर्पदानलहरी कादम्बिनी जृम्भते॥ २.८०

और कावेरी है—

> खेलत्कल्लोलवधूविधूतकबरी शैवालितामन्वहम्।
> पश्येम प्लवमानहंसमिथुनस्मेरां कवेरात्मजाम्॥

समीक्षा

संकल्पसूर्योदय में प्रबन्धचन्द्रोदय की ही भांति कार्य (action) का अभाव है। रङ्गमञ्च पर केवल संवादों के द्वारा दार्शनिक और धार्मिक तथ्यों का विवरण प्रस्तुत किया गया है और निन्दा-स्तुति की गई है। इतने से ही कोई काव्य नाटक नहीं हो जाता।

जहां तक इसकी प्रशस्यता का प्रश्न है साधारण नाटक कोटि में ऐसे काव्यों को रखना ही समीचीन नहीं है। दर्शक नाटक देखने जाता है मनोरञ्जन के लिए, दर्शन या अध्यात्मविद्या सीखने के लिए नहीं।[1] वस्तुतः मनोरञ्जन का इसमें सर्वथा अभाव है।[2] फिर भी यदि साधु-सन्त ही दर्शक हों तो इस नाटक का अभिनय उनके योग्य होगा। संभवतः यह भी एक कारण है कि शान्त रस को अभिनय के योग्य नहीं माना गया। ऐसे नाटक को देखने के लिए मुण्डकों की दर्शक-मण्डली कहां से मिलती?

---

१. भगवदज्जुकीय में सूत्रधार ने कहा है—दशजातिषु नाट्यरसेषु हास्यमेव प्रधानमिति पश्यामि। यह वक्तव्य रूपक में मनोरञ्जन की प्रधानता व्यक्त करता है।

२. संकल्पसूर्योदय की अपेक्षा पूर्ववर्ती प्रबन्धचन्द्रोदय में हास्य की मात्रा विशेष है।

प्रद्युम्नाभ्युदय

रविवर्मा कुलशेखर ने पाँच अङ्कों के नाटक प्रद्युम्नाभ्युदय की रचना की।[1] रविवर्मा क्विलन (कोलम्ब) के राजा थे और अपने परवर्ति-शासनकाल में पाण्ड्य और चोल देशों के भी सम्राट् हो गये। इनका जन्म ११८८ शक सं० (१२६६ ई०) में हुआ था। इनके पिता महाराज जयसिंह कोलम्ब के यादववंशी राजा थे। रविवर्मा स्वयं उच्चकोटि के योद्धा और विजेता थे।[2] उन्होंने आनुवंशिक राज्य की महती विस्तृति की। धारा के महान् विजेता सम्राट् और साहित्यकार महाराज भोज के आदर्श के उन्नायक रविवर्मा को दक्षिणभोज कहा जाता है। काञ्ची के मन्दिर के उत्कीर्ण लेख के अनुसार—

धर्मतरुमूलकन्द, सद्गुरुगालङ्कार, चतुष्षष्टिकलावल्लभ, दक्षिणभोजराज, संग्रामधीर आदि रविवर्मा की विशेषतायें हैं।

रविवर्मा के आश्रय में समुद्रबन्ध और कविभूषण दो कवियों ने रचनायें की हैं। रविवर्मा काव्यरचना के साथ ही सङ्गीत आदि अनेक कलाओं में भी उद्भट थे। वे पद्मनाभ के उपासक थे। पद्मनाभ यादवकुल के देवता थे। प्रस्तुत नाटक की रचना चौदहवीं शती के प्रथम चरण में हुई।

प्रद्युम्नाभ्युदय का प्रथम अभिनय कुलदेवता पद्मनाभ के यात्रोत्सव के अवसर पर हुआ था।

कथानक

नारद ने द्वारका आकर कृष्ण से कहा कि वज्रणाभ नामक दानव ब्रह्मा से वर पाकर सबके लिए दुष्प्रवेश वज्रपुर में रहते हुए तीनों लोकों के प्राणियों को कष्ट पहुँचा रहा है। कृष्ण ने बताया कि उसने तो अमरावती में जाकर इन्द्र से भी कहा है—

देहि मे जगदैश्वर्यं नो चेद् युध्यस्व वासव।

देव दानवों के उभयनिष्ठ पूर्वज कश्यप यज्ञ कर रहे हैं। कश्यप की इच्छानुसार

---

१. इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज में हुआ है। इसकी प्रति संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के पुस्तकालय में प्राप्तव्य है।

२. इनका अपर नाम संग्रामधीर था।

उनके यज्ञ की समाप्ति तक यह विवाद टला है। नारद ने कहा कि आप ऐसे दानवों का उत्पात समाप्त करने के लिए ही अवतीर्ण हुए हैं। कृष्ण ने कहा कि यह काम मेरा पुत्र प्रद्युम्न करेगा—

> प्रद्युम्न एव भगवन्नचिरेण वत्सो
> बाणैर्निहत्य तमिमं युधि वज्रणाभम्।
> नेत्राम्बुभिस्तदवरोधनितम्बिनीनां
> निर्वापयिष्यति जगत्त्रितयस्य तापम्॥ १.१७

नारद ने बताया कि प्रद्युम्न को एक और सिद्धि भी मिलेगी—वज्रणाभ की कन्या प्रभावती से विवाह। उसने पिता के द्वारा आयोजित स्वयंवर में सभी युवकों की उपेक्षा कर दी है। वह अवश्य ही प्रद्युम्न को देखकर प्रणयपाश में आबद्ध होगी। नारद चलते बने।

कृष्ण ने मन में सोचा कि कैसे दुष्प्रवेश वज्रपुर में प्रवेश किया जाय। उन्हें स्मरण हो आया कि भद्र नामक नट आकाश में उड़ता है और सर्वत्र प्रवेश कर सकता है। उसी से काम कराऊँगा। कृष्ण ने उसे बुलाकर कहा कि वज्रणाभ को मारने का काम प्रद्युम्न, गद और साम्ब को दे रहा हूँ। उसके नगर में उसकी अनुमति के बिना कोई प्रवेश नहीं पा सकता। तुम्हारी सहायता से प्रद्युम्नादि प्रवेश करें।

हंस नामक चारण ने वज्रणाभ को बताया कि भद्रनट को असाधारण विद्यावैभव प्राप्त है। वज्रणाभ उससे मिलने के लिए उत्सुक हुआ। फिर भद्रनट ने पहले शाखानगर में रामायणविषयक नाटक का अभिनय किया। उसकी प्रशंसा वहाँ के निवासियों ने वज्रणाभ से की। अपने साथियों के साथ भद्रनट वज्रपुर में आदरपूर्वक रखा गया और प्रभावती को संगीत सिखाने के लिए नियुक्त हुआ।

भद्रनट ने प्रद्युम्न का एक रमणीय चित्र बनाया, जिसे कलहंसिका नामक सखी ने प्रभावती को दिखाया। उसे देखकर सौन्दर्यातिरेक से प्रभावती ने भद्रनट को बुलवा कर पूछा कि चित्र किसका है? भद्रनट ने कहा—कृष्णतनय प्रद्युम्न का। इस प्रद्युम्न की चर्चा वृद्धाओं से सुन कर प्रभावती ने स्वयंवर में किसी युवक को नहीं चुना था। यद्यपि प्रद्युम्न वहीं था, फिर भी प्रभावती के उसके दर्शन की इच्छा होने पर भद्रनट ने कहा—

> यदि तस्य दर्शने कुतूहलं तत् कतिपयैरेव दिवसैर्मम विद्याप्रभावेण तं कुमारमिहानयामि।
>
> किसलयदर्शितरागस्तरुणः सहकारपादपः सैषः।
> आमोदयिष्यति त्वामचिराय नवेन पुष्पहासेन॥ २.१५

यह समासोक्ति द्वारा भावी प्रणयात्मक कार्यक्रम की अभिव्यक्ति है।

भद्रनट चाहता था कि प्रभावती और प्रद्युम्न का परस्पर प्रेम एक दूसरे को देखकर बढ़े। इसके लिए अच्छा अवसर हाथ आया। वज्रणाभ के आदेशानुसार वसन्तोत्सव मनाने के लिए नाट्याभिनय का आयोजन भटनट को करना था।[1] उसे देखने के लिए प्रभावती, वज्रणाभ आदि पूरा राजपरिवार आया। रम्भाभिसरण नामक प्रेक्षणक का अभिनय आरम्भ हुआ।[2] इसका कथानक है—

अभिरूपमभिसृतवती नलकूबरमत्र नाटके रम्भा। ३.८

इस प्रेक्षणक में नायक था प्रद्युम्न, विदूषक बना भद्रनट और नायिका थी मनोवती। भद्रनट ने प्रद्युम्न को दर्शकों में से प्रभावती को दिखाया। प्रद्युम्न मुग्ध था। नलकूबर के पास नायिका रम्भा अभिसार करके आनेवाली थी। उसके देर करने से कामतप्त नायक से विदूषक ने कहा कि उसे किसी राक्षस या पिशाच ने पकड़ रखा होगा। तब तक बचाओ, कहती हुई नायिका ने आकर नायक की शरण ली और बताया कि रावण ने अभिसार करती हुई मुझको रोक लिया था। उसने रावण को शाप दे डाला। रावण शापभीत होकर भाग गया। नायक को नायिका मिली। प्रभावती को भी इसे देखने से भावी कार्यक्रम का बोध हुआ कि अभिसार करके प्रद्युम्न को प्राप्त करूँ।

प्रभावती मदन-सन्तप्ता हो गई। उसका शिशिरोपचार हो रहा था। प्रभावती की सखी ने देख लिया था कि अभिनेता रूप में भी प्रभावती से प्रभावित प्रद्युम्न प्रेमभावानुबद्ध होकर पुलकायमान था। इधर नायक भी प्रेमोत्कण्ठित होकर सन्तप्त था। भद्रनट के सन्देशानुसार कमलिनीतीरलता-मण्डप में नायिका से नायक मिलने-वाला था। दोनों मिले। वहीं उपस्थित भद्रभट ने इनका गान्धर्व विवाह करा दिया। कंचुकी के आने पर उनकी मिलन-सभा विसर्जित हुई। तदनन्तर प्रभावती ने अपनी चचेरी बहन चन्द्रावती और गुणवती का विवाह गद और साम्ब से करा दिया।

वर्षा के बीतने पर वज्रणाभ अमरावती पर आक्रमण करने के लिए समुद्यत हो रहा था। यही समय था, जब कृष्ण के निर्देशानुसार प्रद्युम्न को वज्रणाभ का वध करना था। कृष्ण इस अवसर पर व्रजपुर में रहकर युद्ध देखना चाहते थे।

---

१. यह नाटक सायंकाल सूर्य डूबने के समय से आरम्भ हुआ और पूरी प्रदोष वेला तक चला।

२. नाटक के भीतर इस प्रकार के रूपक को गर्भाङ्क कहते हैं। यहाँ इसे प्रेक्षणक कहा गया है। इसकी विशेषता है नाटक में कतिपय पात्रों का दर्शक और अभिनेता दोनों बनना और उस रूपक को देखना जिसमें उस नाटक के कतिपय पात्र हों या कुछ नये पात्र उसी गर्भाङ्क के निमित्त हों। उत्तररामचरित का गर्भाङ्क सुप्रसिद्ध है। इसमें एक रङ्गमञ्च पर दो स्थानों पर अभिनय होता है—एक मूल कथनानुसार और दूसरा उससे प्रासङ्गिक रूप से सम्बद्ध।

वज्रनाभ को मारने के उद्देश्य से पहले से छिपे हुए प्रद्युम्न प्रकट हो गये। यह समाचार कृष्ण को भेज दिया गया। कृष्ण और नारद विमान से वहाँ आ पहुँचे। इधर प्रद्युम्न को दण्ड देने के लिए वज्रनाभ ने अपनी सेना को आदेश दिया। केवल तलवार हाथ में लेकर प्रद्युम्न सेना में कूद पड़ा और सारी सेना को मार-काट कर तितर-बितर कर दिया। फिर तो स्वयं वज्रनाभ रथ पर बैठकर युद्धभूमि में उतरा। कुमार प्रद्युम्न को पैदल देखकर (कृष्ण ने) शेषनाग को सारथि बनाकर मनोरथगामी रथ प्रद्युम्न के लिए प्रस्तुत कर दिया। प्रद्युम्न के बाण वज्रनाभ पर विफल होते जा रहे थे। वज्रनाभ का भाई सुनाभ भी लड़ने के लिए आ गया। तब तो कृष्ण भी प्रद्युम्न के साथ जाना चाहते थे। साम्बवज्रनाभ की सेना से भिड़ रहे थे। वज्रनाभ ने क्रमशः तामसास्त्र, वारुणास्त्र, पन्नगास्त्र आदि चला ये, जिनका प्रतिकार प्रद्युम्न ने क्रमशः पावकास्त्र, वायव्यास्त्र, गरुडास्त्र से कर दिया। ब्रह्मा की दी हुई गदा भी वज्रनाभ ने चला दी। उससे प्रद्युम्न मूर्च्छित हो गये। प्रद्युम्न ने सुदर्शन चक्र का स्मरण किया। चक्र से वज्रनाभ धराशायी हो गया। सुनाभ भी मारा गया। नारद ने देखा कि देवों के द्वारा पुष्प-वृष्टि हो रही है—विजयी वीरों का अभिनन्दन करने के लिए। कृष्ण और नारद भी विमान से उतर कर उनका अभिनन्दन करने लगे। प्रद्युम्न का कृष्ण ने अभिषेक करके वज्रनाभपुर का राजा बना दिया।

समीक्षा

प्रद्युम्नाभ्युदय का कथानक हरिवंश से लिया गया है। हरिवंश की कथा को नाट्योचित बनाने के लिए उसमें यथोचित परिवर्तन रविवर्मा ने किया है। हरिवंश के हंस पक्षी हैं किन्तु नाटक में हंस चारण का नाम है। चित्र का प्रकरण नाटक में सर्वथा नवीन है।[1] रम्भाभिसार नामक नाटक हरिवंश में है। इसे प्रेक्षणक रूप में रविवर्मा ने अपने नाटक में प्रस्तुत किया है।

प्रद्युम्नाभ्युदय में शृङ्गारात्मक वातावरण बहुत कुछ अभिज्ञानशाकुन्तल के आदर्श पर निर्मित है। दोनों के तृतीय अङ्कों में अनेक स्थलों पर समानता है।

रस

प्रद्युम्नाभ्युदय में शृङ्गाररस का प्राधान्य है और उसके साथ वीररस का सामञ्जस्य मिलता है। शृङ्गाररस की निर्झरिणी का अधिकाधिक आयाम देने के लिए इसमें नायक और नायिका की विविध दशाओं की निर्मिति की गई है। पूर्व-राग की दशाओं का वैविध्य है। नायक और नायिका बहुत दिनों तक केवल एक दूसरे के विषय में श्रवण और दर्शन मात्र से परस्पर लालायित करते हैं। कवि ने

---

१. प्रणयव्यापार में चित्र का सहारा लेना नाट्यकारों के लिए सुरुचिपूर्ण साधन हो चला था।

एक अवसर निकाला है चतुर्थ अङ्क में प्रमदवन में मिलने का, पर मिलने के पहले लतान्तरित होकर नायक नायिका का अपने विषय में विस्रम्भजल्पित सुनता है। नायिका कहती है—

संकल्पतूलिकया रागं संगमय्य दूरपरिश्लक्ष्णम्।
कुसुमायुधेन लिखितं सदा तं पश्यामि चित्तफलके ॥ ४.१६
अद्य मदनसरणिसंगीतभूत्हृदयात्मानमपि न पारयामि धारयितुम्।

उसी समय चन्द्रोदय हुआ तो शृङ्गार को उद्दीपन मिला—

हरति तिमिरमारादक्षिसंरोधकं ते
प्रकटयितुमिवायं दानवाधीशपुत्रीम्।
परिमलमिव दातुं गन्धवाहोपनेयं
दलयति च कराग्रैर्दीर्घिका कैरवाणि ॥ ४.१८

आलम्बन और उद्दीपन दोनों का सामञ्जस्य नीचे के पद्य में है—

अमी शीताः स्वभावेन जगदाह्लादनाः सुखाः।
दहन्ति मम गात्राणि किन्नु चन्द्रगभस्तयः ॥

नायिका को चन्द्र की किरणें जला रही हैं।

अन्त में नायिका से नायक संकेत-स्थल में मिलता है, जब नायिका का शरीर विरहताप से अङ्गारे से कुछ कम उष्ण नहीं है, क्योंकि—

लाजस्फोटं स्फुटति कुचयोर्हन्त मुक्ताकलापः
क्लृप्ता शय्या नवकिसलयैर्भस्मभूतं प्रयाति।
शोषं गच्छत्यलघु हृदये न्यस्तमौशीरमम्भ-
स्तस्यास्तापं शमयितुमलं त्वद्भुजाश्लेष एव ॥ ४.२३

फिर नायक मिलता है तो कहता है—

अयथार्थमेव मन्ये प्रणयिनि मदनस्य पञ्चबाणत्वम्।
निपतन्ति मम शरीरे शतं शतं सायकास्तस्य ॥ ४.२४

अन्त में उनके गान्धर्व विवाह के पश्चात् चर्चा है।

स्पर्शोऽयमायताक्ष्याः सर्वाङ्गीण इव चन्दनालेपः।

रस की अभिव्यक्ति में पदध्वनि भी सदा साहचर्य करती है। यथा, वज्रनाभ का वक्तव्य है—

मत्तैरावणगण्डमण्डलमदासारोद्यावग्रहै-
राशापालपुराङ्गनानयनयोरास्राम्बुनाडिन्धमैः।
अद्यैव क्रियते चिरात् प्रतिभटाभावेन तृष्णोल्बणै-
र्मद्बाणैस्तव वीरपाणमुरसि प्रस्यन्दिरक्तासवे ॥ ५.२१

वीररस की निष्पत्ति के लिए नारद के द्वारा कृष्ण के समक्ष प्रद्युम्न और वज्रनाभ के युद्ध का आँखों-देखा वृत्त वर्णन कराया गया है।

संवाद

संवादों के द्वारा श्रोता की उत्सुकता उत्पादित करने के लिए कहीं-कहीं पहेलियाँ भी प्रस्तुत कर दी गई हैं। जब प्रभावती ने पूछा कि यह चित्रित व्यक्ति देव, दानव या मानव है तो मकरन्द ने उत्तर दिया—

देवेषु देवः कृष्णोऽपि दानवेषु च दानवः ।
मानुषेषु च वर्तात्मा मानुषः स महाकृतिः ॥ २.८

कतिपय स्थलों पर संवाद अनुप्रासभंगी के वाक्यों से समन्वित हैं। यथा,

कथमेष अनङ्गदर्पः ।

संवादों में कालिदास की छाया कहीं दृष्टिगोचर होती है। यथा,

रमणीयगुणैः क्रीतं तव दासमनिन्दिते ।
पद्मकान्तिमुषा दृष्ट्या पश्य दासमिमं जनम्[1] ॥ ४.२५

प्रद्युम्नाभ्युदय में किसी पात्र का भाषण एक साथ ही बहुत लम्बा नहीं है और न वह एक साथ ही लम्बे-चौड़े वर्णन करता है। सरल पदावली के छोटे-छोटे वाक्य संवादोचित हैं।

एकोक्ति

इस नाटक में अङ्क के बीच एकोक्ति के द्वारा विष्कम्भकोचित सामग्री दी गई है। द्वितीय अङ्क में मकरन्द की एकोक्ति में नीचे लिखी बातें मिलती हैं—

१. प्रभावती की माता का अपनी कन्या के संगीत सीखने में प्रीति-सम्बन्धी जिज्ञासा।

२. प्रभावती का नृत्योत्कर्ष।

३. शैलूष वेष में प्रद्युम्न, गद और साम्ब को कृष्ण के आदेशानुसार वज्रनाभपुर में पहुँचा देना।

४. अभिनय से वज्रनाभ के प्रसन्न हो जाने की चर्चा।

५. मकरन्द का प्रभावती का विश्वासपात्र हो जाना।

६. प्रद्युम्न के प्रति प्रभावती को आकृष्ट करने की योजना।

७. प्रद्युम्न का चित्र प्रभावती को देखने को मिले—यह योजना।

८. वज्रपुरी का वैभव-वर्णन।

---

1. कालिदास का पद्य है कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग के अन्त में—
अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ॥

इनमें से कोई भी तत्त्व अङ्कोचित नहीं है क्योंकि इनमें प्रत्यक्ष चरित का सर्वथा अभाव है। ऐसा लगता है कि रविवर्मा भी अन्य नाट्यकारों की भाँति ही अर्थोपक्षेपकोचित सामग्री को अङ्क से बाहर रखने की रीति-नीति से परिचित नहीं थे।

अभिनय-विधान

प्रद्युम्नाभ्युदय में रङ्गमञ्चीय निर्देश के अनुसार जहाँ पात्र को लतान्तरित होकर कुछ सुनना होता है, वहाँ रङ्गमञ्च पर तिरस्करिणी लगा दी जाती थी। चतुर्थ अङ्क के अनुसार लतान्तरित होकर नायिका की सखी से बातें सुनने के पश्चात् नायक उसके समीप आता है—

तिरस्करिणीमपनीय सहसोपसृत्य।

वर्णन

रविवर्मा को वर्णन-नैपुण्य में अतिशय दक्षता थी। वे वर्णनों को नायक के अन्य तत्त्वों के साथ समवायित कर सकते थे। नीचे के पद्य में प्रमदवन-वाटिका और नायिका का चरित्र-चित्रण समवायित हैं—

कलकण्ठकलालापा कुसुमस्मितशोभिनी श्यामा।
प्रमदवनवाटिकेयं भद्रे त्वामनुकरोति॥ २.६

इसमें उपमान ही उपमेय बन गया है।[1]

विरचितकुसुमोल्लासो ज्योत्स्नालक्ष्म्या प्रस्फुरन्त्या।
प्रद्युम्न इव चन्द्रो यस्मिन् ममैव करोति सन्तापम्॥ ४.२०

इसमें चन्द्रोदय के साथ प्रद्युम्न का प्रभाव समञ्जसित है।

शृङ्गाररसोचित विभाव प्रदोषलक्ष्मी का वर्णन है—

ज्योत्स्नाम्भःस्नपितमिदं विभाति विश्वं
स्यन्दन्ते शशिमणिभित्तयः समन्तात्।
स्वादिष्ठान् सुखमुपभुज्य चन्द्रपादान्
सौधाग्रस्थलमधिशेरते चकोराः॥ ३.२३

उत्कण्ठित नायक ने प्रकृति के विपर्यासन का वर्णन किया है—

हुताशनति मे पतन् वपुषि हन्त चन्द्रातपः
शनैः क्रकचति स्पृशन् कमलिनीतरङ्गानिलः।
विहारशुकमण्डलः श्रवणशूलति व्याहरं-
स्तथा विषसमर्पणेत्यहह चन्दनालेपनम्[2]॥ ४.११

---

१. कवि ने अपनी शैली की इस विशेषता का स्वयं परिचय दिया है—
उपमानजातमखिलं यस्मिन्नुपमेयभावमुपयाति॥ २.१३

२. इस पद्य में नामधातुओं की सरिणी है, जिससे उपमेय और उपमान की अभिव्यक्ति होती है।

प्रद्युम्नाभ्युदय में प्रकृति केवल पात्रों की कल्पना मात्र से प्रभविष्णु नहीं है, अपितु अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अङ्क की प्रकृति की भाँति प्रत्यक्ष कार्यनिर्वाह करती है यथा,

> इदमिह लतागेहं वैवाहिकं तव मण्डपं
> मधुकरकुलारावो मङ्गल्यदुन्दुभिनिस्वनः।
> तरुभिरसितः कीर्णो लाजाञ्जलिः कुसुमोत्करः
> स्मरहुतवहः साक्षी पाणौ करोतु भवानिमाम् ॥ ४.२६

वर्णन करते हुए उसके साथ ही इतिवृत्तांश को संयोजित करना तत्सम्बन्धी कला का परिचायक है। यथा,

> दैत्याधिपस्य सुरलोकजयोद्यतस्य
> खेदं तदा जनयति स्म पयोदकालः।
> तन्नन्दिनीं रमयतः पुनरेष एव
> सौख्यावहः समजनिष्ट यदूद्वहस्य ॥ ५.१

इसमें वर्षर्तु के वर्णन में प्रभावती का प्रणय-प्रयाण सन्निविष्ट है।

नवीनता

प्रद्युम्नाभ्युदय में रङ्गमञ्च पर नायिक और नायिका का आलिङ्गन दिखाया गया है।[1] भारतीय नाट्यशास्त्र आलिङ्गन को अभिनय द्वारा दर्शनीय नहीं मानता है। आलिंगन के प्रति परवर्ती युग में निषेध शिथिल-सा होता गया। अनेक रूपकों में शास्त्रीय नियम का अपवाद मिलता है।

मूल्याङ्कन

प्रद्युम्नाभ्युदय परवर्ती रूपक साहित्य में गिनी-चुनी उत्तम कृतियों में से है। इसकी उत्कृष्टता का वर्णन करते हुए सम्पादक गणपति शास्त्री ने इसकी भूमिका में लिखा है—

By its variety of expression and elegance of style, its pure diction and choice of vocabulary this drama should in no way be classed as inferior to Nagananda of Shrī Harsha and other similar works.

---

१. नलकूवरः — (रम्भामाश्लिष्य)
'अयि भीरु विमुंच साध्वसम्' आदि ३.२१

अध्याय ३९

पारिजातहरण

पारिजातहरण के लेखक उमापति उपाध्याय चौदहवीं शती में प्रथम चरण के लगभग हुए।[1] उमापति नाम के १४ कवि हो चुके हैं, जिनमें से दो की उपाधि भी उपाध्याय थी। ये दोनों मिथिला के दरभङ्गा जनपद में हुए। पारिजातहरण के कर्ता उमापति की जन्मभूमि कोइलख थी। इनके पिता रत्नपति उपाध्याय ने पदार्थदिव्य-चक्षु नामक न्यायग्रन्थ का प्रणयन किया था। उमापति की उपाधियां थीं— महामहोपाध्याय और कविपण्डितमुख्य, जिनसे उनकी गरिमा प्रस्फुटित होती है।

उमापति की प्रतिभा का विलास हरिहरदेव नामक राजा के समाश्रय में हुआ, जो यवनवनच्छेदनकरालकरवालधारी था। उमापति उस श्रेष्ठ राजा को विष्णु का दशम अवतार मानते थे। उस आश्रयदाता की महिमा का वर्णन कवि ने पारिजातहरण के नीचे लिखे पद्य में किया है—

> यस्यास्यं पूर्णचन्द्रः स्ववचनममृतं दिग्जयश्रीश्च लक्ष्मी-
> दोंस्तम्भः पारिजातो भ्रूकुटिकुटिलता संगरे कालकूटः।
> तीव्रं तेजोऽगिरोर्वः (?) पद्मभजनपरा राजराज्यस्तटिन्यः
> पारावारो गुणानामयमतुलगुणः पातु वो मैथिलेशः॥ ४३

इस राजा के विषय में इतिहास अभी तक मौन है। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार कर्णाटकुल के अन्तिम राजा हरिसिंहदेव १३०५–१३२४ का ही नाम उमापति ने हरिहरदेव लिखा है।

उमापति स्वभाव से परिहासप्रेमी लगते हैं। परिहासपथ में यदि नारद को वानर बनना पड़े तो उन्हें कोई चिन्ता नहीं। उनका परिहास श्लिष्ट पदों से अभिव्यक्त होता है।

उमापति ने अपने को सुगुरु कहा है। वे अपने काव्य के द्वारा उपदेश भी देना चाहते थे। उमापति वस्तुतः लोककवि हैं। भरतवाक्य में तभी तो उन्होंने कहा है—

> आशूद्रान्तं कवीनां भ्रमतु भगवती भारती भंगिभेदैः॥ ४३

---

१. पारिजातहरण का प्रकाशन—साहित्य प्रकाशन, दिल्ली से १९६० ई० में हुआ है।

कथानक

रैवतक पर्वत पर रुक्मिणी और कृष्ण वासन्तिक समाजोत्सव में मनोविनोद के लिए आये हुए हैं। उनके साथ एक सखी है। नारद आकाश से उतरते हैं और कृष्ण की दूसरी पत्नी सत्यभामा की सखी सुमुखी से मिलते हैं। द्वारपाल धर्मदास के माध्यम से वे कृष्ण के पास पहुँचते हैं और उनके पूछने पर बताते हैं कि इन्द्र ने मुझे पारिजात पुष्प दिया है, जिसे मैं आपके लिए लाया हूँ। उससे मैं आपकी पूजा करूँगा। नारद से पुष्प पाकर कृष्ण आश्चर्य करते हैं। तभी वहाँ कुछ दूरी पर कृष्ण की दूसरी प्रियतमा सत्यभामा अपनी सखी सुमुखी के साथ आ पहुँची। वह माधुरी वृक्ष के नीचे बैठकर दूर से ही देखने लगी की मेरी अनुपस्थिति में कृष्ण क्या कर रहे हैं।

रंगमञ्च के दूसरी ओर रुक्मिणी, कृष्ण, नारदादि के कार्यकलाप को सत्यभामा देख-सुन रही है। नारद ने पारिजात के विषय में बताया कि सारे अभिलषित पदार्थों का दाता यह पुष्प है। सत्यभामा ने कहा कि यह रुक्मिणी के योग्य है। तभी कृष्ण ने उसे उन्हें दे दिया। सुमुखी को यह देखा न गया। उसने सत्यभामा से कहा कि यह तो आपकी उपेक्षा हुई। पारिजात पाकर रुक्मिणी रङ्गमञ्च पर गाती हैं और नृत्याभिनय करती हैं—

आज जनम फल भेला सभ पति तेजि हरि मोहि फुल देला।
पुजल पुरुब हम गोरी आसा तनि परिपूरलि मोरी॥
उपर रहल मोर माथे सोलह सहस वर नारिक साथे।
सुमति उमापति भाने महेसरि देइ गति हिन्दूपति जाने॥ १६

इसके पश्चात् सत्यभामा कृष्ण के पास जा पहुँची। नारद ने प्रणाम करने पर उन्हें आशीर्वाद दिया—स्वामिबहुमान्यतां गमिष्यसि। वह शिरोवेदना के मिस चलती बनी। रुक्मिणी नारद को भोजन आदि कराने के लिए चलती बनीं।

सत्यभामा की स्थिति देख कर कृष्ण ने अपना हृदयोद्गार नीचे लिखे श्लोक के रूप में प्रकट किया—

मालिन्येन मलीमसीकृतमुरः कम्पेन चोत्कम्पितम्।
मौनेन द्रवितं विलोचनजलैः श्वासैः पुनः शोषितम्॥
निःक्षिप्तं च सगद्गदेन वचसा कारुण्यवारां निधौ।
विश्लेषेण पुनर्मदीयहृदयं न्यस्तं हताशे तथा॥ १७

कृष्ण सत्यभामा से मिलने के लिए उसके आवास पर जा पहुँचे। द्वार पर सुमुखी ने पूछने पर सत्यभामा की वार्ता बताई—

माधव अबहु करिअ समधाने।
सुपुरुख निठुर न रहय निदाने॥ इत्यादि १८

कृष्ण ने खिड़की से सत्यभामा की दशा देखी। उन्होंने गाया—

सहस पूर्ण ससि रहओ गगन वसि
निसि वासर देओ नन्दा
भरि वरिसओ विस वह ओ दह ओ दिस
मलयय समीरन मन्दा। इत्यादि २१

इसके पश्चात् वह मूर्च्छित हो गई। कृष्ण ने पास जाकर चरणतल का स्पर्श किया। सत्यभामा सचेत हो गई। हाथ जोड़कर कृष्ण ने उसके समक्ष गाया—

अरुन पुरुव दिसि बहलि सगरि निसि
गगन मगन भेल चन्दा।
सुनि गेलि कुमुदिनि तइओ तोहर धनि
सूनल मुख अरविन्दा[1] ॥ २२

कितना मार्मिक है इस अवसर पर कृष्ण का कहना—

कमलवदन कुवलय दुहु लोचन अधर मधुरि निरमाने।
सगर सरीर कुसुम तुअ सिरिजल किए तुअ हृदय पखाने ॥ २४

अन्त में कृष्ण सत्यभामा से प्रार्थना करते हैं—

पीन पयोधर गिरिवर साधौ, वाहुपास धनि धरु मोहि बाँधौ।
की परिवित्ति भय परसनि होही, भूखन चरनकमल देइ मोही ॥ २६

सत्यभामा द्रवित हुई। उसने कृष्ण से कहा—मुझे पारिजात वृक्ष लाकर दीजिये, नहीं तो मैं मर जाऊँगी। कृष्ण ने नारद से इन्द्र को सन्देश भेजा कि आप पारिजात वृक्ष भेज दें, नहीं तो युद्ध में आपको क्षत-विक्षत होना पड़ेगा। इधर कृष्ण ने अर्जुन के साथ इन्द्रपुरी पर आक्रमण करने की योजना प्रवर्तित की। नारद ने इन्द्रलोक से लौट आकर इन्द्र का उत्तर सुनाया—

पारिजातदलं यावत् सूचिकाग्रेण विध्यते।
तावत् कृष्ण विना युद्धं मया तुभ्यं न दीयते ॥ ३५

नारद के साथ कृष्णार्जुन पारिजातहरण के लिए गये। युद्ध-विजय का समाचार नारद ने आकर सत्यभामा को सुनाया कि युद्ध में कृष्ण और इन्द्र की तथा गरुण और ऐरावत की भिड़न्त हुई। शत्रु भाग खड़े हुए। कृष्ण पारिजात को गरुड़ पर लेकर आ गये। सत्यभामा ने सबका स्वागत करते हुए गाया—

जय जय पारिजात तरुराज।
पाओल पुरुव पुन दरसन आज। इत्यादि ३६

---

१. यह पद विद्यापति के नाम पर भी रखा गया है। विद्यापति ने इसे उमापति से लिया होगा। उमापति ने इस श्लोक की संस्कृतच्छाया भी दी है।

नारद ने सत्यभामा से कहा कि पारिजात के नीचे जो कुछ दान में दिया जाता है, वह अक्षय होता है। इसे सुनकर उसने कृष्ण को और सुभद्रा ने अर्जुन को नारद के लिए दान दे दिया। नारद ने दान पाकर कहा—

हलं बिभर्तु श्रीकृष्णः कुद्दालं च धनञ्जयः।
द्वयोर्वा स्कन्दमारुह्य भ्रमिष्यामि यथासुखम् ॥ ४१

फिर नारद ने कहा कि कृष्ण विश्वम्भर है, और अर्जुन वृकोदर का भाई है। इन दोनों का पेट कैसे भरूँगा। इनको बेच दूँ। जिनसे दान पाया था, उन्हीं से मूल्य रूप में गौ लेकर नारद ने इन पेटुओं से पिण्ड छुड़ाया।

पारिजातहरण नाटक का कथानक हरिवंश की तत्सम्बन्धी कथा पर आधारित है। विष्णुपुराण और भागवत की पारिजातहरणकथा की छाया भी इसमें दिखाई देती है।

चरित्रचित्रण

उमापति का चरित्रचित्रण परिहासात्मक कहा जा सकता है, जहाँ सुमुखी नामक चेटी देवर्षि नारद को विदूषक की भाँति वानर श्लेषद्वार से कहती है। इसी परिहास की धारा में नारद कृष्ण और अर्जुन को दान में पाकर कहते हैं—

हलं विभर्तु श्रीकृष्णः कुद्दालं च धनञ्जयः।
द्वयोर्वा स्कन्धमारुह्य भ्रमिष्यामि यथासुखम् ॥

गीत

पारिजातहरण गीत-विशिष्ट रूपक है। गीतों में मालवा, ललित, केदारवसन्त, वैजन्ती आदि राग मिलते हैं। इसमें प्रायशः रुचिपूर्ण गीत मैथिली में हैं, जिसमें अनेक स्थलों पर व्रजभाषा की छाया मिलती है। संस्कृत का गीत है—

मालिन्येन मलीमसीकृतसुरः कम्पेन चोत्कम्पितम्
मौनेन प्रथितं त्रिलोचनजलैः श्वासैः पुनः शोपितम् ॥
निक्षिप्तं च सगद्गदेन वचसा कारुण्यवारांनिधौ
विश्लेषेण पुनर्मदीयहृदयं न्यस्तं हुताशे तथा ॥ १७

उमापति के मैथिली-गीत जयदेव के गीतगोविन्द का अनुहरण करते हैं। ऐसा लगता है कि जो रागलहरी जयदेव ने गीतगोविन्द में देववाणी में निकाली, वह अन्य कवियों के लिए प्रायशः प्राकृतजनोचित करने के उद्देश्य से लोकवाणी में निष्पन्न किया गया। नीचे का मैथिली गीत भाषा और भाव दोनों में गीतगोविन्द पर आदर्शित है—

हरि सउं प्रेम आस कय लाओल
पाओल परिभव ठाने
जलधर छाहरि तर हम सुतलहुँ
आतप भेल परिनामे
सखि हे मन जनु करिअ मलाने
अपन करमफल हम उपभोगव
तोहें किअ तेजह पराने ॥ इत्यादि

अनुनय का हृदयस्पर्शी गीत है—

कमलवदन कुवलय दुहु लोचन, अधर मधुरि निरमाने।
सगर सरीर कुसुम तव सिरिजल किए तुअ हृदय पखाने ॥ २४

कई गीत नेपथ्य से गाये जाते हैं और शेष रङ्गमञ्च पर पात्रों के द्वारा उदीरित हैं। सत्यभामा की सखी कृष्ण-विषयक गीत रङ्गमञ्च पर गाती है—

सखि हे रभसरस चलु फुलवारी।
तहाँ मिलत मोंहि मदन मुरारि। इत्यादि १४

गीतों से प्रायशः अर्थोपक्षेपक का काम लिया गया है और उनसे भूत और भावी घटनाओं की सूचना भी मिलती है। गीतों के अन्त में भणिता (कवि और आश्रयदातादि के नाम) मिलते हैं।

शैली

उमापति का पद्यधारा कहीं-कहीं परवर्ती भूषण की शिवाबावनी की स्मृति कराती है। यथा,

करजोरि रुकुमिनि कृष्ण संग वसन्तरङ्ग निहारहीं।
रितु रभस सिसिर समापि रससमय रमथि संग विहारहीं ॥
अतिमंजु वंजुल पुंज भिजल चारु चूअ विराजहीं ॥

भावों का प्रकर्ष कहीं-कहीं शिशुपालवध का अनुहरण करता है। यथा,

अवतरु अवनी तेजि अकास न थिक दिवाकर न थिक हुतास।
धोती धवल तिलक उपवीत ब्रह्मतेज अति अधिक उदीत ॥

इसमें नारद का आकाशमार्ग से उतरना वैसे ही कल्पित है, जैसे शिशुपालवध में।

उमापति की शैली सरल, सुबोध और प्रसादपूर्ण है। यथा,

न शम्भुना वा न विरञ्चिना वा न योगिभिर्यन्मनसापि दृष्टम्।
तदद्य गोविन्दपदारविन्दं विलोकयिष्यामि दृशा कृतार्थः ॥ ६

कहीं-कहीं श्लेष के द्वारा संवाद को अनेकोपपथानुसारी वचनक्रम से मण्डित किया गया है।

नाट्यशिल्प

पारिजातहरण में नेपथ्य से प्रायशः मैथिली में और क्वचित् संस्कृत में गीत गाये जाते हैं, जिनमें अर्थोपक्षेपकतत्त्व हैं और कथा की भूत और भावी प्रवृत्ति का परिचय है। मैथिली गीतों की संख्या २० है। नेपथ्य से प्रकृति-वर्णन-विषयक गीत भी गाये जाते हैं, जो रस की निष्पत्ति के लिए वस्तुतः विभाव का संयोजन करते हैं। कई गीतों की संस्कृतच्छाया कवि ने स्वयं दी है।

रङ्गमञ्च पर पात्रों का आना-जाना अपवाद रूप से ही निर्दिष्ट है। एक वर्ग के पात्र रङ्गमञ्च पर हैं। तभी दूसरे वर्ग के पात्र आकर संवादादि करते हैं। पहले वर्ग का पात्र इस बीच क्या करता है—यह नहीं बताया गया। ऐसा लगता है कि रङ्गमञ्च कई खण्डों में था, जहाँ एक खण्ड से दूसरे खण्ड में पात्र आ-जा सकते थे, पर एक खण्ड का पात्र दूसरे खण्ड के पात्र को देख नहीं सकता था।

पारिजातहरण किरतनिया कोटि की लोकनाट्य परम्परा के अन्तर्गत आता है।[1] इस कोटि का विकास बङ्गाल की यात्रा और गम्भीरा, महाराष्ट्र की ललिता, मथुरा का राज और रामलीला और गुजरात की भवाई नामक लोकाभिनय में मिलता है। यह नागरक रूपकाभिनय से भिन्न रहा है। इसमें नृत्य और गीत की प्रधानता रही है। यह परम्परा मध्ययुग में विशेष रूप से ग्रामीण जनता के अनुरञ्जन और भक्तिप्रवणता के लिए उपयोगी रही है।

पारिजातहरण संस्कृत का विशेष प्रिय आख्यान रहा है। अनेक महाकाव्यों और काव्यों में इस आख्यान को कलात्मक रूप दिया गया है। शिवदत्त ने अठारहवीं शती में एक अन्य किरतनिया नाटक पारिजातहरण की रचना की।

---

१. कुछ अन्य किरतनिया नाटक हैं—विद्यापति का गोरक्षविजय, गोविन्द का नलचरित नाटक (१६३९ ई०), रामदास झा की आनन्दविजय नाटिका (सतरहवीं शती), देवानन्द का उपाहरण सतरहवीं शती का उत्तरार्ध, रमापति उपाध्याय का रुक्मिणीहरण, लाल कवि का गौरीस्वयंवर अठारहवीं शती, नन्दीपति की श्रीकृष्ण-केलिमाला, गोकुलानन्द का मानचरित नाटक, शिवदत्त का गौरीस्वयंवर, श्रीकान्त गणक का झद्दुना तथा श्रीकृष्णजन्मरहस्य (उन्नीसवीं शती)। कान्हारामदास का गौरीस्वयंवर (१८४२ ई०) भानुनाथ झा का प्रभावतीहरण (१८६० ई०) हर्षनाथ झा का राधाकृष्णमिलन (१८४७ ई०) इत्यादि।

अध्याय ४०

भीमविक्रम-व्यायोग

भीमविक्रम-व्यायोग के रचयिता मोक्षादित्य ने इस ग्रन्थ का प्रणयन संवत् १३८५, ई० सन् १३२८ में किया।[1] इनके पिता भीम और गुरु हरिहर थे। कवि सम्भवतः गुजराती थे और इनके गुरु शंखपराभव के लेखक हरिहर हो सकते हैं।

कथानक

भीमसेन, कृष्ण और अर्जुन जरासन्ध का वध करने के लिए गिरिव्रज में जा पहुँचे। भीम जरासन्ध को मारेगा—यह सन्देश नारद ने प्रसारित कर दिया था।[2] जरासन्ध ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि कोई शत्रु जरासन्ध की नगरी में प्रवेश ही नहीं कर सकता था। वहाँ ब्राह्मणों का बहुमान था। भीमसेन आचार्य चन्द्रशेखर बने, उनके शिष्य कृष्ण चक्रधर स्नातक और अर्जुन धवल स्नातक। इस वेषपरिवर्त में वे अज्ञात होकर नगरी में जा पहुँचे।

सूर्योदय के पहले ही गौतम-आश्रम के सन्निकट सिद्धेश्वर की आराधना करने के लिए कृष्ण और अर्जुन चले गये। अकेले भीम ने वहाँ किसी राजकुमार की आर्तवाणी सुनी कि मैं शरीर का अन्त करूँगा—

> चिरमकारि मया मुनिवत्तपः श्रुतिजपश्च समाधिममुञ्चता।
> हुतमनन्तहविस्तव तुष्टये न हि महेश मनागपि तत्फलम्॥ २२

भीम ने निर्णय लिया कि इसका प्राण तो बचाऊँगा ही। कृष्ण और अर्जुन अन्य राजाओं को बचाने के लिए जरासन्ध के पीछे पड़ें। जब वह पुरुष कमर कसकर अग्नि में कूदने को ही था तभी उसकी माता और बहू आईं। उस पुरुष ने अपनी माता से कहा कि मैंने जरासन्ध के द्वारा पकड़े हुए अपने पिता और भाई को छुड़ाने के लिए बहुत तप किया। कल सवेरे तो सभी पकड़े हुए राजाओं का शिव के परितोष के लिए होम होगा। उस पुरुषवीर ने माता से कहा कि आप तो घर जायँ और तीसरे पुत्र की रक्षा करें। माता का उत्तर रोते हुए था।

---

१. इसका प्रकाशन गायकवाड ओरियण्टल सीरीज १५१ में हुआ है।

२. इसमें कृष्ण ने कहा है—

> अहं जरासन्धवधं विधित्सुर्निवारितो व्योमगिरेश्वरस्य।
> नायं त्वया कृष्ण निपूदनीयो भीमस्य भागोऽयमिति स्फुटोक्त्या॥ १७

किं तनयोऽपि करिष्यति विधवायाः सन्नदुःखभृतायाः।
तव तातस्य कुमरणमश्रुत्वा प्रथमं म्रियेऽहम् ॥ ३८

वधू ने कहा कि सबसे पहले तो मैं मरूँगी। किसके लिए जीना है? मैं पहले मरूँगा—इस बात को लेकर कलह हुआ।

भीम उनके निकट जा पहुँचे। उनको उन सबों ने पहले तो 'जरासन्ध पहुँचा' शीघ्र ही ठीक पहचान करके उनसे सबने प्रार्थना की कि हम सबको बचाइये।[1] उस पुरुषवीर ने उन्हें ठीक पहचाना कि यह ब्राह्मण है और उनसे बोले कि ब्राह्मण देवता, हमलोगों के साथ दुःखी न हों। चले जायँ। भीम ने कहा कि तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर प्रकट हुआ मैं विप्ररूपी भीम (शिव) हूँ। आज केवल तुम्हारे बाप का ही नहीं, सभी राजाओं का मोक्ष होगा। तुम लोग यहाँ से खिसको। वे चलते बने। तब तक कृष्णार्जुन आ गये।

जरासन्ध नगरी की रक्षा स्वयं जरा करती थी। उसका अपहरण करने के लिए कृष्णादेश से भीम ने घटोत्कच को ध्यान करके उपस्थित कराया और उसे आदेश दिया—

वत्स सम्प्रत्यस्माभिर्गिरिव्रजपुरं प्रविश्य छद्मना मागधो हन्तव्यः। तदिमां दुर्गरक्षणकरीं जरामुपायेन सपरिजनां पर्वतान्तरं प्रापय।

घटोत्कच ने कहा कि ऐसे छोटे-मोटे काम मेरे लिए छोड़ें—

त्वमिह मयि सति क्लेशमाप्नोपि कस्मात् ॥ ३९

जरा दूर हुई। फिर दुर्गभङ्ग के लिए चैत्यकगिरि-शिखर को गिराया गया। वहाँ से जरासन्ध की नगरी का दृश्य समक्ष था। अन्त में वे राजाङ्गण में पहुँचे। वहाँ यज्ञ हो रहा था—

एते व्याकृतवेदवाक्यनिपुणा मीमांसकानां वरा
ब्रह्मात्मैकविदः श्रुतोपनिषदश्चैतेऽस्त्रविद्याविदः।
एते कर्कशतर्कवादकुशलाश्चैते पुराणार्गला
यज्वानश्च पुरः प्रतर्पितसुरश्रेण्यो वरेण्यौजसः ॥ ४०

वे वहाँ पहुँचे जहाँ जरासन्ध ब्राह्मणों की पूजा कर रहा था। उसने गौतम नामक आचार्य से पूछा कि राजमेध में क्यों विलम्ब है? गौतम ने कहा कि अभी ऋत्विज पूरे नहीं हुए। तभी जरासन्ध ने देखा कि तीन नये ब्राह्मण राजशेखरादि वहाँ वर्त्तमान हैं। उसने उनको प्रणाम किया। सभी आसन पर बैठे। जरासन्ध ने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा—

---

१. नागानन्द में इसी प्रकार रक्षक को भक्षक समझा गया है।

अद्यान्वयो मे विमलोऽखिलोऽपि पूतस्तथाहं पृथुकल्मषोऽपि।
यदागमन्मे भवने मुनीन्द्रा हृता महेशस्य मखे क्षितीन्द्राः॥ ४६

राजशेखर ने अपना और अपने साथियों का ठीक परिचय दिया। तब तो जरासन्ध ने कृष्ण को डाँट लगाई—

शतशो विजितोऽसि संयुगे सह पुत्रैः सह सीरपाणिना।
प्रविहाय पुरीं पलायितः परिलीनोऽसि पयस्सु वारिधेः॥ ६०

उसने युद्ध की सज्जा की और अपने पुत्र सहदेव का पट्टाभिषेक करा दिया। कृष्ण ने कहा—

विमुञ्च नृपतीन् रुद्धान् सम्मानय युधिष्ठिरम्।
मागधाः कुरवश्चैव नन्दन्तु सुहृदो यथा॥ ६२

जरासन्ध के न मानने पर कृष्ण ने कहा कि हममें से किसी एक को युद्ध के लिए वरण करो। जरासन्ध ने कहा—

त्वं पुरैव विजितोऽसि वाक्पटुः फाल्गुनोऽपि किल फल्गु युद्धकृत्।
संयुगेषु भुजवीर्यशालिनं भीमसेनमहमुद्धतं वृणे॥ ६४

देवता इस युद्ध को देखने के लिए आ पहुँचे थे।

जरासन्ध और भीम पूर्णरूप से सन्नद्ध होकर स्वस्त्ययन आदि के बीच समरभूमि की ओर लड़ने के लिए चलते बने। रङ्गमञ्च पर ही किसी ऊँचे स्थान से अर्जुन और कृष्ण युद्ध देखने लगे। उन्हें युद्ध में आकर्षण, विकर्षण, विधूनन, निपातन, उत्क्षेपण, अधःपतन, विघर्षण आदि की प्रक्रियायें देखने को मिलीं, जिनका वर्णन उन्होंने किया। अर्जुन ने देखा—

पार्थपादपविनाहतो हृदि प्रोद्गिरद्रुधिरवक्त्रकन्दरः।
मागधो गिरिरसौ पतत्यधोत्तिष्ठति प्रहरति प्रवल्गति॥ ७७

भीम ने जरासन्ध को पछाड़ा और मार डाला। फिर वे रङ्गमञ्च पर आये। वहाँ विश्राम न करके वे राजाओं को मुक्त करने जा पहुँचे। भीम को सहदेव की भगिनी पत्नी रूप में प्राप्त हुई।

समीक्षा

कवि ने अर्जुन से प्रश्न पुछवाया है कि यह जरासन्ध कौन है, कैसे उत्पन्न हुआ है आदि। यह प्रश्न ठीक नहीं। एक तो अर्जुन जरासन्ध को उसकी नगरी के पास पहुँचने तक जानता नहीं हो—यह विश्वसनीय नहीं है और दूसरे रङ्गमञ्च पर इसका उत्तर जो सूच्य कोटि का है नाटकीय दृष्टि से समीचीन नहीं है। इसे कहना ही था तो नेपथ्य से कहना चाहिए था।

भीमविक्रम में पुरुष की एकोक्ति समीचीन है। अन्यत्र शिष्य बने हुए कृष्ण अपने गुरु भीम को आचार्य राजशेखर कहते हैं। गुरु को नाम लेकर बुलाना समुदाचार के विपरीत है।

इस व्यायोग में भावात्मक उत्थान-पतन का प्रदर्शन मिलता है। जब जरासन्ध अपने यज्ञ की पूर्णाहुति की कल्पना कर रहा था, तभी उसकी पूर्णाहुति हो गई।

इस व्यायोग के अभिनय को अन्यथा भी मनोरञ्जक बनाया गया है। युद्ध के पूर्व नेपथ्य में मङ्गलगीत-ध्वनि और नान्दीवाद्य का आयोजन प्रस्तुत है। नेपथ्य के पात्रों से बातचीत भी इस व्यायोग की एक ऐसी पद्धति है, जो अन्यत्र विरल-सी ही है।

अध्याय ४१

कुवलयावली

कुवलयावली नाटिका के रचयिता राजा शिंग (सिंह) भूपाल का प्रादुर्भाव चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में रसार्णवसुधाकर सुप्रसिद्ध है। कवि ने इसकी पुष्पिका में लिखा है—

पूर्णेयं शिङ्गभूपेन कवितामधुजल्पितैः।
रत्नपञ्चालिका नाम नाटिका रसपेटिका ॥

इसमें कुवलयावली का अपर नाम रत्नपञ्चालिका मिलता है। यह नाम उसी पद्धति पर है, जिस पर भास का प्रतिमानाटक और सुभट का छायानाटक नाम मिलते हैं। कवि ने इस नाटिका में 'रत्नपञ्चालिका' की वैसी ही चमत्कारपूर्ण अभिनव योजना की है, जैसी उपर्युक्त रूपकों में दशरथ की प्रतिमा और सीता की छाया की महत्त्वपूर्ण अभिनव योजना है। कुवलयावली की उत्कृष्टता का भाव लेखक ने सूत्रधार के शब्दों में स्वयं प्रकट किया है—

अखण्डपरमानन्दवस्तुचमत्कारिणी 'कुवलयावली' नाम नाटिका०।

इसका प्रथम अभिनय प्रसन्नगोमलदेव की वसन्तयात्रा-महोत्सव के अवसर पर हुआ था। कुवलयावली में कृष्ण का कुवलयावली से विवाह करने की कल्पित कथा है। भूमि ने स्वयं कुवलयावली नामक कन्या का रूप धारण किया और नारद ने उसे न्यास रूप में रुक्मिणी के पास रख दिया। नारद की दी हुई मुद्रा के प्रभाव से वह स्त्रियों को तो स्त्री प्रतीत होती थी किन्तु पुरुषों की दृष्टि में वह रत्न की बनी पुतली लगती थी। एक दिन वह अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ राजोद्यान में गई, जहाँ सन्ध्या के समय उसे कालयवन को परास्त करके लौटे हुए कृष्ण का दर्शन हुआ। पहले कृष्ण ने देखा की एक पुतली से चन्द्रलेखा बातें कर रही है। उन्हें आश्चर्य हुआ। तभी क्रीडा करते समय उसकी अंगूठी गिर गई और कृष्ण ने उसके नारी सौन्दर्य से अपने को पीडित पाया। उसी समय बुलाये जाने पर वे दोनों कन्यायें चली गईं। इधर कृष्ण को वह अंगूठी मिली, जिस पर उत्कीर्ण लेख पढ़कर कृष्ण को उसका रहस्य ज्ञात हुआ। कुवलयावती अंगूठी को ढूँढ़ते हुए वहाँ फिर आई। कृष्ण ने अंगूठी तो दी, पर उनका प्रेम बढ़ा। उन्होंने उसे अंगूठी स्वयं पहनाई।

सत्यभामा ने इस रहस्यपूर्ण कृष्ण के प्रेम को रुक्मिणी से बताया और उसे रुक्मिणी ने अपने प्रासाद में बन्द कर दिया। तभी कोई दानव उसे चुरा ले गया। कृष्ण ने उसे दानव से मुक्त किया। इसी बीच नारद आये और उन्होंने रुक्मिणी को कुवलयावली का रहस्य बताया। रुक्मिणी ने उसे कृष्ण को पत्नी बनाने के लिए उपहार रूप में समर्पित कर दिया।

कुवलयावली के संवादों शब्दालङ्कारों की चारुता निरन्तर है। यथा, चन्द्रलेखा कहती है—

परागो निर्गतो नयनात्। रागः खलु बलवान् संक्रान्त इदानीमपि रमते।

कुवलयावली में कतिपय स्थलों पर कर्पूरमंजरी की पद्धति पर गीत-सम्भार रमणीय है। यथा,

इतो भृंगीगीतं विहरणमितो मन्दमरुता-
सितो वल्लीलास्यं परिचितिरितः पुष्परजसाम्।
अतो भूतं तूर्यैरितरकरणैर्हन्त रसना
पुनस्तस्या बिम्बाधरमधु विना शुष्यति मम॥ ३.६

सलीले धम्मिल्ले दरदलितकल्हारकलिकां
कपोले सोत्कम्पं मृगमदमयों पत्रलतिकाम्।
कुचाभोगे कुर्वन् ललितनकरीं कुंकुममयीं
कदानुक्रीडेयं चकितहरिणी चंचलदृशा॥ ४.२

प्रच्छन्न रह कर किसी की बातें सुनने के नाटकीय उत्कर्ष की चर्चा इस नाटिका में मिलती है—

अन्तर्हितो निगदितानि मनोरमायाः
शृण्वन् मुहूर्तमपि भद्र निवेदनानि।
प्रायेण नन्दति यथा न तथा कृतात्मा
वर्णान् सहस्रमपि केवलमेलनेन॥ ३.१०

आकर्णितानि ननु कर्णरसायनानि
सख्याः पुरो निगदितान्यतिवत्सलायाः।
एतानि तानि वचनानि मनोरमाया
भावानुबन्धपिशुनान्यपकैतवानि ॥ ३.१२

कहीं-कहीं सूक्तियों के द्वारा परिहास की योजना की गई है। यथा,

'उष्णमुष्णेन शाम्यति' इति भर्तुः सन्तापेन तव सन्तापः शाम्यति।

अप्रस्तुतप्रशंसा के द्वारा सूक्तियों की प्रभविष्णुता संवर्धित की गई है। यथा,

कस्तूरिकाया नाशेऽपि नाभिचर्म न मुंचसि।

ऐसे वक्तव्यों की व्यञ्जना अनूठी होती है।

विदूषक का वानर होना प्राचीन नाटकों की सरणि पर भूपाल को भी अभिप्रेत है। नायिका विदूषक के विषय में कहती है—

मानुष्या भणति वानरो वाचा।

इस नाटिका पर रत्नावली और विक्रमोर्वशीय की पद-पद पर छाप पड़ी है।

अध्याय ४२

उन्मत्तराघव

उन्मत्तराघव के लेखक भास्कर कवि ने अपने रूपक की प्रस्तावना में लिखा है कि इसका प्रथम अभिनय विद्यारण्य के महोत्सव में हुआ था।[1] यदि ये विद्यारण्य सायण के भाई माधव हों तो उन्मत्तराघव का रचनाकाल चौदहवीं शती हो सकता है। उन्मत्तराघव एकाङ्की प्रेक्षणक है, जिसकी परिभाषा है—

रथ्या-समाज-चत्वर-सुरालयादौ प्रवर्त्यते वहुभिः।
पात्रविशेषैर्यत् तत् प्रेक्षणकं कामदहनादि॥ नाट्यदर्पण पृ० १९१

उन्मत्तराघव नामक कोई रूपक पहले भी था, जिसका उल्लेख हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में किया है।

उन्मत्तराघव में काल्पनिक कथा राम से सीता के अस्थायी वियोग के सम्बन्ध में है। राम और लक्ष्मण मृगया करने चले गये। इस बीच सीता अपनी सखी मधुकरिका के साथ पुष्पावचय करती हुई कहीं दूर चली गई और वहां लुप्त हो गई। मधुकरिका से ज्ञात हुआ कि सीता वन में अदृश्य हो गई। राम सीता के वियोग में वैसे ही विलाप करते हैं, जैसे विक्रमोर्वशीय में उर्वशी के लिए पुरूरवा। अन्त में दुर्वासा के शाप से हरिणी वनी हुई सीता अगस्त्य के प्रभाव से पुनः नारी वनकर राम को मिल जाती है। डानक्विक्जोट की प्रवृत्तियाँ राम में कवि ने वर्णित की हैं—

रामः—(विलोक्य ससंभ्रम्) वत्स, केचिदमी चौराः प्रियायाः
सर्वाभरणजातमादाय मस्तके दधानाः प्रसारितवाहवो मया योद्धुमग्रतो निःशङ्कमासते। पश्य, पश्य,
मुक्ताहारच्छटामेके पद्मरागावलिं परे।
प्रियायाः कनकाकल्पानपरे हन्त बिभ्रति॥ २८

भास्कर को अनुप्रासों से अतिशय प्रेम है—

माकन्दालिं मलयपवना मन्दमान्दोलयन्ते
मञ्जत्यस्या मधुकरयुवा मञ्जरीणां मरन्दे॥ ४

इसमें पद-पद पर 'म' की अनुवृत्ति हुई है।

---

१. इस पुस्तक का प्रकाशन काव्यमाला १७ में हुआ है।

अन्यत्र भी—प्रेमविशेषो हि प्रियजने प्रथमं प्रमादमेव चिन्तयति। इसमें 'प' की अनुवृत्ति है। इन दोनों में अनुप्रास की वनवासिका वृत्ति है।[1]

उन्मत्तराघव में सीता के वियोग में राम की उक्तियाँ उन्मत्तोक्तिच्छाया का उत्तम उदाहरण हैं।[2] इनमें गीतितत्त्व निर्भर है।

---

१. सरस्वतीकण्ठाभरण २.२५५

२. उन्मत्तोक्ति—च्छाया है असमञ्जसाया उन्मत्तोक्तेरनुकृति रुन्मत्तोक्तिच्छाया सरस्वतीकण्ठाभरण २.७९

अध्याय ४३

चन्द्रकला

चार अङ्कों की चन्द्रकला-नाटिका के रचयिता कलिङ्गवासी महापात्र विश्वनाथ अपनी प्रख्यात रचना साहित्यदर्पण के द्वारा सुविदित हैं। वे कलिङ्गराज के सान्धिविग्रहिक थे। इन्होंने इस नाटिका की प्रस्तावना में अपना परिचय दिया है। जिसके अनुसार उनके पिता महापण्डित चन्द्रशेखर चौदह भाषाओं के विद्वान् थे। विश्वनाथ परम वैष्णव थे, उन्होंने अपने पण्डित-प्रकाण्ड पिता से साहित्यशास्त्र का अध्ययन किया था, स्वयं नाट्यवेद के आचार्य थे, रसिकों का समाज उनके सौहार्द का रसपान करता था, वे गजपति थे, महाराज के सान्धिविग्रहिक थे और कविराज थे। विश्वनाथ की अन्य उपाधियां कविसूक्तिरत्नाकर, संगीतविद्या-विद्याधर, विविध-विद्यार्णव-कर्णधार कलाविद्या-मालती-मधुकर आदि हैं। उनका पण्डित्य आनुवंशिक था। उनके पूर्वजों में नारायणदास, उल्लासदास, चन्द्रशेखर आदि श्रेष्ठ पण्डित राजपूजित थे।[1]

विश्वनाथ ने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया, जिनके नाममात्र या उद्धरण उनकी प्राप्त रचना साहित्य-दर्पण में मिलते हैं। चन्द्रकला के अतिरिक्त उन्होंने प्रभावती-परिणय नामक एक अन्य नाटिका की रचना की थी। प्राकृत में उन्होंने कुवलयाश्व-चरित नामक काव्य लिखा था। उन्होंने प्रशस्तिरत्नावली में अपनी सोलह भाषाओं की वैदुषी का परिचय दिया है। संस्कृत में उन्होंने राघव-विलास महाकाव्य और कंसवध काव्य की रचना की। इनके पश्चात् साहित्य-दर्पण लिखा, क्योंकि दर्पण में इन ग्रन्थों की छाया प्रतिच्छुरित है। साहित्यदर्पण के पश्चात् उन्होंने काव्यप्रकाश-दर्पण नामक टीका लिखी, जो प्राप्य है। विश्वनाथ ने अपने नरसिंहविजय महाकाव्य में राजा नरसिंह की विजयों का वर्णन किया होगा। कवि ने इनके अतिरिक्त जिन कृतियों को निर्मित किया, उनके नाम अभी ज्ञात नहीं हैं।

चन्द्रकला नाटिका की रचना चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुई। कविवर विश्वनाथ की प्रतिभा का विलास चौदहवीं और पन्द्रहवीं शतियों के सन्धियुग में हुआ था।

---

१. चन्द्रशेखर विश्वनाथ कवि के पिता थे। इन्होंने पुष्पमाला नाटिका का प्रणयन किया था इनका भाषार्णव ग्रन्थ अनेक भाषाओं का व्याकरण रहा होगा। उल्लासदास के एक पुत्र चण्डीदास हुए, जिन्होंने काव्यप्रकाश की दीपिका टीका लिखी।

चद्रकला में कवि ने चन्द्रकला नामक नायिका की नायक महाराज चित्ररथदेव के साथ प्रणय-क्रीडा का वर्णन करते हुए उन दोनों के विवाह की उद्भावना की है।

महाराज चित्ररथ के अमात्य सुबुद्धि के पास सेनापति विक्रमाभरण ने कर्णाट-विजय-प्रयाण में मिली हुई सुलक्षणा कन्या भेज दी थी, जिसके विषय में भविष्यवाणी हुई थी कि इस कन्या के पति को लक्ष्मी स्वयं वर देगी। सुबुद्धि ने चित्ररथ से उसके विवाह की योजना कार्यान्वित करने के लिए उसे महारानी के पास अपने वंश में उत्पन्न बताकर पालन-पोषण के लिए दे दिया। रानी ने उसे अपनी सखी बना लिया। वह उसके सौन्दर्य का प्रभाव जानती थी कि रसज्ञ राजा उसकी सखी पर आसक्त हो जायेगा। वह उसे छिपा कर रखती थी किन्तु एकबार राजा ने उसे देख ही लिया और चन्द्रकला ने भी राजा को देखा। दोनों प्रणयपाश में आवद्ध होकर पूर्वराग की विरह-व्यथा में सन्तप्त होकर एक दूसरे से मिलने का उपक्रम करते थे, यद्यपि महारानी बाधायें उपस्थित करती रहीं। प्रथम बार प्रेमपीडित राजा जब विदूषक के साथ था तो चन्द्रकला पूर्वयोजना के अनुसार सुनन्दना नामक सखी के साथ वहाँ आ गई। राजा लता से प्रच्छन्न होकर नायिका की रहस्य-वृत्ति देखने लगे। पुष्पावचय करती हुई नायिका नायक के पास जा पहुँची। सखी के कहने पर वह पल्लवचयन-क्रीडा से राजा का अनुरञ्जन करती है और अन्त में उन्हें राजा को देती है। यह सारा खेल महारानी की सेविका रतिकला देख रही थी। रतिकला ने राजा को रानी के पास भेजवाया।

विदूषक की योजना के अनुसार चन्द्रकला नायक से मिलने के लिए केलिवन में प्रतीक्षा कर रही थी। इधर नायक को महारानी ने अपने उत्सव में उसी समय लगाना चाहा जब उसे चन्द्रकला से केलिवन में मिलना था। रानी केलिवन में पहुँची। राजा को भय था कि वहाँ मेरी प्रतीक्षा में पड़ी चन्द्रकला को महारानी देख न ले। फिर भी अन्त में वह महारानी के कार्यक्रम 'चन्द्रमा का कुमुदिनी से विवाह' के लिए चल पड़ा। तभी विदूषक की योजनानुसार 'कोई व्यक्ति तरक्षु (लकड़बग्घा) बनकर सबको डराता हुआ वहाँ आया है'—यह घोषणा सुनाई पड़ी।

राजा ने रानी से कहा कि आप तो अन्तःपुर में जावें। मैं लकड़बग्घे को मारकर आता हूँ। रानी भी इस शिकार में राजा के साथ रहना चाहती थी। राजा ने कहा कि तब तो मैं आपका मुँह ही देखता रह जाऊँगा। लकड़बग्घे को कैसे मारूँगा? रानी लौट गई। राजा लकड़बग्घा मारने चले। लकड़बग्घा का कुछ दूर तक पीछा राजा ने किया। फिर लकड़बग्घे ने कहा कि मैं रसालक (विदूषक) हूँ, लकड़बग्घा नहीं। दोनों चन्द्रकला से मिलने चले। वे छिपकर उसकी प्रवृत्तियाँ देखने लगे। चन्द्रकला चन्द्र की किरणों से सन्तप्त होकर अचेत हो गई। राजा ने उसका हाथ पकड़ कर उसे उठाया। तभी उसे समाचार मिला कि लकड़बग्घे को मारने पर

रानी उन्हें वधाई देने के लिए पहुँच रही हैं। चन्द्रकला भाग गई। उसकी अंगूठी गिर पड़ी थी। उसे विदूषक ने ले लिया।

इधर आती हुई महारानी के साथ उनकी चेटी रतिकला ने उन्हें दिखाया कि ये पदचिह्न किसी सुलक्षणा के हैं, जिससे सम्भवतः राजा का प्रेम चल रहा है। रानी भोली थी। उसने कहा—यह नहीं हो सकता। रानी ने राजा को अर्घ दिया। विदूषक ने कहा—मुझे पारितोषिक दें। रानी ने अपना हार दे दिया। विदूषक ने अपना सौन्दर्य वढ़ाने के लिए उसी समय चन्द्रकला की अंगूठी पहन ली। रतिकला ने रानी से कहा कि यह किसकी अंगूठी है। रानी का माथा ठनका। उसने जान लिया कि वस्तुतः दाल में कुछ काला है। रानी वहाँ से जाने लगी, क्योंकि उसे सन्देह न रहा कि चन्द्रकला और चन्द्रिका का समञ्जसित आनन्द राजा को वहाँ प्राप्त हुआ है।

राजा प्रमदवन में वन्य वृक्षों और पशु-पक्षियों से अपनी प्रियतमा का वृत्त पूछता है। वह उन्मत्त-सा है। तभी विदूषक उसकी सहायता के लिए पहुँचा। उसने वताया कि चन्द्रकला सुनन्दा के साथ मणिमण्डप में आपकी प्रतीक्षा कर रही है। तभी उधर से महारानी भी आ निकली। उसके साथ रतिकला थी। राजा ने विदूषक को अपना कंकण पारितोषिक रूप में दिया। इधर चन्द्रकला प्रतीक्षा करते-करते व्याकुल होकर आत्महत्या करना चाहती है। रानी छिप कर राजा का रहस्यमय प्रणयव्यापार देख रही है। राजा चन्द्रकला से मिला तो उसका जीवन अमृतमय हो गया। रानी ने सुनन्दा को चन्द्रकला के लिए उपदेश देते सुना—'कुरुष्व तावद् भर्तृवचनम्'।

रानी ने कहा कि—यह सुनन्दा तो "कालसर्पः किल नीलमणिमालारूपेण कण्ठे वसति।'

राजा ने चन्द्रकला से कहा कि—'अव तो कहाँ की मेरी महारानी? तुम्हीं मेरा प्राण हो।' रानी ने रतिकला से कहा कि मुझे यह भी सुनना वदा था। इधर विदूषक ने कह डाला कि अन्तःपुर की सभी स्त्रियाँ चन्द्रकला की आज्ञाकारिणी हैं। तभी महारानी झपटकर विदूषक के सामने आ गई और वोली—'अहमप्येतस्या आज्ञाकारिणी'। महारानी ने सवको वन्दी वनवाया। सुनन्दा, विदूषक, चन्द्रकला सभी पकड़ लिये गये पुलिस थी रतिकला।

महारानी के पिता पाण्ड्यदेश के राजा थे। उन्होंने अपनी कन्या का पता लगाने के लिए दो वन्दियों को भेजा। वन्दियों से ज्ञात हुआ कि वन-विहार करते हुए वह कन्या अपनी सहेलियों से विछुड़ गई और शवरों के हाथ जा पड़ी, जो उसे विन्ध्यवासिनी देवी को वलि चढ़ाने ही जा रहे थे, तव उसे आप के सेनापति विक्रमाभरण के अनुचर अपने पराक्रम से छुड़ाकर अपने स्वामी को दे दिया और विक्रमार्क ने उसे अमात्य सुवुद्धि को दिया। आगे की वात वताने के लिए सुवुद्धि वुलाये गये और उन्होंने वताया कि यह वही चन्द्रकला है। तत्काल चन्द्रकला मुक्त

हुई और राजा के साथ रानी ने उसका विवाह करा दिया। राजलक्ष्मी ने प्रकट होकर उन्हें अभीष्ट वर दिया।

चन्द्रकला का कथानक मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि अनेक रूपकों की धारा में बहते हुए पर्याप्त सुरूपित है। कथानक में कवि की अपनी मौलिक योजना कदाचित् कुछ भी नहीं है, किन्तु इसके सभी अंगों का विन्यास सम्यक्तया सानुपातिक होने से रमणीयतम है।

नाटिका शृङ्गारित होती है। इसमें प्रस्तावना में ही शृंगार की भूमिका उद्दीपन विभाव वासन्तिक सम्भार के रूप में प्रस्तुत है—

> लताकुञ्जं गुञ्जन् मदवदलिपुञ्जं चपलयन्
> समालिगन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन्।
> मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
> रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि॥ १.२

शृङ्गार के लिए आलम्बन और उद्दीपन विभावों के लिए नीचे लिखा पद्य है—

> अमुअन्तो त्रि णि अन्तं कुन्दलदं सुइरउवहुत्तं।
> चुम्बइ रसालवल्लीं अहिणअमहुगन्धिअं भमरो॥ १.४

शृङ्गार का आलम्बन चन्द्रकला की चर्चा है—

> सा दृष्टिर्नवनीरनीरजमयी वृष्टिस्तदप्याननं
> हेलामोहनमन्त्रयन्त्रजनिताकृष्टिर्जगच्चेतसः।
> सा भ्रूवल्लिरनङ्गशार्ङ्गधनुषो यष्टिस्तथा स्यास्तनु-
> र्लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टिः परा वेधसः॥ १.७

> तारुण्यस्य विलासः समधिकलावण्यसम्पदो हासः।
> धरणितलस्याभरणं युवजनमनसो वशीकरणम्॥ १.६

शृङ्गार का उद्दीपन है अन्धकार—

> आलोकाय भवन्ति न व्रततयो नैता न भूमीरुहो
> नाकाशं न वसुन्धरा न हरितो नाक्षाणि नाङ्गानि वा।
> रुद्ध्यानेन कुतश्चिदेत्य जगतीं कस्मादकस्मादहो
> सर्वं क्वापि निरन्तरेण तमसा संहृत्य नीतं बलात्॥ ३.१४

भावों का उत्थान-पतन का क्रम अनेकशः अत्यन्त तीव्र गति से आपतित हुआ है। राजा को जब अपनी प्रणयिनी का सङ्गम-सुख मिलने को होता है तभी चन्द्रकला उससे बलात् दूर हो जाती है। तृतीय अङ्क के अन्त में यह स्थिति अत्यन्त उत्कट है।

विश्वनाथ ने प्राचीन नागरकों की मनोवैज्ञानिक नीति का निदर्शन करते हुए कहा है—

चिरादधिगतं वस्तु रम्यमप्यवधारयत्।[1]
पुरः प्रतिनवं वीक्ष्य मनस्तदनु धावति ॥ १.५

स्त्री-विषयक मनोविज्ञान है—

अहो नाम दुरपनोदः प्रायशः स्त्रीणाम्।

अन्योक्ति द्वारा व्यञ्जना का अनुत्तम उदाहरण है—

आसादयति न यावन्माधवि भवतीमिहैव पुनः।
निर्वृतिमेति न चेतः चित्ररथद्मापतेस्तावत् ॥ १.१६

इसमें माधवी के बहाने नायिका को सान्त्वना दी गई है कि मैं तुम्हें प्राप्त करके ही अपनी विरह-पीडा से मुक्त हो सकूँगा।

विश्वनाथ की शृङ्गारित कल्पनायें अनूठी हैं। यथा,

मध्येन मध्यं तनुमध्यमा मे पराजयं नीतवतीति रोषात्।
कण्ठीरवोऽस्याः कुचकुम्भतुल्यं मत्तेभकुम्भद्वितयं भिनत्ति ॥ ३.१७

कहीं-कहीं विश्वनाथ की अनुप्रासिकता श्रेणीबद्ध और विपुल संगीत की निर्देशिका है। यथा,

लताकुञ्जं गुञ्जन् मदवदलिपुञ्जं चपलयन्
समालिंगन्नङ्गं द्रुततरमनङ्गं प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि ॥

इसमें भाषा का ठुमकना वासन्तिक अनुराग के अनुकूल है।

इस नाटिका में शृङ्गार की मञ्जुल धारा एक असाधारण चमत्कार के कारण पाठकों के हृदय पर अधिकार कर लेती है।

तृतीय अङ्क में इस नाटिका में गीतितत्त्व सविशेष स्फुरित हुआ है। इसमें राजा का आत्मनिवेदन मुखरित हो उठा है। वह कामदेव से कहता है—

किं कन्दर्प मुखं विधाय मधुपैः पक्षं नवैः पल्लवै-
रेभिश्चूतशरैः करोषि जगतीं जेतुं प्रयासं मुधा।
निद्रातुं शयितुं प्रयातुमथवा स्थातुं क्षमः को भवे-
देकोऽसौ कलकण्ठकण्ठकुहरे जागर्ति चेत् पञ्चमः ॥

---

१. विश्वनाथ ने इसी बात को पुनः तृतीयाङ्क में दुहराया है—
पुरुषभ्रमराणां स्वभाव एषः, यत् किल नवं नवमेवानुधावन्ति।

राजा को मलयानिल सन्तप्त कर रहा है। राजा उससे निवेदन करता है—

धीरसमीरण दक्षिण सरसिजशीतल किं दहस्येवम्।
जाने चन्दनशैल द्विजिह्वसंसर्गदूषितस्त्वमपि॥ ३.१२

विश्वनाथ की वैदर्भी रीति और सुबोध पदशय्यामण्डित भाषा सर्वथा नाटिका के योग्य है और उसके द्वारा सहज शृङ्गाररस की निर्झरिणी प्रवाहित हुई है। चन्द्रकला नाटिका में अनेक स्थलों पर पहले की नाटिकाओं के भावों का अनुहरण है। यथा, रत्नावली में विदूषक महारानी के आने से रसभङ्ग की आशंका करता है, चन्द्रकला में भी रसभङ्ग की आशंका विदूषक ने की है। रत्नावली में विदूषक कहता है—भो, एवं न्विदं यद्यकालवातालिर्भूत्वा नायाति देवी वासवदत्ता। चन्द्रकला में उन्हीं स्थितियों में विदूषक कहता है—यदिदानीमतर्कितमेघमण्डलीव कुतोऽप्यागत्य देवी अन्तराया न भवति।

विश्वनाथ की नाट्यकला है, जिसके बल पर उन्होंने एक ही रङ्गमञ्च पर पात्रों के तीन वर्गों के अलग-अलग संवाद प्रस्तुत कर दिये हैं। (१) राजा और विदूषक, (२) महारानी और रतिकला तथा (३) सुनन्दा और चन्द्रकला सभी अपनी-अपनी बातें दूसरे वर्ग के लिए अश्राव्य विधि से कहते हैं। प्रेक्षक को तीनों वर्गों से तीन प्रकार के भावों की अनुभूति होती है। रसभाव की अद्वितीय निर्झरिणी इस प्रसंग में प्रवाहित हुई है।

अध्याय ४४

कमलिनी-राजहंस

कमलिनीराजहंस के रचयिता पूर्णसरस्वती अपनी बहुविध रचनाओं के लिए प्रख्यात हैं।[1] इनका प्रादुर्भाव चौदहवीं शताब्दी में हुआ था।[2] कमलिनीराजहंस का प्रथम अभिनय कोचीन में वृषपुरी (त्रिचूर) में स्थित शिव के मन्दिर में हुआ था, जिसे देखने के लिए राजा अपनी रानी के साथ उपस्थित थे।[3]

कथानक

इस नाटक में यथानाम पम्पासर की कन्या नायिका कमलिनी और राजहंस नायक की प्रणयकथा है। नायक का मित्र कलहंस एक दिन नायिका की सखी कुमुदिनी की बातें लतान्तरित होकर सुनता है कि जिस दिन से मेरी सखी कमलिनी ने राजहंस को देखा है, उसी दिन से मदन-सन्ताप से पीडित होकर अन्यमनस्क हो गई है। वह कलहंस से मिली और उन दोनों ने परस्पर सूचित किया कि नायिका और नायक परस्परासक्त हैं। नायिका ने उसे बताया कि इधर एक बाधा आ खड़ी हुई है। विन्ध्यगिरि के नागराज ने मधुकरमाला से पम्पा को सन्देश भेजा है कि आप अपनी कमलिनी का विवाह सुयोग्य नागराज से कर दें। पम्पा ने उन्हें प्रत्युत्तर दिया कि यह तो राहुमुख में चन्द्रलेखा का समर्पण होगा। मधुकरमाला को तरङ्गावली ने भगा दिया। फिर कुमुदिनी ने कलहंस को बताया कि नायक और नायिका का संयोग इस प्रकार हो। वहाँ से उड़कर कलहंस गोदावरी तट के लतामण्डप में अपने मित्र से मिला। नायिका की प्रवृत्ति सुनकर नायक कलहंस के साथ उससे मिलने के लिए चल पड़ा।

कमलिनी और राजहंस विवाह के पश्चात् विहार कर रहे हैं। तभी नागराज ने कमलिनी को पाने के लिए आक्रमण कर दिया। पम्पा ने अपने मकरों को उसका प्रत्याक्रमण करने के लिए लगा दिया। अन्त में नागराज भाग गया।

---

१. कमलिनीराजहंस का प्रकाशन त्रिवेन्द्रम से १९४७ ई० में हो चुका है। इसकी प्रति सिन्धिया प्राच्य विद्याशोध-प्रतिष्ठान, विक्रमकीर्ति मन्दिर, उज्जैन में है।

२. पूर्णसरस्वती का विस्तृत परिचय इस इतिहास के प्रथम भाग पृ० ४७०–४७१ में दिया जा चुका है।

३. द्रष्टा जगन्नाटकसूत्रधारो
देव्या समं देशिकचक्रवर्ती ॥ १.१२

उसी समय ब्रह्मलोक से कुलगुरु पवनवेग द्वारा प्रेषित प्रतीहार राजहंस के पास आया। उसने कहा कि आपको ब्रह्मा ने शीघ्र बुलाया है। उन्हें कुछ आवश्यक विषयों पर आपके साथ मन्त्रणा करनी है। कलहंस के साथ राजहंस मानस सरोवर जा पहुँचा। राजहंस वहाँ राजकार्य में लग गया, पर वह कमलिनी को भूला नहीं। उसने उसे आश्वस्त करने के लिए कलहंस को पम्पा भेजा। वहाँ आने पर उसे वर्षतु के द्वारा कमलिनी की दुर्दशा करने का समाचार मिला। वह तो मरने के लिए उद्यत हो गया। तभी मानसवेग नामक सेनापति ने उससे कहा कि राजहंस ने आपको बुलाया है। राजहंस कमलिनी की विपत्ति सुनकर विलाप कर रहा था। उसका विलाप विक्रमोर्वशीय में उर्वशी के वियोग में पुरूरवा के विलाप के आदर्श पर वर्णित है। कलहंस से वह पूछता है—

> कुमुदिनीसहिता क नु ते सखी
> विहगराजविलोचनमाधुरी ।
> निगलितोऽसि यया भृशकोमलै-
> र्निजगुणैः क्षणदाकरनिर्मलैः ॥ ३.४६

राजहंस और कलहंस आदि कमलिनी की रक्षा के लिए चल पड़े।

इधर कमलिनी ने चेटी के द्वारा पम्पा देवी को समाचार भेजा कि जलधर भटों ने कैसा उत्पात कर रखा है। भगवती पम्पा उस समय ब्रह्मलोक गई थीं जैसा उसे भगवती की परिचारिका तरङ्गावली से ज्ञात हुआ। कालमेघ और पुरोमारुत पुनः उपद्रव करने के लिए पम्पा प्रदेश में आ पहुँचे। उनकी योजना थी खगपरिषद् का राजा मयूर हो। वे जानते थे कि राजहंस का प्रतिपालक शरत्समय मानससर जा पहुँचा है। जिसकी सहायता राजहंस पुनः प्राप्त करेगा। कालमेघ का कहना है—

> शरणं किरणा भवन्तु भानोः
> शरदा साकमधीशितुः खगानाम् ।
> ननु जीवति वाहिनी घनानां
> नदराजोदकपण्यनैगमानाम् ॥ ४.१२

मयूर के लिए अभिषेक सम्भार है—

> धारानीपैः सुरभिरभितः संहृता पुष्पलक्ष्मी-
> रभ्रैरम्भः पृथुतरघटैराभृतं सागरेभ्यः ।
> शब्दः पुण्यो विसरति दिशश्चातकानां द्विजानां
> पाथोधौतं दधति च पुरो भूभृतः शृङ्गपीठम् ॥ ४.१८

प्रकृति ने उत्तम संविधान रचे—

> किरन्ति स्वैः पुष्पैः ककुभि ककुभि प्रौढककुभा
> हरन्ति क्ष्मारेणुं मधुरसजलैर्बालकुटजाः ।

उल्लुप्रध्यानं दधति मधुपैर्वञ्जुललता:
कदम्बैर्लम्ब्यन्ते कुसुमकलिका दामनिकराः ।। ४.२०

कालमेघ की पत्नी सौदामिनी भी आ गई। मयूर के अभिषेक का समारम्भ प्रवर्तित हुआ ही था कि राजहंस की सेना कालमेघमण्डल का विनाश करने के लिए आ पहुँची। कालमेघ उनसे लड़ने चला। राजहंस की सेना में चक्रवाक, हंस, शुक, कलकण्ठ आदि पक्षियों के वृन्द पृथक्-पृथक् थे। कलहंस ने राजहंस से इसका वर्णन किया है—

चकशुकर्कभृङ्गपिककौशिकसंकलितां
चलकलविङ्ककंकजलरंककलिङ्गकुलाम्।
चटुलपतत्रपत्रचयचित्रितदिग्वदनां
कलयितुमीहते क इव ते महतीं पृतनाम् ।। ५.१८

उस समय ब्रह्मा के द्वारा शरन्मुनि को आदेश दिया गया कि राजहंस का अभीष्ट सिद्ध करो—यह समाचार नाडीजंघ ने अपने शिष्य भास ब्रह्मचारी से भेजा। शरन्मुनि ने कालमेघादि को दिवंगत करके कमलिनी को मुक्त किया। नाडीजंघ के आदेशा-नुसार राजहंस अपनी पत्नी कमलिनी से मिलने के लिए पम्पा की ओर चला, जहाँ उसकी पत्नी तप कर रही थी। सभी पम्पा की ओर चले। उनके द्वारा आलोचित भारत के विविध भागों का मनोहारी वर्णन है। अन्त में वे सभी पम्पा के पास आये जहाँ कमलिनी, कुमुदिनी आदि मिलीं। पम्पा ने सबका अभिनन्दन किया। समस्त सेना और सेनापतियों के अनुज्ञा लेकर चले जाने के पश्चात् शरन्मुनि और नाडीजंघ आये। नाडीजंघ के मुख से इस नाटक का रहस्यार्थ प्रकाशित किया गया है—

कालमेघमहामोहे शापश्रुत्या निवारिते।
हृद्यां कमलिनीं विद्यां दिष्ट्या शिष्यो समाप्तवान् ।। ५.५८

कमलिनी राजहंस ऐसा छायानाटक है, जिसमें पशु-पक्षियों और लतादि के लिए मानव पात्र रङ्गमञ्च पर अभिनय करते हैं। इसके कथानक का विन्यास पञ्चतन्त्र की शैली पर हुआ है।

प्रकृति के विविध रूपों को इस रूपक में मानवीकरण की रीति से मानवोचित शक्तियाँ और योग्यतायें प्रदान करके उनमें प्राकृतिक और मानवीय व्यापारों की समञ्जसित प्रवृत्तियाँ निदर्शित की गई हैं। राजहंस और कमलिनी मानव की भाँति ही प्रणय-पीडित होकर व्यथित हैं। प्रस्तुत रचना का प्रमुख उद्देश्य है वर्षा और शरद् में प्रकृति का भावात्मक निदर्शन।

नाट्यकाव्य के रूप में इस रचना को भले समादर प्राप्त हो, किन्तु नाट्याभिनय की दृष्टि से यह बहुत श्रेयस्कर प्रयास नहीं कहा जा सकता। कालमेघ का प्रकरण

नाटकीय व्यापार की दृष्टि से कुछ रोचक बन पड़ा है। कालमेघ की पत्नी सौदामिनी का अपने पति से मिलना और नागराज का आक्रमण—ये दो घटनायें रङ्गमञ्च पर दृश्य हैं। इसमें राजहंस और कलहंस नपुंसक जैसे प्रतीत होते हैं। कमलिनी के विपत्तिग्रस्त होने पर भी उनमें कुछ विशेष आवेश नहीं दिखाई देता। वे ढीले-ढाले-से हैं। सेनानायक मानसवेग भी दूसरों को प्रोत्साहित मात्र करता है, स्वयं युद्धभूमि में आगे नहीं बढ़ता।

इस नाटक में पूर्णसरस्वती ने पिशुन आलोचकों को कुत्ते के समान बताया है—

> रसयतु सुमनोगणः प्रकामं पिशुनशुनां वदनैरदूषितानि।
> कविभिरुपहृतानि दीप्तजिह्वैरतिरसितानि हवींषि वाङ्मयानि॥

कवि विनयी था। वह अपने विषय में कहता है—

> वाणी ममास्तु वरणीयगुणौघवन्ध्या
> श्लाघ्या तथापि विदुषां शिवमाश्रयन्ती।
> दासी नृपस्य यदि दारपदे नियुक्ता
> देवीति सापि बहुमानपदं जनानाम्॥

इसमें काव्यात्मक चारुता अनेक स्थलों पर प्रकाम उच्चस्तरीय है। गद्यांश कहीं-कहीं गौडी शैली के कारण संवादोचित नहीं प्रतीत होते। कहीं-कहीं दो पृष्ठ तक के लम्बे गद्यांश नाट्य रीति के विरुद्ध प्रतीत होते हैं।

अनेक स्थलों पर संवाद लम्बे-चौड़े व्याख्यान प्रतीत होते हैं। आरम्भ में कलहंस का एक ऐसा व्याख्यान लगभग तीन पृष्ठों में लम्बायमान है। यह प्रवृत्ति नाट्योचित नहीं है। ऐसे लम्बे संवादांशों में कहीं-कहीं लम्बे समास और अनगढ़ लगते हैं। यथा—

> सम्भृतसरसकुमुदकह्लारकुवलयकिसलयवलयशयनशायितो घनघनसार-चूर्णभसिततरमृणालजालकितशशधरशकलकलितभूषणम्।

इस नाटक में विदूषक कलहंस संस्कृत में बोलता है। नायिका की सखी कुमुदिनी भी पद्य भाग संस्कृत में बोलती है।

इसमें चूलिका संवाद रूप में प्रस्तुत है। यथा,

कुमुदिनी — भगवति पम्पे, एसो कुमुदिनीए पणामो।
पम्पा — वत्से पूर्णमनोरथा भूयाः। अहमिदानीं वत्सां कमलिनीं समाश्वास्य भगवन्तमभिषेकसमये पितामहमुपस्थातुं ब्रह्मलोकमभिगच्छामि। त्वमपि समीहितसाधनाय प्रवर्तस्व।
कुमुदिनी — भअवदि एव्वं होदु। रक्खणिज्जो एसो कुडुम्बो भअवदीए।

इस चूलिका के द्वारा प्रवेशक-विष्कम्भक का काम अभीप्सित है।

तरुलतान्तरित होकर विदूषक का नायिका की सखी का मनोगत सुनाना प्राचीन परम्परानुसार सौष्ठवपूर्ण है। उसकी एकोक्ति रसमयता की दृष्टि से उच्चकोटि की है। सखी की इस एकोक्ति के द्वारा वही कार्य सम्पन्न किया गया है, जो प्रवेशक और विष्कम्भक के द्वारा अन्यत्र सम्पन्न होता है।[1]

रङ्गमञ्च पर आलिङ्गन नहीं होना चाहिए, किन्तु इसमें राजहंस और कमलिनी कलहंस और कुमुदिनी तथा कालमेघ और सौदामिनी ऐसा करते हैं। दूसरे अङ्क के पहले विष्कम्भक में कथांश है, जो नियम विरुद्ध है और वह विष्कम्भक में दृश्य है, जो रङ्गमञ्च पर दिखाया ही नहीं जाना चाहिए। इस विष्कम्भक में कौवे और उल्लू के कलह से प्रेक्षकों का मनोरञ्जन करना एकमात्र उद्देश्य प्रतीत होता है।

कमलिनीराजहंस शृङ्गारपूर नाटक है। वर्णनों में भी शृङ्गार निदर्शित है। यथा,

> वियति विततिरेषा चक्रिणां चित्ररूपा
>
> कलयति कलनादैः कर्णयोः पूर्णपात्रम्।
>
> दिनकरकरसङ्गे दिग्वधूनां स्खलन्ती
>
> विविधमणिनिबद्धा मेखलामालिकेव॥ २.१६

वर्णनों में पूर्ववृत्तों की चर्चा के समावेश से करुण विप्रलम्भ की सर्जना की गई है। यथा,

> अस्मिन् पम्पातटवटतले शोचता लक्ष्मणेन
>
> स्फूर्जन् मूर्छारयनिपतितो धारितो राघवेन्दुः।
>
> रक्षो-लक्ष्मी-मुखकमलिनीदाहनीहारवृष्टिं
>
> वारं वारं पिहितनयनां बाष्पधारां विमुञ्चन्॥ २.२२

इस वर्णन के द्वारा भाविवृत्तविन्यास की पूर्वसूचना प्रस्तुत करना कवि का अभिप्राय है।

गीतितत्त्व की निर्भरता इस नाटक में उल्लेखनीय है। ध्वनि-सङ्गति और भावुकता के सामञ्जस्य से नीचे लिखे पद्य में सङ्गीत की सर्जना की गई है। यथा,

> श्रुतिमधुकरी मधुकरी
>
> दुर्दिननिशातिमिरहरणदीपशिखा।
>
> द्रावयति रघुवरकथा
>
> दृषदोऽपि न मानसं केषाम्॥ २.२३

युद्ध के वर्णन में वीररस को मूर्तिमान् करने का कवि का प्रयास सफल है। यथा,

1. इस नाटक में अन्य एकोक्तियाँ हैं प्रथम अङ्क के प्रायः अन्त में नायक की आत्मोक्ति बताना।

उग्रैः पक्षाग्रपातैस्तृणमिव वियति भ्रामयन् सामयोनिं
चण्डैस्तुण्डप्रहारैः सलिलमिव रुषा रूक्षमुत्क्षोभ्य चक्षुः ।
पादत्रोटीचपेटात्रुटितकटतटस्फारनिर्यन्मदोत्सं
साद्व्याकीर्णपादं पविरिव मलयं क्ष्मातले पातयामि ॥ २.२६

कहीं-कहीं पूर्णसरस्वती ने पहले के महाकवियों की लोकोक्तियों को ज्यों का त्यों रख दिया है। यथा,

कान्तोपान्ताः सुहृदुपगमः संगमात् किञ्चिदूनः ।

ऐसे नायकों का चरित्र-चित्रण अति दुष्कर है। उनमें मानवीय गुणों का आरोपण कवि-कल्पना के द्वारा होता है—यह तो जैसे-तैसे गले उतरता है, किन्तु मानव के शारीरिक अङ्गों की परिकल्पना जब कमलिनी आदि में विन्यस्त होती है तो पाठक को झख मारकर वास्तविकता से दूर होना पड़ता है। नीचे पद्य में यही प्रतीत होता है—

सिंचन्ती च्युतकंकणामुपहितां वाष्पाम्भसा दोर्लता-
मेकेनान्यतरं स्तनेन गुरुणा संपीडयन्ती स्तनम् ।
पार्श्वेनैकतरेण हन्त शयिता पाथोजिनीसंस्तरे
चित्रस्थैव विभाव्यते मम सखी चित्तं गते प्रेयसि ॥ १.३१

इसमें प्रकृति की किस वस्तु से क्या काम किया गया है—यह जानने योग्य है। उदाहरण के लिए तालिका प्रस्तुत है—

राजहंस — नायक
कलहंस — विदूषक
नागराज — प्रतिनायक
मधुकरमाला — दूतवर्ग
ग्राह — नायिका पक्ष की सेना
कालमेघ — प्रतिनायक का सेनापति
कमलिनी — नायिका
पम्पा — नायिका की माता
कुमुदिनी — नायिका की सखी

रङ्गमञ्च पर पात्र नख, चोंच आदि लगाकर कौवे और उल्लू का रूप धारण करके आते हैं और संस्कृत में संवाद करते हैं। यह दृश्य अपने-आप में ही मनोरञ्जक है। कुमुदिनी, कमलिनी और राजहंस के संवाद में परिहास का लौकिक स्तर वर्तमान है। जिसमें मित्र परस्पर झूठी बात कहकर एक की उत्सुकता और दूसरे की घबराहट बढ़ाते हैं। कुमुदिनी ऐसा करने में निष्णात है।

संस्कृत नाट्य साहित्य में कमलिनीराजहंस इस दृष्टि से अनुत्तम है कि इसमें प्रकृति को जिह्वा प्रदान की गई और वह अपनी आत्मकथा सातिशय रमणीय विधि से प्रस्तुत करती है। प्रकृति सभी प्राकृतिक गुणों से मण्डित होने के साथ ही सभी मानवोचित सम्बन्धों से उपपन्न है। यथा उसमें भास नामक पक्षी शिष्य है। गुरु है नाडीजंघ नामक पक्षी। भास कहता है—अतिपतत्यध्ययनसमयः। पात्रीभूत प्रकृति में संचारीभावों और अनुभावों का समाकलन कवि की प्रतिभा का अनूठा चमत्कार है।

कमलिनीराजहंस में निसर्ग की शोभा अतिशय हारिणी है। यथा, पर्वत है—

> शतमखमणिभूमिं संस्पृशन्ती कराग्रैः
> स्फुरति झरनिगूढा पद्मरागस्थलीयम्।
> जलविहरणकाले दुग्धसिन्धौ निलीनं
> मधुमथमुपकण्ठे मार्गमाणेव लक्ष्मीः॥

कमलिनीराजहंस वस्तुतः गीतिनाट्य है, जिसमें नाट्यतत्त्व से बढ़कर गीतितत्त्व उत्कृष्ट है।



अध्याय ४५

विटनिद्रा : भाण

विटनिद्रा भाण की रचना सम्भवतः चौदहवीं शती में हुई।[1] इसका प्रणयन केरल में कोचीन के राजा के आश्रय में हुआ। इसमें महोदयपुर के रामवर्मा की चर्चा है। रामवर्मा की माता का नाम लक्ष्मी था। कवि की सुसंस्कृत शैली का परिचय महोदयपुर के अधोलिखित वर्णन से मिलता है—

अहो चूर्णीसरित्कल्लोलहस्तालिंगितप्राकारमेखलायाः केरलकुलराजधान्याः श्रीरामवर्मपरिपालितायाः महोदयपुर्याः।

वर्णानां वचसां च न क्रमजुषां भेदः परं दृश्यते
सूनाखड्गनिकृत्तजन्तुनिवहक्रेङ्कारवाचालिता।
वक्त्रप्रस्तविशीर्णमेष नलकापंक्तिः शुनां भ्राजते
सम्मर्दः क्रयविक्रयाकुलधियां प्रस्तौति कोलाहलम्॥

विट ने किसी लावण्यमूर्ति कन्या को सम्बोधित किया है—

तलोदरि तवापाङ्गैः क्रीतमेकं जगत्त्रयम्।
त्वां विना स तु कन्दर्पः कं दर्पमवलम्बते॥

रामवर्मा राजा की सुशासन को स्थायी बनाने की कामना भरतवाक्य में मिलती है—

यावत् खण्डेन्दुमौलिं श्रयति गिरिसुता यावदास्ते मुरारे-
र्वक्षस्थक्षीणहारद्युतिमणिशबले देवता मङ्गलानाम्।
यावद् वक्त्रेषु मैत्रीमुपनयति गिरामीश्वरी पद्मयोने-
स्तावल्लक्ष्मीप्रसूतिः स्वयमवतु सुखं रामवर्मा नरेन्द्रः॥

इस भाण में सुप्रसिद्ध चतुर्भाणी के रचयिताओं का उल्लेख है।

---

१. विटनिद्रा भाण की प्रति मद्रास की शासकीय ओरियण्टल हस्तलिखित भाण्डार में ३७५५ संख्यक है। इसकी विस्तृत चर्चा केरलीयसंस्कृतसाहित्यचरित्र के पृष्ठ २५२ पर है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है।

भैरवानन्द

भैरवानन्द के प्रणयिता कवि मणिक को नेपाल में राजाश्रय प्राप्त था।[1] राजा जयस्थिति (१३८५–१३९२) के संरक्षण में इस रूपक का प्रणयन हुआ।

मणिक के पिता राजवर्धन थे। उनके गुरु का नाम आचार्य नटेश्वर था। उनके इस नाटक का प्रथम प्रयोग आश्रयदाता के पुत्र जयधर्म मल्लदेव के विवाहोत्सव के अवसर पर हुआ था।

भैरवानन्द में नायक भैरवानन्द नामक तान्त्रिक और नायिका मदनवती है। नायिका अप्सरा थी किन्तु सापराध होने के कारण ऋषिशापाभिभूत होकर उसे मानव कोटि में जन्म लेना पड़ा। नायिका का नायक से प्रणय और परिणय साधारण नाटकीय रीति के अनुसार सम्पन्न हुआ। सर्वप्रथम मदनवती का पति क्रमादित्य नामक राजा था। फिर भैरवानन्द उसका प्रेमी हो गया। उसने नायिका को स्थायी रूप से पाने का पूरा प्रयत्न किया, किन्तु सफल नहीं हुआ और मर गया। इसमें शृङ्गार अङ्गी रस है और बीभत्स, करुण आदि अङ्ग रस हैं। नाटक में छः अङ्क हैं, किन्तु इन छः अङ्कों तक कथा समाप्त नहीं होती। पुस्तक के अन्त में लिखा भी है—अपूर्णम्।

---

१. इसका प्रकाशन १९७३ ई० में पीयूष प्रकाशन रीवाँ रोड पो. अग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद ६ से हो चुका है।

अध्याय ४६

गोरक्ष नाटक

विद्यापति ने पन्द्रहवीं शती के प्रथम चरण में गोरक्ष-विजय नामक किरतनिया नाटक के पूर्वरूप की रचना की; यद्यपि इसमें कोई कीर्तन नहीं है। इसकी रचना कवि के आश्रयदाता शिवसिंह (१४१२–१४१६ ई०) के समाश्रय में हुई। इसमें संवाद संस्कृत में और गीत मैथिली में लिखे गये हैं।

कथानक

दो योगी गोरक्षनाथ और काननिय अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को ढूँढते हुए कदलीपुर की राजसभा में जा पहुँचते हैं। वहीं मत्स्येन्द्र राजा बनकर विराजमान हैं। राजा भोगविलास में परिलिप्त हैं। योगियों ने अपनी शक्ति का वर्णन किया और द्वारपाल से कहते हैं कि हमें राजप्रासाद में प्रवेश करने दें। द्वारपाल उन्हें रोके ही रखता है।

दूसरे दृश्य में महामन्त्री को योगियों के आगमन का समाचार दिया जाता है। मन्त्री ने उन्हें राजा से मिलने की अनुमति दे दी क्योंकि वे राजा के पूर्वपरिचित लगे। उस समय राजा रमणियों से घिरे मनोरञ्जन कर रहे थे।

तीसरे दृश्य में द्वारपाल राजा से कहता है कि तेलङ्ग के नर्तक आपके समक्ष नृत्य-प्रदर्शन करने के लिए आये हुए हैं। ये नर्तक वस्तुतः योगी थे। उन्होंने ताण्डव-लास्य का प्रदर्शन किया। राजा प्रसन्न तो हुआ, पर उसे सूचना मिली कि इन्हीं नर्तकों ने राजकुमार की हत्या थोड़ी देर पहले कर दी है। फिर तो राजा ने पुरस्कार के स्थान पर उन्हें मृत्युदण्ड दिया। नटों ने कहा कि हम तो आपके पुत्र को पुनर्जीवित कर देते हैं। उन्होंने राजकुमार बौद्धनाथ को पुनः सप्राण कर दिया। राजा प्रसन्न हो गया। तभी गोरखनाथ पहचान लिये गये। मत्स्येन्द्रनाथ को भी प्रतीत हो गया कि योगपथ छोड़ने से मुझे क्या हानि हुई है।

राजा के समक्ष योग-पथ और राज-पथ थे। वह राजकीय विलास को छोड़ने के लिए सहसा समुद्यत नहीं था। रानियाँ उनसे कहती हैं कि हमें न छोड़ें। वे अपने प्रसाधित सौन्दर्य से राजा को लुभाना चाहती थीं। राजा ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मेरा पुत्र योगी शिष्यों के साथ है। अन्त में गोरखनाथ को गुरु को धिक्कारना पड़ा—

अद्यापि वनिताजनानुरागो न त्यजति।

समीक्षा

गोरक्ष-विजय अन्य नाटकों की भाँति संस्कृत और प्राकृत में है। इस रूपक में गीतों का विशेष महत्त्व है। सभी गीत मैथिली भाषा में सुप्रणीत हैं। इन गीतों में प्रकृति-वर्णन और सूचनात्मक निवेदन के अतिरिक्त शृङ्गारित प्रवृत्तियों का चित्रण है।

नृत-नाटकों में गीत और गीत में देशी भाषा का प्रयोग स्वाभाविक है, जो भरत के नाट्यशास्त्रीय विधान से तो सुप्रतिष्ठित है किन्तु तदनुसार बने हुए नाटकों की प्राप्ति पर्याप्त मात्रा में नहीं हुई है। विद्यापति की भाषा का माधुर्य विशेषतः मैथिली गीतों में अनुत्तम ही है।

गोरक्ष-विजय को मैथिली नाटक कहना समीचीन नहीं प्रतीत होता। इसमें संस्कृत नाट्यशास्त्रीय विधानों का आद्यन्त प्रतिपालन है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, संस्कृत नाटकों में भी प्राकृतांश संस्कृतांश से प्रायशः अधिक ही है। अत एव मैथिली के बहुल प्रयोग से इसका संस्कृत का नाटक होना असिद्ध नहीं है।

गोरक्ष-विजय का सारा वातावरण गीतात्मक है। इसमें मैथिली गीतों की संख्या २५ है।



अध्याय ४७

रामदेव व्यास का छायानाट्य

सुभद्रा-परिणयन के लेखक रामदेवव्यास का प्रादुर्भाव पन्द्रहवीं शती के पूर्वार्ध में मध्यप्रदेश के रायपुर अञ्चल में हुआ था[१]। वे रत्नपुर (रायपुर) के कलचुरी राजाओं के आश्रित थे। इसकी रचना कलचुरि राजा हरिवर्म के आदेशानुसार हुई थी। इनकी अन्य दो कृतियों रामाभ्युदय और पाण्डवाभ्युदय की रचना हरिवर्म के पौत्र रणमल्लदेव के आश्रय में हुई।

रामदेव ने अपनी कृतियों को छायानाटक कहा है। क्यों—यहअभी तक अनिर्णीत था। डॉ० डे का मत है कि ये छायानाटक नहीं हैं।[२] इसको छायानाटक वस्तुतः इसलिए कहते हैं कि अर्जुन प्रच्छन्न रह कर सुभद्रा का अपहरण करता है।[३]

सुभद्रा-परिणयन

सुभद्रा-परिणयन की कथा के अनुसार अर्जुन तीर्थ करते हुए द्वारका में कृष्ण के अतिथि थे। एक रात अर्जुन अत्यन्त अन्यमनस्क थे, जिसे जान कर कृष्ण ने अपना दूत उनके पास भेजा कि पता लगाओ बात क्या है? उसे कृष्ण के परिचर ने बताया कि तीर्थयात्रा करते हुए अर्जुन कृष्ण के अतिथि हैं। पत्रलेखा के साथ वनविहार करते हुए उन्होंने वसन्तश्री-मण्डित उपवन को देखा है। वहाँ से लौटकर आये तो उनकी

---

१. इसका प्रकाशन सरस्वती भवन टेक्स्ट सं० ७७ में हुआ है।

२. (They) are not admitted even by Lüders as shadow-plays at all. If we have aside the self-adopted title of Chāyānāṭaka, these plays do not differ in any respect from the ordinary any play. यह मत समीचीन नहीं है। Hist. Skt. Lit. P. 504.

३. तेरहवीं शती से छायानाटक नाम का प्रचलन हुआ है। रङ्गमञ्च पर जब कोई अभिनेता वेष या रूप का परिवर्तन करके आता है तो उसे वास्तविक पुरुष की छाया मानकर उस रूपक को छायानाटक कहते हैं। 'शामामृत' को भी इसीलिए छाया-नाटक कहते हैं कि इसमें अभिनेता हरिण का रूप धारण करके रङ्गमञ्च पर आते हैं। छायानाटक का विशेष विवरण सागरिका १०.१ में है। इसमें अर्जुन नायिका का अपहरण प्रच्छन्न रह कर करता है।

स्थिति शोचनीय हो गई। कामपरिपीडित अर्जुन के लिए अब मैं शिशिरोपचार-सामग्री ले जा रहा हूँ।

अर्जुन ने अपने कामपीडा का कारण बताया कि कल सवेरे में उद्यान में गया। वहीं मैंने एक अपूर्व सुन्दरी देखी। परस्पर देखने से गाढ प्रेम उत्पन्न हो गया। जब वह कञ्चुकी के सूचित किये जाने पर वहाँ से जाने लगी तो अनिच्छापूर्वक जाती हुई वह मेरा मन अपने साथ लेती गई। वह तो घर में प्रवेश करने के पहले

स्वद्वारिवेदिकदलीं परिरभ्य दोर्भ्यां
प्रत्यग्निवेश्य नतमाननमंसदेशे।
आमिलिताक्षनिभृतश्वसितं विवृत्त-
पादाम्बुजा किमपि सातिचिरं निदध्यौ॥ ३६

वह अपने घर में घुसी और साथ ही मेरे शरीर में भी घुस गई—

नो जाने सहसैव सा किमविशद् गेहं नु देहं मम॥ ३७

पत्रलेखा मुझे किसी-किसी प्रकार घर तक ले आई। मैंने पत्रलेखा को भेजा है कि जाकर पता लगाओ कि वह कौन है? पत्रलेखा तब तक आ गई। उसने अर्जुन से बताया कि आपकी हृदयहारिणी का पता लगाते हुए जब मैं सुभद्रा की धाई क्षीरतरङ्गिणी से मिली तो उसने अपनी चिन्ता का कारण बताया कि मेरी कन्या कई दिनों से दुर्मनस्क है। कल वह जब केलिवन से लौट कर आई तो उसकी स्थिति और बिगड़ गई और अब तो—

न पतति घनपट्टे, अक्षिपक्ष्मभिर्मुक्तं
छमछमितकपोलावर्तितं बाष्पवारि
अविनीय विमृमरोत्तप्त-निःश्वासस्पर्शे॥ ३८

मेरे पूछने पर उसने स्पष्ट कुछ भी नहीं बताया तो मैंने कहा कि यह भगवान् कामदेव का प्रभाव प्रतीत होता है। आज दोपहर के समय वह इस दोष को दूर करने के लिए चण्डिकायतन में जायगी। अभी तो विलासवन में गई है। मैंने भी क्षीरतरङ्गणी से कहा है कि अभीष्ट कार्य सम्पादन करो। अभी आप उसे विलासवन में देख सकते हैं।

अर्जुन पत्रलेखा के साथ केलिवन पहुँचे। कुरबक वीथी की आड़ में वहाँ सुभद्रा को देखा। सुभद्रा से लवङ्गिका ने जो प्रकृति-वर्णन किया, उसमें घटनाक्रम की सूचना अन्योक्ति से दी गई है—

उत्कण्ठाभरकारिणा मधुरसेनापूरिताभ्यन्तरां
सोयं प्रेक्ष्य सुचम्पकस्य कलिकामीषद् विकासोन्मुखीम्।
उत्फुल्लासु लतासु मत्तमधुलिड् मुक्त्वा च केलीरसं
दूरादेव विसारिणा परिमलेनालुब्धकं धावति॥ ४०

इसमें कलिका सुभद्रा है और भ्रमर अर्जुन है।

सुभद्रा ने अपने मन्मथ-शरविद्ध होने की चर्चा की तो अर्जुन ने अपने साथी से कहा कि तनिक धनुष तो इधर लाना इस दुष्ट मदन को मार ही डालूँ जो मेरी प्रेयसी को कष्ट पहुँचा रहा है।

मदनबाधा से पीडित सुभद्रा बकुलवृक्ष की डाल पकड़कर खड़ी हो गई। उधर से एक भौंरा निकला और सुभद्रा का श्वास-परिमल पाने के लिये उसके मुख पर आ झपटा। तब तो नायक दुष्यन्त की पद्धति पर इस प्रकार मन ही मन कहने लगा—

रे चञ्चरीक भवनानिचिरं सुतप्तं कीदृक् तपः कथय केषु च काननेषु।
सीत्कारकारि परिचुम्ब्य मुखाम्बुजं यत् बिम्बाधरामृतरसं धयसीदृमीयम् ॥

सुभद्रा के लिए शिशिरोपचार लाये गये। सुभद्रा ने उन्हें फेंक दिया, और कहा कि यह तो तपे तेल पर जलबिन्दु का काम करता है। वह मूर्च्छित हो गई। तभी कलहंसिका नामक सखी के कहने पर अर्जुन की खोज हुई। अर्जुन पास आये ही थे कि बुलाने के लिए नेपथ्य से आह्वान सुनाई पड़ा कि पुराधीश्वरी की वन्दना करने के लिए सुभद्रा को जाना है। वह आ जाये। सुभद्रा जाने लगी। तभी अर्जुन ने रथ मँगाया और उस पर सुभद्रा को बैठाकर उसका अपरहरण कर लिया। उसे रोकने के लिए वीर सज्जित हुए। तभी सुनाई पड़ा—

अयं किल धनञ्जयः सह सुभद्रया सस्पृहं
विवाहविधयेऽधुना विशति वासुदेवालयम् ॥ ५४

कृष्ण ने घोषणा कराई कि विवाहोत्सव का आयोजन धूमधाम से किया जाय। गीत-नृत्यादि के साथ विवाह हो गया।

रामदेव की वैदर्भी शैली रमणीय है। कहीं-कहीं संवादों में अनुप्रासिल बड़े समास हैं। यथा,

उद्भिन्नवकुसुममधुमत्तमधुकरमधुरझङ्कारमुखरः, शिखरचलितबालपल्लवा-प्राग्भारभासुरश्री रक्ताशोकपादपो दृश्यते।

सुभद्रा-परिणयन में कुछ बातें अप्रस्तुतप्रशंसा द्वारा नियोजित हैं। यथा,

१. चतुरवचने दर्पणतलवद्यथा प्रेक्ष्यते तथा तथा दृश्यते।
२. तरलयति हि महोदधिं कौमुदी।

यह रूपक उसी परम्परा में है, जिसमें प्रतिज्ञायौगन्धरायण है। जहाँ नायक स्वयं नायिका के घर में रहकर उससे प्रेम बढ़ाता है। इसके विपरीत कालिदास के विक्रमोर्वशीय आदि में नायिका ही नायक के घर में ला दी गई है।

रामाभ्युदय

रामदेव ने रामाभ्युदय का प्रणयन महाराणा मेरु के आश्रय में किया।[1] इसमें लङ्काविजय, सीता की अग्नि-परीक्षा और राम का अयोध्या लौटना वर्णित हैं। यह रूपक दो अङ्कों में पूरा हुआ है।

पाण्डवाभ्युदय

रामदेव का पाण्डवाभ्युदय दो अङ्कों में समाप्त हुआ है। इसमें द्रौपदी के जन्म और स्वयंवर की कथा प्रधान संविधानक हैं। इसकी रचना रणमल्लदेव के आश्रय में हुई।

---

१. रामदेव का रामाभ्युदय और पाण्डवाभ्युदय अभी तक अप्रकाशित हैं और लन्दन में इण्डिया आफिस में पड़े हैं।

अध्याय ४८

ज्योतिःप्रभाकल्याण

ब्रह्मसूरि ने चौदहवीं और पन्द्रहवीं शती के सन्धिकाल में ज्योतिःप्रभाकल्याण (विवाह) नाटक का प्रणयन किया ।[1] ब्रह्मसूरि नाट्याचार्य हस्तिमल्ल के वंशज हैं ।[2] इनका प्रादुर्भाव चौदहवीं या पन्द्रहवीं शती में हुआ । ब्रह्मसूरि के लिखे अन्य ग्रन्थ त्रिवर्णाचार और प्रतिष्ठातिलक प्रसिद्ध हैं ।

ज्योतिःप्रभाकल्याण का प्रथम अभिनय शान्तिनाथ के जन्ममहोत्सव के अवसर पर हुआ था । इसमें शान्तिनाथ के पूर्वभवसम्बन्धी अमिततेज विद्याधर और ज्योतिःप्रभा का कथानक है । इसकी कथावस्तु का आधार गुणभद्र के उत्तरपुराण की कथा है ।

कथानक

वासुदेव की पुत्री ज्योतिःप्रभा विवाह के योग्य थी । वासुदेव ने इस विषय की चर्चा बलदेव से की उन्होंने कहा कि तुम्हारी कन्या के लिए योग्य वर अमिततेज नामक विद्याधर है ।

अमिततेज के पिता अर्ककीर्ति और माता ज्योतिर्माला हैं । अर्ककीर्ति ने अमिततेज को पत्रिका दी जिसमें लिखा था कि वासुदेव अमिततेज को अपनी कन्या ज्योतिः प्रभा के स्वयंवर के लिए बुला रहे हैं । पत्रिकागत नायिका की प्रतिकृति देखकर नायक उस पर मोहित हो गया ।[3] उसने कहा—

---

१. इसका कुछ विस्तृत विवरण नाथूराम प्रेमी के जैन साहित्य और इतिहास के पृष्ठ ४९६ पर है । इस नाटक के प्रथम दो अङ्क और तीसरे अङ्क के तीन पृष्ठ बङ्गलौर से निकलनेवाली काव्याम्बुधि नामक संस्कृत मासिकपत्र के प्रथम अङ्क में हैं । कल्याण का अर्थ विवाह जैन संस्कृति में ही चलता है । यथा, हस्तिमल्ल का मैथिलीकल्याण ।

२. हस्तिमल्ल ब्रह्मसूरि के पितामह के पितामह थे । हस्तिमल्ल ने मैथिलीकल्याण तेरहवीं शती के अन्तिम चरण में लिखा । उन्हीं के प्रायः समकालीन विद्यानाथ ने प्रतापरुद्रकल्याण लिखा । इन दोनों कल्याण-संज्ञक नाटकों का प्रभाव ब्रह्मसूरि के ज्योतिःप्रभाकल्याण पर पड़ा है ।

३. पत्रिका के साथ सालभञ्जिका भेजी गई थी ।

विद्युत्प्रभाप्रतिकृतिः प्रकटीकरोति
स्वश्रीप्रभस्य मम दम्पतितांतयामा।
वर्धिष्णुरद्य मदनो हृदये मदीये
पित्रोः पुरः किमु वदामि कथं सगामि ॥ १.२०

अमिततेज ने अपने पूर्वजन्म की कथा बताई कि कैसे मुझे इससे जन्मान्तर का प्रेम रहा है, जब मैं रत्नपुरी में श्रीषेण था और मेरी प्रेयसी यही ज्योतिःप्रभा सिंहनन्दा थी। फिर स्वर्गलोक में वह विद्युत्प्रभा थी और मैं श्रीप्रभ था। अब यहीं आपकी भगिनी की पुत्री उत्पन्न हुई है।

माता ने अमिततेज का हरिद्रा, तैल और उबटन से प्रसाधन किया और अभिषेक तथा नीराजना की। वर-यात्रा के लिए इन्द्र ने अमिततेज के लिए हार-केयूर आदि भेजे।[1] बारात का प्रस्थान हुआ और सभी लोग विजयार्धपर्वत पर पहुँचे। अवरोध की स्त्रियाँ भी साथ ही गईं। नायिका के विरहज्वर की बात सुनकर नायक उसकी नगरी पौदनापुर की ओर शीघ्रता से जाने को उत्सुक हुआ। माता ने मङ्गल पढ़ा और सिर पर अक्षत छिड़के। वायुयान से वह उड़ पड़ा और पौदनापुर के परिसर में पहुँचे। जामाता को देखने ज्योतिःप्रभा की माता स्वयंप्रभा आई, जो नायक के पिता की भगिनी थी।

वासुदेव ने उन सबका स्वागत किया नायिका नायक को देखकर मूर्च्छित हो गई और नायक भी वाष्पमग्न हो गया।

समीक्षा

ज्योतिःप्रभाकल्याण नाटक की रचना नाटक के लक्षणों का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए की गई है।[2] इसकी प्रस्तावना में वीथी के अङ्गों का सन्निवेश करके अन्त में कहा गया है—

'इति समग्राङ्गप्रस्तावना'

---

१. उस समय वर को हार, केयूर, कोटीर, कंकण, कटिसूत्र, अंगुलीयक आदि आभरण पहनाये जाते थे।

२. यह निश्चित है कि ब्रह्मसूरि ने इस नाटक का नाम विद्यानाथ के प्रतापरुद्र-कल्याण के आदर्श पर ज्योतिःप्रभाकल्याण रखा है और उसी के आदर्श पर इसमें प्रतिपद नाटक के लक्षणों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उनके नाम दिये गये हैं। प्रतापरुद्रकल्याण में अनेक स्थलों पर शब्दावली पूर्णतया समान है। यथा, दोनों में प्रस्तावना में नटी कहती है—इरिस'''चरिआणुऊलो णट्टाडम्बरो होदु णवेत्ति—सअलसेण वेअद् मे हिअअम्। विद्यानाथ ब्रह्मसूरि से लगभग ५० वर्ष पहले हुए।

प्रस्तावना के पश्चात् इसमें विष्कम्भक आता है, जिसमें प्रतापरुद्रकल्याण के समान मुखसन्धि के उपक्षेप, परिकर, परिन्यास और विलोभन नामक अङ्ग क्रमशः सन्निविष्ट हैं और लेखक ने उनके नाम देकर परिभाषा द्वारा उन्हें प्रमाणित किया है।

विष्कम्भक में वासुदेव का पात्र होना समीचीन नहीं है, क्योंकि विष्कम्भक में केवल मध्यम और अधम कोटि के ही पात्र होने चाहिए और वासुदेव उत्तम कोटि के पात्र हैं। सम्भव है, उस युग में यह अनुचित न प्रतीत होता हो कि कोई पिता अपनी पुत्री का आङ्गिक लावण्य अभिधा से करे, किन्तु यह ठीक नहीं लगता कि वासुदेव अपनी कन्या के विषय में कहें—

लावण्याम्बुनिधिः स्मितोज्ज्वलमुखी गन्धेभकुम्भस्तनी। १.१३

नाटक में जैन जीवन-दर्शन की कहीं-कहीं झलक प्रस्तुत की गई है। यथा,

कायक्लान्तिः कामकेलौ कलास्वभ्यसनश्रमः।
सांसारिकं सुखं सर्वं मिश्रमेवावभासते॥ १.२४

इस युग में जैन-विचारधारा में एक परिवर्तन आया। पहले तो जैन-संस्कृति में गृहस्थाश्रम के प्रति उदासीनता और उपेक्षा का भाव था, इस युग में मनुस्मृति की आश्रम-व्यवस्था मानो स्वीकार कर ली गई। कवि का कहना है—

धर्मोऽर्थः कामो मोक्ष इति पुरुषार्थचतुष्टय-क्रमवेदी किमपि न त्यजति।

आधारो गृहाश्रमी सर्वाश्रमिणामाहारादिदानविधानात्। न चेदनगाराणां कथं कायस्थितिः।

शिल्प

ज्योतिःप्रभाकल्याण नाटक संस्कृत के उन विरल रूपकों में से है, जिनमें विष्कम्भक और प्रवेशकादि सूच्यांश को अङ्क आरम्भ होने के पहले रखा गया है।[1]

प्रथम अङ्क के पहले जो विष्कम्भक है, उसमें वासुदेव और बलदेव पात्र हैं। इनको विष्कम्भक का पात्र नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि विष्कम्भक में नाट्यशास्त्र के अनुसार ऐसे परिजनों का ही संवाद हो सकता है, जो उत्तम कोटि के पात्र नहीं हैं। अभिनवभारती में स्पष्ट कहा गया है—

परिजनकथानुबन्ध इति चतुर्णां लक्षणम्—
१. सूतमागधादेश्चूलिकाङ्गस्य।

---

१. इस प्रकार का दूसरा नाटक प्रतापरुद्रकल्याण है, जिसका आदर्श इस नाटक में प्रतिपद गृहीत है।

२. स्त्रीपुरुषादेर्वाङ्कमुखोपकरणस्य ।

३. चेटीकञ्चुकादेर्वा प्रवेशकविष्कम्भोपयोगिनः ।

अर्थात् विष्कम्भक में चेटी, कंचुकी आदि (इनके समकक्ष भी) पात्रों को रखना चाहिए।

ब्रह्मसूरि को शाब्दिक संगीत-प्ररोचन के प्रति चाव था । यथा,

चर्कर्तु दुन्दुभिध्वानं चर्कृतात् पूरलंकृतिम् ।
कारं कारं घोषणानि चरीकर्तु जिनार्चनम् ॥ १.२६

अध्याय ४९

धूर्तसमागम

धूर्तसमागम के रचयिता मैथिल ज्योतिरीश्वर कविशेखर के पिता धनेश्वर और पितामह रामेश्वर थे। ज्योतिरीश्वर को मिथिला के कर्णाट राजा हरसिंह का आश्रय प्राप्त था। हरसिंह चौदहवीं शती के प्रथम चरण में राज्य करते थे।

धूर्तसमागम एकाङ्की है।[1] इसके नायक विश्वनगर ढोंगी साधु (जंगम) का शिष्य दुराचार था। शिष्य कहीं अनङ्गसेना नामक वेश्या को देख कर मोहित था। उसने विश्वनगर में इसकी चर्चा की और उसे देखकर वे स्वयं उस पर लट्टू हो गये। दोनों में वह किसकी हो, इसका निर्णय अनङ्गसेना के सुझाव पर असज्जाति मिश्र पर छोड़ दिया गया। वे भी उस पर मोहित हो गये। उन्होंने निर्णय दिया कि अभिभोग गुत्थियों से प्रतिवद्ध है। इसको सुलझाने में समय लगेगा। तब तक अनङ्गसेना मेरे पास रहे इस बीच मिश्र महोदय का विदूषक अनङ्गसेना पर आसक्त हो चुका था। इस बीच मूलनाशक नामक नापित अनङ्गसेना से अपना ऋणशोधन करने आ पहुँचा। अनङ्गसेना ने कहा कि अब तो मैं मिश्र महोदय की हूँ। उनसे ऋण चुकवाओ। मिश्र ने अपने शिष्य के पैसों से नापित का ऋण चुकाया। मिश्र ने नापित से कहा कि मेरी सेवा करो। नापित ने उन्हें कस कर बाँध दिया और मिश्र विचारा विदूषक के छुड़ाये ही छूटा।

ज्योतिरीश्वर ने कामशास्त्र-विषयक ग्रन्थ पंचसायक की रचना की। मुण्डित प्रहसन तीन अङ्कों में इनकी रचना कहा जाता है।

---

१. इटली और फ्रान्स आदि योरोपीय देशों में इसके अनेक अनुवाद हुए। इसका प्रकाशन Arthologia Sanscritica में हो चुका है।

अध्याय ५०

नरकासुर-विजय

धर्मसूरि का नरकासुरविजय व्यायोग कोटि का रूपक है।[1] इनका नाम धर्मभट्ट, और धर्मसुधी भी मिलता है। संन्यास आश्रम लेने पर इन्होंने अपना नाम रामानन्द और गोविन्दानन्द सरस्वती भी रख लिए। कृष्णा नदी के तट पर पेद्दपुल्लिनई में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता पर्वतनाथ थे। बहुत दिनों तक इन्होंने काशीवास किया। साहित्य के विद्वान् होने के साथ ही इन्होंने वेदान्त और दर्शन का पाण्डित्य प्राप्त किया था। इनके कुटुम्ब में अनेक आचार्य विविध विषयों में निष्णात पण्डित थे।[2] धर्मसूरि का रचनाकाल पन्द्रहवीं शती का प्रथम चरण है।

धर्मसूरि ने इस व्यायोग के अतिरिक्त नीचे लिखे ग्रन्थों का प्रणयन किया—

१. कंसवध रूपक में प्रसिद्ध पौराणिक कथा है।

२. सूर्यशतक में सूर्य की स्तुति है।

३. कृष्णस्तुति में कृष्ण के पराक्रमों और सदाशयता का वर्णन है।

४. बालभागवत में कृष्ण के बालचरित का वर्णन है।

५. रत्नप्रभा में शाङ्करभाष्य की टीका है

६. हंससन्देश प्राकृत में दूतकाव्य है

७. साहित्यरत्नाकर में काव्यशास्त्र का अनुशीलन है।

साहित्यरत्नाकर में कवि ने रामचरित से उदाहरणात्मक पद्य बनाये हैं। इस व्यायोग का प्रथम अभिनय नीलगिरि पर शरदुत्सव में प्रातःकाल विद्वत्परिषद् के समक्ष हुआ था।

कथानक

वराह बनकर भगवान् ने पृथ्वी का उद्धार किया था। उस समय पृथ्वी के सहवास से सन्ध्या के समय उनका पुत्र हुआ जो सन्ध्याकालिक जन्म के कारण

---

१. इसका प्रकाशन उस्मानिया विश्वविद्यालय से १९६१ ई. में हुआ है।

२. कवि ने अपना और अपनी इस कृति का परिचय दिया है—

विख्यातेऽजनि पर्वतेश्वरसुधीः श्रीवारणस्यान्वये
षण्णां दर्शनकारिणां सुमनसामेकात्मलीलायितः।
धर्माख्येन मनीषिणा विरचितस्तत्सूनुजा तादृशो
व्यायोगो रसजृम्भितोऽस्ति नरकध्वंसाभिधो नूतनः॥ १३

असुर हो गया। उसने सभी लोकों को त्रास देना आरम्भ किया। उस समय वह प्राग्ज्योतिष नगर का राजा था।

नरकासुर के त्रास से इन्द्र तो अपनी पुरी छोड़कर भागना चाहते थे। कृष्ण उनको आश्वासन दिया कि मैं उसे मार डालता हूँ—

भीतिं विपक्षजनताजनितां जहीहि
देवेश मुञ्च नगरीं नगरीयसीं स्वाम्।
रक्षोबलेन सहसा सह सायकाग्नौ
हव्यं करोमि नरकं नरकण्टकं तम्॥ १८

उसने इन्द्रमाता अदिति का कुण्डल छीन लिया था। अग्नि आदि सभी लोकपाल भी उस असुर के कारण दुर्दशाग्रस्त होकर पराभूत थे।

कृष्ण ने प्रतिज्ञा की—

अपत्येभ्योऽपि भक्ता मे रक्षणीया विशेषतः।
तमूत्पन्नान्यपत्यानि भक्तास्तु तनवो मम॥ ३४

अपने रथ पर दारुक को सारथि बनाकर कृष्ण प्राग्ज्योष नगरी के निकट पहुँचे। वहाँ नरकासुर पहले से ही कृष्णप्रयाण-वार्ता सुनकर सन्नद्ध था। आकाश में अपनी नाचती हुई विद्याधर कामिनियों के साथ विमान पर इन्द्र भी विराजमान थे। उनके साथ नारद और इन्द्रपुत्र जयन्त भी थे।

लड़ाई हुई। आगे की सेना को कृष्ण ने मार भगाया तो मुर उनसे लड़ने लगा। नारद ने वर्णन किया कि कृष्ण और मुर का युद्ध कितना भयङ्कर था। अन्त में कृष्ण और नरक का युद्ध हुआ। नरक के आग्नेयास्त्र को कृष्ण ने वारुणास्त्र से शान्त कर दिया। नरकासुर मारा गया। कृष्ण ने धरणी देवी की प्रार्थना के अनुसार भगदत्त को उसके स्थान पर अभिषिक्त कर दिया। इन्द्र भी तब कृष्ण के पास द्वारका पहुँचे। वहाँ कृष्ण ने उन्हें अदिति का मणिकुण्डल लौटाया।

समीक्षा

कवि को अपनी लेखनी पर नाट्योचित नियन्त्रण नहीं था। वे अपनी कवितालहरी में व्यायोग के भारतीय विधानों को निमज्जित कर देते हैं और पाठकों को वर्णनात्मक आवर्त में मग्न करने में सफलता मानते हैं। इनका रमणीय वाग्वन शाब्दिक निनाद और काल्पनिक वैचित्र्य पाठक को इतना मुग्ध कर देता है कि वह यह विस्मृत किये बिना नहीं रह सकता कि मैं व्यायोग पढ़ रहा हूँ। पदे-पदे काव्य-लतिका उसकी गति को रोककर अपने में ही बाँधे रखती है।

रङ्गमञ्च पर कार्यानुकार (Action) के स्थान पर कोरे संवाद की घनाचरी

उचित नहीं है।[1] सर्वप्रथम दारुक कृष्ण से बताता है कि नारद ने नरकासुर का दुर्वृत्त बताया है। अच्छा रहा होता कि स्वयं नारद कृष्ण से बताते।

धर्मसूरि पदे-पदे यमकालङ्कारायोजन में कुशल हैं। यथा,

यमस्यापि यमः संवृत्तः।

अन्यत्र नरकासुर की सेना का वर्णन है—

सर्वेऽपि सिन्धुराः कुलगिरिबन्धुराः पद्मकसम्भिन्नाः प्रभिन्नाश्च निखिलाश्च गन्धर्वा सगर्वा आजानेयाः विनेयाश्च। इत्यादि—

व्यायोग के लिए वीररसोचित पदावली है—

टङ्कारैर्धनुषो हरेः श्रुतिपुटातङ्कावहैर्विद्विषां
भाङ्कारैर्भुवनक्षयाम्बुदरवाशङ्कावहैर्दुन्दुभेः।
भङ्कारैः करिणां समग्रसमराहङ्कारिणां रक्षसां
हुङ्कारैरपि मांसलः कलकलः संकाशते साम्प्रतम्॥ ४८

अपनी कल्पना से कवि ने गगन में पद्म, मनुष्य के सिर पर सींग और कछुओं की पीठ पर बाल लगा दिया है। यथा,

चक्रेपूच्चलितेषु कृष्णविशिखच्छिन्नेषु संलक्ष्यते
नाके पद्मपरम्पराकरटिनं दन्तेषु लीनेष्वपि।
मग्नेष्वंसतलेषु सम्प्रति नरा भ्राम्यन्त्यमी शृङ्गिणः
कंकोत्कृष्टशिरःकचाकुलतया कूर्मास्ततो रोमशाः॥ ४९

इस नाटक में रङ्गमञ्च पर कार्यानुसार का अभाव नारद के नृत्य से किंचित् कम किया गया है। कृष्ण की विजय देखकर वे सहर्ष नाचते हैं।

धर्मसूरि के संवादों में अप्रस्तुतप्रशंसा के योग से कतिपय स्थल विशेष प्रभाविष्णु हैं। यथा,

अलमेतेन गतजलसेतुबन्धनविचारेण

कहीं-कहीं अर्थ व्यञ्जना के द्वारा ऊह्य है। यथा,

वाङ्मनसयोः सरणिमतिवर्तते वासुदेवस्य हस्तलाघवम्।

कवि को शाब्दी क्रीडा का चाव था। उसने निरवसर्गमंग्रामसिंह का अर्थ ग्रामसिंह अर्थात् कुत्ता प्रस्तुत करके हास्य का सर्जन किया है। इसी योजना के अन्तर्गत एक ही श्लोक दो बार पढ़ने पर वाचनिक चमत्कार के द्वारा पहले प्रश्न और फिर उत्तर बन जाता है। यथा,

---

१. इन्द्र नारद से कहते हैं—तद् कथय सुरासुरमथनयोः युद्धकथाम्।

त्यक्तप्रभञ्जनाधम-माक्रान्तपुरन्दरालयं वीरम् ।
श्लाघन्ते किं पुरुषा चर्वितबर्हिमुखं मृधेष्वेवम् ।। ७३

धर्मसूरि ने इस व्यायोग के ९२ पद्यों में १३ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। अनुष्टुप् के अतिरिक्त सभी छन्द म से स तक के व्यञ्जनों से आरम्भ होते हैं। कवि का सबसे प्रिय छन्द शार्दूलविक्रीडित है जो वीररसोचित स्वभावतः है। यह २३ अर्थात् एक चौथाई पद्यों में प्रयुक्त है। स्रग्धरा २१ पद्यों में है और वसन्ततिलका १५ पद्यों में अन्य छन्द मंजुभाषिणी, मन्दाक्रान्ता, मालभारिणी, मालिनी, रथोद्धता, वंशस्थ, शालिनी और स्वागता हैं।

अध्याय ५१

वामनभट्ट का नाटयसाहित्य

पार्वतीपरिणय, शृङ्गारभूषण और कनकलेखा के रचयिता वामनभट्ट का परिचय प्रथम भाग में दिया जा चुका है। इनका रचनाकाल चौदहवीं का अन्तिम चरण और पंद्रहवीं शती का पूर्वार्ध है।

पार्वतीपरिणय

पार्वतीपरिणय में कुमारसम्भव की कथा का नाटकीय रूप पाँच अङ्कों में प्रस्तुत किया गया है। कवि के अनुसार इस नाटक में अधोलिखित गुण हैं—

सन्निधानस्य सामग्र्यं रसानां परिपुष्टता।
सन्दर्भ सौकुमार्यं च सभ्यानां रञ्जने क्षमम्॥ १.५

इस नाटक में पात्रों की संख्या कुमारसम्भव के पात्रों से अधिक है। नारद के कार्य कुछ बढ़ा दिये गये हैं। पार्वती की तपस्या का वर्णन है—

शेते या किल हंसतूलशयने निद्राति सा स्थण्डिले
वस्ते या मृदुलं दुकूलमवला गृह्णाति सा वल्कलम्।
या वा चन्दनपङ्कलेपशिशिरे धारागृहे वर्तते
पञ्चानामुदितोष्मणां हुतभुजां सा मध्यमासेवते॥ ४.२

वह पक्की मानवी नायिका बन गई है। यथा,

शश्वद् व्यापृतचन्दनाद्रिपवनस्पर्शं न सम्मन्यते
शय्यां पल्लवकल्पितां न सहते चन्द्रातपं निन्दति।
नो वा पद्मपलाशनिर्मिततनुप्रावारमक्षम्यते
सा नीहारशिलातले शृणु परं तापातुरा वर्तते॥ ४.५

पार्वती की कुमारसम्भवीय गरिमा लुप्तप्राय है।

पार्वती का सत्याग्रह है—परमेश्वरमेव पतिं लभेय। अन्यथात्रैव शिखरे कठिनैस्तपश्चरणैर्विलीना भवेयमिति।

पार्वती के विवाह को देखने के लिए मेरु, मन्दर, विन्ध्य आदि कुलपर्वत आये थे। पञ्चम अंक में कौशिकी और हिमवान् की पार्वती-प्रसाधन चर्चा की पद्धति वही है, जो कर्पूरमंजरी की द्वितीय जवनिका में विचक्षणा और राजा के संवाद में है।[1] यथा कर्पूरमंजरी में—

---

१. कर्पूरमंजरी २.१२–२२ पार्वतीपरिणय ५.११–२२

मरकतमञ्जीरयुगं चरणावस्य लम्भितौ वयस्याभिः।
भ्रमितमधोमुखपङ्कजयुगलं तदा भ्रमरमालया॥ २.१३

पार्वतीपरिणय में—

चरणकमलं तदीयं लाक्षाबालातपेन संवलितम्।
अध्यास्त भृङ्गमालावलिभिर्मणिखचितनूपुरव्याजात्॥ ५.१४

कवि का समुदाचारिक मानदण्ड कुछ विचित्र-सा ही लगता है, जिसमें वह हिमवान् से अपनी कन्या का वर्णन इस प्रकार कराता है[1]—

आभोगशालिकुचकुड्मलमायताद्या
वक्षोऽवकाशमभिवाञ्छति सन्निरोद्धुम्।
अप्यस्ति नास्ति वचसा विषयेऽवलग्ने
तन्वी समुद्वहति काचन रोमरेखा॥ १.१४

अभिनय की दृष्टि से इसका महत्त्व है रंगमञ्चीय विस्तृत निर्देशन में। जब शिव पार्वती के पास आते हैं तो रंगनिर्देशन एक साथ ही है—

१. जया विजया विष्टरमुपनयतः।
२. शङ्कर उपविश्य मार्गखेदं नाटयति।
३. पार्वतीसख्यौ मार्गखेदं नाटयतः।
४. सख्यौ वर्णिनं तालवृन्तेन वीजयतः।

ऐसा ही रंगमंचीय निर्देशन पंचम अङ्क में एक साथ ही है। यथा,

१. हिमवानर्घ्यमुपहरति।
२. शङ्करः सप्रणामं गृह्णाति।
३. हिमवान् सलज्जं मुखमवनमयति।
४. जामातरं पुरस्कृत्य हरिविरञ्चिमुखाः परिक्रामन्ति।

इस नाटक में एक अभिनव संयोजन है शिव का अपने हाथों से पार्वती के चरणों को अश्मा पर आरोपित करना—

बृहस्पतिः — शङ्कर, पार्वत्याः पादकमलं पाणिभ्यामश्मानमारोपयतु भवान्।

शृङ्गारभूषण

शिव के चैत्रयात्रा-महोत्सव में, विटों की परिषद् में शृङ्गारभूषण का अभिनय हुआ था।[2] इसकी प्रस्तावना में कवि ने अपना परिचय दिया है—

१. इसी युग के ब्रह्मसूरि ने वासुदेव से अपनी कन्या ज्योतिःप्रभा का ऐसा ही वर्णन १.१३ में किया है।

२. इसका प्रकाशन काव्यमाला १८९६ में हुआ है।

सौभाग्यस्य निधिः श्रुतस्य वसतिर्विद्यावधूनां वरो
लक्ष्म्याः केलिगृहं प्रसूतिभवनं शीलस्य कीर्तेः पदम् ।
निःसामान्यविकासया कवितया जागर्ति वत्सान्वयः
श्रीमान् वामनभट्टबाणसुकविः साहित्यचूडामणिः ॥ ५

इस वर्णन से प्रतीत होता है कि इसकी रचना कवि ने अपनी सुप्रौढावस्था में की होगी।

शृंगारभाण का कलात्मक आदर्श चतुर्भाणी के पादताडितक से प्रचित है। इसमें अप्रस्तुतप्रशंसा का योग मनोरम है। यथा,

सहजनिजचापलेन भ्रमरयुवा तत्र तत्र कृतकेलिः ।
कमलमुखि कस्य मान्यः कमलिन्या गाढरोपमवधूतः ॥ ३२

कहीं-कहीं लोकोक्तियों का प्रभविष्णु प्रयोग है। यथा,

१. काकोऽपि रटतु घटीयन्त्रं च प्रवर्तताम् ।
२. गन्तृच्छायां परित्यज्य गामिनीछाया ग्रहीतव्या ।
३. संग्रामे चापस्य ज्याभङ्गः ।
४. वृद्धवारविलासिनी वानरी भवति ।

कवि ने कन्दुक को विट रूप में देखा है। यथा,

निपत्य चरणान्तके करसरोजसन्ताडितः
पुनश्च सहसोत्पतन्नधरबिम्बलोभादिव ।
अधीरनयनं त्वया क्षणमिवायमालोकित-
स्तनोति मम कौतुकं पुलकितस्तनाश्लेषवान् ॥ ४०

इसमें वेश्याजननी की अवहेलना करने की सीख दी गई है—

आक्रन्दनं कामुककालरात्रिः करोतु तावज्जननी पिशाची ।
तथापि भूयादियमव्यपाया माकन्दसम्भोगरसानुभूतिः ॥ ४३

कथानक

वसन्तोत्सव के समारम्भ में विलासशेखर नामक विट अनङ्गमञ्जरी नामक वाराङ्गना का अभिनन्दन करने के लिए आता है। वह मार्ग अनेक वारवनिताओं से भाण की 'आकाशे' शैली में बातचीत करता है। वह वेशवाट का वर्णन प्रमुख है।

विटजगत् का एक दूसरा ही मानापमान का मानदण्ड होता है। पादताडितक की भाँति इसमें प्रौढोक्ति है—

आकुञ्चितेन हननं नयनाञ्चलेन
काञ्चीगुणेन दृढसंयमनं च बाह्वोः ।
सन्ताडनं बकुलमालिकया च लब्धं
भाग्यं कियद् विहितवान् धनमित्र एषः ॥ ४४

अपराधी को दण्ड दिया गया—

वाचालमंजीरमनोहरेण पादेन पद्मोदरकोमलेन ।
वक्षस्थले ताडनमाचरन्त्या वराङ्गि सोऽयं क्रियतामशोकः ॥ ४७

इसमें नृत्त, हिण्डोलागान और वसन्तडोला-विहार का वर्णन है। हिण्डोलागान-वर्णन यथा,

संवाहिकाकरसमीरितरत्नडोला-
पर्यन्तबद्धमणिकिंकिणिकानिनादैः ।
साकं समुल्लसति पंकजलोचनानां
संगीतमङ्कुरितपञ्चशरावलेपम् ॥ ५६

इस भाण में वाराङ्गनाओं के कुछ समय तक के लिए कलत्रीकरण कलत्रपत्र-अर्पण के द्वारा होता था। कलत्रपत्र का नमूना है—

स्वस्ति समस्तभुवनमोहने मन्मथनामनि संवत्सरे विजयनगरवासी माधवदत्तो वेत्रवतीदुहितुर्नवमालिकायाः कलत्रपत्रमर्पयति—

षण्मासानियमस्तु मे प्रणयिनी शश्वत्पणानां शतं
दास्यामि प्रतिमासमिन्दुधवलं धौतं दुकूलद्वयम् ।
माल्यं नूतनमन्वहं मृगमदं कर्पूरवीटीशतं
यच्चाभीप्सितमन्यथा पुनरसौ सर्वं च मे दास्यति ॥ ६८

वेशवाट में मेष, ताम्रचूड, मल्ल आदि का परस्पर युद्ध देखने को मिलता है। दो विटों की लड़ाई तलवार से भी होती थी और विजयी विट को किसी वाराङ्गना के ऊपर एकाधिकार मिलता था।

कनकलेखा

वामनभट्ट बाण ने कनकलेखा के चार अङ्कों में वीरवर्मा की कन्या कनकलेखा का व्यासवर्मा से विवाह-वर्णन किया है। ये दोनों विद्याधर थे और ऋषि के शाप से मानवलोक में अवतरित हुए थे।[1]

---

१. कनकलेखा की प्रति Triennical Cat. of Skt. Mss. के अनुसार मद्रास की Oriental Library में है।

अध्याय ५२

भर्तृहरि-निर्वेद

भर्तृहरि-निर्वेद के रचयिता हरिहर उपाध्याय को मैथिल ब्राह्मण कहा जाता है।[1] इनकी एक दूसरी रचना प्रभावती-परिणय है। मिथिला में हरिहर की एक रचना 'सुभाषित' सुप्रसिद्ध है। ऐसा लगता है कि हरिहर किसी राजा के आश्रय के चक्कर में नहीं पड़े, नहीं तो इस नाटक का प्रथम अभिनय किसी राजकीय नाट्यशाला में होता, न कि भैरवेश्वर की यात्रा में। हरिहर शैव थे, जैसा उनकी स्तुतियों से प्रकट होता है।

हरिहर कब हुए—यह अभी तक सुनिश्चित नहीं हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कवि को गोरखनाथ के पश्चात् और वल्लालसेन के पहले रखना समीचीन है। ग्यारहवीं-बारहवीं शती के योगी गोरखनाथ इसके प्रधान पात्र हैं।[2] वल्लालसेन के भोजप्रबन्ध में भोज द्वारा लिखा पत्र इस नाटक के एक पद्य के अनुरूप है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि सेन ने अपने पद्य को भर्तृहरि-निर्वेद के आधार पर बनाया है। वल्लालसेन सोलहवीं शती के उत्तरार्ध में हुए। गोरखनाथ और वल्लालसेन के बीच हरिहर को चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी में रखा जा सकता है।

भर्तृहरि-निर्वेद के कथानक के अनुसार राजा भर्तृहरि की पत्नी भानुमती अतिशय भावुक थी। उसने अपने पति से कहा कि मैं तो आपके बिना एक क्षण भी नहीं जी सकती। विधवा का चिता पर जलना कोई बड़ी बात थोड़े ही है। वस्तुतः प्रेम तो वह है कि विरहानल में मरे, चितानल की अपेक्षा न रखे। राजा ने उसके प्रेम की परीक्षा करने के लिए मृगया के लिए बाहर जाने पर झूठे ही समाचार भिजवा दिया कि राजा को वन में किसी हिंस्र जन्तु ने खा डाला। यह सुनते ही रानी मर गई। रानी को श्मशान पहुँचाया गया। इधर राजा उसका मरना सुनकर अचेत हो गया। पत्नी के वियोग में वह विक्षिप्त-सा हो गया। उसे यह सह्य नहीं था कि रानी चिता पर जलाई जाय। उसने स्पष्ट कह दिया—

---

१. भर्तृहरिनिर्वेद का प्रकाशन काव्यमाला २९ में हुआ है।

२. गोरखनाथ की तिथि भी सन्देह-परिधि से सर्वथा बाहर नहीं है। इन्हें डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्यारहवीं-बारहवीं शती का मानते हैं। हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ ५२।

मामेवं विधिहतमित्यपोह्य यूयं चेद् वह्नौ वपुरथ दित्सथ प्रियायाः ।
संरोद्धुं हृदयमपारयन्निदानीं जानीत ध्रुवमहमत्र संप्रविष्टः ॥ २.१६

यह कहकर वह चिता की ओर दौड़ा । उसने कहा कि मैं अपनी रानी को गोद में रखकर उसी का ध्यान लगाये हुए मर जाऊँगा तो अगले जीवन में वही मेरी पत्नी पुनः मिलेगी ।

उधर से एक योगी विलाप करते निकला कि उसकी थाली टूट गई । राजा उसके पास पहुँचा और उससे कहा कि इस छोटी वस्तु के लिए क्यों रो रहे हो ? योगी ने कहा—वह बहुत गुणवती थी—

करीषानुच्चेतुं दहनमुपनेतुं मुहुरपः
समाहर्त्तुं भिक्षामटितुमथ तां रक्षितुमपि ।
पिधातुं पक्तुं चाशितुमथ च पातुं कचिदथो-
पधातुं नः पात्री चिरमहह चिन्तामणिमभूत् ॥ ३.५

योगी ने थाली-विनाश की कथा वैसी ही गढ़ी कि जैसी राजा के पत्नी-वियोग की थी । यथा, मैंने थाली की दृढ़ता की परीक्षा के लिए उसे पटका और वह टूट गई । योगी थाली के टुकड़ों को छाती पर रखकर रो रहा था कि इसे लिए-लिए मैं मरूँगा तो अगले जन्म में यह मुझे पुनः मिलेगी । राजा ने कहा कि दूसरी सोने-चाँदी की थाली ले लो और उसे भूल जाओ । योगी ने कहा कि यदि मिट्टी की थाली ने इतना कष्ट में डाला तो फिर सोने की थाली क्या करेगी ? योगी ने कहा कि अब तो मरना ही एकमात्र उपाय है । राजा ने उसे समझाया-बुझाया तो योगी ने उससे कहा कि हमें तो उपदेश देते हो, तुम मृत पत्नी के लिए क्यों रो रहे हो ?

राजा की समझ में बात आ गई । उसने समझ लिया कि योगी गोरखनाथ हैं । उसने अपने को योगपथ पर प्रवृत्त कर लिया । ध्यान लगाने से राजा को विज्ञान-सुखास्वाद की प्राप्त हुई ।

राजा के मन्त्री देवतिलक ने देखा कि राजा प्रसन्न हैं । उसने राजा से कहा कि अब तो अपनी रानी को जलाने की आज्ञा दें । राजा ने कहा कि अब मुझे किसी से कोई आत्मीयता नहीं रही । तुम और राजकुमार जो चाहें करें । मन्त्री ने कहा कि अपने संचित धन, पृथ्वी, राजपद, राजलक्ष्मी, रोते हुए बान्धवों आदि का ध्यान करते हुए आप लोकपराङ्मुख न हों । राजा प्रत्येक की क्रमशः व्यर्थता सिद्ध करते अपने निश्चय पर दृढ़ रहा ।

मन्त्री ने गोरखनाथ की सहायता से नायक को गृहस्थाश्रम में बाँधे रखने का उपक्रम किया । गोरख ने कहा, अच्छा अब भानुमती को योगबल से जीवित कर देता हूँ । उससे मिलने पर राजा का वैराग्य दूर हो ।

भानुमती जीवित हो उठी। उसने नायक से पुनः प्रणय की चर्चा की, किन्तु नायक ने उसे पास नहीं आने दिया। उसका मत था—

म्रियमाणे मयि भवती प्राणेन वियुज्यते नियतमेव।
प्रतिकारमत्र योगादजरामरभावमहमीहे॥ ५.१

अर्थात् मेरे मरने पर तुम मर जाती हो। अब मैं अमर बनकर इससे छुटकारा पाऊँगा।

रानी ने चाहा कि भर्तृहरि जनक की भाँति घर पर रहकर योग साधना करें। राजा ने कहा कि कहाँ जनक और कहाँ मैं? रानी ने उसका उत्तरीय पकड़ लिया, उनके हाथ पकड़ लिये और उनके पैर पर गिर पड़ी, पर राजा टस से मस नहीं हुआ। मन्त्री भी मनाकर हार गया। अन्त में राजकुमार को लाया गया कि इसकी रक्षा कौन करेगा? राजा ने कहा कि इन सब चक्करों में मैं नहीं पड़ता। उसने भर्तृहरिशतक के अनुरूप ही कहा—

विज्ञानेन विकृष्य निष्ठुरतरं नीये परब्रह्मणि। ५.२५

इस नाटक के कथानक पर दसवीं शती के क्षेमीश्वर के चण्डकौशिक का प्रभाव कम से कम उस अंश पर प्रतीत होता है, जिसमें राजा अपनी पत्नी की परीक्षा लेता है। चण्डकौशिक से भी अधिक प्रभाव इस नाटक के कथानक पर अश्वघोष के सौन्दरनन्द का है। जिस प्रकार सौन्दरनन्द में नायक अपनी पत्नी से विरहित होकर रोता-धोता है और फिर आनन्द से उपदेश ग्रहण करके योगमार्ग से मुक्ति-प्रवण होता है। उसी प्रकार इस नाटक में भर्तृहरि अपनी पत्नी में आसक्ति गोरखनाथ के उपदेश से छोड़ देता है और अन्त में योगमार्ग से मोक्ष-प्रवण होता है।

भर्तृहरिनिर्वेद पर 'भगवदज्जुकीयम्' का प्रभाव परिलक्षित होता है। दोनों में नायिका मर कर पुनरुज्जीवित होती है। दोनों में यौगिक विभूति का प्रदर्शन किया गया है। दोनों में व्यक्तित्व का परिवर्तन दिखाया गया है—भगवदज्जुकीय में वेश्या और संन्यासी एक दूसरे का व्यक्तित्व प्राप्त कर लेते हैं और भर्तृहरिनिर्वेद में नायक के व्यक्तित्व का सर्वथा परिवर्तन हो जाता है। दोनों में मरी हुई नायिकायें जीवित हो उठती हैं।

भर्तृहरिनिर्वेद का परवर्ती साहित्य पर भी प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा,

न्याराज्यान्नहुषः पपात चकमे चन्द्रोऽपि गुर्वङ्गनाम्
इन्द्रो गौतमगेहिनीमपि गतः पातालमूलं बलिः।
मग्ना एव चिरं महोर्मिषु परं संसारवारांनिधे-
रेनामङ्कचरीं विधाय कमलां के नाम पारं गताः॥ २.१३

इसकी छाया भोजप्रबन्ध के नीचे लिखे पद्य पर प्रत्यक्ष है—

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते
नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति ॥ ३८

निस्सन्देह भर्तृहरिशतक कथानक की दृष्टि से एक नई दिशा में प्रवर्तित काव्य है, जिसमें अन्य नाटकों में उपात्त लौकिक विभूतियों के चाकचक्य को निस्सार सिद्ध किया गया है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भर्तृहरिनिर्वेद संस्कृत के उन विरल नाटकों में से है, जिनमें किसी नेता का चारित्रिक विकास दिखाया गया है। इसमें भर्तृहरि को श्रृङ्गार-परायण राजा से उठाकर शान्तिपरायण योगी बनाकर चित्रित किया गया है।

भर्तृहरिनिर्वेद में शांति रस प्रधान है। उसमें शान्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित है—

श्रृङ्गारादिरनेकजन्ममरणश्रेणीसमासादितै-
रेणी दृक्प्रमुखैः स्वदीपकसखैरालम्बनैरर्जितः।
अस्त्येव क्षणिको रसः प्रतिपलं पर्यन्तवैरस्यभू-
र्ब्रह्माद्वैतसुखात्मकः परमविश्रान्तो हि शान्तो रसः ॥

हरिहर की रचना में अनेक पूर्ववर्ती कवियों की शैली की छाया दृष्टिगोचर होती है। यथा,

पीयूषस्य घटीमपि श्रुतिपुटी वाचा तवाचामति ॥ भर्तृ १.८
एषा पञ्चवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पञ्चावटी ॥ हनुमन्नाटक ३.२२

दोनों नाटकों में 'टी' का सामञ्जस्य छान्दसिक समता के कारण विशेष उल्लेखनीय है। इसमें आद्यन्त प्रायः सर्वत्र ही शब्दालंकारों की निर्झरिणी हनुमन्नाटक की पद्धति पर सम्पूरित है। सूक्तियों से संवाद की प्रभविष्णुता कतिपय स्थलों पर द्विगुणित की गई है। यथा,

न युक्तमेतत् कालसर्पदंशेन वृश्चिकदंशदोषापनयनम्।
स्वयं निर्मायान्धुं बत हतधियास्मिन्निपतितं
मया व्यादायास्यं स्वयमहिपतेश्चुम्बितमिदम्।
कृपाणेन स्वेन प्रहतमिदमात्मन्यकरुणं
स्वयं सुप्त्वा सद्मन्यहह निहतो द्वारि दहनः ॥[1]

स्वरों का अनुप्रास भी कवि का समीहित था। यथा,

सहजेन जरापराहता विधुता स्वामिशुचा पुनस्तनुः ॥ ३.१

---

१. बुद्धचरित में समकक्ष पद्य है—
अथ मेलुलुरं बभाषे यदि नास्ति क्रम एष नास्मि वार्यः।
शरणाज्ज्वलनेन दह्यमानान्न हि निश्चिक्रमिषुः क्षमं ग्रहीतुम् ॥ ५.३७

इस पद्य में आ की पुनरावृत्ति सांगीतिक है। संगीतपरायणता अन्यत्र भी निदर्शित है। यथा,

अधिकाधिकानि गुणतो नितरामितराणि सन्तु सुलभानि शतम्।
प्रणयेन वस्तु मनसस्तु परं परतापकारि किमपि क्रियते ॥ ३.१०

अर्थान्तरन्यासों से संवादों में प्राञ्जलता के साथ प्रामाणिकता निखरी है। यथा,

परोपदेशे पाण्डित्यमिदं मूढस्य गीयते।
तमःसमाश्रितस्येव दीपस्यान्यप्रकाशनम् ॥ ३.१५

अन्योक्तियों और लोकोक्तियों से भी उपर्युक्त गुणाधान शैली में समाविष्ट किया गया है। यथा,

साधूद्धृतोऽहमस्मादन्धकूपात्।

इसमें अप्रस्तुतप्रशंसा की चारुता है।

यमक की माला से कतिपय स्थलों पर भर्तृहरि-निर्वेद समलंकृत है। यथा,

तप्तं नैव तपो मया हतधिया मत्तः प्रतप्ताः परे
कोपा एव धनैर्भृता न च दरीकोषाः पुनः संश्रिताः।
दोपा एव वताजिताः शमवता नीता न दोपा सुखं
व्यामोहोऽभवदच्युतः परमसावाराधितो नाच्युतः ॥ ४.६

हरिहर की शैली सचित्र कही जा सकती है। यथा,

चित्रे चित्रमरङ्गवर्तिकमिदं निर्भित्तिकं शिल्पिनः
संकल्पस्य विकल्पनैर्विरचितं चिद्व्योमपट्टे जगत्।
दीर्घस्वप्नमिदं वदन्ति सुधियः केऽपीन्द्रजालं पुनः
प्रोचुः केचिदथान्तरिक्षनगरीमेवापरे मेनिरे ॥ ४.२६

इस नाटक में संसार की असारता का प्रत्यक्षीकरण किया गया है। कवि का सन्देश है—

संकल्पात् सकलापि संसृतिरभूदेपा विशेपान्ध्यभू-
रस्याश्चेद् विनिवृत्तिमिच्छसि तदेतन्मूलमुन्मूलय।
नावच्छिन्नमनेहसा न च दिशा यद् ब्रह्म सच्चिन्मयं
तत्त्वं तत्त्वमिदं विचिन्तय परानन्दं पदं प्राप्स्यसि ॥ ३.१६

यदा मोदो मोहं दिशि दिशि दिशत्यामुकुलनात्
फलानामास्वादो जनयति यदीयो निपतनम्।
इहैवासां सद्यो वनविपलतानामिव मया
निरासादाशानां नितमहह मोक्षस्तु परतः ॥ ३.१७

विपयेभ्यः समाहृत्य मनः शून्ये निवेशय।
स्वयमानन्दमात्मानं स्वप्रकाशमुपैष्यसि ॥ ३.१८

अध्याय ५३

उन्मत्तराघव

उन्मत्तराघव नामक प्रेक्षणक के रचयिता विरूपाक्ष हैं।[1] विरूपाक्ष स्वयं विजयनगर के राजा थे। इनका शासनकाल पंद्रहवीं शती का आरम्भिक युग है। विजयनगर के अनेक राजा स्वयं तो विद्वान् कवि थे ही, उन्होंने असंख्य विद्वानों को समाश्रय प्रदान करके साहित्य, धर्म, दर्शन आदि विषयों के अगणित विषयों का ग्रन्थ-प्रणयन कराया। विरूपाक्ष-रचित दूसरा नाटक नारायणी-विलास मिलता है।[2]

महाराज विरूपाक्ष महान् विजेता और कुशल प्रशासक थे। उन्होंने १३६५ ई० में सिंहल द्वीप की विजय करके कर्णाट, तुण्डीर, चोल, पाण्ड्य, सिंहल आदि देशों पर राज्य किया और तुण्डीर देश में मरकतपुर में अपनी राजधानी बनाई थी।

उन्मत्तराघव का प्रथम अभिनय अरुणाचल पर तिरुवण्णामलै स्थान पर शिव के रथोत्सव के अवसर पर हुआ था।

प्रेक्षणक सुप्रतिष्ठित उपरूपक था। काव्यशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में इसकी परिभाषा मिलती है। शृङ्गार-प्रकाश और नाट्यदर्पण में कामदहन तथा भावप्रकाश में त्रिपुरमर्दन, वालिवध तथा नृसिंहविजय नामक प्रेक्षणकों का उल्लेख है। यद्यपि इन प्रेक्षणकों में और परिभाषानुसार भी आरभटी वृत्ति, वीर या रौद्र रस और युद्धसम्बन्धी कथानक होना आवश्यक प्रतीत होता है। तथापि उन्मत्तराघव नामक भास्कर और विरूपाक्ष के प्रेक्षणकों में युद्ध और वीर की गाथा नहीं है, अपितु विप्रलम्भ शृङ्गार है।

उन्माद शृङ्गार का संचारीभाव है। इसका लक्षण है—

> अप्रेक्षाकारितोन्मादः सन्निपातग्रहादिभिः
> अस्मिन्नवस्था रुदितगीतहासासितादयः ॥

सिंहभूपाल ने प्रकृत उपरूपक से सुसङ्गत उन्माद का लक्षण दिया है—

> अतस्मिंस्तदिति भ्रान्तिरुन्मादो विरहोद्भवः।

---

१. यह उन्मत्तराघव नामक तीसरी रचना है। प्रथम उन्मत्तराघव की चर्चा हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में है जो बारहवीं शती से पहले लिखा गया। दूसरा भास्कर का लिखा हुआ चौदहवीं शती का है। यह तीसरा उन्मत्तराघव पन्द्रहवीं शती की रचना है। इसका प्रकाशन अडयार लाइब्रेरी मद्रास से हुआ है।

२. यह मद्रास के शासकी हस्तलिखित ग्रन्थागार में वर्तमान है।

हेमचन्द्र के अनुसार इसमें अकारण ही स्मित, रुदित, गीत, नृत्य, प्रधावित, असम्बद्ध प्रलाप आदि की विशेषता होती है। उन्मत्तराघव में सिंहभूपाल और हेमचन्द्र के लक्षणों का उदाहरण समीचीन है।

उन्मत्तराघव में सीताहरण की कथा प्रायशः वाल्मीकि-रामायण के अनुरूप है, किन्तु सीताप्राप्ति की कथा में कुछ नवीनता है, जिसके अनुसार मायामृग मारीच के प्रपंच से सीताहरण के पश्चात् राम उन्मत्त होकर वन में घूम-घूमकर सीता के वियोग में प्रकृति में सीता का दर्शन करते हुए और सीता के विषय में पूछते हुए प्रलाप करते हैं। इस बीच लक्ष्मण अकेले सुग्रीव, हनुमान् आदि की सहायता से सेतुबन्ध करके रावण को जीतकर पुष्पक विमान से सीता को लाकर पुनः राम से मिला देते हैं। इस कथा के अनुसार राम को लङ्का नहीं जाना पड़ता।

विरूपाक्ष ने अपनी कृति की विशेषता बताई है—

नूनमस्य मधुराणि सुभाषितान्यानन्दबन्धचरितं प्रभो रघूणाम्।

अर्थात् इसमें आह्लाददायक रामचरित सुभाषितों में सन्निविष्ट है। कवि ने अपनी कल्पना से रंग-बिरंगे चित्र खींचकर अपनी रचना को सँजोया है। यथा, मृगमारीच की वर्णभङ्गिमा है—

मरकतरुचा जघाकाण्डेन शाद्वलयन्महीं
कुवलयमयीराशाः कुर्वन्नपाङ्गविवर्तनैः।
गगनमखिलं गात्रोद्योतैः सविद्युदिवावहन्
कनकहरिणः कोऽयं मेरोः किशोर इवागतः॥ ११

कवि ने कहीं-कहीं कालिदास और भवभूति की रचनाओं से अनुहरण किया है। यथा,

पुरस्तादाधावत्यतिजवमुदस्ताग्रचरणो
विवृत्तग्रीवः सत्रसकृदयमालोकयति माम्।
क्षणाद् दृश्यः पार्श्वे निवसति करग्राह्य इव मे
क्षणं भूयो दृष्टेरपि न विषयं याति हरिणः॥ १६

इसमें अभिज्ञानशाकुन्तल के मृगया-वर्णन का सादृश्य है।

करधृतनलिनीदलातपत्रो मृदुतरलीकृतकर्णतालवृन्तः।
चलदलिवृन्दचारुगीतनादः प्रियकरिणीमनुवर्तते गजेन्द्रः॥ ६२

इस पर उत्तररामचरित की गजेन्द्रलीला की छाया है।

प्रकृति के प्रणयात्मक सन्दर्भों में गीतितत्त्व उच्छलित है। यथा,

इयं हि नवमालिका तरुरयं नवश्चम्पको
यथोचितमिमावुभौ दयितया कृतौ दम्पती।
मिथः सति समागमे मधुमिषाद्वधूः स्वेदिनी
पतिः पुलकजालकं वहति कोरकव्याजतः॥ ३६

अन्यत्र भी गीततत्त्व है—

तस्या गण्डतले मया विलिखिता पत्रावली धातुना
वासन्तीं पुलके सति स्मितवतीं सा वंचयन्ती सखीन्।
सीता निर्झरसारुतानपदिशन्त्यभ्यर्णरत्नस्थले
संक्रान्तप्रतिमं निरीक्ष्य च मुखं स्विन्नं भृशं लज्जिता॥ ६१

वर्षा ऋतु में भी सीता ने हंसमिथुन के लिए श्रृंगारित वृत्तियों के योग्य उद्दीपन विभाव की व्यवस्था कर दी थी—

अम्भोजं वदनेन सौरभभृता बिम्बाधरच्छायया
बन्धूकं कुसुदं स्मितेन शफरव्यावर्तनं चक्षुषा।
आलापैः शुकजल्पितं स्तनतटीहारेण तारावलिं
सा वेलास्वपि वार्षिकीषु युवयोर्निमाय तुष्टिं व्यधात्॥ ७४

लता-वृक्ष, पशु-पक्षी आदि चराचर में श्रृंगारदर्शन की दिशा को कवि ने अपनी प्रतिभा से विशेष आलोकित किया है। कहीं-कहीं कभी की वैदर्भी रीति अनुप्रास-मण्डित है। यथा,

अन्योन्यदत्तमृदुजग्धमृणालभङ्गमुत्पक्ष्मलप्रसृतपक्षमकृताङ्कपालि।
कन्दर्पकेलिकलकूजितकान्तमेतदाभाति हंसमिथुनं सविलासमग्रे॥ ७२

कवि ने कथा का जो नया रूप विन्यस्त किया है, वह इस प्रकार है—

वालिन्युन्मूलिते द्राक् प्रमुदितमनसः सूर्यपुत्रस्य साह्याद्
बद्धे सेतौ कपीन्द्रैर्लवणजलनिधिं लक्ष्मणो लंघयित्वा
हत्वा पौलस्त्यमाजौ सहरजनिचरैः सेन्द्रजित्कुम्भकर्णं
देवीमादाय भूयस्तव सविधमसावागतः पुष्पकेण॥ ८६

इस उपरूपक में पद्य का बाहुल्य है। भाण की शैली पर रंगमंच पर इसमें एक ही पात्र राम प्रश्न और उत्तर देते हुए प्रेक्षकों को रसनिर्भर करते हैं। वास्तव में यह प्रेक्षणक अनेक दृष्टियों से अनूठा है और सफल है।

अध्याय ५४

गङ्गदास-प्रतापविलास : नाटक

गंगदास-प्रतापविलास ऐतिहासिक नाटक है।[1] इसका इतिवृत्त लेखक ने सम-सामयिक घटना के आधार पर पल्लवित किया है। इस दृष्टि से गुर्जर प्रदेश के नाटकों में इसका सर्वाधिक महत्व है। इसमें अहमदाबाद के सुल्तान मुहम्मद द्वितीय तथा चांपानेर के राजा गङ्गादास के संघर्ष की कथावस्तु है। इनका युद्ध पञ्चमहल जिले में पावागढ पर्वत के प्रसिद्ध दुर्ग के लिए हुआ था। गङ्गादास की पत्नी का नाम प्रताप देवी था। सम्भवतः इसी गङ्गाधर ने मण्डलीक महाकाव्य की रचना की थी, जिसकी कथावस्तु जूनागढ़ के अन्तिम हिन्दू राजा के जीवनचरित का आख्यान है।

नाटक के रचयिता गङ्गाधर गङ्गदास की राजसभा के कवि थे। इसका प्रथम अभिनय चांपानेर में महाकाली के मण्डप में हुआ था। इस नाटक की रचना १४५० ई० के लगभग हुई, क्योंकि गङ्गदास की जिस विजय के उपलक्ष में नाटक का अभिनय हुआ, वह घटना १४४९ ई० की है। गङ्गाधर मूलतः कर्नाटक के निवासी थे। वे विजयनगर के राजा प्रतापदेवराज की सभा से गुजरात में आकर सर्वप्रथम अहमदाबाद में मुहम्मद द्वितीय की राजसभा को अलंकृत करते रहे। यदि उनको मण्डलीक महाकाव्य का रचयिता मान लेते हैं तो उनका जूनागढ में कुछ समय तक रहना सम्भाव्य है।

कथावस्तु

मुहम्मद ने गंगदास से कन्या माँगी थी। गंगदास ने उसे कठोर अपमानजनक प्रत्युत्तर दिया। युद्ध की तैयारी होने लगी। पहले महाकाली की पूजा पुरोहितों ने गंगदास की विजय के लिए की। वैदिक विधि से हवन होने लगा। तभी राजा उधर आया। उसने काली की स्तुति की और काली ने उसे अपने प्रसाद रूप में एक हार दिया। वहीं महानवमी के दिन महारानी भी पूजा करने के लिए आनेवाली थीं। उनकी प्रतीक्षा करते हुए राजा और विदूषक सभामण्डप में नृत्य और संगीत देखने लगे। तभी एक नाटककार वहाँ आया।[2] उसने अपना परिचय इस प्रकार दिया—मैं कर्णाट देश से आया हूँ। विजयनगर में प्रतापदेवराय के पश्चात् उसका पुत्र

---

1. इसका प्रकाशन ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट, बरौदा से १९७३ में हुआ है।

2. इस नाटककार का एक नाम बहुरूप इस नाटक में मिलता है। यह आधुनिक युग का बहुरूपिया है।

मल्लिकार्जुन राजा हुआ। उसने अपने पिता के दो शत्रुओं—दक्षिण (बीदर के बहमनी) के सुलतान और गजपति (उड़ीसा) के राजा को परास्त किया। किसी समय मल्लिकार्जुन ने अपनी राजसभा के कवि गङ्गाधर के विषय में पूछा कि वे कहाँ चले गये ? उन्हें बताया गया कि 'यहाँ से सम्मानित होकर दिग्विजय करते हुए वे गुजरात के सुलतान के यहाँ छः मास रहकर पावाचल के राजा गंगदास के यहाँ पहुँच चुके हैं। उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर गंगदास ने उन्हें अपने चरितविषयक नाटक की रचना करने के लिए कहा। गंगाधर ने तत्सम्बन्धी लोकोत्तर काव्य की रचना की। गंगदास को चिन्ता हुई—'उस नाटक का अभिनय करने के लिए नाट्यकार होना चाहिए।' जब राजसभा में यह चर्चा चल रही थी, तब मैं भी वहाँ था और मैं उस नाटक का अभिनय करने के लिए यहाँ आ गया हूँ। मैं आपके युवराजत्व से लेकर अभिनय का समारम्भ कर रहा हूँ।

युवराज राजकुमारी को अपने घोड़े की पीठ पर बिठाकर उसका अपहरण कर रहा है। वे विश्राम करने के लिए रुके। पद्मिनीपत्र में जल पिया और अपनी प्रेमगाथा में निमग्न हो गये। राजकुमार ने कहा—

त्वदेकमनसो मुग्धे न मे स्फुरति किञ्चन।
चिदानन्दकलातत्त्वभाविनो योगिनो यथा॥ २.३६

उनकी अनुराग-गाथा सुनने के समय राजा को महारानी के विनोदशुक का प्रवचन सुनाई पड़ा, जब वह कनकपंजर से उड़कर निकटवर्ती बकुलवृक्ष की डाल पर बैठा हुआ किसी चेरी के द्वारा महारानी को दिये हुए उपर्युक्त नाट्यकार के अभिनय सन्देश दुहरा रहा था।

रानी को सन्देह हुआ कि राजा को अपनी किसी पुरानी नायिका के प्रति आकर्षण तो नहीं हो रहा है। इस स्थिति में उसने महाकाली की पूजा की। महाकाली ने उसे चरणपूजाकमल दिया। तब दोपहर होने पर वह चेटी के साथ राजकुल में लौट गई।

राजा ने विदूषक से बातचीत की कि महारानी रुष्ट हैं। राजा के वियोग में वे विरहोपचार के द्वारा आश्वस्त की जा रही हैं। राजा और विदूषक छिपकर रानी के मनोभावों को सुनने लगे। रानी ने कहा—

यो मामनामन्त्र्य किमपि न करोति सोऽपि आर्यपुत्रः कर्णाटनाट्यकारेण बहुरूपं कृत्वा चित्तस्थितयुवतिरूपाभिनयं दृष्ट्वा तामेव चिन्तयति।

विदूषक के परामर्श से राजा ने उन्हें निकट जाकर प्रसन्न किया।

रणचङ्ग नामक वीर ने सुलतान की सेना के पदाधिकारी नरोज को मार डाला और मुनीर की सेना के ५००० घुड़सवारों को समाप्त किया। उस समय गंगदास

को वीरमभूप और नानभूप के पत्र मिले कि आप मुहम्मद की अधीनता स्वीकार कर लें। इन दोनों ने अपनी कन्यायें मुहम्मद को दी थीं। पत्र में लिखा था कि इस सुलतान के पिता ने मुग्गलराज का राज्य लिया था। आप समय की गति पहचानें गंगदास ने पत्रोत्तर दिया—

> म्लेच्छाय कन्यां ददतो स्वस्य जीवनहेतवे।
> नान-वीरमयोः कस्य सम्पर्को नोपजायते ॥ ५.२

पत्रोत्तर पाकर सुलतान-पक्ष में खलबली मच गई। सुलतान ने दाढ़ी पकड़कर कहा—यह मेरा अपमान है, तुम्हारा नहीं। सेना ने प्रयाण करके शीघ्र पावाचल दुर्ग पर आक्रमण किया। गंगदास के सेनापति रणधीर ने मुहम्मद की नर्तकियों को पकड़कर राजा के पास पहुँचाया तो उदारतावश राजा ने उन्हें पुरस्कार देकर ससम्मान छोड़ दिया।

गंगदास स्वयं युद्धभूमि में उतरा। रंगमंच पर सुलतान भी सैन्यसहित आ गया। गंगदास को देखकर सुलतान की सेना भाग चली। सुलतान ने फिर दुर्ग पर आक्रमण किया। दुर्ग के ऊपर से पत्थरों की वर्षा हुई और सुलतान का हाथी चूर-चूर हो गया। वह भाग चला। पहले से ही दुर्ग की आन्तरिक स्थिति का ज्ञान सुलतान को चर से विदित हो चुका था।

एक दिन अदृष्टपूर्व मार्ग से वीरम दुर्ग के निकट की चोटी पर सेना चढ़ाने लगा। गंगदास तलवार लेकर उधर शत्रुओं का नाश करने के लिए चल पड़ा। सुलतान की सेना परास्त हो रही थी। तब भी उसने रंगमंच पर गंगदास के सामने प्रस्ताव रखा—

> मुंचाभिमानं सकलं यथान्ये पृथिवीभुजः।
> दत्त्वा निजसुतां मह्यं राज्यं कुरु निरामयम् ॥ ८.१२

गंगदास ने उसे उत्तर दिया—

> समिति मम कृपाणो देवकन्यां ददाति। ८.१३

उधर नानभूप की सेना भी किले पर चढ़ती हुई ध्वस्त हुई। सुलतान ने प्रतिज्ञा की—

> रे गङ्गदास ते दुर्ग पातयाम्यद्य सर्वतः ॥ ८.१७

गंगदास ने उत्तर दिया—यत् कर्तुं शक्यते तत् कर्तव्यम्।

सुलतान की सेना दुर्गारोहण करने लगी। दुर्गपरिखा की रक्षा करनेवाले अनेक श्रेष्ठ वीर मारे गये। उनकी स्त्रियां सती हुईं। अमर्षाभिभूत गंगदास शत्रुसेना का संहार करने लगा।

मण्डपाधिप ने इस बीच गंगदास का पक्ष लेकर सुलतान मुहम्मद के राज्य पर एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण कर दिया। सुलतान को उसका सामना करने के लिए गंगदास की राजधानी से भागना पड़ा।

अन्तिम नवम अङ्क में कीर्ति रंगमंच पर कहती है कि गंगदास अब जयकमला से संगमित हैं। अब मैं प्रवास चली। उसने वैतालिक से पूछा कि क्या मुझे सर्वदेशदर्शन कराओगे। वैतालिक ने कहा कि तुम्हारा साथ मुहम्मद की अपकीर्ति देगी। अपकीर्ति का रूपवर्णन है—

एसा काकवराहमाहिससमा भिंगावलीसोअरा
णिम्मेहंवरसण्णिहा णिजभयेण क्कुव्वई काजलं।
मुत्ताऽमावसतामसी विअ खणी णीलाण रत्ताण किं
संगामप्पबिभग्गमह्मदसुरत्ताणापकित्ती ठिदा॥ ९.३

वे दोनों गंगदास के द्वारा पूरितमनोरथ याचकों के साथ देशान्तर भ्रमण के लिए चल पड़ीं।

पत्नी सहित राजा ने महाकाली के मन्दिर में जाकर उसकी पूजा की। देवी ने उन्हें चरणपूजा-पुष्प दिया।

समीक्षा

इस नाटक से समसामयिक गुजरात की राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का तथ्यात्मक परिचय मिलता है, जिस समय गुजरात में मुसलमानों की राजनीतिक प्रभुता की स्थापना हो रही थी।

कथा की प्रस्तावना में सूत्रधार की विदूषक से बातचीत हो रही है। नाट्यप्रयोग में निवेदक की सहायता ली गई है। वह रंगमंच पर न रहकर पात्रपरिचय देता है। यथा, प्रस्तावना के पश्चात् विष्कम्भक के आरम्भ में जब हरिदास नामक सचिव रंगमंच पर आता है तो निवेदक सुनाता है—

स्फायत् प्रोज्ज्वलकञ्चुकावृततनूमध्यस्थशोणांशुक-
श्चञ्चन्मस्तकवेष्टितेन्दुकलिका संकाशचीनाम्बरः।
कक्षे लेखनिकां दधत् तदितरे हैमं मषीभाजनं
पाणौ पुण्यमतीनृपालसचिवः प्रत्येति सन्तोषवान्॥ १.३२

विष्कम्भक का अन्त होने पर पुरोहित के रंगमंच पर आने के साथ ही निवेदक कहता है—

प्रातःस्नानपवित्रगात्रविलसत्-प्रक्षालनप्रोल्लसद्-
धोत्रस्फारितयज्ञसूत्ररचनो दर्भप्रगल्भाङ्गुलिः।
गोपीचन्दनचर्चितालिकजितादित्यप्रभामण्डलः
कर्णान्दोलितकुण्डलः समयते राज्ञः पुरोधा इह॥ १.३५

दूसरे अङ्क के आरम्भ में भी इसी प्रकार निवेदक कहता है कि राजा काली की पूजा करने के लिए आ रहा है। निवेदक के वचन कहीं-कहीं अंशतः प्रवेशक और विष्कम्भक का भी उद्देश्य पूरा करते हैं। इसी अङ्क में नाट्यकार के सम्बन्ध में निवेदक की उक्ति है—

मुक्ताकुण्डलमण्डितः श्रवणयोः कण्ठे च मुक्तावली-
युक्तः कंकणभूषितः करयुगे पद्भ्यां दधत् तोडरौ।
पुष्पापूरितपूर्णकेशनिचयः कस्तूरिकापत्रक-
स्ताम्बूलस्फुरिताधरो नटपतिः प्रत्येति भूपालवत्॥ २.३१

नाटक की कुछ विशेषतायें हैं, जो प्राचीन नाटकों में विरल ही हैं। रंगमञ्च पर ही शरवर्षा कराना यह गंगाधर की लेखनी का ही प्रभाव है।[1] धनुर्विद्या वैदग्धी का रंगमञ्च पर मनोरञ्जक अभिनय देखा जा सकता था। यथा,

राजा तावदस्य मुकुटमन्तर्मस्तकवेणिकया सह छिनत्ति, द्वितीयेनास्य कोदण्डमपि परिच्छिद्य दोर्दण्डात् पातयति, तृतीयेन हृदयं भेत्तुमारभते।
षष्ठाङ्क से।

प्रस्तुत नाटक में प्रेक्षकों के मनोरञ्जनार्थ आधुनिक सिनेमा की भाँति नृत्य और संगीत का रंगमञ्च पर बृहत् आयोजन किया गया है। वाराङ्गनाओं का नृत्य राजपरिवार की शोभायात्रा के आगे-आगे चलता है।

कला की दृष्टि से द्वितीय अङ्क के भीतर नाटक की योजना गंगदासप्रताप की विशेषता है।[2] रंगमंच अनेक प्रसङ्गों में दो भागों में है। एक भाग में गंगदास सेना सहित है और दूसरे में सुलतान और उसके साथी। अन्त में रङ्गमञ्च पर ही सुलतान और गंगदास में झड़प होती है।

गङ्गाधर गद्य और पद्य दोनों में शब्दसङ्गीत उत्पन्न करने में निपुण हैं। यथा,

तदहमहम्मदसम्भवो महम्मदो न भवामि यदस्य मदमनसो दुर्गपावकं यावकमिव प्रतापपावके न द्रावयामि।

यावद् दुर्मददन्तिदन्तकुलिशैः पावाचलं छेद्मि नो
यावत् तद्भुजदण्डमण्डितधनुःखण्डं शरैर्भेद्मि नो।
यावत् तत्तनुजाकरं निजकरेणासादितं वेद्मि नो
तावन्नाहमहम्मदादुद्भवं तावन्न वा महम्मदः॥ ४.५

पात्रानुसार भाषा का अनूठा उदाहरण इस नाटक में मिलता है। वैसे तो सुल्तान मुहम्मद या उसके सेनापति संस्कृत बोलते हैं किन्तु तुरुष्क सेना समसामयिक उर्दू बोलती है, जिसका उदाहरण है—

---

१. सर्वे शरवर्षं कुर्वन्ति। षष्ट अङ्क में।

२. इस नाटक में इसका नाम युवराजादिरूपक है।

अच्कौंदालम देखतां किमु लढोच्छोहिं खुदाल्लम्मका
वन्दा तीर कमाण लेकरि कहाँ हिन्दू दिवाना इहाँ।
आया जाए कहाई ताल पगडों घालो गलां पागडी
विस्ताकी करता खुदाऽऽलम अगे डर्ता नहीं अम्हकुं ॥ ६.१५

वन्दा तेरा निसन्दा हउं खउस धरों क्यों करो खोद .गन्दा
जो मुझखें मार तिस्खें रउ तह सुणु रे कालिका की दुहायी।
क्यों खुन्दाऽऽलम्मु भूला नहि नहि सुणता बात वज्जीर केरी
काहां भेज्या हमुन् खें हय हय किउरे जंगलामाहि पेठा ॥ ८.४

अध्याय ५५

शमामृत

शमामृत के कर्ता का नाम नेमिनाथ है।[1] इसका प्रथम अभिनय नेमिनाथ के यात्रामहोत्सव के अवसर पर हुआ था। इसका रचना-काल सम्पादक के अनुसार पंद्रहवीं शताब्दी है।[2] इसमें नेमिनाथ की विरक्ति की कथा है। नेमिनाथ का विवाह उग्रसेन की कन्या राजीमती के साथ होनेवाला था। नवयौवन के प्रभात में पूर्वराग की सरिता में प्रवाहित नायक और नायिका आनन्दोल्लास का काल्पनिक स्वप्न बना रहे हैं। सभी योग्यतम वर-वधू के गठबन्धन के औचित्य की प्रशंसा करते हैं। इसके पश्चात् सहसा कथा की गति विपरीत दिशा में हो जाती है। नायक देखता है कि विवाहोत्सव के लिए मारकर भोजन बनने के लिए बँधे हुए असंख्य पशु रो रहे हैं। उन्हें किसी हरिण का रोदन इस प्रकार व्यक्त हुआ—

मैंने निर्झर का पानी पीकर और अरण्य के तृण भक्षण कर अपने शरीर को पुष्ट किया है। मैं अत्यन्त निरपराध हूँ। प्रभो, मुझ निरपराध की रक्षा कीजिये?

नेमिनाथ ने अपने सारथि से कहा—रथ लौटाओ।

पशूनां रुधिरैः सिक्तो यो धत्ते दुर्गतिफलम्।
विवाहविषवृक्षेण कार्यं मे नामुनाधुना॥

वे रथ से उतरकर तपस्या करने के लिए चले गये। शृंगार का वातावरण करुण में विपरिवर्तित हो जाता है। नायक जिन-दीक्षा लेता है और अन्त में देवता नायक की सम्भावना करते हैं।

इस एकाङ्की नाटक में हरिण और हरिणी मानवोचित व्यवहार करते दिखाई देते हैं। उनकी बातचीत इस प्रकार है—

ततः प्रविशन्ति पशवः

तत्रैको हरिणः

हरिणः — (नेमिमवलोकयन् स्वग्रीवया हरिणीग्रीवां पिधाय सभयौत्सुक्यं ब्रूते)
मा प्रहर मा प्रहर एनां मम हृदयहारिणीं हरिणीम्।
स्वामिन्नद्य मरणादपि दुस्सहः प्रियतमाविरहः॥ १०

---

१. नेमिनाथस्य शमामृतं नामच्छायानाटकमभिनयस्व।

२. इसको मुनि धर्मविजय ने सम्पादित करके भावनगर से प्रकाशित किया है।

हरिणी — एष प्रसन्नवदनः त्रिभुवनस्वामी अकारणबन्धुः ।
ततो विज्ञापय हे वल्लभ रक्षार्थं सर्वजीवानाम् ॥ ११

हरिणः — (मुखमूर्ध्वीकृत्य)
निर्झरणनीरपानमरण्यतृणभक्षणं च वनवासः ।
अस्माकं निरपराधानां जीवितं रक्ष रक्ष प्रभो ॥ १२

(इति सर्वे पशवः पूत्कुर्वन्ति ।)

इस रूपक का छायानाटक नाम इसलिये पड़ा है कि इसमें मानव पात्र हरिण का रूप धारण करके रङ्गमञ्च पर उतरते हैं।[1]

रूप के अभिनय में मङ्गल गीत ध्वनि और पञ्चशब्द निर्घोष नेपथ्य से होते हैं। रङ्गमञ्च पर नेमिकुमार के साथ प्रमदाजन गीत गाते हुए आते हैं।

---

१. इस प्रकार पशुओं की भूमिका में मानव का आना भास के बालचरित में मिलता है। इसमें अरिष्टासुर बैल है और कालिय नाग तो सर्प है। ये दोनों संस्कृत बोलते हैं और पशुसुलभ काम भी करते हैं। इस दृष्टि से भास को छायानाटक का प्रवर्तक मान सकते हैं।

अध्याय ५६

मल्लिकामारुत

मल्लिकामारुत नामक दस अङ्कों के प्रकरण के रचयिता उद्दण्ड का प्रादुर्भाव पन्द्रहवीं शती के मध्यभाग में केरल प्रदेश में हुआ था।[1] वे जमोरिन मानविक्रम के समसामयिक थे।[2] कवि वैष्णव था और शैवधर्म का सम्मान करता था। वह विद्वानों की समृद्धि का समर्थक था।

कथानक

विद्याधरराज चन्द्रवर्मा के मन्त्री विश्वावसु की कन्या मल्लिका थी। महा-योगेश्वरी मन्दाकिनी अपनी मायाविद्या द्वारा उसे नायक मारुत से मिलाती है, जो कुन्तल के राज-मन्त्री ब्रह्मदत्त का पुत्र था। दोनों में प्रणयप्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ। श्रीलङ्का का राजा भी मल्लिका को अपनी प्रेयसी बनाना चाहता था। इस प्रकार दो प्रेमियों के संघर्ष का सूत्रपात हुआ।

पताकावृत्त में कलकण्ठ का विष्णुराव की पुत्री रमयन्तिका नामक कुमारी से प्रेमाख्यान है। कलकण्ठ मारुत का मित्र था। रमयन्तिका की मैत्री मल्लिका से थी। दोनों नायक मित्रों ने दोनों नायिका मित्रों की प्राणरक्षा दो हाथियों के आक्रमण से की। हाथियों को इन्हें डराने के लिए छोड़ दिया गया। सिंहल के राजा ने इन दोनों मित्रों का विघटन करने के लिए अन्य योजनायें भी कार्यान्वित की। उसके दूत ने आकर मारुत से कहा कि तुम्हारा मित्र कलकण्ठ मर गया। तब तो मारुत आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुआ। किन्तु तभी कलकण्ठ कहीं से आ पहुँचा और मारुत का प्राण बचा।

विपत्तियों की परम्परा का अन्त नहीं हुआ था। मल्लिका को राक्षसों ने चुरा लिया। उसे बचाने में सफल होने के पश्चात् उसे ही राक्षस चुरा ले जाते हैं। अन्त में वह राक्षसों पर भी विजयी होता है। श्रीलंक के राजा के प्रयास अभी चल ही रहे थे कि मल्लिका हमें मिले। मारुत के सामने सीधा-सा उपाय था कि वह मल्लिका को

---

१ मल्लिकामारुत का प्रकाशन जीवानन्द विद्यासागर के द्वारा १८७८ ई० में कलकत्ते में हुआ है। पुस्तक की प्रति सागरविश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है। कीथ इस रूपक का रचनाकाल सत्रहवीं शती का मध्य भाग मानते हैं, जो भ्रान्ति है।

२. उद्दण्ड का विस्तृत परिचय 'संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के प्रथम भाग के पृष्ठ ४७१-४७२ पर दिया जा चुका है।

लेकर श्रीलङ्कराज की पहुँच से बाहर हो जाय। पर लङ्कराज माननेवाला थोड़े ही था। उसने मल्लिका को चुरवा लिया। तब पहले की ही भाँति मन्दाकिनी के प्रयास से उसके नायक से स्थायी मिलन हो सका।

कलकण्ठ भी रमयन्तिका को लेकर भाग गया और वह उसी की बनकर रह गई। कथा की स्थली प्रायशः कुसुमपुर है।

मल्लिकामारुत में कुछ विचित्र घटनाओं का संयोजन किया गया है, जिससे पूरी कथा में पर्याप्त उत्सुकता का प्रतान रहता है। इसका एक उदाहरण पञ्चम अङ्क में इस प्रकार है। नायक देवी के मन्दिर में मल्लिका से जन्मान्तर में मिलने के लिए गले से तलवार लगाये हुए है। इस बीच आकाश से नायिका का आर्तनाद सुनाई पड़ता है और वह नायिका को गिरती हुई देखता है। उसे वह पकड़ लेता है उसे ढूँढ़ता हुआ महाकाय राक्षस आता है। वह मारुत से कहता है—

त्वामेव कोमलकलेवरमात्रपेषं
पिष्ट्वा पिबामि मधुरं रुधिरं यथेष्टम्।

राक्षस नायक को कन्धे पर रखकर भाग जाता है। थोड़ी देर में नायक उसका सिर काट देता है और पह भूमि पर गिरता है और उससे एक दिव्य पुरुष निकल पड़ता है—

हहह कबन्धतोऽस्य धृतदिव्यवपुः पुरुषः।
प्रचलितभूषणो झटिति कोऽपि समुत्पतितः॥

यह दृश्य उत्तररामचरित में शम्बूकवध के आधार पर निष्पन्न है। अनेक स्थलों पर राक्षसों का मायात्मक व्यापार भी कुछ इसी प्रकार का वैचित्र्यपूर्ण है। मन्दाकिनी की योगविद्या इसी प्रकार के अद्भुत कार्यव्यापार से प्रेक्षक को चमत्कृत करती है।[1] वह कहती है आठवें अङ्क में—अयमवसरो मम योगविद्या-प्रकटनस्य।

उद्दण्ड नाट्यशास्त्रीय विधानों की अवहेलना पहले के नाटककारों की पद्धति पर करते हैं। यथा, रंगमंच पर आलिंगन छठें अङ्क में—मल्लिका मारुत का दृढ आलिंगन करती है और ऐसे अवसर पर मारुत (परिरभ्यमाण एव सानन्दम्)

कल्याणाङ्गरुचानुरक्तमनसा त्वं येन सम्प्रार्थ्यसे।
यस्यार्थे सुमुखि त्वया पुनरसुत्यागेऽपि सन्नह्यते।
सोऽयं सुन्दरि पञ्चबाणविशिखव्यालीढदोरन्तर-
स्वैरोत्पीडितपीवरस्तनतटस्त्वद्दोर्लतापञ्जरे॥

---

१. हिन्दी के तिलस्मी उपन्यासों का विकास करने में इस प्रकार नाटकों में कथानक उपयोगी हुए।

शृंगारित वृत्ति तो इसमें यत्र-तत्र उद्दाम गति से प्रवाहित की गई है। इसमें नायक कहता है—

स्वयमेव केवलं न स्तनौ प्रियायाः प्ररूढघनपुलकौ।
पुलकयतोऽपि ममैतो सर्वाङ्गं करतलस्पृष्टौ ॥ ८.३०

छठें अङ्क में अभिज्ञानशाकुन्तल के आदर्श पर मन्दाकिनी वर-वधू को सद्दाम्पत्य की सीख देती है। यथा,

शुश्रूषामनुरुन्धती गुरुजने वाक्ये ननान्दुः स्थिता
दाक्षिण्यैकपरायणा परिजने स्निग्धा सपत्नीष्वपि।
सन्नद्धातिथिसत्कृतौ गृहभरे लैस्तन्द्रयमाविभ्रती
वत्से किं बहुना भजस्व कुशलं भर्तः प्रिये जाग्रती ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि उद्दण्ड जब भावसरिता में बहते हैं तो उनको कहीं सुदूर जाने पर ही इतिवृत्तात्मक स्थाणु प्राप्त होता है। इस प्रकार नाटकीय वस्तु-विन्यास शिथिल होना स्वाभाविक है। नवम अङ्क के आरम्भ में वियोगी नायक मानो पूर्वमेघदूत का यक्ष बनकर वर्णना-निमज्जित है।

शैली

उद्दण्डि ने स्वरों के अनुप्रास की संगति में सङ्गीत-माधुरी घोली है। यथा,

अमी पुनरुदञ्चिता मधुरगुञ्जदिन्दिन्दिराः
सुगन्धि मलयानिला मदनगर्वनाडिन्धमाः।
अशोकतरुताडनक्वणितकामिनीनूपुरा
हसद्-बकुलधूलिका पटलधूसरा वासराः ॥ १.२४

उद्दण्ड की भाषा में परिमार्जन है। यथा,

'किं प्राभातिकचन्द्रकान्तिवदनं हस्तोदरे शायितम्'

इसमें 'हस्तोदरे शायितम्' में व्यञ्जना का उत्कर्ष चिरकालिक शब्दसाधना के द्वारा प्रपन्न है।

कवि भावात्मक वृत्तियों को भी ठोस रूप प्रदान करने के लिए रूपक का सहारा लेता है। यथा,

सा बाला मम हृदयं तस्मिन्नेव क्षणे प्रविष्टाभूत्।
लावण्यामृतधारा परिपीता नेत्रचुलकाभ्याम् ॥ १.७१

इसी प्रकार का वाक्य द्वितीय अङ्क में है—

हन्त मूले लूनः सखीवचनसलिलसिक्तः प्रत्याशालताङ्कुरः।

उद्दण्ड ने कतिपय स्थलों पर 'शिव शिव' का अव्यय प्रयोग हनुमन्नाटक की पद्धति पर किया है। यथा,

एतानस्याः शिव शिव तनुत्यागबद्धोद्यमायाः
कल्याणाङ्ग्याः करुणमधुरान् शृण्वतो मे विलापान्।
दाक्षिण्येन द्रवति दययोल्लीयते मोहवृत्या
म्लायत्यत्त्यों स्फुटति हृदयं हर्षतःस्फायते च ॥ ६.११

दूयेते शिव शिव यौ सरोजताम्रौ
सैरन्ध्री करतलदत्तलाक्षयापि।
पादौ तौ तिमिरविसंष्ठुले स्थलेऽस्मिन्
सञ्चारं चकितदृशः कथं सहेते ॥ ८.८

भावगाम्भीर्य का बोध कराने के लिए एक ही शब्द का दो बार प्रयोग सफल है—

उत्तुङ्गस्तनभरतान्ततान्तमध्यं
विश्लिष्यद्घनकचवान्तवान्तसूनम्।
वक्त्राब्जभ्रमदलिभीतभीतनेत्रं
मुग्धाक्षी मम धुरि मन्दमन्दमेति ॥ ८.२०

अन्यत्र भी—

जलधर जलधर मन्मथ मन्मथ पवमान पवमान
सर्वान् वः प्रणतोऽहं प्रियसुहृदो जीवितं भिक्षा।
एष मत्प्रार्थितोऽभ्येत्य मारुतो मारुतं शनै-
रेकशब्दादिव स्निह्यन् शीकरैः सम मोमुदीत् ॥ ६.२४

प्राकृत बोलनेवाले पात्र भी प्रायशः पद्यों को संस्कृतमाश्रित्य ही बोलते हैं।

एकोक्ति

मल्लिकामारुत के प्रथम अङ्क का आरम्भ एकोक्ति से होता है। मिश्रविष्कम्भक के पश्चात् रङ्गमञ्च पर अकेला है नायक मारुत। वह १६ पद्यों में मल्लिकानुरक्त मनोदशा का वर्णन करता है और नायिका के सौन्दर्यातिशय की कल्पना प्रस्तुत करता है। ऐसी एकोक्तिपरक उक्तियों में गीततत्त्व का निखार उत्कृष्ट है। यथा,

तां दुर्लभामपि तपोभिरनल्पतप्तै-
र्जाने तथाप्यभिलपामि कुरङ्गनेत्राम्।
नीहारभूधरकिरीटविलासमालां
भागीरथीमिव जनो मलयाचलस्थः ॥ १.४४

यत् तिर्यग् वलितं यदश्रुललितं यच्चाञ्चले कूणितं
तत् सर्वं किमु दीर्घयोर्नयनयोर्नैसर्गिको विभ्रमः ।
आहोस्विन्मदनुग्रहव्यसनिनो मारस्यलीलायितं
धिङ् मां येन गतत्रपेण किमपि प्रत्याशया कल्प्यते ॥ १.४६

पंचम अङ्क के आरम्भ में शुद्ध, विष्कम्भक में विप्रवेशधारी ब्राह्मण रंगमञ्च पर अकेला है । इस विष्कम्भक की त्रुटि है रूपक में एक ही पात्र का लम्बा व्याख्यान-सा भाषण देना । इस विष्कम्भक के पश्चात् नायक की एकोक्ति है जिसमें ३० पद्य हैं । इस महती एकोक्ति की अस्वाभाविकता स्पष्ट ही है । इसमें अनेक विषयों के साथ नायक का नायिका के प्रति आत्मभाव निवेदन प्रमुख है । यथा,

उपचितघनरागो रागकल्पद्रुतत्याः
प्रसभमखिलविघ्नध्वान्तसंघस्य वृष्ट्या ।
कमलमिव करेण प्रातरर्को नलिन्याः
कुवलयनयनायाः किन्तु पाणिं ग्रहीष्ये ॥

नायक देवी से प्रार्थना करके निमित्त की सूचनापूर्वक कहता है—

दुर्लभे प्रियतमापरिरम्भे स्पन्दसे किमित दक्षिणबाहो ।
हन्त वेत्सि न गिरं गगनोत्थां मल्लिकाविघटनैककठोराम् ॥

अपनी इस एकोक्ति के बीच नायक 'आकाशे' कहता है—

पश्याम्बिके प्रणतकामितकल्पवल्ली
सा मल्लिका प्रियतमा यदि दुर्लभा स्यात् ।
अस्तु स्वहस्तकरवालविदूनकण्ठं
वक्त्रं ममाद्य पदयोस्तव रक्तपद्मम् ॥

इस एकोक्ति में कार्यव्यापार भी है । नायक तलवार को आत्महत्या करने के लिए गले लगाता है ।

लोकोक्ति

उद्दण्ड ने लोकोक्तियों के द्वारा विशेष चमत्कारपूर्ण अनुसन्धानों को सार्वजनीन बनाया है । स्त्रियों के विषय में उनका कहना है—

तिरयत्येव भीतिमङ्गनानां प्रियजनानुरागः ।

अर्थात् अपने प्रियतम से मिलने के पथ में उन्हें भय नामक वस्तु दिखाई ही नहीं देती ।

चरणौ नयने तमः प्रकाशो वनितानामसहायता वयस्या ।
अपि च प्रियवल्लभाभिसारे भवनप्राङ्गणकुट्टिमः कदध्वा ॥ ८.९

अर्थात् अभिसारिणी के लिए चरण ही नयन का काम करते हैं।

कहीं-कहीं नागरोचित कामशास्त्रीय उक्तियाँ हैं। यथा,

> व्रीडावेलारुद्धं सागरतोयमिव योषितां हृदयम्।
> रागेन्दुरुह्यमानो भूयो भूयस्तरङ्गयति ॥ ८.२४

लोकोक्तियों के द्वारा कहीं-कहीं दृष्टान्त प्रस्तुत हैं। यथा

> एणीनां चकितविलोकितोपदेशे
> वामाक्षी प्रभवति सैव मल्लिका मे।
> शिष्यस्थं गुणमवलोक्य लोककान्तं
> विद्वद्भिर्गुरुरपि तद्गुणो हि कल्प्य. ॥ ६.३१

नाट्यशिल्प

नाटतमल्लिका के प्रथम अङ्क में रङ्गमञ्च पर एक पटमण्डप बना है, जिसका द्वार है। उसमें बैठकर नायक जब एकोक्ति करता है तब प्रेक्षक उसे देखते हैं, पर रङ्गमञ्च पर दूसरी ओर से आनेवाला कलकण्ठ उसे तब तक नहीं देखता, जब तक वह उसके द्वार से पटमण्डप के भीतर नहीं प्रवेश करता।

कवि उद्दण्ड का नाट्यशिल्प कहीं-कहीं कालिदास के आदर्श पर विकसित है। नायक नायिका से वियुक्त होने पर पुरुरवा की भाँति दिखाया गया है। वह कहता है—

> ह्रद ह्रदयहरे ते निम्ननाभीह्रदास्मिन्
> पयसि सहचरी मे स्नातुकामावतीर्णा।
> अपि चटुलमृगाक्ष्याश्चक्षुषोश्चातुरीभिः
> प्रतिलहरिवितीर्णाः काश्चिदन्याश्च शय्याः ॥ ६.२७

संवाद

कहीं-कहीं संवाद अस्वाभाविक रूप से अतिदीर्घ है। तृतीय अंक में नवमालिका का एक लम्बा भाषण मल्लिका के पूर्वराग के विषय में ७० पंक्तियों तक विस्तृत है। वह भी प्राकृत में।

गीतितत्त्व

मल्लिकामारुत में गीततत्त्व का सम्भार उल्लेखनीय है। इसके भावुक पात्रों को ऐसी उच्चावच परिस्थितियों में डालकर उनके हृदय-निस्यन्द को गीत रूप में निचोड़कर कवि ने रसपान करने की चेष्टा की है। यथा—

> उपरि पतति चण्डे चन्द्रिका श्वेतवह्नौ
> मरुति किरति विष्वक् पुष्पधूलीकुकूलम्।
> प्रविशतु मदनाग्नि-प्लुष्टशेषं वपुर्मे
> परिचलदलिधूमं पल्लवाङ्गारतल्पम् ॥ ८.३३

वैदर्भिक शब्दों के योगों में मनोरमता उत्पन्न हुई है। यथा,

> हा मल्लिकेति [illegible] यातेति नायिकेति तत्
> [illegible] [illegible] स्मरामि स्वस्य।
> [illegible] [illegible] मे [illegible] [illegible]
> [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ९.५

और भी—

> [illegible] तव तनु [illegible] [illegible]
> [illegible] [illegible] [illegible]।
> [illegible] [illegible] न तनु
> [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ९.६

नायिका वह विरहिणी है, जिसके शोकाश्रु का सतत प्रवाह [illegible] है। पुत्तलिका की प्रकृति का अनुकरण करते हुए वह पाता है—

> [illegible] - [illegible]
> [illegible] [illegible]।
> [illegible] [illegible]
> हा हन्त नाथ [illegible] [illegible] ॥ ९.१६

> [illegible] कदम्ब के नव [illegible] [illegible] [illegible]।
> [illegible] [illegible] [illegible] का [illegible] [illegible] ॥ ९.२१

मल्लिकामारुत की शृङ्गारमयता संस्कृत काव्यसाहित्य में अपनी कोटि की निराली ही है। [illegible] पर नीचे लिखा हुआ छन्द प्रयुक्त करने का दुस्साहस उद्दण्ड के अतिरिक्त कदाचित् ही किसी कवि ने किया हो।[1] सोलहवीं शती में भी ऐसे छन्द [illegible] विरलों में क्वचित् ही स्थान पाते हैं—

> नायिका (विलोक्य, सन्तोषमभिनीय) स्वगतम्—
> [illegible]
> [illegible] [illegible] [illegible] कल्पिताः।
> [illegible] [illegible] [illegible]
> [illegible] ॥ ९.३०

---

1. कवि उद्दण्ड को अपने [illegible] के वैचित्र्य का अभिमान रहा है। अतः उसका उद्दण्ड नाम सार्थक है। यथा, [illegible] का छन्द है—
मल्लिका — [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। इति [illegible] [illegible] [illegible])। ([illegible] [illegible] विलोकते)।
यह [illegible] का प्रस्तार है, जैसा अन्य ग्रन्थों में भी मिलता है।

ता जाव अहं लअन्तरिदा होमि ।

मल्लिका — (स्वगतं) हन्त ण क्खु सक्कुणोमि अज्जउत्तस्स हत्थकमलादो त्थणं अवहरिदु । (कथञ्चिदपहरति) ।

मारुत — (सविषादं) हन्त ?

सकृदिव समर्प्य बाले मम हस्ते मदनघर्मतप्तस्य ।
अपहरणे कुचकुम्भं तृषितकरादमृतकुम्भमिव ॥

उद्दण्ड को रङ्गमञ्च पर भी बड़े-बूढ़ों के समक्ष भी नायक और नायिका का परिरम्भ स्वीकार्य है । यह अभारतीय प्रयोग है ।

भावों का उत्थान-पतन सम्पुटित करने में उद्दण्ड सा निष्णात कोई कवि विरल ही है । उपर्युक्त दृश्य में नायिका और नायक की सङ्गमनवेला में नायिका अपसृत हो जाती है और दो क्षणों के पश्चात् नायक यह कहता हुआ प्रकट होता है—

अयि हतविधे प्रापय्य प्राक् तथा पदमुच्चकैः ।
अकरुणकथानुबन्धे कूपे निपातयसेऽद्य माम् ॥

नायिका का अपहरण हो गया । फिर तो विप्रलम्भ शृङ्गार का प्रकरण है—

तन्वङ्गि दर्शय तदङ्गजसार्वभौममाङ्गल्यदाममधुरं वदनेन्दुबिम्बम् ।
किं नेक्षसे महति सन्तमसे पतन्तमन्धं भविष्णुसकलेन्द्रियमात्मदासम् ॥

उद्दण्ड की वर्णना प्रतिभा-सम्पन्न है । वे प्रयोजन का ध्यान रखकर वस्तुओं का स्वरूप चित्रित करते हैं । विप्रलम्भ शृङ्गार से प्रपीडित नायक का विनोद करने के लिए उसका साथी प्रावृडारम्भ का जो वर्णन करता है, उसके पाँच पद्यों में कहीं भी शृङ्गारित वृत्ति का नाम नहीं है । यथा,

अमी किमपि वासराः प्रसुवते मुदं देहिनां
विजृम्भिनवकन्दलीदलनिलीनपुष्पन्धयाः ।
पयोदमलिनीभवद् गमनदर्शनप्रोच्चलत्-
कृषीवलविलासिनी नयनकान्तितापिच्छिता ॥ ६.१५

भले ही कवि कालिदास के ऋतुसंहार से प्रभावित प्रतीत होता है, जब वह कहता है—

आमूलकुड्मलितबालकदम्बजात
व्यालोलनोद्गलितधूलिमिलद् द्विरेफ ।
पौरस्त्यमाकलितबर्हिणबर्हभारं
सेवस्व सर्वपरितापहरं समीरम् ॥ ६.१८

उसी प्रावृड् का दर्शन वियोगी नायक करता है—

लम्बन्ते भ्रमराः कदम्बमुकुले हा मेचकाः कुन्तलाः
सम्माद्यन्ति चकोरकाः प्रतिवनं हा मन्थरे लोचने।
विष्वक् फुल्लति मालतीसुरभिला हा मुग्धसन्दस्मित
व्याप्तं शाद्वलमिन्द्रकोपनिवहैः हा ताम्रविम्बाधर ॥ ६.२२

अनेक कवियों की रचनायें मल्लिकामारुत में प्रतिविम्बित हैं। जैसा ऊपर बताया जा चुका है। इनके अतिरिक्त भी स्थान-स्थान पर बहुत-से महाकवियों की अनुकृति शोभित होती है। कालिदास की भाषा है—

तं वीक्ष्य वेपथुमती नमिताननेन्दु-
र्व्रीडाल्लिलेख चरणाग्रनखेन भूमिम् ॥ १०.४६

वाण की गन्ध आती है नवम अङ्क के निम्नोक्त कथन से—

मारुत — भगवति, अवाङ्मनसगोचरप्रभावे, श्रोतुमिच्छामि विस्तरतोऽमुं वृत्तान्तम्।

मन्दाकिनी — वत्स, महती खल्वियं कथा तदनवसरोऽयम्।

राजशेखर के आदर्श पर दशम अंक में कहा गया है—

नेपालीनामराले विरचयति कचे केतकीपत्रकृत्यं
कण्ठे मुक्ताकलापान् द्विगुणयति सितान् पाण्ड्यसीमन्तिनीनाम्।
कर्णे कर्णाटिकानां प्रकटयतितमां दन्तताटङ्कलक्ष्मीं
कार्पूरी पत्रवल्ली भवति तव यशोगण्डयोः केरलीनाम् ॥ १०.१

उद्दण्ड ने प्रकरण की रचना में शास्त्रीय नियमों का ध्यान न रखते हुए मनमाने वृत्तों और वर्णनों को कहीं-कहीं अनाटकीय विधि से भी प्रस्तुत किया है। मल्लिका-मारुत अनेक दृष्टियों से महाकथा-सा लगता है। अन्तिम अङ्क में आद्यन्त मल्लिका और मारुत की रहस्यमयी जीवनी का उद्घाटन भला इतने बड़े विस्तार से कौन करेगा[1]? यदि इसे कहना ही था तो उसे विष्कम्भकादि में संक्षेप से प्रस्तुत करना चाहिए था।

---

१. अङ्क में इतिवृत्त का केवल दृश्यांश रहना चाहिए। यह जीवनी निरा सूच्यांश है।

अध्याय ५७

वृषभानुजा

वृषभानुजा नाटिका के रचयिता मथुरादास का प्रादुर्भाव पन्द्रहवीं शती में हुआ था।[1] इसमें यथानाम राधा और कृष्ण की प्रणयलीला का आख्यान है। मथुरादास प्रयाग के समीप सुवर्णशेखर के निवासी थे।

वृषभानुजा में ४ अङ्क हैं। इसमें राधा की ईर्ष्या की चर्चा है। कृष्ण के हाथ में किसी प्रणयोन्मुखी नायिका का चित्र देखकर राधा जल उठीं। उन्हें अन्त में विदित हुआ कि यह चित्र मेरा ही है।[2]

राधा और कृष्ण की पेशल प्रणयक्रीडा के अनुरूप इस नाटिका में कोमलकान्त पदावली का प्रयोग जयदेव के गीतगोविन्द की छाया का संकेत करता है।

मुरारि-विजय

जीवराम याज्ञिक ने १४८५ ई० में मुरारिविजय नाटक का ५ अङ्कों में प्रणयन किया।[3] इसमें यथानाम श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित कृष्ण के गोपी-विलास की कथा है। नृसिंह के पुत्र विश्वरूप कृष्णभट्ट ने भी मुरारिविजय नाटक की रचना की।

---

१. इसका प्रकाशक काव्यमाला संख्या ४६ में १८९५ ई० में हुआ था।

२. वृषभानुजा नाटिका में इस दृष्टि से छायानाट्य है।

३. इसकी हस्तलिखित प्रति संस्कृत कालेज, कलकत्ता में है।

अध्याय ५८

वसुमती-मानविक्रम

वसुमती-मानविक्रम[1] नामक नाटक के रचयिता दामोदरभट्ट केरल में पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्ध में कालीकट (कोझीकोड) के मानविक्रम के आश्रित थे और मल्लिकामारुत के रचयिता उद्दण्ड के समकालीन थे। दामोदर ने नाटक की प्रस्तावना में अपना परिचय देते हुए कहा है—

अस्ति दक्षिणापथे केरलेषु···निलसहचरीकूले—साक्षाद् अशोकपुरेश्वरो नाम भगवान् पिनाकपाणिः।

अस्त्यद्रिकन्यापतिपादपीठविचेष्टमानाशयपुण्डरीकः।
नारायणाचार्य इति प्ररूढिं प्राप्तः परां प्राज्ञधियां पुरोगः॥

तस्य चरणारविन्दयुगलीगलितरेणुपरमाणुपातपूतचेतनासारः सारस्वतनिधिना साक्षाद्द्रिसमुद्रनायकेनैवानेन बाल्यादेवारभ्य वैपश्चितीं वृत्तिमधिकृत्य पराकाष्ठामारोपितः—अयं कविरसाधारणमहिमैव।

इससे प्रतीत होता है कि दामोदर के गुरू नारायण थे। अशोकपुरेश्वर के पिनाकपाणि की चर्चा से सम्भावना होती है कि इस नगरी में इनकी जन्मभूमि है।

दामोदर की अपने समकालिक महाकवि उद्दण्ड से बड़ी लाग-डाट रहती थी। उद्दण्ड तामिल से आया था और केरल के विद्वानों को कुछ गिनता ही नहीं था। कहते हैं, दामोदर ने उसे विवाद में परास्त करके केरल की लाज रखी।

जीवन की सन्ध्या में दामोदर ने संन्यास ले लिया और नियमानुसार सन्ध्या-वन्दनादि यह कह कर छोड़ दिया कि—

हृदाकाशे चिदादित्यः सदा भाति निरन्तरम्।
उदयास्तमयौ न स्तः कथं सन्ध्यामुपास्महे॥

दामोदर का नाम कुछ पहेलियों के साथ जुट गया है। नीचे के पद्य में तीन पादों में ६ प्रश्नों के उत्तर दामोदर के द्वारा चतुर्थ पाद में दिये गये हैं—

---

१. वसुमती-मानविक्रम अप्रकाशित है। इसकी एक प्रति कोझिकोड के गुरुवयूरप्पन कालेज के कुट्टयेट्टन के पास और दूसरी त्रिचूर के नारायण पीशरोटी के पास है।

> कः खे चरति, का रम्या, किं जप्यं, किं न भूषणम् ।
> को वन्द्यः कीदृशी लङ्का वीरमर्कटकम्पिता ॥[1]

वसुमती-मानविक्रम के सात अङ्कों में महाराज मानविक्रम का विवाह उनके मन्त्री की कन्या वसुमती से होता है। राजा को सर्वप्रथम वसुमती का दर्शन स्वप्न में होता है और वह प्रणयाभिभूत हो जाता है। इधर वसुमती भी महाराज के प्रणयपास में आवद्ध होकर मृगालिनी और रूद्रवैतालिका नामक सखियों से आश्वस्त की जाती हुई व्यथित है। वह विदूषक के साथ आकर उससे मिलता है, किन्तु शीघ्र ही महारानी के आ जाने से वियुक्त होता है। महारानी यह सब देखकर आत्महत्या करने को उद्यत है। उसे विदूषक और राजा समझा-बुझाकर रोक लेते हैं। अन्त में वसुमती का मानविक्रम से विवाह हो जाता है।

दामोदर की काव्य-प्रतिभा उनकी वर्णना में विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है। उनके द्वारा ताराओं का वर्णन है—

> स्फुरन्ति गगनाङ्गणे नटनचण्डचण्डीपति-
> भ्रमभ्रमितजाह्नवीसलिलबिन्दुसन्देहदाः ।
> स्मरोत्सववशंवदत्रिदशवारवामेक्षणा-
> कुचत्रुटितमौक्तिकभ्रमदविभ्रमास्तारकाः ॥

दामोदर कालिदास, हर्ष, भवभूति और राजशेखर आदि से प्रभावित थे।

---

१. आकाश में उड़ने वाली चिड़िया (वी), रम्या रमणी (रमा), जप्य ऋक् भूषण कटक और लङ्का कैसी (वीरमर्कटकम्पिता) है।

अध्याय ५९

प्राप्तांश नाटक

मध्ययुग में जिन असंख्य रूपकों का प्रणयन हुआ, उनमें से असंख्य तो कालकवलित हो गये, कुछ के अंशमात्र काव्यशास्त्र में उदाहृत है और कुछ के नाममात्र ही परवर्ती साहित्य में उल्लिखित मिलते हैं। इन सभी कृतियों के विषय में जो सामग्री उपलब्ध हो सकी है, उसका उपयोग जिज्ञासुओं और अनुसन्धाताओं के लिए नगण्य नहीं है। इन कृतियों का प्रायशः कालनिर्णय नहीं हो सका है। अत एव इस अध्याय में इनकी चर्चा वर्णानुक्रम से की गई है। इसमें कुछ रचनायें मध्ययुग से पहले की भी हैं, जिनका निर्देश यथास्थान किया गया है।

अनङ्गसेना-हरिनन्दि

शुक्तिवास कुमार नामक किसी कवि ने अनङ्गसेना-हरिनन्दि नामक प्रकरण की रचना की। इसमें नायक हरिनन्दी का अनङ्गसेना नामक गणिका से प्रेमकथा है। गणिका को राजपुत्र चन्द्रकेतु ने कर्णालङ्कार दिया था, जिसे नायिका ने नायक के पास भेज दिया और नायक ने राजबन्धन में पड़े हुए पुष्पलक नामक ब्राह्मण को छुड़ाने के लिए उसकी माता को दे दिया। उसकी पहचान हुई। ब्राह्मण पर चोरी का आरोप लगा और उसे राजाज्ञा से वध्य स्थान पर ले जाने लगे। उसकी माता ने हरिनन्दी से यह सब बताया। हरिनन्दी ने कहा कि चोरी मैंने की है। इस प्रकार उसे अयश तो मिला किन्तु ब्राह्मण की रक्षा हुई।

उपर्युक्त कथा इस प्रकरण के नवम अङ्क में है।[1] इस प्रकरण के विषय में अथवा इसके लेखक शुक्तिवासकुमार के विषय में अभी तक कुछ अधिक ज्ञात नहीं हो सका है। रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में चर्चित होने के कारण यह ११वीं शती या उसके कुछ पहले की रचना है।

अभिजातजानकी

अभिजातजानकी नामक नाटक का उल्लेख एक मात्र वक्रोक्तिजीवित में मिलता है। इसके तीसरे अङ्क में सेतुबन्ध का संविधानक है। सेनापति नील का कहना है—

---

१. रामचन्द्र के नाट्यदर्पण १.५८ से।

शैलाः सन्ति सहस्रशः प्रतिदिशं वल्मीककल्पा इमे
दोर्दण्डाश्च कठोरविक्रमरसक्रीडासमुत्कण्ठकाः ।
कर्णास्वादितजम्भसम्भवकथा किन्नान कल्लोलिनी
प्रायो गोष्पदपूरणेऽपि कपयः कौतूहलं नास्ति वः ॥

वानरों का ऐसी परिस्थिति में कहना था—

आन्दोल्यन्ते कति न गिरयः कन्दुकानन्दमुद्रां
व्यातन्वाना करपरिसरे कौतुकोत्कर्षहर्षे ।
लोपामुद्रापरिवृढकथाऽभिज्ञताप्यस्ति किन्तु
व्रीडावेशः पवनतनयोच्छिष्टसंस्पर्शनेन ॥

जाम्बवान् ने राम से कहा—

अनङ्कुरितनिःसीममनोरथरुहेष्वपि ।
कृतिनस्तुल्यसंरम्भमारभन्ते जयन्ति च ॥

वक्रोक्तिजीवित में चर्चित होने के कारण यह रचना ग्यारहवीं शती के पहले की है ।

अभिनवराघव

अभिनवराघव के रचयिता क्षीरस्वामी भट्टेन्दुराज के शिष्य थे। इनकी चर्चा अभिनवगुप्त ने अपने गुरु के रूप में पुनः पुनः की है। यथा,

भट्टेन्दुराजचरणाब्जकृताधिवास-
हृद्यश्रुतोऽभिनवगुप्तपदाभिधोऽहम् ।
यत् किंचिदप्यनुरणन् स्फुटयामि काव्या-
लोकं सुलोचननियोजनया जनस्य ॥

अभिनवराघव की प्ररोचनामात्र नाट्यदर्पण में इस प्रकार उपलब्ध है—

स्थापकः — (सहर्षम्) आर्ये चिरस्य स्मृतम् ।

अस्त्येव राघवमहीनकथापवित्रं
काव्यप्रबन्धघटनाप्रथितप्रथिम्नः ।
भट्टेन्दुराजचरणाब्जमधुव्रतस्य
क्षीरस्य नाटकमनन्यसमानसारम् ॥

क्षीरस्वामी का प्रादुर्भाव दसवीं और ग्यारहवीं शती के सन्धियुग में हुआ था ।

अभिसारिकावञ्चितक

अभिसारिकावञ्चितक के रचयिता विशाखदेव हैं, जो मुद्राराक्षस के सुप्रसिद्ध कलाकार विशाखदत्त हैं। इसका उद्धरण शृङ्गारप्रकाश में इस प्रकार मिलता है—

वत्सराजः — प्रदुष्टोऽग्राह्यां सरितमवगाढः श्रमवशा-
दुपालीनश्शाखां फलकुसुमलोभाद् विषतरोः।
फणाली······परिचयां क्रौर्यनितरां
विषज्वालागर्भां चिरमुरगकन्यामनुसृतः॥

भोज के अनुसार यह उस अवसर पर वत्सराज ने पद्मावती से कहा, जब वह उस पर क्रुद्ध था। उसे सन्देह था कि पद्मावती ने पुत्र-वध किया है।

अभिनवगुप्त ने बताया है कि पद्मावती ने क्रुद्ध राजा को प्रसन्न करने के उद्देश्य से भट्टशवरी का वेष बनाया।[1] उसकी इस रूप में लीलाचेष्टाओं से राजा पुनः उसका प्रणयी होगा।[2]

इन्दुलेखा

इन्दुलेखा नाटिका का रचयिता और उसका काल अज्ञात है। इस नाटिका में नायिका का नायक से प्रेम महारानी की इच्छा के विरुद्ध और बाधाओं के होने पर भी बढ़ता जाता है। अन्त में नायिका इन्दुलेखा महारानी का प्रसाद प्राप्त करती है। वह नायिका से वर माँगने के लिए कहती है। वह माँगती है—ता पियदंसणं मे पसादो करेदु देवी। इस प्रकार भुजिष्या से वह रानी बन गई। इस नाटिका का उल्लेख रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में किया है। अत एव यह ग्यारहवीं शती से पूर्व की रचना है। इन्दुलेखा नामक वीथी की चर्चा अनेक शास्त्रकारों ने की है।[3] यह उपर्युक्त नाटिका से भिन्न है। रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में इसका एक पद्य इस प्रकार उद्धृत है—

राजा — वयस्य

किं नु कलहंसनादो मधुरो मधुपायिनां नु झङ्कारः।
हृदयगृहदेवतायास्तस्या नु सुनूपुरश्चरणः॥

इसके भी लेखक का नामादि अज्ञात है।

उत्कण्ठितमाधव

सागरनन्दि ने काव्य नामक उपरूपक के उदाहरण रूप में उत्कण्ठितमाधव का उल्लेख किया है।

---

१. यह तत्त्व छायानाट्यानुसारी है।

२. अभिनवभारती ना० शा० २१.१६० पर व्याख्या से।

३. इसकी चर्चा शृङ्गारप्रकाश और भावप्रकाशन में भी है।

उषाहरण नाटक

सागरनन्दि ने नाटकलक्षणरत्नकोश में उषाहरण नाटक की चर्चा की है। इससे पुष्पगण्डिका नामक लास्याङ्ग का उदाहरण बताते हुए उद्धृत है—

उषा — अज्जउत्त, इमं दुदीअं ट्ठाणं अलंकरेदुत्ति

इसकी रचना ग्यारहवीं शती से पहले हुई।

कनकजानकी

कनकजानकी क्षेमेन्द्र का तीसरा रूपक है। इसका नीचे लिखा पद्य सरस्वती-कण्ठाभरण में उद्धृत है—

अत्रार्यः खरदूषणत्रिशिरसां नादानुबन्धोद्यमे
मन्थाने भुवनं त्वया चकितया योद्धा निरुद्धः क्षणम्।
सस्नेहास्सरसास्सहासरभसास्सभ्रूभ्रमास्स्पृहाः
सोत्साहास्त्वयि तद्बले च निदधे दोलायमाना दृशः॥

कलावती

सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में कलावती से प्रपञ्च नामक वीथ्यङ्ग का उदाहरण दिया है। यथा, राजा और विदूषक की बातचीत—

किञ्चिद् देहि ददामि चित्रफलकं तस्या मयासादितम्
सर्वं माधव शक्यमेव भवतः किं ते मया दीयते।
किं मां स्तौषि मृषानुगस्तव वटुः सोऽहं भवान् भूपतिः
मुद्रा स्वीक्रियतां ददाम्यलमिदं चित्रं सखे गृह्यताम्॥

कलावती के तृतीय अङ्क से नीचे लिखा द्विमुक्तक नामक वीथ्यङ्ग का उदाहरण नाटक-लक्षणरत्नकोश में मिलता है—

(पुरतोऽवलोक्य) एसा पिअसही इदोव्वेज्जेव्व आअच्छदि

इसकी रचना ग्यारहवीं शती से पहले हुई।

कामदत्तापूर्ति

सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में कामदत्तापूर्ति से द्युति नामक सन्ध्यंग का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

चन्द्रः — पुत्ति ओ किं पि अवगुणरूवं आचरिदं। तं एकदेसं सअखण्डलिं कदुअ पसारेमि।

कीचकभीम

सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में कीचकभीम से आख्यान और उत्तेजन नामक नाट्यालङ्कारों का उदाहरण दिया है। आख्यान का उदाहरण—

द्रौपदी — धण्णा सा सीदा जा सत्तुअणं णिज्जिअ एक्केण भत्तुणा आसासिदा।
मम उण पञ्चभत्तुणो भविअ त्ति एसा केसहदआणं अवत्था।

उत्तेजन का उदाहरण—

द्रौपदी — सो वि कीचओ मं पिअत्ति आलवदि। तुमं पि पिअत्ति आलवसि।
ता ण जाणे मंदभाइणी कस्स प्पिआ भविस्सं।

इन उदाहरणों के अतिरिक्त इससे स्वप्न नामक सन्ध्यन्तर का उदाहरण देते हुए केवल इतना ही कहा गया है—

'एतां सतीम्' इत्यादि।

सागरनन्दी के युग में यह अतिशय लोकप्रिय रहा होगा। इसकी रचना ग्यारहवीं शती से पूर्व हुई।

कृत्यारावण

संस्कृत में कुछ नाटकों के नाम उनकी सर्वोत्कृष्ट कलात्मक योजना से सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण पात्र के नाम के साथ जोड़ कर रख देने की रीति स्पष्ट है। भास के स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण, कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तल, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, बालचन्द्रसूरि का करुणावज्रायुध आदि इस प्रकार के कुछ प्रमुख रूपक हैं। इनमें क्रमशः वासवदत्ता का स्वप्न, यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा, शकुन्तला का अभिज्ञान (अङ्गुलीयक), राक्षस की मुद्रा और वज्रायुध की करुणा नाट्यकला की दृष्टि से इनके रचयिताओं के द्वारा सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण तत्त्व मान कर कृतियों के नाम के अङ्ग बन गये हैं। इसी प्रकार रावण की कृत्या को अपनी कृति में कवि ने विशेष अनुसन्धान मान कर इसका नाम 'कृत्यारावण' रखा है।

सीता को कृत्या मानने की दिशा में हनुमन्नाटक का अधोलिखित पद्य प्रकल्पक है—

पश्य त्वत्कुलनाशाय मया रामेण भूयते १०.१७

इस अप्राप्त नाटक को प्राप्त अंशों में रावण की कृत्या का केवल एक उल्लेख मिलता है। सम्भवतः यह कृत्या सीता ही है, जैसा कृत्यारावण के द्वितीय अङ्क में उल्लेख है—

दुरात्मन् नेयं सीता स्वनाशाय कृत्येयं ह्रियते त्वया।

[अभिनवभारती ना० शा० २०.७० पर]

यह ऋषियों की उक्ति है।

राम के आक्रमण करने पर उनके पक्ष का विध्वंस करने के लिए कोई कृत्या रावण ने बनाई हो, जिसका प्रतिकार रामादि ने किया हो। ऐसी कृत्या केवल अनुमान मात्र है। नाटक के उद्धरणों में कहीं इस प्रकार की कृत्या का उल्लेख नहीं है।[1]

कृत्यारावण के कर्ता का नाम कहीं नहीं मिलता, पर उसका प्रादुर्भाव आठवीं शती के अन्त में हुआ, यह निर्विवाद है। अभिनवगुप्त के अनुसार शङ्कुक ने कृत्यारावण से कतिपय अंश उदाहरण रूप में लिये हैं।[2] शङ्कुक नवीं शती के आरम्भ में हुए। यह कृत्यारावण की रचनाकाल की उपरितम सीमा है। कृत्यारावण पर भवभूति के महावीरचरित और उत्तररामचरित का प्रभाव प्रतीत होता है। भवभूति ७०० से ७५० ई० के लगभग हुए। यह कृत्यारावण के रचना की अधस्तम सीमा मानी जा सकती है। इन दोनों के बीच में ८०० ई० के लगभग इसकी रचना मानी जा सकती है।

कृत्यारावण सात अङ्कों का नाटक है। इसका आरम्भ सीताहरण से होता है और अन्त है रावण विजय के पश्चात् रामद्वारा सीता की पुनः प्राप्ति।[3] इसकी प्रस्तावना का केवल नीचे लिखा अंश मिलता है—

सूत्रधारः — (निःश्वस्य) आर्ये ननु ब्रवीमि

वाक्प्रपञ्चसारेण निर्विशेषाल्पवृत्तिना।
स्वामिनेव नटत्वेन निर्विण्णाः सर्वथा वयम्॥

तद् गच्छतु भवती पुत्रं मित्रं वा कमपि पुरस्कृत्य क्रमागतामिमां कुजीविकामनुवर्तयितुम्। ततः क्रमादाह—

---

१. कृत्या का वर्णन विष्णुपुराण १.१८ में मिलता है। पुरोहितों ने प्रह्लाद को मारने के लिए कृत्या बनाई थी—

कृत्यामुत्पादयामासुर्ज्वालामालोज्ज्वलाकृतिम्॥ १.१८.३३

उसने प्रह्लाद की छाती पर शूल से प्रहार किया। पर वह शूल छिन्न-भिन्न हो गया। फिर उसने अपने निर्माताओं को ही मार डाला।

२. अभिनवभारती ना० शा० १९.८८ पर

३. यह कथावस्तु उत्तररामचरित की कथावस्तु के समकक्ष पड़ती है। राम का सीता से वियोग और पुनर्मिलन उभयनिष्ठ है। करुण की विशेषता दोनों में है।

परिग्रहोरुग्राहौघाद् गृहसंसारसागरात् ।
बन्धुस्नेहमहावर्तादिदमुत्तीर्य गम्यते ॥

सूत्रधार के इस वक्तव्य से अनुमान किया गया है कि प्रस्तावना के पश्चात् कोई विष्कम्भक रहा होगा, जिसकी एकोक्ति में मारीच ने बताया होगा कि किस प्रकार रावण उसे ऐसे बुरे काम में लगा रहा है, जो उसके निर्वेद को बढ़ा रहा है।[1]

अङ्कारम्भ में कनकमृग रंगमञ्च पर आता है।[2] उसके पीछे राम गये। लक्ष्मण और सीता कुटी में रह गये थे। तभी शूर्पणखा पहले गौतमी बन कर सीता को कुटी से कहीं दूर ले गई[3] और फिर मारीच के राम के स्वर में करुण, क्रन्दन पर वह सीता का रूप धारण करके शीघ्र कुटी में आ पहुँची। तभी नेपथ्य से सुनाई पड़ा—हा भ्रातः, हा लक्ष्मण, परित्रायस्व मां परित्रायस्व। इसे सुन कर शूर्पणखा (मायासीता) मूर्च्छित हो गई। लक्ष्मण को सचेत होने पर उसने डाँट लगाई—
आः अनार्य, त्वं तिष्ठस्येव। अहो, इदानीमसि त्वं नृशंसो निर्घृणश्च। तिष्ठतु तावद् भ्रातृस्नेहः। कथं नाम इक्ष्वाकुकुलसम्भवेन महाक्षत्रियेण भूत्वा एवं त्वया व्यवसितम्। ननु भणामि एवमाक्रन्दन् शत्रुरपि नोपेक्ष्यते, किं पुनरार्यपुत्रः।
लक्ष्मणः — आर्ये, ननु त्वदर्थं एवार्येण स्थापितोऽस्मि।
शूर्पणखा — कुमार एव समार्थः कृतो भवति। एवं चाहं परिरक्षिता भवामि। तत्सर्वथान्यमेव तेऽनिष्टमभिप्रायं लक्षयामि।[4]

मायासीता अदृश्य हो गई। लक्ष्मण चलते बने। वास्तविक सीता आश्रम में लौट आई और तभी उनका अपहरण करने के लिए रावण आ पहुँचा। उसने सीता से प्रस्ताव किया—

---

1. V. Raghavan : Some old Lost Rāma Plays P. 33

२. कृत्यारावणादिषु कनकमृगादिरचनात्मिका त्वसानुषी। शृङ्गारप्रकाश पृ० ४८३

३. ऐसा लगता है कि गौतमी कोई ऋषिकन्या थी, जो सीता की सखी बन गई थी और उसके पास कभी-कभी आती थी। वह सीता को लेकर पुष्पावचय के लिए वन में दूर-दूर तक जाती होगी, जैसा भास्कर के उन्मत्तराघव में परवर्ती युग में मधुकरिका करती है। शूर्पणखा उसका रूप धारण करके मृग के पीछे राम के जाने के पश्चात् सीता को दूर ले गई।

४. इस प्रकार मूलवृत्त में मोड़ देकर और कूट पात्रों की योजना करके लेखक ने सीता के चरित्र का इस प्रसङ्ग में श्वेतीकरण किया है। इस प्रकार का श्वेतीकरण का प्रयास भवभूति के महावीरचरित पर आदर्शित है। महावीरचरित में शूर्पणखा ने मन्थरा का रूप धारण करके राम का वनवास कराया था। इस प्रकार कैकेयी का चरित्र निष्कलुष बनाया गया है।

रावणः — विदेहराजपुत्रि,

विक्रमेण मया लोकास्त्वया रूपेण निर्जिताः ।
सब्रह्मचारिणमतो भजमानं भजस्व माम् ।।

सीता ने उत्तर दिया हताश, आत्मा तावत्त्वया न निर्जितः । का गणना लोकेषु ।

आगे रावण और सीता का इस प्रसङ्ग में इस प्रकार संवाद हुआ—

रावणः — सीते आरुह्यतां पुष्पकम् ।

सीता — हताश, अपि मरिष्यामि न पुनः आरोक्ष्यामि ।

रावणः — आः किं बहुना ?

यावत् करेण दृढपीडितमुष्टियन्त्र-
मुत्खाय चन्द्रकिरणद्युतिचन्द्रहासे ।
न त्वत्पुरो बटुशिरःकमलोपहार
आरभ्यते समधिरोह शिवाय तावत् ।।

सीता — वरमात्मनः शरीरस्यात्याहितम् । न पुनस्तपोधनानाम् । इयमधिरोहामि मन्दभागिनी । हा आर्यपुत्र (इति रुदती आरोहं नाट्यति)

सीता ने लोकपालों का आह्वान किया कि मुझे बचायें, जिसे सुनकर रावण ने कहा—

आः लोकपालानाक्रन्दसि ।

ऋषियों ने भावी घटना की सूचना दी—

नेयं सीता स्वनाशाय कृत्येयं ह्रियते त्वया ।

ऋषिकुल का एक कुलपति था। उसने राम की अनुपस्थिति में रावण को सीता से बचाने के लिए प्रयत्न किया था। सीता की रक्षा का दूसरा प्रयत्न जटायु ने किया। जटायु रावण से लड़कर मरणासन्न था, जब राम उसके पास पहुँचे। राम ने उसे देख कर सन्देह किया—

गिरिरयममरेन्द्रेणाद्य निर्लूनपक्षः
कृतरिपुरसुरेशैः शातितो वैनतेयः ।
अपरमिह मनो मे यः पितुः प्राणभूतः
किमुत बत स एप व्यतीतायुर्जटायुः(?) ।।

ऐसी वियोग की स्थिति में राम ने विलाप किया—

वैदेहि देहि कुपिते दयितस्य वाच-
मित्थं गतस्य सहसा गतसञ्ज्ञस्य ।।[1]

लक्ष्मण ने सारा प्रयास किया और अन्त में उन्हें आशा हुई—

---

१. इस पद्य को सागरनन्दी ने विलाप के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

तदपि नामायमस्मद्वृत्तान्तस्य प्रतिक्षणमुपचीयमाननायकव्यसनभाजोऽभ्युदयावसानः संहारो नाटकस्येव भवेत् ।

उन्होंने स्वयं एकोक्ति द्वारा अपने क्लेशपूर्ण परिभ्रमण का वर्णन किया है—

मार्गाः कण्टकिनः प्रतप्तसिकताः पांसूत्करा लंघिताः
क्रान्ताः शृङ्गवतां निकामपरुषाः स्थूलोपमाभूमयः ।
भ्रान्तं दृप्तमृगेन्द्रनाथजनितत्रासैः समं दन्तिभिः
पीतं च द्विपदानराजिकलुषव्यासंगि तिक्तं पयः ॥

सुग्रीव के प्रयास के विषय में सम्भवतः वैतालिक की उक्ति है—

धन्यास्ते कृतिनः श्लाघ्यास्तेषां च जन्मनो वृतिः ।
यैरुज्झितात्मकार्यैस्तेषामर्थाः प्रसाध्यन्ते ॥

अङ्गद राम का दूत बनकर लङ्का गया। वहाँ उसने अन्तःपुर में जाकर मन्दोदरी से दुर्व्यवहार किया। उसने मन्दोदरी से उद्धत बातें कहीं—

मा गास्तिष्ठ पुनर्व्रज क्षणमितो गत्वा पुनः स्थीयतां
यत्रास्ते भुजवीर्यदर्पितमदो विद्रावणो रावणः ।
मद्बाहुद्वयपञ्जरान्तरगता मूढे किमाक्रन्दसि
सिंहस्याङ्कमुपागतामिव मृगीं कस्त्वां परित्रास्यते ॥

अङ्गद ने उसका केशकर्षण किया।[1] इसका समाचार प्रतीहारी ने उस समय रावण को दिया, जब रावण शान्तिगृह में था[2]—

प्रतीहारी — (श्रुत्वा ससंभ्रममात्मगतम्)—अम्मो भट्टिनी अपि आक्रन्दति (प्रकाशम्) भर्तः अन्तःपुरे महान् कलकलः श्रूयते ।

रावणः — ज्ञायतां किमेतत्

अङ्गद और रावण की इस प्रसङ्ग की मुठभेड़ का आँखों देखा वर्णन कवि ने कृत्यारावण में किया है, जिसका संक्षिप्त परिचय नाट्यदर्पण की नीची लिखी टिप्पणी में मिलता है—

अङ्गदेनाभिद्रूयमाणाया मन्दोदर्या भयम् , अङ्गदस्योत्साहः, अस्यैव रावणदर्शनेन 'एतेनापि सुरा जिता' इत्यादि वदतो हासः, 'यस्तातेन निगृह्य बालक

---

१. अङ्गदेन मन्दोदरीकेशकर्षणम् । नाटकलक्षणरत्नकोश में आरक्रन्द का उदाहरण ।

२. शान्तिगृह विश्राम करने का या शान्तिकर्म करने का कमरा होता था। डॉ० राघवन् ने उसका अर्थ अभिचार-गृह लिया है, जो उचित नहीं प्रतीत होता। Some lost Ram Play P. 43 शान्तिगृह में कृत्या नहीं उत्पन्न की जाती ।

इव प्रक्षिप्य कक्षान्तरे" इति च जल्पतो जुगुप्साविस्मयहासाः, रावणस्य रति-क्रोधौ ।

रावण ने सीता को मार डालने के लिए दारुणिका नामक राक्षसी को नियुक्त किया, पर सीता की सौम्यता से दारुणिका का सौमनस्य जाग पड़ा। इसका विवरण दारुणिका और त्रिजटा के संवाद में इस प्रकार मिलता है—

त्रिजटा — दारुणिके किं त्वं भणसि ।

दारुणिका — आर्ये त्रिजटे, अपि नामाप्रतिहताज्ञा मम शरीरे निपतिष्यति न पुनरीदृशमकार्यं करिष्ये ।

त्रिजटा — तथापि त्वं दारुणिकेत्युच्यसे ।

(पुनः कमान्नेपथ्ये) हा त्रिजटे, एषा ते प्रियसखी सीता भर्तुर्माया-शिरोदर्शनोत्पत्तिमरणनिश्चयाग्निं प्रवेष्टुकामा ।

त्रिजटा — हा हतास्मि, मन्दभागिनी, मा इदानीं दैवतेन भर्तुराज्ञा सम्पाद्यते ।

रावण मारा गया—

कष्टं भोः कष्टं

रामेण प्रलयेनेव महासत्त्वेन लीलया ।
पातितोऽयं दशशिराः शृङ्गवानिव पर्वतः ॥

अन्त में सीता की अग्निपरीक्षा हुई । अग्नि ने कहा—

वत्स उच्यतां किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।

रामः — भगवन् अतः परमपि प्रियमस्ति ।

तथापीदमस्तु

यथायं मम सम्पूर्णः चिन्तितार्थो मनोरथः ।
एवमभ्यागतो रङ्गः सर्वपापैः प्रमुच्यताम् ॥

अपि च

निरीतयः प्रजाः सन्तु सन्तः सन्तु चिरायुषः ।
प्रथन्तां कवयः काव्यैः सम्यङ् नन्दन्तु मातरः ॥

समीक्षा

सीता के चरित्र को सर्वथा निर्दोष बनाने के उद्देश्य से कवि ने सीताहरण के थोड़ा पूर्व सीता को गौतमीरूपधारिणी शूर्पणखा के साथ कहीं दूर हटवा दिया है और फिर शूर्पणखा को सीता के रूप में आश्रम में लाकर राम के करुण क्रन्दन को सुनने के पश्चात् उस मायासीता से लक्ष्मण के लिए अपशब्द सुनवाये हैं। कृत्यारावण का यह प्रकरण महावीरचरित के उस प्रकरण का अनुसरण करता है,

जिसमें शूर्पणखा मन्थरा का रूप धारण करके राम को वनवास दिलाती है। इस प्रकार कैकेयी के चरित्र का श्वेतीकरण किया गया है।

अङ्गद का छठें अङ्क में मन्दोदरी के साथ दुर्व्यवहार करना अशोभन है। कवि को मनोरञ्जक होने पर भी अश्लील होने के कारण ऐसे प्रसङ्ग नहीं लाने चाहिए।

इस नाटक में राम की करुणा के तीन प्रधान प्रसङ्ग हैं—जटायुवध, लक्ष्मणशक्तिभेद और सीताविपत्तिश्रवण।

शारदातनय ने कृत्यारावण को पूर्ण कोटि का नाटक बताया है—

पूर्णस्य नाटकास्यास्य मुखाद्याः पंचसन्धयः।
उदाहरणमेतस्य कृत्यारावणमुच्यते॥

कृत्यारावण की संवाद-कला उत्कृष्ट कोटि की है। सप्तम अङ्क में कंचुकी और लक्ष्मण विभीषण का संवाद है—

कंचुकी — कुमार एतत्।
उभौ — किम्?
कंचुकी — आः इदम्।
उभौ — आर्य कथय, कथय।
कंचुकी — का गतिः, श्रूयताम्। आर्या खलु सीता रावणाज्ञया किंकरोपनीतं भर्तुर्मायाशिरोऽवलोक्य सखीभिराश्वास्यमानापि निवृत्तप्रयोजना 'नाहमात्मानं क्लेशयामि' इत्युक्त्वा,
सर्वे — किं कृतवती।
कंचुकी — यन्न शक्यते वक्तुम्।

शशिन इव कला दिनावसाने कमलवनोदरमुत्सुकेव हंसी।
पतिमरणरसेन राजपुत्री स्फुरितकरालशिखं विवेश वह्निम्॥

गुणमाला

गुणमाला नामक डोम्बीका का उल्लेख अभिनवगुप्त ने भारती में किया है। हेमचन्द्र ने डोम्बिका का लक्षण उपन्यस्त करके गुणमाला नामक डोम्बिका से उद्धरण दिया है—

जामि तारा अनुडिअपुण्डणम्वीसमि

चित्रभारत

क्षेमेन्द्र ने चित्रभारत नामक नाटक का प्रणयन किया था। इससे एक उद्धरण उन्होंने औचित्यविचारचर्चा में दिया है—

नदीवृन्दोद्दामप्रसरसलिलापूरिततनुः
स्फुरत्स्फीत-ज्वालानिविडवडवाग्निक्षतजलः ।
न दर्पं नो दैन्यं स्पृशति बहुसत्त्वः पतिरपा-
मवस्थानां भेदाद् भवति विकृतिर्नैव महताम् ।।

इसमें युधिष्ठिर का सत्त्वोत्कर्ष वर्णित है। यथानाम इसमें महाभारतीय कथानक रूपित है।

चित्रोत्पलावलम्बितक

चित्रोत्पलावलम्बितक नामक प्रकरण के रचयिता अमात्य शङ्कुक हैं। इसके पाँचवें अङ्क में दस्युओं के भय से नायिका, उसकी सखी, स्थविर आदि का राजगृह से भागने की चर्चा है। इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है—
नेपथ्य से चीत्कारपूर्वक—

गिण्हेध ले गिण्हेध। वेढेध ले, वेढेध।

स्थविरः—हा धिक्, कष्टं दस्यवः सम्पतन्ति। किमत्र शरणं प्रपद्येमहि।

शङ्कुक का प्रादुर्भाव नवीं शती में हुआ था, जिस समय कश्मीर में अजापीड राज्य करते थे।

चूडामणि

चूडामणि डोम्बिका कोटि का उपरूपक है। अभिनवभारती में कहा गया है—
चूडामणिडोम्बिकायां प्रतिज्ञातं "विन्दुगुणं वमि सहि इहोदिवचो अमिदुणधं। महसारकः गेडं। [ना० शा० ४.२६० पर भारती से]

छलितराम

छलितराम का नाम वक्रोक्तिजीवित के अनुसार इसके संविधानक छलित के कारण है। इसमें राम को छलकर सीता का वनवास कराया गया है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख अभिनवभारती, वक्रोक्तिजीवित, नाटकलक्षणरत्नकोश और दशरूपक की अवलोक टीका में मिलता है। इससे निश्चित है कि इसकी रचना का समय ९०० ईसवी के पूर्व है। सम्भव है, इसकी रचना कुन्दमाला और उत्तररामचरित के प्रणयन के अन्तराल में हुई हो। इसकी रचना की अधस्तम सीमा निर्णय करने के लिए राम के उत्तरचरित के विकास की ओर दृष्टिपात किया जा सकता है। इसकी कथा वाल्मीकिरामायण की कथा के सन्निकट पड़ती है। उसी के समान राम के द्वारा निर्वासित होने पर सीता वाल्मीकि के आश्रम में रहती हैं और राम के यज्ञ

के अवसर पर वे अपने पुत्रों को अयोध्या भेजती हैं। इस पर परवर्ती रूपकों या काव्यों का प्रभाव नहीं दिखाई देता। सम्भवतः यह उत्तरगुप्तयुगीन रचना है। छलितराम में स्वप्नवासवदत्त और मृच्छकटिक का अनुहरण, 'देवानां प्रियः' का महोदय के अर्थ में प्रयोग आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जिनसे अनुमान होता है कि इसे गुप्तकाल के पश्चात् नहीं रखा जाना चाहिए।[1] किसी परवर्ती नाटक का इस पर प्रभाव न होना भी यही सिद्ध करता है। रामकथा का जो रूप इसमें लिया गया है, परवर्ती रामकथा के रूपों से संस्पृष्ट नहीं है। छलितराम की प्रस्तावना में कहा गया है—

आसादितप्रकटनिर्मलचन्द्रहासः
प्राप्तः शरत्समय एष विशुद्धकान्तः।
उत्खाय गाढतमसं घनकालमुग्रं
रामो दशास्यमिव संभृतबन्धुजीवः॥

इसके पश्चात् कथा आरम्भ होती है, जब राम कहते हैं—

रामः — लक्ष्मण, तातवियुक्तामयोध्यां विमानस्थो नाहं प्रवेष्टुं शक्नोमि। तदवतीर्यगच्छामि।

कोऽपि सिंहासनस्याधः स्थितः पादुकयोः पुरः।
जटावानक्षमाली च चामरी च विराजते॥

वे उतरे और भरत से मिले। छलितराम का द्वितीय अङ्क पुंसवनाङ्क है, जिसमें सीता का पुंसवन धूमधाम से हो रहा है।[2] तभी उसके निर्वासन की योजना का आरम्भ होता है। लवणासुर के द्वारा नियुक्त दो राक्षस सुमाय और चितामुख परस्पर बातचीत करते हैं—

आर्यपुत्रस्य पुत्रो भूत्वा तावन्तं कालं रावणेनोपनीतां सीतामद्यापि न परित्यजति।

उन्होंने कैकेयी और मन्थरा का रूप धारण किया था। राम से एकान्त में उन्होंने सीतादूषण-विषयक लम्बी चर्चा की। उनकी बात सुन कर सीता का निर्वासन

---

१. कीथ इसका रचनाकाल १००० ई० के लगभग मानते हैं, जो अशुद्ध है क्योंकि १००० के लगभग अभिनवगुप्त ने उसका उल्लेख किया है। इसे ९०० ई० के बाद तो रखा ही नहीं जा सकता।

२. राघवन् इसको प्रथम अङ्क मानते हैं, जो समीचीन नहीं लगता। वे कहते हैं कि यह प्रतिमुख सन्धि में है। प्रतिमुख सन्धि प्रथम अङ्क में नहीं हुआ करती। प्रायः प्रत्येक सन्धि के लिए एक अङ्क होने का नियम सर्वत्र प्रतिपालित है। राम का अयोध्या-समागम यह प्रथम अङ्क के लिए पर्याप्त है। राघवन् पृष्ठ ५५ Some Lost Rama Plays. पृ० ५५।

राम ने कर दिया। सम्भव है, उसके निर्वासन के समय कोई ऐसा कुचक्र असुरों के द्वारा चलाया गया कि सीता मर जाय। इस कुचक्र में वह मरते-मरते बची, जिसकी चर्चा चितामुख और सुमाय ने इस प्रकार की है—

चितामुखः — केन स गर्भदासी जीवापिता।
सुमायः — महतीयं खलु कथा। पथि श्रोष्यसि।

छलितराम का आगे का अङ्क अनुतापाङ्क है।

इसके पश्चात् छलितराम में अनुतापाङ्क आता है। राम सीता के वियोग में सन्तप्त हैं। इस प्रसङ्ग का केवल नीचे लिखा वाक्य मिलता है—

किं देव्या न विचुम्बितोऽसि बहुशो मिथ्या प्रसुप्तस्तया।

राम के अश्वमेध में कुशलव आनेवाले थे। इस प्रसङ्ग में सीता की लवकुश से बात-चीत हुई—

सीता — जात कल्यं खलु युवाभ्यामयोध्यायां गन्तव्यं तर्हि स राजा विनयेन नमितव्यः!
लवः — अम्ब, किमावाभ्यां राजोपजीविभ्यां भवितव्यम्।
सीता — जात स खलु युवयोः पिता।
लवः — किमावयो रघुपतिः पिता?
सीता—(साशङ्कम्) जात न खलु परं युवयोः, सकलाया एव पृथिव्याः।

वहाँ अश्वमेध के घोड़े को लेकर लव लक्ष्मण से भिड़ गये। लव ने युद्ध किया पर लक्ष्मण ने उन्हें परास्त किया और बन्दी बनाकर ले चले।[1] उस अवसर पर नेपथ्य से सुनाई पड़ा—

येनावृत्य मुखानि साम पठतामत्यन्तमायासितं
बाल्ये येन हृताक्षसूत्रवलयप्रत्यर्पणैः क्रीडितम्।
युष्माकं हृदयं स एष विशिखैरापूरितांसस्थली
मूर्च्छाघोरतमःप्रवेशविवशो बद्ध्वा लवो नीयते॥

वहां राम की यज्ञशाला में लाये जाने पर लव ने देखा कि सीता द्वार पर विराजमान हैं—

लवः — (स्वगतम्) अये कथमियमम्बा राजद्वारमागता। (उत्थाय सहसोपगम्याञ्जलिं बद्ध्वा) अम्ब, अभिवादये। (निरूप्य) कथमियं काञ्चनमयी। (उपसृत्योपविशति सर्वे परस्परमवलोकयन्ति स्म)।

रामः — (दृष्ट्वा) वत्स किमियं तव माता?

---

१. यह कथांश उत्तररामचरित के पहले का प्रतीत होता है।

लवः — राजन्, ज्ञायते सैवेयमस्मज्जननी भूषणोज्ज्वला।
रामः — सबाष्पं हस्तेन गृहीत्वा समीपे उपवेशयति।
लक्ष्मणः — (सास्रम्) आयुष्मन्, किं नामधेया सा देवानां प्रियस्य जननी।
लवः — तां खलु मातामहोऽस्माकमभिधत्ते सीतेति।
लक्ष्मणः — (सबाष्पं रामस्य पादयोर्निपत्य) आर्य, दिष्ट्या वर्धसे सपुत्रा जीवत्यार्या।

अभिनवगुप्त ने इसे धर्मप्रधान नाटक कहा है, क्योंकि इसमें अश्वमेधयाग का प्राधान्य है।[1]

अनर्घराघव में राम और सीता के वनवास को भी दशरथ को छलकर आयोजित किया गया है। अनर्घराघव के अनुसार जाम्बवान् ने शबरी को नियुक्त किया था कि मन्थरा बनकर दशरथ के पास जाओ और उनको कैकेयी का कूटपत्र देकर राम का वनवास कराओ। भरत ने चित्रकूट में राम से मिलने पर कहा—'आर्य लोके कैकेयानामाकल्पमनल्पमकीर्तिस्तम्भं निखनता केनापिच्छलितस्तातः।' सम्भव है, इस भाव को मुरारि ने छलितराम से ग्रहण किया हो।

राम को यह ज्ञान होता है कि मेरी पत्नी जीवित है, जब लव पहचानता है कि इस मूर्ति के समान मेरी माता सीता है। यह संविधान स्वप्नवासवदत्त के उस दृश्य के समान प्रतीत होता है, जिसमें उदयन को यह ज्ञात होता है कि मेरी पत्नी जीवित है, जब पद्मावती पहचानती है कि इस चित्र के समान मेरी सहेली है। छलितरामायण में वह दृश्य स्वप्नवासवदत्त या उसी पर आधारित किसी अन्य नाटक के अनुकरण पर बना है।

उपर्युक्त संविधान में छायानाटक के वे सभी तत्त्व हैं, जो परवर्ती युग में मेघप्रभाचार्य के धर्माभ्युदय में मिलते हैं। इस दृष्टि से इसे छायानाटक कहा जा सकता है।

सुमाय और चित्रमुख के कुचक्र से भी सीता मरी नहीं। सम्भवतः उस समय जब सीता को छोड़कर लक्ष्मण लौट आये थे, इन दोनों राक्षसों ने सीता को मार ही डाला था और वाल्मीकि या किसी अन्य उपकारी जीव ने उन्हें इस अवस्था में पाकर बचाया। यह दृश्य मृच्छकटिक में वसन्तसेना के तत्सम्बन्धी दृश्य का अनुहरण करता है, जिसमें उसकी प्राणरक्षा बौद्धभिक्षु ने की थी।

राम से कैकेयी और मन्थरा बनकर चितामुख और सुमाय ने सीता के विषय में अपवादात्मक बातें कहीं—यह समञ्जसित नहीं प्रतीत होता। कैकेयी तो वहीं

---

१. कश्चिन्नाटके धर्मः प्रधानः, यथा छलितरामे रामस्य अश्वमेधयागः। ना० शा० १.१०८ पर टीका।

अयोध्या में थी। सीता के वनवास का उसने विरोध क्यों न किया? इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान नाटक में प्राप्तांशों से नहीं हो पाता।

जानकी-राघव

जानकी-राघव का सर्वप्रथम उल्लेख सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में किया है। इसकी कथा का आरम्भ सीताहरण से होता है और अन्त में सीता का प्रत्याहरण होता है। इसका कथासार कवि ने इस प्रकार दिया है—

रामस्य रावणकुलक्षयधूमकेतोः
प्रीतिं तनोत्यमृतसिन्धुरियं कथैव।
वाचः कवेः सहृदयश्रुतिरत्नपात्री
पेया भवन्तु न भवन्तु कृतं ग्रहेण॥

प्रथमाङ्क के अनुसार सीता के स्वयंवर में रावण पहुँचा था। वहां उसने राजाओं को अपनी प्रतिज्ञा सुनाई—

रे क्षत्रियाः शृणुत रे दशकन्धरस्य
दोर्दर्पनिर्जितसुराधिपतेः प्रतिज्ञाम्।
सीतां विवाहयतु कोऽपि धनुर्भनक्तु
नेष्याम्यहं पुनरिमामपहृत्य लङ्काम्॥[1]

परशुराम का काण्ड जानकीराघव में है। सीता की सखी प्रियंवदा परशुराम के आने पर भीत सीता से कहती है—

मा भैषीः मिथिलाधिराजतनये दिष्ट्याधुना वर्धसे
भद्रं विद्धि निजप्रियस्य भुजयोर्वीर्येण गुर्वोरपि।
आक्षेपे हसता स्वपौरुषकथालापेष्ववज्ञावता
कर्षश्चापमधिज्यकार्मुकभृता रामेण रामो जितः॥

---

१. जानकीराघव के इस पद्य की छाया प्रसन्नराघव के प्रथम अङ्क के नीचे लिखे पद्य पर स्पष्ट है—

अन्योऽपि कोऽपि यदि चापमिमं विकृष्य
सीताकरग्रहविधिं विदधीत वीराः।
लङ्कां नयामि च गिरानुनयामि चैनां
द्रागानयामि च वशे जनकेन्द्रपुत्रीम्॥ १.५५

दोनों पद्य प्रथम अङ्क में और एक ही छन्द में है। जयदेव जानकीराघव के उपर्युक्त पद्य से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

अयोध्या में विवाह के पश्चात् आकर जानकीराघव दम्पती की प्रणयलीला आरम्भ हुई, जिसका वर्णन द्वितीय अङ्क में इस प्रकार है—

अपि भुजलतोत्क्षेपादस्याः कृतं परिरम्भणं
प्रियसहचरीक्रीडालापे श्रुता अपि सूक्तयः ।
नवपरिणयक्रीडावत्या मुखोन्नतियत्नतो-
प्यलसवलिता तिर्यग्दृष्टिः करोति महोत्सवम् ॥

मयि किल पुरा दृष्टे पश्चान्न दृष्टिपथं गते
सुतनुरनयन् मूर्च्छाम्भोधौ दिनानि बहून्यपि ।
भृशमधिगतस्थैर्या सेयं न मामभिभाषते
क्षिपति च मुहुर्व्याजाद् दृष्टिं सुधास्नपितामिव ॥

तृतीयाङ्क में सीता के हरण के पश्चात् सुग्रीव, हनुमान् रामादि का मिलन रावण को जीतकर सीता को प्राप्त करने की दिशा में प्रवर्तित है । सुग्रीव का वक्तव्य है—

जानकीं हरता मन्ये दशकण्ठेन रक्षसा ।
विनाशायात्मनो वैरं रामे महदनुष्ठितम् ॥

और हनुमान् ने वस्तुस्थिति का परिचय दिया है—

यस्ताडकां निहतवान् शिशुरेव येन
भग्नं धनुः पशुपतेः विजितो भृगुर्वा ।
एकः स्वरादिनिधनं विदधे प्रवीरः
तं राघवं शरणमेति हितं स्वमिच्छन् ॥

राम ने सूर्यतनय सुग्रीव को पहचाना—

लीलागतैरपि तरङ्गयतो धरित्री-
मालोकनैर्नमयतो जगतां शिरांसि ।
तस्यानुमापयति काञ्चनकान्तिगौर-
कायस्य सूर्यतनयत्वमधृष्यतां च ॥

जानकीराघव के मायालक्षणाङ्क में कोई माया प्रयुक्त है, जिसको जान लेने के लिए कोई सन्दर्भ अभी तक सुलभ नहीं है । माया का प्रयोग भवभूति और उसके परवर्ती नाटककारों की रचनाओं में प्रायशः मिलता है । राक्षस माया प्रयोग में निपुण हैं । मायाङ्क में रावण की एक उक्ति है—

सा कृष्टा कृशिमानमेति मदनायासैर्वयं दुर्बलाः
सा पत्युर्विरहेण रोदिति वयं तस्याः कृते साश्रवः ।
सा दुःखेऽस्ति धनैर्विना वयमयी तत्संगमे दुःखिनः
सीताऽस्मासु तथाप्यहो न दयते तुल्यास्ववस्थास्वपि ॥

लंकाकाण्ड की कथा छठें अङ्क में है। राम ने रावण को सन्देश भेजा—

जातस्य द्रुहिणान्वयादधिगतज्ञेयस्य लोकत्रयी
त्रासोत्पादिवपुर्धरस्य हरतः कोऽयं दशास्योचितः।
दूरस्थे मयि लक्ष्मणे प्रचलिते कुत्रापि शून्ये वने
वैदेहीहरणे प्ररूढकपटप्रौढक्रमो विक्रमः॥

इस अङ्क में सीता की मानसिक विचारणाओं का आकलन राम के मुख से इस प्रकार है—

इहैवास्ते सीता करकिसलयन्यस्तवदना
विचिन्वाना वार्ता तव मम च सार्धं त्रिजटया।
विमर्दे रक्षोभिः प्रतिदिवसमाधिर्भवति नः
समुद्भ्रान्तप्राणा क्षिपति रजनीं वासरमपि॥

रावणविनाशोन्मुख है। इसका परिचय लक्ष्मण का राम के प्रति निवेदन में है—

दूरप्रोन्नतकुम्भकर्णविटपी छिन्नस्त्वया शक्रजित्—
स्थाणुः क्ष्मां गमितः निकुञ्जगहनः कुम्भस्य चोन्मूलितः।
पौलस्त्यैकजरद्रुमस्थितमनीकादुर्गदुर्गेऽस्ति ते
ध्वस्तेयं व्यसनाटवी किमधुनाप्यार्यो तदुत्ताम्यति॥

इस नाटक के अन्तिम सातवें अङ्क का नाम संहार है, जिसमें रावणवध होता है। इसी में राम को विभिषण सूचना देते हैं कि सीता अग्नि में जलीं नहीं। राम को इससे सातिशय प्रसन्नता है।

जानकीराघव का उल्लेख सागरनन्दी ने किया है। इसका प्रभाव प्रसन्न-राघव पर है। यह दसवीं शती के पहले की रचना प्रतीत होती है।

देवीचन्द्रगुप्त

देवीचन्द्रगुप्त नामक प्रकरण के लेखक विशाखदेव की दूसरी रचना सुप्रसिद्ध मुद्राराक्षस है। इसकी कथा संक्षेप में है कि राजा रामगुप्त ने दुर्धर्ष शत्रु शकराज को अपनी पत्नी ध्रुवदेवी देकर सन्धि करने का निर्णय कर लिया था, जिससे प्रजावर्ग समाश्वस्त रहे। इसके पश्चात् ध्रुवदेवी की वेषभूषा धारण करके कथानायक कुमार चन्द्रगुप्त ने उस शकराज को मार डाला। शकराज को रामगुप्त ने अपना सर्वस्व दे डाला था। उससे प्रबलतर चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त का सर्वस्व ले लिया और उसकी पत्नी ध्रुवदेवी से विवाह करके सम्राट् बन बैठा।[1] यह सब कैसे हुए—यह प्रकरण के प्राप्त अंशों से कल्पनीय है।

---

१. ध्रुवस्वामिनी को जब ज्ञात हुआ कि मेरे पति रामगुप्त मुझे शकराज को

रामगुप्त ने शकराज को ध्रुवदेवी दे देना स्वीकार कर लिया। इसे न सह सकने-वाले चन्द्रगुप्त शकराज का वध करने लिए ध्रुवदेवी का वस्त्र पहन कर जाने लगा। कुमार चन्द्रगुप्त से रामगुप्त ने इस प्रकार कहा—

प्रतिष्ठोक्तिषु न खल्वहं त्वां परित्यक्तुमुत्सहे।
प्रत्यग्रयौवनविभूषणमङ्गमेतद्
रूपश्रियं च तव यौवनयोग्यरूपाम्।
सक्तिं च मय्यनुपममामनुरुध्यमानः
देवीं त्यज्यामि बलवांस्त्वयि मेऽनुरागः॥

रामगुप्त ध्रुवदेवी को छोड़कर भी चन्द्रगुप्त को शकराज से लड़कर हानि उठाने से बचाना चाहता था। चन्द्रगुप्त को प्रस्ताव लज्जास्पद लगा। वह साहसी वीर था। उसने स्त्रीवेष में शत्रु के स्कन्धावार में प्रवेश करने के लिए प्रस्थान किया। उस समय किसी ने पूछा कि शत्रुपक्ष में इतने अमात्यों के होते हुए आप अकेले क्योंकर वहाँ अपने को संशय में डाल रहे हैं? चन्द्रगुप्त ने उत्तर दिया—

सद्वंशान् पृथुवर्ष्म-विक्रम-बलान् दृष्ट्वाद्भुतान् दन्तिनो
हासस्येव गुहामुखादभिमुखं निष्क्रामतः पर्वतान्।
एकस्यापि विधूतकेसरसटाभारस्य भीता मृगाः,
गन्धादेव हरेर्द्रवन्ति बहवो वीरस्य किं संख्यया॥

उसने शकराज को मार डाला। यह घटना सम्भवतः तृतीय अङ्क की है। इसके पश्चात् सम्भवतः चतुर्थ अङ्क में ध्रुवदेवी का रामगुप्त से विराग निदर्शित है। चन्द्रगुप्त ने उसकी दशा का वर्णन किया है कि वह अपने पति रामगुप्त से निर्विण्ण थी—

रम्यां चारतिकारिणीं च करुणां शोकेन नीता दशां
तत्कालोपगतेन राहुशिरसा गुप्तेव चान्द्री कला।
पत्युः क्लीबजनोचितेन चरितेनानेन पुंसः सतः
लज्जाकोपविषादभीत्यरतिभिः क्षेत्रीकृता ताम्यति॥

ऐसा प्रतीत होता है कि उसका अनुराग चन्द्रगुप्त से बढ़ रहा था।[1]

देना चाहते हैं तो उसने कहा—अहमपि जीवितं परित्यजन्ती प्रथमतरमेव त्वां परित्यक्ष्यामि।

यह वक्तव्य भावी की सूचना देता है कि शकराज के मरने के पश्चात् वह मन से चन्द्रगुप्त की हो गई।

१. उपर्युक्त पद में चान्द्रीकला से व्यंग्य है कि चन्द्रगुप्त का ध्रुवस्वामिनी से ममत्व बढ़ रहा था।

माधवसेना नामक राजकुल की वेश्या भी चन्द्रगुप्त की प्रेयसी थी। उससे प्रेम का परिचय नीचे लिखे सन्दर्भ में मिलता है—

प्रिये माधवसेने त्वमिदानीं मे बन्धमाज्ञापय।

कण्ठे किन्नरकण्ठि बाहुलतिकापाशः समासज्यतां
हारस्ते स्तनबान्धवो मम बलाद् बध्नातु पाणिद्वयम्।
पादौ त्वज्जघनस्थलप्रणयिनी सन्दानयेन्मेखला
पूर्वं त्वद्गुणबद्धमेव हृदयं बन्धं पुनर्नार्हति॥

माधवसेना से चन्द्रगुप्त का प्रणय प्रगति करता है तो वह विनयरहित चेष्टा उसके साथ करता है—

आनन्दाश्रुजलं सितोत्पलरुचोराबध्नता नेत्रयोः
प्रत्यङ्गेषु वरानने पुलकिषु स्वेदं समातन्वता।
कुर्वाणेन नितम्बयोरुपचयं सम्पूर्णयोरप्यसौ
केनाप्यस्पृशताऽप्यधो निवसनग्रन्थिस्तवोच्छ्वासितः॥

रामगुप्त के स्कन्धावार को अपने अधिकार में करने के लिए चन्द्रगुप्त को वेताल साधन करना पड़ा। सारी प्रजा चन्द्रगुप्त के साथ थी।

ऐसा लगता है कि अनन्य प्रेमी रामगुप्त की चन्द्रगुप्त से खटपट हो गई और चन्द्रगुप्त का रामगुप्त के स्कन्धावार में जाना निषिद्ध हो गया। उसके ऊपर रामगुप्त की ओर से कुछ और बाधायें आईं।[1] सम्भव है, ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त का परस्पर आकर्षण देखकर रामगुप्त ने चन्द्रगुप्त को दूर किया हो।[2] चन्द्रगुप्त का हौसला बढ़ा था। उसने रामगुप्त को भी वैसे ही समाप्त किया, जैसे शकराज को। इस काम में उसकी वेश्या प्रेयसी माधवसेना और ध्रुवस्वामिनी ने सहायता की। एक रात माधवसेना ने ध्रुवस्वामिनी के वस्त्र और आभरण पुरस्कार-रूप में प्राप्त करके अपनी चेटी के द्वारा चन्द्रगुप्त को प्राप्त कराया, जिसे पहन कर वह स्त्रीवेश में रामगुप्त के स्कन्धावार की ओर गया। रात्रि का समय था। चारुचन्द्रिका से दिङ्मण्डल परिव्याप्त था। चन्द्रगुप्त ने जो साहस का काम किया, उसमें उसके प्राण जाने का भय था। उसने यौगन्धरायण की भाँति अपने को उन्मत्त बना रखा था। उसने चन्द्रोदय का वर्णन पंचम अङ्क में ऐसी स्थिति में किया है।

एसो सियकर-वित्थर-पणासिया सेस-वेरितिमिरोहो।
नियविहिवसेण चन्दो गयणं गणं लंघिउं विसइ॥

---

१. देवीचन्द्रगुप्त में इस स्थिति को चन्द्रगुप्त के लिए 'परं कृच्छ्रमापतितम्' कहा गया है।

२. जब चन्द्रगुप्त रामगुप्त के स्कन्धावार में प्रवेश कर रहा था तो वह मदनविकार से ग्रस्त था। यह मदनविकार ध्रुवस्वामिनी के लिए प्रतीत होता है।

यह वर्णन चन्द्रगुप्त की उस मानसिक अवस्था का द्योतक है, जब वह रामगुप्त का वैरी बन बैठा था। इससे स्पष्ट है कि इस पद्य में चन्द्र चन्द्रमा के साथ ही चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त है और उसे तिमिर-रूपी अरि रामगुप्त को समाप्त करना है। उसने अपना कर्तव्य-निर्धारण किया 'लोको लोचननन्दनस्य रतये चन्द्रोदये सोत्सुकः'। उसने पागलपन छोड़ दिया और कहा—भवत्वनेन जयशब्देन राजकुलगमनं साधयामि।

पंचम अङ्क का अन्त नीचे लिखे पद्य से होता है—

बहु विह कज्ज विसेसं अइगूढं निण्हवेइ मयणादो।
निक्खलइ खुद्धचित्तउ रत्ताहुत्तं मणो रिउणो॥

यह कह कर वह राजकुल में प्रवेश कर गया।

देवीचन्द्रगुप्त प्रकरण है। इसका नायक चन्द्रगुप्त है और नायिकायें ध्रुवदेवी और माधवसेना हैं। ध्रुवदेवी महाराज रामगुप्त की पत्नी थी और माधवसेना राजकुल में रहनेवाली वेश्या थी। इस प्रकरण के नाम से इतना निश्चय प्रतीत होता है कि इसकी कथा के संघर्ष का केन्द्रविन्दु ध्रुवदेवी है और नायक चन्द्रगुप्त ने अपने साहस, बुद्धिमत्ता और कूटनीति से ध्रुवदेवी को प्राप्त कर लिया है। इतने से यह भी व्यंग्य है कि रामगुप्त का अन्त करके वह उसके राज्य का स्वामी भी वन बैठा।

क्या यह चन्द्रगुप्त वही है जो गुप्तवंश का ऐतिहासिक सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य है? ऐसा लगता है कि कवि की दृष्टि में ये दोनों एक ही हैं, भले ही कल्पना द्वार से उसकी चरितावली इस प्रकरण में अतिरञ्जित कर दी गई हो।

यह प्रकरण उस युग का लिखा प्रतीत होता है, जब भरत के नाट्यशास्त्रीय विधानों की मान्यता ऐकान्तिक नहीं थी। इस प्रकरण में नीचे लिखी बातें नाट्यशास्त्रीय नियमों के विरुद्ध पड़ती हैं—

१. नायक चन्द्रगुप्त का ऐतिहासिक होना।[1]
२. इसमें विप्र, वणिक्, सचिव, पुरोहित, अमात्य और सार्थवाह में से किसी का चरित नहीं है।
३. इसका नायक उदात्त है। प्रकरण का नायक उदात्त नहीं होना चाहिए।
४. इसमें विदूषक है। नाट्यशास्त्र के अनुसार विट होना चाहिए, विदूषक नहीं।

---

१. भरत ने प्रकरण की परिभाषा दी है—
यत्र कविरात्मशक्त्या वस्तु शरीरं च नायकं चैव। इत्यादि १८.४५। भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण को प्रकरण कहा है। यह भरत के नाट्यशास्त्र के अनुकूल नहीं है। इसी प्रतिज्ञायौगन्धरायण के अनुसरण पर देवीचन्द्रगुप्त भी प्रकरण है। इस आधार पर देवीचन्द्रगुप्त को भास और कालिदास के बीच में रखना समीचीन हो सकता है। अश्वघोष के सारिपुत्र प्रकरण में भी नायक ऐतिहासिक है।

५. इसमें ध्रुवदेवी मन्दकुल की नहीं है। नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रकरण में मन्दकुलस्त्रीचरित होना चाहिए।

६. इसमें वेश्या और कुलस्त्री का संगम होता है।

प्रकरण का कथानक कल्पित होना चाहिए—यह नियम यदि इस प्रकरण में माना गया है तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि देवीचन्द्रगुप्त की कथा में प्रतिज्ञायौगन्धरायण की भांति अनेक संविधानक ऐतिहासिक नहीं हैं, अपितु जनश्रुति के आधार पर इसमें संकलित हैं।

देवीचन्द्रगुप्त कवि की सुसम्मानित रचना है, जिसका प्रमाण है इसका अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उदाहृत होना। इसके सात उद्धरण नाट्यदर्पण में, चार उद्धरण शृङ्गारप्रकाश में, एक उद्धरण अभिनवभारती में और एक सागरनन्दि के नाटकलक्षणरत्नकोश में मिलते हैं। देवीचन्द्रगुप्त की सबसे बढ़कर चमत्कारपूर्ण घटना कामुक शकराज को मारना है, जिसका उल्लेख हर्षचरित और काव्यमीमांसा में मिलता है।

नरकवध

नरकवध नाटक की प्ररोचना से नीचे लिखा सागरनन्दि ने उद्धृत किया है—

सृष्टं तत्क्रोडरूपं दनुजपतिवपुर्मेदरक्ताक्तदंष्ट्रं
  दृष्ट्वा त्रासेन दूरं भुवमभयवचो व्याहृतेऽपि प्रयान्तीम्।
मायाकृष्णः पयोधेः क्षणविधृतचतुर्बाहुचिह्नात्ममूर्तिः
  स्वस्थामुत्थापयन् वा द्विगुणभुजलतारोहरोमाञ्चिताङ्गीम्॥

इसमें नारद के द्वारा शिल्प-प्रयोग का आयोजन कराया गया है।

पद्मावतीपरिणय

सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में पद्मावती को प्रकरण बताया है। इसमें नायिका वेश्या है। प्रच्छेदक नामक लास्याङ्ग का उदाहरण इसमें इस प्रकार है—

विलासवती — तां किं दाणिं एत्थ करइस्सं। (विचिन्त्य) भोदु। इन्दुमदीं
  विसज्जिअ पदुमावदीं ज्जेव वारइस्सं।

पाण्डवानन्द

पाण्डवानन्द नाटक की सर्वप्रथम चर्चा अभिनवभारती में उद्वात्यक के उदाहरण रूप में है—

का भूषा बलिनां क्षमा परिभवः को यः स्वकुल्यैः कृतः
  किं दुःखं परसंश्रयो जगति कः श्लाघ्यो य आश्रीयते।

को मृत्युर्व्यसनं शुचं जहति के यैर्निर्जिताः शत्रवः
कैर्विज्ञातमिदं विराटनगरे च्छन्नस्थितैः पाण्डवैः ॥

यह पद्य दशरूपक और नाट्यदर्पण में भी उदाहृत है।

पार्थविजय

पार्थविजय के रचयिता त्रिलोचन कब और कहाँ हुए यह अभी तक सुनिश्चित नहीं है। शार्ङ्गधरपद्धति में बाण और मयूर की प्रशंसा में दो पद्य त्रिलोचन विरचित मिलते हैं। सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर के द्वारा त्रिलोचन की प्रशंसा में एक पद्य मिलता है।[1] इससे प्रतीत होता है कि त्रिलोचन बाण और मयूर के पश्चात् और राजशेखर के पहले हुए। न्यायवार्तिक तात्पर्य के टीकाकार वाचस्पति मिश्र ने अपने गुरु का नाम त्रिलोचन बताया है। यदि पार्थविजय के लेखक यही त्रिलोचन हों तो उनका समय नवीं शती में रखा जा सकता है।

पार्थविजय की कथा के अनुसार दुर्योधन की महिषी को गन्धर्व अपहरण कर रहे थे। युधिष्ठिर उसे बचाने के लिए चापारोपण करके सन्नद्ध हुए। फिर तो भीम भी चले। द्वितीय अङ्क में द्रौपदी की मानसिक सन्तापनाओं की चर्चा भी की गई है।

महाभारत की प्रायः पूरी कथा जैसे वेणीसंहार में है, वैसे ही इसमें भी है। कथारम्भ सम्भवतः पाण्डवों के वनवास से होता है। इसमें वासुदेव का सन्धि के लिए दुर्योधन के पास दूत बनकर जाना और अर्जुन के द्वारा दुर्योधन को छुड़ाये जाने का वर्णन है, जब उसे गन्धर्वों ने पराजित करके बन्दी बनाया था।

पार्थविजय में कंचुकी दुर्योधन की महिषी के परित्राण के लिए चिल्लाया—

एषा वधूर्भरतराजकुलस्य साध्वी
दुर्योधनस्य महिषी प्रियसंगरस्य।
विस्मृत्य पाण्डुधृतराष्ट्रपितामहादीन्
गन्धर्ववीरपशुभिः परिभूयते स्म ॥

पुष्पदूषितक

पुष्पदूषितक संस्कृत के उन कतिपय रूपकों में से है, जिसका पूर्णरूप में न मिलना संस्कृत जगत् की महती क्षति है। कुंतक ने इसकी प्रकरण-वक्रता की आलोचना करते हुए कहा है—

---

1. कर्तुं त्रिलोचनादन्यो न पार्थविजयं क्षमः।
तदर्थस्तन्यते द्रष्टुं लोचनद्वयिभिः कथम् ॥

सार्वत्रिकसन्निवेशशोभिनां प्रबन्धावयवानां प्रधानकार्यसम्बन्धनिबन्धनानुग्राह्यग्राहकभावः स्वभावसुभगप्रतिभाप्रकाश्यमानः कस्यचिद् विचक्षणस्य वक्रताचमत्कारिणः कवेरलौकिकं वक्रतोल्लेखलावण्यं समुल्लासयति । यथा पुष्पदूषितके इत्यादि ।

एवमेतेषां (प्रकरणानां) रसनिष्यन्दतत्पराणां तत्परिपाटिकामपि कामनीयकसम्पदमुल्लावयति ।

पुष्पदूषितक का सर्वप्रथम उल्लेख अभिनवगुप्त ने किया है ।[1] इसके आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि इसकी रचना ९५० ई० के पूर्व हुई होगी ।

पुष्पदूषितक का नायक समुद्रदत्त वणिक् है, जिसकी पत्नी नन्दयन्ती इस प्रकरण की कुलजा नायिका है । इसमें कोई वेश्या नायिका नहीं है । यह क्लेश-प्रचुर कोटि का प्रकरण है । साधारणतः प्रकरण क्लेशप्रचुर होते ही हैं ।

पुष्पदूषितक की कथा प्रायशः पूरी की पूरी कल्पनीय है । इसका नायक समुद्रदत्त कार्यवश अपनी हृदयेश्वरी नन्दयन्ती को छोड़ कर विदेश गया । वहाँ समुद्रतट पर वह उसके लिए उत्कण्ठित था । उससे मिलने के लिए वह चल पड़ा । घोर अन्धकार में वह उस उद्यान-भवन के द्वार पर पहुँचा जहाँ नन्दयन्ती रहती थी । उसके द्वार पर कुवलय नामक पुरुष से समुद्रदत्त को झगड़ना पड़ा और अन्त में उसे अंगूठी देकर प्रेयसी से मिलने की सुविधा प्राप्त हुई । उसे प्रिया से सहवास का अवसर अकस्मात् ही मिला ।[2] इसके पश्चात् वह जैसे आया था, चला गया । नन्दयन्ती इसके पश्चात् श्वशुर के घर पहुँची, जहाँ कुचरों ने उसके चरित्र-दूषण का प्रचार करके उसका श्वशुर से निर्वासन करा दिया और उसे शबरसेनापति की शरण में रहना पड़ा वहाँ उसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

कुवलय की एक बार समुद्रदत्त के पिता सागरदत्त से भेंट हुई, जिसने नन्दयन्ती का निर्वासन कराया था । उसने वह अंगूठी दिखाई जो समुद्रदत्त ने दी थी और वह प्रसङ्ग बताया कि कैसे समुद्रदत्त की नन्दयन्ती से निगूढ़ मिलन हुआ था । सागरदत्त को ज्ञात हो गया कि उसने निर्दोष[3] नन्दयन्ती को दण्ड दिया है । उसने प्रायश्चित्त करने के लिए तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया ।

---

१. पुष्पदूषित की श्रेष्ठता का प्रमाण है इसका दशरूपक-अवलोक, नाट्यदर्पण, साहित्यदर्पण आदि में उल्लिखितया उद्धृत होना ।

२. कुन्तक के अनुसार—प्रस्थानात् प्रतिनिवृत्तस्य निशीथिन्यामुत्कोचालङ्कारदानमूकीकृतकुवलयस्य कुसुमवाटिकायामनाकलितमेव तस्य सहचरी संगमनम् ।

चतुर्थ उन्मेष । प्रकरणवक्रता के सन्दर्भ में ।

३. संस्कृत में चुपके-चुपके पत्नी से मिल कर अन्यत्र चले गये पति का आना न जानने वाले अभिभावकों के द्वारा पत्नी का निर्वासन, उसका वन में रहना और

समुद्रदत्त को अपनी पत्नी के निर्वासन का समाचार ज्ञात हुआ और अन्त में उसे नन्दयन्ती को ढूँढने के लिए वन-वन घूमना पड़ा। इस बीच वह शबरसेनापति की वसति में पहुँचा जहाँ उसे दूर से अपनी पत्नी दिखाई दी। उस समय शबरों ने उस पर बाणवर्षा आरम्भ कर दी। समुद्रदत्त की एकोक्ति है—

भर्ता तवाहमिति कष्टदशाविरुद्धं
पुत्रस्तवैष कुत इत्यनुदारतैषा।
शस्त्रं पुरः पतति किं करवाणि हन्त
व्यक्तं विरौति यदि साभ्युपपत्स्यते माम्॥

अन्त में वह शबरसेनापति के पास लाया गया। उसे एक रमणीय बालक वहाँ दिखाई पड़ा जिसके विषय में शबरसेनापति का उससे इस प्रकार संवाद हुआ—

समुद्रदत्तः — किन्नामनक्षत्रोऽयं बालकः।
सेनापतिः — विशाखानक्षत्रोऽयं बालकः।
समुद्रदत्तः — (पूर्वानुभूतं नन्दयन्ती समागमं स्मरन् स्वगतम्) तदा किल नन्दयन्त्या पृष्टेन मया कथितं यथा—

एतौ तौ प्रतिदृश्येते चारुचन्द्रसमप्रभौ।
ख्यातौ कल्याणनामानावुभौ तिष्यपुनर्वसू॥

तदाधानाद् दशमं जन्मनक्षत्रमिति ज्योतिःशास्त्रसमयविदो यद् ब्रुवते, तदुपपन्नमेव। समुद्रदत्त ने अपने पुत्र को गले लगा लिया। इस प्रसङ्ग में उसकी शबरसेनापति से इस प्रकार प्रश्नोत्तरी हुई—

स्वप्नोऽयं, नहि, विभ्रमो नु मनसः, शान्तं तदेषा त्रपा
जाया ते, कथमङ्कबालतनया, पुत्रस्तवायं मृषा।
आलम्बाय न एष वेत्ति नियतं सम्बन्धमेतद् गतम्
केनैतद् घटितं विसन्धि, विधिना, सर्वं समायुज्यते॥

कुन्तक ने पुष्पदूषितक के छठें प्रकरण का सार बताया है—

'सर्वेषां विचित्रसंख्या समागमाभ्युपायसम्पादकमिति'

पुष्पदूषितक के लेखक ब्रह्मयशःस्वामी बताये जाते हैं।[1]

पति के द्वारा ढूँढ़ लिया जाना परवर्ती अञ्जनापवनञ्जय नाटक में मिलता है। जिसके लेखक हस्तिमल्ल हैं।

1. ब्रह्मयशःस्वामिना कृते पुष्पदूषितके षष्ठेऽङ्के नन्दयन्तीसमुद्रदत्तयोः समागमः केवलं दैवसाधित एव न तु नीतिचक्षुषा पौरुषप्रभावेण।
पाद टिप्पणी पृ० ६ अभिनवभारती भाग ३।

प्रयोगाभ्युदय

प्रयोगाभ्युदय नामक रूपक का उद्धरण सर्वप्रथम रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में मिलता है। यही उदाहरण भोज के शृङ्गारप्रकाश में भी उपलभ्य है। इससे सिद्ध होता है कि इसका प्रणयन ११०० ई० के पूर्व हुआ होगा। नाट्यदर्पण के उद्धरण में तरङ्गदत्तकचेटी, विदूषक का संवाद प्रपञ्च के उदाहरण के लिए इस प्रकार है—

तरङ्गदत्तकचेटी — अहो ! अयं खलु संचरिष्णु उपहासपत्तनमार्यभण्डीरव इत एव आगच्छति।

विदूषकः — (उपसृत्य) भवति, स्वागतं ते।

चेटी — (स्वगतम्) परिहासिष्यामि तावदेनम्। क इदानी मेषोऽस्माकं ननु प्रेषणकारकः चेटकः इति।

विदूषकः — अहं घटदासीनां स्वामिकः।
चेटी — किं चेटक इति भणिते कुपितस्त्वम्।
विदूषकः — क इदानीं विशेषो घटदासीनां कुम्भदासीनां च।
चेटी — मा कुप्य। भर्तृपुत्रः इति भणिष्यामि।
विदूषकः — भवति, त्वमपि मा कुप्य। आर्या इति भणिष्यामि।
चेटी — अहो, भर्तृपुत्रस्य मतिः।
विदूषकः — अहो अतिरूपा आर्यता।

वालिकावञ्चितक

वालिकावञ्चितक नामक नाटक के उद्धरण एकमात्र नाट्यदर्पण में ही अभी तक प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त वञ्चितकलक्षित रूपक अभिसारिका-वञ्चितक और मारीचवञ्चितक हैं।

वालिकावञ्चितक में कृष्ण के द्वारा कंसवध की कथा है। इसमें कंस का वक्तव्य है—

रिष्टस्तावदुदग्रशृङ्गविकटः शैलेन्द्रकल्पो वृषः
सप्तद्वीपसमुद्रजस्य पयसः शोपक्षमा पूतना।
केशी वाजितनुः खरैर्विघटयेदापन्नगान् मेदिनीं
सार्धं बन्धुभिरेव मूर्जितबलं कः कंसमास्कन्दति ॥

तभी नेपथ्य से इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त हुआ—

योऽन्यतः प्रसूतोऽन्येन च वर्धितो मधुप्रभवः। कृष्णः स परपुष्टो मारयति न कोऽपि धारयति।

इसमें नारद का वर्णन है—

तपनीयोज्ज्वलकरकं कुवलयारुचि भासमानमाकाशे ।
तेजोमयं दिनकराद्द्वितीयमाचक्ष्व मे भूतम् ॥

मदनमञ्जुला

मदनमञ्जुला का उल्लेख सागरनन्दी ने किया है, जिससे यह एक नाटक प्रतीत होता है । इसमें नायिका मदनमञ्जुला है, जिससे नायक का प्रणय-व्यापार महारानी की इच्छा के विरुद्ध प्रवर्तित है । नायक-नायिका का उक्तप्रत्युक्त इस प्रकार है—

मदनमञ्जुला — मुञ्चदमु महाराओ ।
राजा — किमिति ।
मदनमञ्जुला — भाआम्मि अहं ।
राजा — कुतः ।
मदनमञ्जुला — महादेईए ।

इस मदनमञ्जुला का नायक सम्भवतः उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त था, जो अपनी प्रेयसी के पास प्रभावती का वेश धारण करके पहुँचा था, जैसा सागरनन्दी ने नर्मगर्भ के उदाहरण में बताया है ।

मनोरमावत्सराज

मनोरमावत्सराज के प्रणेता भीमट राजशेखर की सूक्ति के अनुसार कालिञ्जर के राजा थे । इसमें मुद्राराक्षस की पद्धति पर राजनीतिक प्रवृत्तियों को कथावस्तु में सूत्रित किया गया है । इसके अनुसार वत्सराज के मन्त्री रुमण्वान् ने पाञ्चालराज का विश्वासपात्र सेवक बनने के उद्देश्य से वत्सराज के अन्तःपुर में आग लगा दी । फिर तो उसने यौगन्धरायण आदि को अपना परिचय देते हुए कहा—

कौशाम्बी मम हस्त एव परया शक्त्या मया स्वीकृतः
पञ्चालाधिपतिः प्रभुः स भवता न ज्ञायते क्वाधुना ।
नन्वादीपित एप मोहितपरानीकेन लावाणको
देवी सम्प्रति रक्ष्यतामयमहं प्राप्तो रुमण्वान् स्वयम् ॥

इस वक्तव्य का रहस्य समझकर यौगन्धरायण ने भावी कार्यक्रम बना डाला पर इसे वासवदत्ता और सम्भ्रमक नामक यौगन्धरायण के भृत्य ने नहीं समझा ।

भीमट का प्रादुर्भाव ८५० ई० के पूर्व हुआ होगा ।

मायापुष्पक

मायापुष्पक का सर्वप्रथम उल्लेख अभिनवभारती में इस प्रकार मिलता है—

अभियोज्यं क्रियासु पदं मूर्तत्वात् केवलं साभिलापं लोकेऽपि कलाशिल्प-

कल्पनाकलितम्। अतस्तदपि मूर्तिसम्पादनेन प्रयुज्यते प्रयोगः क्रियते। यथा मायापुष्पके 'ततः प्रविशति ब्रह्मशापः' इति।[1]

मायापुष्पक में रामकथा का नाट्य रूप है। इसमें राम की व्यसन-निवृत्ति को फल बताते हुए आरम्भ में बीज ब्रह्मशाप नामक छायापात्र के द्वारा उपक्षिप्त है—

कैकेयी क्व पतिव्रता भगवती क्वैवंविधं वाग्विषं
धर्मात्मा क्व रघूद्वहः क्व गमितोऽरण्यं सजायानुजः।
क्व स्वच्छो भरतः क्व वा पितृवधान्मात्राधिकं दह्यते
किं कृत्वेति कृतो मया दशरथेऽवध्ये कुलस्य क्षयः॥

आगे चलकर मायापुष्पक के पताकावृत्त में सेतुबन्ध के विषय में कहा गया है—

दुर्गं भूमिरमात्यभृत्यसुहृदो दाराः शरीरं धनं
मानो वैरिविमर्दसौख्यममरप्रख्येण सख्योन्नतिः।
यस्मात् सर्वमिदं प्रियाविरहिणस्तस्याद्य शक्ता वयं
न स्वेच्छासुलभैः पथोऽपि घटते शैलैरखण्डैरपि॥

यह सुग्रीव की उक्ति है—

इसमें रावण ने अपनी विषम परिस्थिति को विधि का विधान बताते हुए कहा है—

वाली यथा विनिहतः प्रथितप्रभावो
दग्धा यथैककपिना प्रसभं च लङ्का।
तीर्णो यथा जलनिधिर्गिरिसेतुना च
मन्ये तथा विलसितं चपलस्य धातुः॥

वक्रोक्तिजीवित में संस्कृत के श्रेष्ठ रूपकों में इसकी गणना की गई है।[2]

मायामदालसा

मायामदालसा नाटक का उल्लेख सागरनन्दी ने नाट्यलक्षणरत्नकोश में किया है, जिसके अनुसार यह नाटक पांच अङ्कों में प्रणीत हुआ था और इसके प्रत्येक अङ्क में इसका नायक कुवलयाश्व रङ्गमञ्च पर आता है। इसके तृतीय अङ्क के आरम्भ

---

१. अभिनवभारती (ना० शा० १३.७५) के अनुसार यह ब्रह्मशाप मूर्ति-सम्पादन के द्वारा रङ्गमञ्च पर प्रत्यक्षित किया गया था।

२. मायापुष्पक आदि के विषय में कहा गया है—

ते हि प्रबन्धप्रवराः कथामार्गेण निरर्गलरसासारगर्भसन्दर्भसम्पदा प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिप्रकरणं च प्रकाशमानाभिनवभङ्गी'''अतिरेकमनेकश आस्वाद्यमाना अपि समुत्पादयन्ति सहृदयानाममन्दमानन्दम्। वक्रोक्तिजीवित पृ० २२६।

में गृध्रमिथुन के द्वारा प्रवेशक प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में साधक, साधन, साध्य, सिद्धि और सम्भोग नामक साध्यादिपञ्चक हैं। इसके प्रथम अङ्क के अनुसार महर्षि गालव के आश्रम में तालकेतु का वध कराने के लिए महर्षि ने कुवलयाश्व से प्रार्थना की। वे तपोवन में जाने के लिए उद्यत हो गये।

गालव ने कहा—

एते क्षमा वयमपि द्विषतो निरोद्धुं
किन्त्वेष दुष्टदमिनस्तव राजधर्मः।
तत्सौख्यमुत्सृज दिनानि कियन्ति शाक-
मुष्टिं पचस्व मम तात गृहं भजस्व॥

राजा ने तपोवन में जाकर राजधर्म पूरा करने का सोचा क्योंकि—

'यागस्य निष्पन्नषष्ठांशश्च मे भविता।'

नाटक का बीज है—

देवारातेर्दुहितुरभवद् बालकस्तालकेतुः
पौरस्त्याद्रेरधरनगरीं यश्च दर्पेण शास्ति।
मायायोगादहरत सुतां मेनकायाश्च पापः
स प्रत्यूहं क्रतुषु कुरुते दुष्प्रधर्षो मुनीनाम्॥

प्रतिनायक तालकेतु ने माया करके मेनका की कन्या मदालसा (नायिका) का अपहरण किया था।[1] मदालसा को बचाना भी नायक का एक काम था। तपोवन में राजा को गालव ने एक बाण दिया, जिसके विषय में ख्याति थी कि मदालसा के अपहरण करनेवाले का प्राणान्त इसी से होगा। सुप्रभा ने इसका विशदीकरण किया है—

तव सख्युरयं बाणो हत्वा कन्यामलिम्लुचम्।
उन्मोचयितुमायातो मानसीं शिखिनः सुताम्॥

पातालकेतु मारा गया। कुवलयाश्व उसे लेकर चला। उन्हें पातालकेतु के भाई तालकेतु ने यह कहते हुए रोका—

आः पापे, त्वं मे भ्रातरं व्यापाद्य गच्छसि।

मदालसा उसके विरोध से डर गई। उसने कुवलयाश्व से कहा—

मदालसा — (सभयम्) अज्जउत्त परित्तायहि। रुंधइमं पुणो वि अअं हदासो।[2]

कुवलयाश्व ने उसे आश्वस्त किया—

---

१. मेनका को यह पुत्री अग्नि से उत्पन्न हुई थी। वह अग्निदेव की मानस-पुत्री थी।

२. उपर्युक्त वक्तव्य इस नाटक में बिन्दु है। यहाँ से मदालसा के पुनर्हरण का बीज पड़ता है, जो बिन्दु है।

कुवलयाश्व — कृत्स्नामरातिनिधनाध्वरलब्धदीक्षं
पाणौ धनुर्मम वरोरु कृतं भयेन।
पश्याचिरात् खरमुखेषु निकृत्तदैत्य
मूर्धावली कृतवलीनि दिगन्तराणि॥

यहाँ से तृतीयाङ्क का आरम्भ होता है। कुवलयाश्व विरोधियों का संहार कर चुका है। वह युद्धश्रान्ति को मिटाने के लिए नायिका का बाहुलतापाशाकांक्षी है। वह कहता है—

कण्ठे वरोरु विनिवेशय मे मृणाल-
नालाधिदैवतमिमां निजबाहुवल्लीम्।
यां प्राप्य दैत्यसुभटारभटीकठोर-
जाताऽऽहवश्रममहं न पुनः स्मरामि॥

इसके पश्चात् मदालसा कहती है—

फुरइ मे दाहिणं लोअणं

इस अशुभ लक्षण की परिणति जिस घटना में होती है, वह है कुटिलक के द्वारा माया करके मदालसा को मारने के लिए उसे अग्नि में फेंक देना, पर अग्नि के माता होने के कारण मदालसा का न जलना। अभी मदालसा की विपत्तियों का अन्त नहीं हुआ। चतुर्थ अङ्क में मदालसा का पुनः अपहरण होता है। नायक के पुत्र सुबाहु को भी असुरों ने मार डालने का उपक्रम किया। अन्त में नायक को अपना पुत्र सुबहु और नायिका की प्राप्ति हो जाती है। वह अग्नि से कहता है—

शोकाद् देवी त्वयि निपतिता त्वच्छिखाभिर्न दग्धा
लब्धो वत्सः सुरपतिरिपुध्वंसयोग्यः सुबाहुः॥

मारीचवञ्चितक

सागरनन्दी, शारदातनय आदि ने मारीचवञ्चितक का उल्लेख किया है। इस नाटक में पाँच अङ्क थे। इसके अन्तिम अङ्क में लक्ष्मण ने राम से कहा है—

आर्य प्रविश्य लङ्कां गृह्यतां पौरजनानामतिथिसत्कारः।

मुकुटताडितक

भोज ने शृङ्गारप्रकाश में बाण-विरचित मुकुटताडितक के उद्धरण दिये हैं। तदनुसार इसमें महाभारतीय भीम-दुर्योधन-युद्ध की कथा कल्पनीय है। चण्डपाल ने नलचम्पू की टीका में इसकी चर्चा की है।[1]

---

१. S. K. De : BSOS IV. 1926 p. 242

रम्भानलकूबर

सागरनन्दी ने नलकूबर से गोत्रस्खलन का उदाहरण इस प्रकार दिया है—

नलः — प्रसीद मेनेऽहमुपारतोऽस्मि ।
रम्भा — प्रसाद्यतां साहमुपैमि रम्भा ।
नलः — अहो विधिर्मे पदसन्निधिस्ते
करोति गोत्रस्खलिताभिशङ्काम् ॥

राघवानन्द

राघवानन्द नाटक का नीचे लिखा उद्धरण शृङ्गारप्रकाश में मिलता है ।

अङ्के न्यस्तोत्तमाङ्गं प्लवगबलपतेः पादमक्षस्य हन्तुः
कृत्वोत्सङ्गे सलीलं त्वचि कनकमृगस्याङ्गशेषं निधाय ।
बाणं रक्षःकुलघ्नं प्रगुणितमनुजेनादरात् तीक्ष्णमक्ष्णः
कोणेनावेक्षमाणः त्वदनुजवचने दत्तकर्णोऽयमास्ते ॥

यह पद्य हनुमन्नाटक के ११ वें अङ्क में भी रावण और महोदर के संवाद में रावण की उक्ति है । ऐसा लगता है कि राघवानन्द में यह पद्य छायानाट्यानुसारी चित्र का रावण द्वारा दर्शन है ।

कुम्भकर्ण ने रावण से कहा है—

रामोऽसौ जगतीह विक्रमगुणैः यातः प्रसिद्धिं परा-
मस्मद्भाग्यविपर्ययाद् यदि परं देवो न जानाति तम् ।
वन्दीवैष यशांसि गायति मरुद् यस्यैकबाणाहति-
श्रेणीभूतविशालसालविवरोद्गीर्णैः स्वरैः सप्तभिः ॥

इस पद्य में भी हनुमन्नाटक की स्वरलहरी है ।[1]

राघवाभ्युदय

क्षीरस्वामी-विरचित राघवाभ्युदय के कथानक का संक्षिप्त परिचय सागरनन्दि ने इस प्रकार दिया है—

प्रारम्भो रावणवधे खरप्रभृतिवैशसम् ।
प्रयत्नः शूर्पणखया कृतः सीतापहारतः ॥
सुग्रीवस्य तु सख्येन संजातः प्राप्तिसम्भवः ।
नियता फलसम्प्राप्तिः कुम्भकर्णादिसंक्षये ॥
यो देवै राक्षसमतेः कार्यो दुष्टमतेर्वधः ।
फलयोगः स रामस्य धर्मकामार्थसिद्धये ॥

---

१. हनुमन्नाटक के आठवें अङ्क में 'किं कार्यं वद राघवस्य''' रामो नाम एव येन' आदि अनेक पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में इसके अनुसार हैं ।

सागरनन्दी का प्रादुर्भाव ग्यारहवीं शती में हुआ। इससे इसका रचनाकाल दसवीं शती या इससे पूर्व माना जा सकता है। इस नाटक में भास की पद्धति यत्र तत्र दृष्टिगोचर होती है।

राघवाभ्युदय की कथा बहुत-कुछ रामाभ्युदय के समान ही पड़ती है। प्राप्तांशों के अनुसार जटायु और रावण का संवाद हुआ। जटायु ने कहा—

अवनिरविरथान्तः प्रस्थितैकैकचञ्चू-
पुटकुहरविलोलव्यालकल्पाग्रजिह्वः ।
अरुणरुचिरतिर्यग्वर्तिदृग्भैरवास्यः
कवलयतु भवन्तं क्रोधदीप्तो जटायुः ॥

सेतु अङ्क में जब राम सीताविरह से व्याकुल होकर शिथिल थे तो लक्ष्मण ने उनसे कहा—

अभ्यर्थतां मार्गमसौ पयोधिः
स बध्यतां कूटमतिर्दशास्यः ।
विमुञ्च तावत् परिदेवितव्यं
कार्याणि सर्वत्र गुरूभवन्ति ॥

राघवाभ्युदय का अभिनव संविधानक है राम के साथ कूटसन्धि का प्रस्ताव रखना। इस प्रकरण में जालिनी नामक राक्षसी मायामैथिली बनी और रावण ने स्वयं इन्द्र का रूप धारण किया। मायामय इन्द्र ने सन्धि का प्रस्ताव रखा, जिस पर राम ने विमर्श किया—

कथमिव विदधामि तस्य सन्धिं
कथममरेन्द्रगिरां भवामि वासः ।
इति विषमविवर्तमानचिन्ता-
तरलमतिर्न विनिश्चिनोमि किञ्चित् ॥

इन्द्र ने कहा कि (माया) सीता को ग्रहण करें और रावण से सन्धि करें। प्रश्न था कि विभीषण को लंका का राजा बनाने का वचन राम दे चुके थे—

आज्ञासु ते त्रिदशनाथदशाननस्य
सन्धौ विदेहदुहितुश्च समागमेऽस्मिन् ।
प्रत्याशयान्तिकगतस्य विभीषणस्य
लङ्कां प्रदाय न विना धृतिमेति रामः ॥

लक्ष्मण ने समझ लिया कि यह सब रावण का कूट व्यापार है। सम्भवतः उनके समझाने पर राम ने माया इन्द्र (रावण) का प्रस्ताव न माना। तब तो रावण ने लक्ष्मण से कहा—

दुरात्मन् लक्ष्मण, तिष्ठ, तिष्ठ आदि।

राघवाभ्युदय का भरतवाक्य है—

प्रीतः पृथ्वीमवतु नृपतिः स्वस्ति भूयाद् द्विजेभ्यः
क्षेमं गावो दधतु समये तोयमब्दाः सृजन्तु।
काव्यात् कामं स्फुटरससुधावाहिनी काव्यकर्तुः
कीर्तिः स्निग्धा रघुपतिकथेवानघा दीर्घमास्ताम्॥

राधा-विप्रलम्भ

दसवीं शती के पहले राधाविप्रलम्भ नामक रासकाङ्क की रचना भेज्जल ने की। इसका उल्लेख अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में तीन बार किया है। उन्होंने नीचे लिखा पद्य इस रूपक में आतोद्य-निचयगीतयोजना के उदाहरण रूप में उद्धृत किया है—

मेघाशङ्किशिखण्डिताण्डवविधावाचार्यकं कल्पयन्
निर्ह्लादो मुरजस्य मूर्छतितरां वेणुस्वनापूरितः।
वीणायाः कलयन् लयेन गमकानुग्राहिणीं मूर्छनां
कर्षत्येष च कालकूटितकलारम्यश्रुतिं षाडवे॥

इसके नाम से कथावस्तु स्पष्ट है कि कृष्ण और राधा के वियोग का अभिनय इसमें प्रधान रहा होगा।

रासकाङ्क में एक ही अङ्क होता था। इसमें सूत्रधार नहीं होता था। उत्कृष्ट नान्दी होती थी। कैशिकी और भारती वृत्तियाँ, मुख, प्रतिमुख और निर्वहण तीन सन्धियाँ, पाँच पात्र और भाषा-विभाषा-वैचित्र्य समुदित होता था।[1] वीथी-सौरभ होता था। नायिकाप्रधान इस रूपक में नायक प्रख्यात कोटि का होता था। इसमें उदात्तभाव विन्यास होता था। उपरूपकों में रासक का स्थान ऊँचा रहा है।

रामविक्रम

रामविक्रम नाटक का उल्लेख सागरनन्दी के नाटकलक्षणरत्नकोश में मिलता है। इसमें प्रगमन का उदाहरण इस प्रकार है—

जनकः — भद्र कुत आगम्यते।
वटुः — अज्ज अरण्णदो।
जनकः — किं तत्र श्रोतुमध्येतुं वा न प्राप्यते। येन दूरतराध्वक्लेशोऽनुभूयते।

---

१. राधाविप्रलम्भ में अभिनवगुप्त के अनुसार सैन्धव-भाषा-बाहुल्य था। इसका अपर नाम सैन्धव सट्टक था।

वटुः — कुदो भयेहिं रक्खसेहिं विरोहं भूदं अज्जाणं। अद्धो वा तवस्सिजणोचिदो वावारो।

रामानन्द

रामानन्द नाटक के दो उद्धरण राजशेखर की काव्यमीमांसा और भोज के श्रृङ्गारप्रकाश में मिलते हैं। जिससे इसका रचनाकाल ८५० ई० शती के पूर्व प्रमाणित होता है। इसमें भवभूति का एक पद्य मिलता है। भवभूति सातवीं और आठवीं शती के सन्धिकाल में थे। ऐसी स्थिति में रामानन्द लगभग ८०० ई० की रचना है। इसकी प्रस्तावना के नीचे लिखे पद्य मिलते हैं—[1]

खं वस्ते कलविङ्ककण्ठमलिनं कादम्बिनीकम्बलं
चर्चां वर्णयतीव दर्दुरकुलं कोलाहलैरुन्मदम्।
गन्धं मुञ्चति सिक्तलाजसुरभिर्वर्षेण सिक्ता स्थली
दुर्लक्षोऽपि विभाव्यते कमलिनीहासेन भासांपति॥

गुणो न कश्चिन्मम वाङ्निबन्धे
लभ्येत यत्नेन गवेषितोऽपि।
तथाप्यमुं रामकथाप्रबन्धं
सन्तोऽनुरागेण समाद्रियन्ते॥

सीता के वियुक्त होने पर राम की एक एकोक्ति है—

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे व्यर्थं कपीनामपि
प्रज्ञा जाम्बवतोऽपि यत्र न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरति पत्रिणामविषये तत्र प्रिया कापि मे॥

यह पद्य उत्तररामचरित में मिलता है।

रामानन्द नामक एक श्रीगदित भी था, जिसके विषय में शारदातनयने कहा है—

उत्कण्ठिता पठेद् गायेत् पाठ्यं वा गीतमेव वा।
एवंविधं श्रीगदितं रामानन्दं यथा कृतम्॥

मारीच ने अपना मन्तव्य स्पष्ट व्यक्त किया—

दाराणां व्रतिनां च रक्षणविधौ वीरोऽनुयोज्यानुजं
वीराणां खरदूषणत्रिशिरसामेको वधं यो व्यधात्।
तस्या खण्डिततेजसः कुलजने न्यकारमाविष्कृतः
कुण्ठः संगरदुर्मदस्य भवतः स्याच्चन्द्रहासोऽप्यसिः॥

---

१. यह पद्य राजशेखर ने काव्यमीमांसा में उद्धृत किया है।

रावण ऐसी बातें सुनने के लिए अभ्यस्त नहीं था। उसने तलवार खींच ली और डाँट लगाई—

तवैव रुधिराम्बुभिः क्षतकठोरकण्ठस्रुतैः
रिपुस्तुतिभवो मम प्रथममेतु कोपानलः।
सुरद्विपशिरःस्थलीदलनदष्टमुक्ताफलः
स्वसुः परिभवोचितं पुनरसौ विधास्यत्यसिः॥

प्रहस्त ने मारीच का प्राण बचाया यह कहकर कि क्या चन्द्रहास नौकरों पर चलेगा—

लोकत्रयक्षयोद्वृत्तप्रकोपाग्रेसरस्य ते।
ईदृशश्चन्द्रहासस्य भृत्येष्वनुचितः क्रमः॥

सीता के वियोग में राम की दशा का वर्णन है—

स्निग्धश्यामलकान्तिलिप्तवियतो वेल्लद्बलाका घना
वाताः शीकरिणः पयोदसुहृदामानन्दकेकाः कलाः।
कामं सन्तु दृढं कठोरहृदयो रामोऽस्मि सर्वं सहे
वैदेही तु कथं भविष्यति हहा हा देवि धीरा भव॥

सीता का हरण होने के पश्चात् उसे पुनः प्राप्त करने की योजना में प्रथम सहायक सुग्रीव ने सम्भवतः हनुमान् से सीता के लिए सन्देश भेजा—

बहुनात्र किमुक्तेन पारेऽपि जलधेस्स्थताम्।
अचिरादेव देवि त्वामाहरिष्यति राघवः॥

लङ्का में राम ने आक्रमण करके युद्ध किया। परिस्थिति बिगड़ने पर रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया। यह बात इन्द्रजीत को बुरी लगी कि क्योंकर तापस राम से लड़ने के लिए कुम्भकर्ण जैसे पराक्रमी वीर को नियुक्त किया गया। मुझे क्यों आपने भुला दिया—यह उसका रावण से प्रतिरोध था—

यह रामानन्द नाटक था श्रीगदित नहीं, क्योंकि सागरनन्दी ने रामानन्द की नाटक नाम से चर्चा की है, जिसका नाम नायक के नाम पर पड़ा है। सागरनन्दी ने रामानन्द में विष्कम्भक होने का उल्लेख किया है, जिसमें क्षपणक और कापालिक अधमकोटि के पात्र थे। विष्कम्भक श्रीगदित में नहीं होते।

रामानन्द नाटक में क्षपणक और कापालिक का एक विष्कम्भक था, जो संकीर्ण कोटि का है।

रामाभ्युदय

रामाभ्युदय का लेखक यशोवर्मा आठवीं शती में कन्नौज का सम्राट् था। उसने मगध, गौड आदि देशों को जीता और नर्मदा तट तक अपना राज्य विस्तृत किया।

उसने ७१३ ई० में चीन के सम्राट् के पास अपना राजदूत भेजा था। यशोवर्मा कवियों का आश्रयदाता भी था। उसकी सभा में कविरत्न वाक्पति और भवभूति रहते थे।

रामाभ्युदय का प्राचीन रूपकों में विशेष सम्मान था, जो ध्वन्यालोकलोचन, अभिनवभारती, सुवृत्ततिलक, दशरूपकावलोक, शृङ्गारप्रकाश, भावप्रकाश, नाट्यदर्पण, साहित्यदर्पण, नाटकलक्षणरत्नकोश तथा कतिपय सुभाषित ग्रन्थों में इसके उद्धरणों से प्रमाणित होता है।

लेखक ने नाटक की प्रस्तावना में अपने कथानक का परिचय देते हुए कहा है—

> औचित्यं वचसां प्रकृत्यनुगतं सर्वत्र पात्रोचिता
> पुष्टिस्स्वावसरे रसस्य च कथामार्गे न चातिक्रमः।
> शुद्धिः प्रस्तुतसंविधानकविधौ प्रौढिश्च शब्दार्थयो-
> र्विद्वद्भिः परिभाव्यतामवहितैरेतावदेवास्तु नः॥

पंचवटी में शूर्पणखा के राक्षसोचित दुराचार उसे निवृत्त करने के लिए उसकी नाक लक्ष्मण ने काट ली। शूर्पणखा रावण से मिली। रावण ने निर्णय किया कि राम की एकमात्र निधि सीता का अपहरण मारीच की सहायता से करना है। मारीच ने कहा कि राम के जीवित रहते इस प्रकार उनका परिभव असम्भव है। रावण ने क्रोध से कहा—

> युक्त्यैव क्षत्रबन्धोः परिभवमसमं जीवतः कर्तुमिच्छन्
> मायासाहायके त्वं निपुणतर इति प्रार्थये नासमर्थः।
> यच्चान्यत् तत्र वज्रप्रहतिमसृणितस्फारकेयूरभाजः
> सज्जास्त्रैलोक्यलक्ष्मीहठहरणसहा बाहवो रावणस्य॥

> रक्षोवीरा दृढोरःप्रतिफलनदलत्कालदण्डप्रचण्डा
> दोर्दण्डाकाण्डकण्डूविषमनिकषणत्रासितक्ष्माधरेन्द्राः।
> याता कामं न नाम स्मृतिपथमपथप्रस्थितेन्द्रानुसारी
> स्वर्वासैः सिद्धिदृष्टः कथमहमपि ते विस्मृतो मेघनादः॥

इसमें सागरनन्दी के अनुसार बाली ने अपने पौरुष का प्रतिपादन किया है—

> क्षयानलशिखाजालविकरालसटावलिः।
> दृश्यते वा द्विपैः सिंहः क्रुद्धो वाली न वैरिभिः॥

रावण ने युद्ध में राम को हतोत्साह करने के लिए सीता का मायाशिर राम के समक्ष प्रस्तुत किया। उसे देखकर राम ने कहा—

प्रत्याख्यानरुषः कृतं समुचितं क्रूरेण ते रक्षसा
सोढं तच्च तथा त्वया कुलजनो धत्ते यथोच्चैः शिरः ।
व्यर्थं सम्प्रति बिभ्रता धनुरिदं त्वद्व्यापदः साक्षिणा
रामेण प्रियजीवितेन तु कृतं प्रेम्णः प्रिये नोचितम् ॥

राम ने रावण का वध करके सीता को मुक्त किया पर वे उसे स्वीकार नहीं करना चाहते थे। यह सीता का प्रथम परित्याग था। इस प्रत्याख्यान के पश्चात् वह अग्नि में प्रवेश कर गई। सीता को गोद में लेकर अग्नि प्रकट हुए—

धूमव्रातं वितानीकृतमुपरिशिखादोर्भिरभ्रंलिहाग्रै-
र्बिभ्रद् भ्राजिष्णु रत्नं ततमुरसि तथा चर्म चामूरवं च ।
भूयस्तेजःप्रतानैर्विरहमलिनतां क्षालयन्नेकभाजो
देव्यास्सम्प्रार्चिराविर्भवति विफलयन् वाञ्छितान्यन्तकस्य ॥

रामाभ्युदय में छः अङ्कों में रामायण की कथा का पूर्वार्ध सीताहरण से लङ्काविजय और रामाभिषेक तक मिलती है। कृष्णामाचार्य के अनुसार इसमें राम-कथा पूरी थी। यह वक्तव्य समीचीन नहीं प्रतीत होता।[1]

यशोवर्मा ने यद्यपि कहा है कि 'कथामार्गे न चातिक्रमः' किन्तु इनके द्वारा प्रवर्तित रामकथा में छोटे-मोटे परिवर्तन यत्र-तत्र मिलते ही हैं। रामायण के अनुसार रावण ने सीताहरण में मारीच की सहायता प्राप्त करने के लिए समुद्र पार आकर मारीच के आश्रम में उससे भेंट की किन्तु रामाभ्युदय के अनुसार रावण की सभा में मारीच से लङ्का में ही इस सम्बन्ध में बातचीत हुई।

यशोवर्मा का रामाभ्युदय संस्कृत के सर्वोत्तम नाटकों में से है। उस युग में करुण रस के प्रति कवियों और पाठकों की विशेष अभिरुचि थी। राम ने जिस करुण की उद्दामधारा उत्तरचरित में प्रवाहित की है, उसके समकक्ष धारा का प्रवाह सीता के उपहरण काल में यशोवर्मा ने रामाभ्युदय में चित्रित की है। इसमें गीतात्मक अभिनेयता का परिपाक है। कीथ ने इस नाटक के गुणों से सम्मोहित होकर कहा है—

We may regret the loss of a work which contained verses as pretty as there even on the outworn topic of Rāma and Sita.[2]

---

१. History of Classical Sanskrit Lit. P. 625

२. The Sanskrit Drama p. 222. कुन्तक के अनुसार कथा कितनी भी घिसी क्यों न हो, प्रकरण-वक्रता से उसमें अनुत्तम चारुता सम्पादित करना कुशल कवि-कर्म है। वक्रोक्तिजीवित का चतुर्थ उन्मेष।

लावण्यवती

क्षेमेन्द्र की रचना लावण्यवती काव्य नामक उपरूपक है, जैसा औचित्यविचारचर्चा के उद्धरणों से प्रतीत होता है[1]—

हास्यरसे यथा मम लावण्यवतीनाम्नि काव्ये—

सीधुस्पर्शभयान्न चुम्बसि मुखं किं नासिकां गूहसे
रे रे श्रोत्रियतां तनोषि विषमां मन्दोऽसि वेश्यां विना।
इत्युक्त्वा मदघूर्णमाननयना वासन्तिका मालती
लीनस्यात्रिवसोः करोति बकुलस्येवासवासेचनम्॥

इस काव्य से कुछ अन्य पद्य क्षेमेन्द्र ने उद्धृत किये हैं। यथा,

मार्गे केतकसूचिभिन्नचरणा सीत्कारिणी केरली
रम्यं रम्यमहो पुनः कुरु विटेनेत्यर्थिता सस्मिता।
कान्ता दन्तचतुष्कबिम्बितशशिज्योत्स्नापटेन क्षणं
धूर्तालोकनलज्जितेव तनुते मन्ये मुखाच्छादनम्॥

अद्य दशसि किं त्वं बिम्बबुद्ध्याऽधरं मे
भव चपल निराशः पक्वजम्बूफलानाम्।
इति दयितमवेत्य द्वारदेशात्प्रमन्या
निगदति शुकमुच्चैः कान्तदन्तक्षतौष्ठी॥

निर्याते दयिते गृहे विशयने निर्माल्यमाल्ये हृते
प्राप्ते प्रातरसह्यरागिणि परे वारावहारेऽन्यथा।
द्वारालीनविलोचना व्यसनिनी सुप्ताहमेकाकिनी-
त्युक्त्वा नीविविकर्षणैः स चरणाघातैरशोकीकृतः॥

ललितरत्नमाला

क्षेमेन्द्र की ललितरत्नमाला नाटिका प्रतीत होती है। औचित्यविचारचर्चा में कवि ने अपनी रचना से नीचे लिखा पद्य उद्धृत किया है—

---

1. काव्य में हास्य और श्रृङ्गाररस, लास्य, विट-चेट, कुलाङ्गना, वेश, ललितोदात्त नायक आदि का वैशिष्ट्य होता है। इसका एक अन्य प्रकार भी है—

विप्रामात्यवणिक्पुत्रनायिकानायकोज्ज्वलम्।
मुदितप्रमदा-भाषा-चेष्टितैरान्तरान्तरा॥
ग्रथितं विटचेष्टादिवेशभाषाभिरेव च।
एवं वा कल्पयेत् काव्यं यथासुग्रीवमेलनम्॥ शारदातनय : भावप्रकाश

निद्रां न स्पृशति त्यजत्यपि धृतिं धत्ते स्थितिं न क्वचिद्-
दीर्घां वेत्ति कथां व्यथां न भजते सर्वात्मना निर्वृतिम् ।
तेनाराधयता गुणैस्तव जपध्यानेन रत्नावलीं
निःसङ्गेन पराङ्गनापरिगतं नासापि नो सह्यते ॥

इस पद्य में स्त्रीलिङ्ग पदों का औचित्य प्रतिपादित है। इसमें विदूषक सुसंगता से बता रहा है कि रत्नावली के वियोग में उदयन की क्या दुःस्थिति है।

वासवदत्ताहरण

सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में वासवदत्ताहरण नामक रूपक का उल्लेख करते हुए बताया है कि इसकी प्रस्तावना में नलिका नामक वीथ्यङ्ग का प्रयोग हुआ है, जो इस प्रकार है—

हस्ते कर्णस्य का शक्तिः क्षसमध्यगतोऽस्ति कः ।
परैः किमधितिष्ठन्तो न बाध्याः शाङ्गिणो हताः ॥

इसमें

हस्ते कर्णस्य का शक्तिः = वासवदत्ता
क्षसमध्यगतः = ह
परैः किमधितिष्ठन्तो...हताः = रण

इस प्रकार वासवदत्ताहरण नाम पद्य की पहेली का उत्तर है।[1]

विधिविलसित

विधिविलसित नाटक का केवल एक उद्धरण नाट्यदर्पण में इस प्रकार मिलता है—

कञ्चुकी — हा धिक् कष्टम्, नैवोल्लंघ्यः प्राक्तनकर्मविपाकः ।

वार्तापि नैव यदिहास्ति स राजचन्द्रः
तेनोज्झिता वत विमोहितचेतनेन ।
देवी वने त्रिदशनाथविलासिनीभिः
कर्तुं गता जगति लास्यमिति प्रवादः ॥

यह पद्य उस पात्र के मुख से कहलवाया गया है, जो पिता के घर पर रहती हुई दमयन्ती के द्वारा नल को ढूँढने के लिए अयोध्या भेजा गया था। वहाँ नल सूद का काम करता था।

पाँचवें अङ्क के इस पद्य से प्रतीत होता है कि विधिविलसित में कम से कम छः अङ्क होंगे।

---

1. वासवदत्ताहरण नाटक का नाम प्रतीत होता है। किन्तु यह भी सम्भव है कि किसी नाटक का प्रमुख विषय वासवदत्ताहरण हो।

विलक्षदुर्योधन

विलक्षदुर्योधन का उल्लेख एकमात्र नाट्यदर्पण में मिलता है। गोहरण-सम्बन्धी महाभारतीय कथा इसका उपजीव्य है, जिसमें अर्जुन ने अपने पराक्रम से दुर्योधन को विलक्ष कर दिया था। भीष्म ने अर्जुन के पराक्रम की प्रशंसा इस प्रकार की है—

एतत् ते हृदयं स्पृशामि यदि वा साक्षी तवैवात्मजः
सम्प्रत्येव तु गोग्रहे यदभवत् तत् तावदाकर्ण्यताम् ।
एकः पूर्वमुदायुधैः सबहुभिर्दृष्टस्ततोऽनन्तरं
यावन्तो वयमाहवप्रणयिनस्तावन्त एवार्जुनाः ॥

यह प्रतिमुख सन्धि में पुष्प का उदाहरण है।

वासवदत्तानाट्यधार

वासवदत्तानाट्यधार के लेखक सुबन्धु वही हैं, जिन्होंने वासवदत्ता नामक आख्यायिका लिखी है। अभिनवगुप्त ने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है—

महाकविसुबन्धुनिबद्धो वासवदत्तानाट्यधाराख्यः समस्त एव प्रयोगः।

महाकवि सुबन्धु का प्रादुर्भाव सातवीं शताब्दी में हुआ था। इनकी वासवदत्ता प्रसिद्ध गद्यकाव्य है।

वासदत्ता रूपक की विशेषता इसका नाट्यायित है। नाट्यायित है नाट्य के भीतर नाट्य होना, जैसा उत्तररामचरित का गर्भाङ्क है। अभिनवगुप्त के शब्दों में—

एवमिहापि नाट्य एकघनस्वभावे हि स्थिते तत्रैवासत्यनाट्यानुप्रवेशा-न्नाट्यपात्रेषु सामाजिकीभूतेषु तदपेक्षया यदन्यं नाट्यं तस्य तदपेक्षया नाट्यरूपत्वं पारमार्थिकमिति नाट्यायितमुच्यते।

वासवदत्ता में उदयन चरित का अभिनय हो रहा है। उसमें रङ्गमञ्च पर ही दर्शक हैं बिन्दुसार। इसके अतिरिक्त नाट्यायित है इसमें वासवदत्ता के चरित का अभिनय हो रहा है और उदयन रङ्गमञ्च पर दर्शक बना है। बिन्दुसार और उदयन की प्रतिक्रियायें प्रेक्षकों के समक्ष हैं।

उदयन जब रङ्गमञ्च पर सामाजिक बना है तो सूत्रधार कहता है—'तव सुचरितै रेप जयति'।

इसे सुनकर उदयन कहता है—'कुतो मम सुचरितानि (सास्रं विलपति।)'

एह्यम्ब किं कटकपिङ्गलपालकैस्तै-
र्भक्तोऽहमप्युदयनः सुत-लालनीयः।
यौगन्धरायण ममानय राजपुत्रीं
हा हर्षरक्षितगतस्त्वमपप्रभावः ॥

विन्दुसार के सामाजिक होने पर नाट्यायित का स्वरूप नीचे लिखा है—

विन्दुसारः — धन्याः खलु ईदृशैः भक्तस्य प्रलापैः ।

(इति उच्छ्वसिति)

प्रतीहारी (आत्मगतम्) — अअणिदपरमत्थकलणेहिं पिच्छई खु देवो ।

इत्यादि

वासवदत्ता प्रायः आद्यन्त नाट्यायित है । अभिनवगुप्त ने कहा है—

नाट्यायिते हि वासवदत्तानाट्यपारे प्रतिपदं दृश्यते ।

अभिनवभारती ना० शा० २२.५०

भगवदज्जुकीय नामक प्रहसन में पार नामक जिस रूपक कोटि की चर्चा की गई है, वह सम्भवतः यही नाट्यपार है ।

शर्मिष्ठापरिणय

शर्मिष्ठापरिणय का उल्लेख सागरनन्दी ने प्रवर्तक कोटि की प्रस्तावना का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए किया है । यथा,

नटी — कदमं उदुं समस्सिअ गाइस्सं ।

नटः — नन्विमं वसन्तमाश्रित्य गीयताम् ।

नटी — अलं एदिणा विरहिजणसंतावकाइणा । वरं अण्णं समस्सिअ गाइस्सं ।

इसके द्वारा शर्मिष्ठा के कामसन्तप्त होने के कारण वसन्तगान का अनौचित्य नाटक की कथावस्तु का संकेत करता है ।

अप्राप्त रूपक

संस्कृत के असंख्य नाटक अप्राप्त भी हैं, जिसका स्मरण या उल्लेख मात्र कहीं-कहीं मिलता है, किन्तु उनके उद्धरण भी नहीं मिलते। जिन रूपकों के उद्धरण मात्र मिलते हैं, उनका परिचय 'प्राप्तांक रूपकों' में दे चुके हैं। यहां ऐसे रूपकों की चर्चा है, जिनके उद्धरण तो नहीं मिलते, पर जिनके नाम या विशेषताओं का आकलन इतस्ततः संग्राह्य है।

अनङ्गवती

रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में अनङ्गवती नाटिका का उल्लेख किया है।

अमोघराघव

अमोघराघव का उल्लेख रसार्णवसुधाकर में इन शब्दों में है—

अमोघराघवे सोऽयं वस्तूत्कर्षैककारणम् ॥ ३. २१५

अर्थात् अमोघराघव में गर्भाङ्क का प्रयोग वस्तूकर्ष के लिए किया गया।

कनकावतीमाधव

इस शिल्पक कोटि के उपरूपक का उल्लेख सागरनन्दी और विश्वनाथ ने किया है।

उर्वशीमर्दन

इस ईहामृग का नाममात्र सागरनन्दी के नाटकलक्षणरत्नकोश में है। इसमें चार अंक थे और कैशिकी वृत्ति नहीं थी।

कामदत्तप्रकरण

चतुर्भाणी में से पद्मप्राभृतक को शूद्रक की रचना कहा जाता है। प्राभृतक में कामदत्त प्रकरण का उल्लेख है। सम्भव है कि इस प्रकरण के रचयिता स्वयं शूद्रक रहे हों। रसार्णवसुधाकर के अनुसार यह धूर्तप्रकरण है। सागरनन्दी ने कामदत्ता भाणिका का उल्लेख किया है।

कुन्दशेखरविजय

कुन्दशेखरविजय नामक ईहामृग का उल्लेख सागरनन्दी और बहुरूप मिश्र ने किया है। साहित्यदर्पण में इसका नाम सम्भवतः कुसुमशेखरविजय है।

केलिरैवतक

यह हल्लिसक कोटि का उपरूपक है, जिसका उल्लेख सागरनन्दी ने किया है।

कौशलिका नाटिका

कौशलिका नाटिका के रचयिता भट्टश्री भवनुत चूड हैं। इस नाटिका में वत्सराज के द्वारा कौशलिका नामक नायिका प्राप्त करने की कथा है। नाट्यदर्पण में रामचन्द्र ने इसका उल्लेख किया है।

क्रीडारसातल

सागरनन्दी ने क्रीडारसातल नामक श्रीगदित कोटि के उपरूपक का उल्लेख किया है। इसमें स्त्री का करुण गान है।

ग्रामेयी

सागरनन्दी ने ग्रामेयी नामक नाटिका का उल्लेख रत्नावली के साथ किया है।

जामदग्न्यजय

जामदग्न्यजय नामक रूपक का सर्वप्रथम उल्लेख दशरूपक अवलोक में मिलता है। अत एव यह ९५० ई० से पूर्व की रचना होनी ही चाहिए। इस व्यायोग में परशुराम के द्वारा सहस्रार्जुन के वध की कथा है।

तरङ्गदत्त

तरङ्गदत्त प्रकरण का प्रणयन ९५० ई० के पहले हुआ, क्योंकि इसका उल्लेख दशरूपक के अवलोक नामक टीका में है। इसकी नायिका वेश्या थी। इसमें नायक को अपनी नायिका के लिए विपन्न दिखाया गया है। भोज के शृङ्गारप्रकाश और शारदातनय के भावप्रकाशन में भी तरङ्गदत्त का उल्लेख है।

देवीमहादेवम्

सागरनन्दी ने देवीमहादेवम् नामक उल्लाप्यक का उल्लेख किया है।

द्रौपदी-स्वयंवर

नाट्यदर्पण में रामचन्द्र ने लिखा है कि द्रौपदी-स्वयंवर नामक रूपक में वीर से शृङ्गार तथा रौद्र से करुण और भयानक रसों की कारणता प्रमाणित है।

नलविजय

नलविजय का उल्लेख सागरनन्दी के नाटकलक्षणरत्नकोश में मिलता है। इसके प्रवेशक में मालविका और चतुरिम परस्पर बातचीत करती हुई सूचित करती हैं कि नल राज्य से च्युत हो चुके हैं।

पत्रलेखा

नाटकलक्षणरत्नकोश में सागरनन्दी ने भाण का उदाहरण देते हुए पत्रलेखा का उल्लेख किया है।

पयोधि-मन्थन

पयोधि-मन्थन नामक समवकार की चर्चा दशरूपक और नाट्यदर्पण में है। भरत के नाट्यशास्त्र में अमृतमन्थन नामक समवकार का उल्लेख है।

प्रतिज्ञाचाणक्य

अभिनवगुप्त के अनुसार भीम ने प्रतिज्ञाचाणक्य की रचना की।

प्रतिमानिरुद्ध

भीम के पुत्र वसुनाग का प्रतिमानिरुद्ध नाटक सर्वप्रथम अभिनवभारती में उल्लिखित होने के कारण ९५० ई० से पूर्व की रचना है। कुन्तक ने इसका नाम संविधानक के आधार पर व्युत्पन्न बताया है। इसमें अनिरुद्ध की प्रतिमा सम्भवतः नायक के विवाह के प्रकरण में प्रयुक्त हुई है। रामचन्द्र के नाट्यदर्पण में इस रूपक का उल्लेख है। इसके अनुसार इस नाटक में स्वप्न नामक सन्ध्यन्तर है।

भीमविजय

इस नाटक का उल्लेख सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में किया है इसकी कथावस्तु वेणीसंहार की भाँति रही होगी, जिसमें साधक भीम, साधन वासुदेव की दी हुई गदा, साध्य दुर्योधन का निधन, सिद्धि युधिष्ठिर की राज्यप्राप्ति और सम्भोग द्रौपदी और भीम का प्रणय है।

मदनिकाकामुक

सागरनन्दी ने मदनिकाकामुक नामक रासक का उस कोटि की रचना के आदर्श रूप में उल्लेख किया है।

मायाकापालिक

सागरनन्दी और विश्वनाथ ने सल्लापक कोटि की रचना के आदर्श रूप में मायाकापालिक का उल्लेख किया है।

मारीचवध

अभिनवगुप्त ने भारती में मारीचवध का रागकाव्य के उदाहरण रूप में उल्लेख किया है।[1] इसमें हेमचन्द्र के अनुसार ककुभग्रामराग है।

---

१. ना० शा० ४.२६८ पर

मारीचवञ्चित

मारीचवंचित नाटक पाँच अङ्कों में था। इसके एक प्रवेशक में उल्कामुख और दीर्घजिह्व दो अधम कोटि के पात्र थे। विभीषण ने इन दोनों पात्रों में सन्धि कराई थी, जैसा भावप्रकाशन की नीचे लिखी उक्ति से प्रतीत होता है—

यथा विभीषणेनात्र सन्धिरुल्कामुखस्य च।
दीर्घजिह्वस्य मारीचवञ्चिते नाटके कृतः॥

मेनकानहुष

मेनकानहुष को सागरनन्दी ने प्रत्येक अङ्क में विदूषक वाले त्रोटक के आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें ९ अङ्क थे, जैसा अमृतानन्द योगी ने लिखा है।

राघवविजय

अभिनवगुप्त ने भारती में राघवविजय का उल्लेख रागकाव्य के रूप में किया है।[१] हेमचन्द्र ने बताया है—राघवविजयस्य विचित्रवर्णनीयत्वेऽपि ढक्करागेणैव निर्वाहः।[२]

राधावीथी

सागरनन्दी ने प्रपञ्च नामक वीथ्यङ्ग का उदाहरण राधावीथी से उन्मेय बताया है।

रामविक्रम

रामविक्रम की चर्चा एकमात्र सागरनन्दी के नाटकलक्षणरत्नकोश में मिलती है। तदनुसार अरन्य से आया कोई वटु जनक से बताता है कि किस प्रकार राक्षसों से रामादि का विरोध हुआ था।

रेवतीपरिणय

सागरनन्दी ने नाटकलक्षणरत्नकोश में रेवतीपरिणय का उल्लेख किया है। इसके तृतीय अङ्क में तापस के द्वारा प्रवेशक प्रस्तुत किया गया था।

ललितनागर

सागरनन्दि ने नाटकलक्षणरत्नकोश में ललितनागर नामक भाण का उल्लेख किया है। इसका उल्लेख बहुरूप मिश्र ने भी किया है।

---

१. ना० शा० ४.३६ पर

२. काव्यानुशासन अध्याय ८ पृ० २९३

ललितरत्नमाला

क्षेमेन्द्र ने औचित्य-विचारचर्चा में अपने रूपक ललितरत्नमाला का उल्लेख किया है।

वकुलवीथी

सागरनन्दी ने आदर्श वीथी नामक रूपक के उदाहरण रूप में वकुलवीथी का उल्लेख किया है।

वीणावती

वीणावती भाणी का उल्लेख सागरनन्दी और शारदातनय ने किया है।

वृत्रोद्धरण

शारदातनय तथा सागरनन्दी ने वृत्रोद्धरण नामक डिम को इस कोटि के आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है।

शक्रानन्द

सागरनन्दी ने शक्रानन्द को आदर्श समवकार के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

शारदचन्द्रिका

शारदातनय ने भावप्रकाशन में वाणरचित शारदचन्द्रिका का उल्लेख किया है।

शशिकामदत्त

सागरनन्दी ने शशिकामदत्त नामक नाटक में विट के द्वारा प्रवेशक प्रस्तुत करने का उल्लेख किया है।

स्वप्नदशानन

राजशेखर ने स्वप्नदशानन के लेखक भीमट का उल्लेख नीचे लिखे पद्य में किया है—

कालञ्जरपतिश्चक्रे भीमटः पञ्चनाटकीम्।
प्राप प्रबन्धराजत्वं तेषु स्वप्नदशाननम्॥

इसमें स्वप्नवासवदत्त के आदर्श पर स्वप्न को संविधानक बनाकर रावणसम्बन्धी रामकथा को प्रपञ्चित किया गया है।

भीमट के लिखे मनोरमावत्सराज नाटक का एक अंश नाट्यदर्पण में मिलता है।

शशिविलास

सागरनन्दी के अनुसार शशिविलास शुद्ध कोटि का प्रहसन था, जिसमें परिव्राट्

तापस और द्विज में से कोई हास्य-सर्जन करता है। बहुरूप मिश्र ने शशिकला नामक प्रहसन का उल्लेख किया है।

शृङ्गारतिलक

विश्वनाथ और सागरनन्दी ने शृङ्गारतिलक नामक प्रस्थान कोटि के उपरूपक को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है।

सत्यभामा

सागरनन्दी के अनुसार सत्यभामा नामक गोष्ठी में एक अङ्क, कैशिकी वृत्ति आदि का वैशिष्ट्य था।

उपर्युक्त अप्राप्त रूपकों के अतिरिक्त विश्वनाथ के साहित्यदर्पण में विविध कोटि के रूपकों और उपरूपकों के उदाहरण रूप में बताई हुई अप्राप्त रचनायें नीचे लिखी हैं—

लीलामधुकर (भाण), कुसुमशेखर विजय (ईहामृग), शर्मिष्ठाययाति (अङ्क), कन्दर्पकेलि, धूर्तचरित (दोनों प्रहसन), स्तम्भितरम्भ (त्रोटक) रैवतमदनिका (गोष्ठी), नर्मवती, विलासवती (दोनों नाट्यरासक), यादवोदय (काव्य), वालिवध (प्रेङ्खण)[1], मेनकाहित (रासक)। कीडारसातल (श्रीगदित), कनकवती-माधव (शिल्प), बिन्दुमती (दुर्मल्लिका) केलिरैवतक (हल्लीश), कामदत्ता (भाणिका), त्रिपुरदाह (डिम)।

कुछ अन्य रूपकों और उपरूपकों के नाममात्र अभिनवभारती, सरस्वती कण्ठाभरण, शृङ्गारप्रकाश आदि से संगृहीत नीचे लिखे हैं—

मदलेखा (त्रोटक), उदात्तकुंजर (उल्लाप्य), गौडविजय तथा सुग्रीवकेलन (दोनों काव्य) त्रिपुरमर्दन और नृसिंहविजय (प्रेङ्खण), रामानन्द (श्रीगदित) दानकेलिकौमुदी (भाणिका)।

शारदातनय ने भावप्रकाशन में नीचे लिखे अप्राप्त उपरूपक के नाम दिये हैं—

गङ्गातरंगिका (पारिजातलता), माणिक्यवल्लिका (कल्पवल्ली), नन्दीमती और शृङ्गारमञ्जरी (दोनों भाण), सैरन्ध्रिका, सागरकौमुदी तथा कलिकेलि (तीनों प्रहसन)।

रसार्णवसुधाकर में आनन्दकोश तथा बृहत्सभद्रक नामक प्रहसनों के नाम मिलते हैं।

---

१. सागरनन्दी ने भी इसे आदर्श प्रेक्षणक के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

संस्कृत साहित्य के उल्लेखों से कुछ नाटककारों के नाममात्र ही मिलते हैं। उनकी नाट्यकृतियाँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं। ऐसे नाट्यकारों में सर्वप्रथम चन्द्रक है। इनके विषय में कल्हण का कहना है—

नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः।
द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्द्रकोऽभवत्॥

चन्द्रक के आश्रयदाता तुंजिन थे, जो कश्मीर में राज्य करते थे। कनिंघम के अनुसार तुंजिन ३१९ ई० में हुए।

सम्भव है नीचे लिखे पद्य चन्द्रक के हों—

युद्धेषु भाग्यचपलेषु न मे प्रतिज्ञा
दैवं नियच्छति जयं च पराजयं च।
एषैव मे रणगतस्य सदा प्रतिज्ञा
पश्यन्ति यन्न रिपवो जघनं हयानाम्॥

खगोत्क्षिप्तैरन्त्रैस्तरुशिरसि दोलेव रचिता
शिवा लूनाहारा स्वपिति रतिखिन्नेव वनिता।
तृषार्तो गोमायुः सरुधिरमसिं लेढि बहुशो
बिलान्वेषी सर्पो हतगजकराग्रं प्रविशति॥

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलः
क्षुधाक्षामो रूक्षः पिठरक-कपालार्दित-गलः।
व्रणैः पूतिक्लिन्नैः कृमिपरिवृतैरावृततनुः
शुनीमन्वेति श्वा तमपि मदयत्येष मदनः॥

चन्द्रक के नाटक की नान्दी नीचे लिखा पद्य प्रतीत होता है—

कृष्णेनाम्बगतेन रन्तुमधुना मृद् भक्षिता स्वेच्छया
सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली मिथ्यास्य पश्याननम्।
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने दृष्ट्वा समस्तं जग-
न्माता यस्य जगाम विस्मयपदं पायात् स वः केशवः॥

दूसरे ऐसे नाटककार प्रद्युम्न हैं, जिनकी प्रशस्ति में राजशेखर ने कहा है—

प्रद्युम्नान्नापरस्येह नाटके पटवो गिरः।
प्रद्युम्नान्न परस्येह पौष्पा अपि शराः खराः॥

अध्याय ६१

उपसंहार

संस्कृत के मध्ययुग के नाट्य-साहित्य की चर्चा समाप्त हुई। इस युग में सहस्रों रूपकों का प्रणयन हुआ, जिनमें से लगभग २०० जैसे-तैसे मेरी पकड़ में आ सके। इनका अध्ययन करने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इनमें नाट्यशास्त्रीय विकास की प्रचुर सामग्री के साथ ही उस युग की सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का आँखों-देखा चित्र विद्यमान है। इनमें से कतिपय रूपकों की कीथ जैसे विदेशी मनीषियों ने प्रशंसा की है। पार्थपराक्रम-व्यायोग के लेखक प्रह्लादनदेव के विषय में उनका कहना है—

Prahlādanadeva wrote other works of which some verses are preserved in the anthologies and must have been a man of considerable ability and merit.

कतिपय नाटक कला की दृष्टि से अनुत्तम हैं। रामभद्र मुनि के बारहवीं शती के प्रकरण प्रबुद्धरौहिणेय को कला की दृष्टि से विश्वसाहित्य में स्थान दिया जा सकता है। इसका अभिनय और कथा-प्रपञ्च-कौशल अतिशय मनोरम और रसमय हैं। वैसा ही है भगवदज्जुकीय नामक प्रहसन, जिसमें कवि ने सामाजिकों को रसविलास में निमग्न करते हुए मनोरञ्जन का अपूर्व प्रवाह प्रवर्तित किया है।

अनेक नाटकों में भारतीय चरित्र-निर्माण के उपादान कलात्मक सौरभ से सुवासित हैं। महाकवि क्षेमीश्वर का चण्डकौशिक हरिश्चन्द्र के सत्याभिनिवेश के चित्रण द्वारा सहृदय के उद्योन्मुख मनोवल को रसास्वादपूर्ण विधि से द्विगुणित कर देता है।

मध्ययुग भारत के सामाजिक और राजनीतिक विघटन और विप्लव का युग था। इस युग में वीरों को उत्साहित करके संस्कृति और समाज को विघटित करने वालों का डटकर सामना करने की प्रेरणा प्रदान करने वाले बहुशः डिम, व्यायोग और समवकार लिखे गये। इस दृष्टि से महाकवि वत्सराज का प्रयास प्रशस्त है। उनके त्रिपुरदाह, किरातार्जुनीय-व्यायोग और समुद्रमथन निष्प्राण में भी राष्ट्ररक्षाभियोग की स्फूर्ति निर्भर करने में समर्थ हैं। आक्रमणकारियों से लड़ने के लिए राजाओं ने संघ बनाये और युद्धघोष हुआ—

एकः करः कलयति स्फटिकाक्षमालां
घोरं धनुस्तदितरश्च बिभर्ति हस्तः ।
धर्मः कठोरकलिकालकदर्थ्यमानः
सत्क्षत्रियस्य शरणं किमिवानुयातः ॥

यह सन्देश दिया वत्सराज ने समाज को और राजाओं को मन्त्र दिया—

औदार्यशौर्यरसिकाः सुखयन्तु भूपाः ॥

देश और संस्कृति की रक्षा के लिए आत्मबलिदान का सन्देश अनेक रूपकों में पदे-पदे मिलता है और साथ ही उन जघन्य जन्तुओं का परिचय दिया गया है, जो अपने तुच्छ स्वार्थों के लिए देश की स्वतन्त्रता की बलि दे रहे थे। उन महामानवों के आदर्श को कई नाटकों में उपराया गया है, जिनके पराक्रम और शौर्यगाथा से उन दिनों भारत-माता धन्य हुई। जैन कवि वीरसूरि का हम्मीरमदमर्दन इस कोटि की एक अन्य रचना है। इसके अनुसार—

त्रस्तेषु तेषु सुभटेषु विभौ च भग्ने
मग्नासु कीर्तिषु निरीक्ष्य जनं भयार्तम् ।
यो मित्रबान्धववधूजनवारितोऽपि
वल्गत्यरीन् प्रति रसेन स एव वीरः ॥

संस्कृत के पूर्ववर्ती नाटकों में जिन कलात्मक प्रवृत्तियों का बीजाधान या ईषद्विकास हुआ, उनका पूर्ण विकास मध्ययुग की इन कृतियों में मिलता है। यथा, जिस छायानाटक का बीजाधान भास ने स्वप्नवासवदत्त और प्रतिमा नाटक में किया और जिसका ईषद्विकास कुन्दमाला और उत्तररामचरित में मिलता है, उसका पूर्ण विकास धर्माभ्युदय, उल्लाघराघव और दूताङ्गद आदि रूपकों में दर्शनीय है। ऐसा ही है कपटनाटक, कूटघटना और कूटपात्रों का नियोजन, जो मध्ययुगीन नाटकों में विशेष कौशलपूर्वक सन्निवेशित हैं। अश्वघोष के द्वारा प्रवर्तित प्रतीक नाटकों का सम्यग्विकास भी इस युग के प्रबोधचन्द्रोदय और मोहराजपराजय आदि में मिलता है। हम यदि इस युग की कृतियों की अज्ञानवश उपेक्षा करते हैं तो उपर्युक्त विकास के कलात्मक विलास से वञ्चित रह जायेंगे।

मध्ययुग के इन रूपकों में ऐतिहासिक कृतियों का विशेष स्थान है। प्रायशः समसामयिक लेखकों ने अपनी देखी हुई घटनाओं को इनमें चित्रित किया है। इतिहास की प्रामाणिक सामग्री जुटाने में इन कृतियों का महत्त्व विशेष है। कौमुदीमहोत्सव, विद्धशालभञ्जिका, कर्णसुन्दरी, ललितविग्रहराज, मोहराजपराजय, पारिजातमञ्जरी, हम्मीरमदमर्दन आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

मध्ययुग के इन नाटकों में अभिनव संविधान, नई नाटकीय विधायें और नये प्रयोग मिलते हैं। हनुमन्नाटक, बालरामायण, अनर्घराघव और वीणावासवदत्त अपनी कोटि की सर्वप्रथम रचनायें मिलती हैं, जिनकी छाया भारतीय साहित्य पर शाश्वत रूप से पड़ी है। कुछ रूपक-भेदों के उदाहरणस्वरूप प्राचीन कवियों की रचनायें अभी तक नहीं मिली हैं। मध्ययुग में उनके कतिपय उदाहरण उपलभ्य हैं। यथा, वत्सराज-विरचित समवकार, डिम और ईहामृग।

आधुनिक चलचित्र-जगत् के लिए कुछ अनूठी सामग्री इन नाटकों में अनुहरणीय है। रामचन्द्र के कौमुदीमित्रानन्द अथवा रामभद्र के प्रबुद्धरौहिणेय में चलचित्रों की प्रवृत्तियों का मूल देखा जा सकता है।

वर्गीकृत रूपक

महानाटक

नाटक

प्रतीक-नाटक

प्रकरण

व्यायोग

प्रहसन

भाण

ईहामृग

डिम

समवकार

नाटिका

उपरूपक

ऐतिहासिक रूपक

छायानाटक

शब्दानुक्रमणिका